

समाज विज्ञान एक अध्ययन

A STUDY OF SOCIAL SCIENCE



समाज विज्ञान विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

समाज विज्ञान एक अध्ययन

A STUDY OF SOCIAL SCIENCE



उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय-हल्द्वानी

फोन नं. 05946 – 261122, 261123

टॉल फ्री नं.18001804025

ई – मेल info@uou.ac.in

<http://uou.ac.in>

समाज विज्ञान एक अध्ययन SSS (N)-303

इकाई लेखन कार्य

1. समाज शास्त्र: अर्थ, परिभाषा, सिद्धांत, विषय-क्षेत्र, प्रकृति
2. राजनीति विज्ञान: अर्थ, परिभाषा, सिद्धांत, विषय-क्षेत्र, प्रकृति
3. इतिहास: अर्थ, परिभाषा, सिद्धांत, विषय-क्षेत्र, प्रकृति
4. लोक-प्रशासन: अर्थ, परिभाषा, सिद्धांत, विषय-क्षेत्र, प्रकृति
5. समाजशास्त्र का अन्य विषयों से अंतर्संबंध एवं अध्ययन के दृष्टिकोण
6. राजनीति विज्ञान का अन्य विषयों से अंतर्संबंध एवं अध्ययन के दृष्टिकोण
7. अर्थशास्त्र का अन्य विषयों से अंतर्संबंध एवं अध्ययन के दृष्टिकोण
8. लोक प्रशासन का अन्य विषयों से अंतर्संबंध एवं अध्ययन के दृष्टिकोण
9. मनोविज्ञान का अन्य विषयों से अंतर्संबंध एवं अध्ययन के दृष्टिकोण
10. सामाजिक शोध और सामाजिक अनुसंधान के प्रकार
11. शोध प्रारूप, उपकल्पनाएँ एवं अवलोकन का विस्तृत अध्ययन
12. निदर्शन: प्रकृति एवं पद्धतियाँ
13. सूचनाओं के प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोत
14. सामग्री का वर्गीकरण एवं प्रदर्शन

समाजविज्ञान विद्याशाखा के विभिन्न विभागों की अध्ययन सामग्री से साभारा

प्रकाशन वर्ष- 2025

पाठ्यक्रम संकलन, संयोजन एवं सम्पादन

संयोजन एवं सम्पादन – श्री हिमांशु पुनेठा, असिस्टेंट प्रोफेसर- राजनीति विज्ञान, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय
संकलन – सुश्री ऋतम्बरा नैनवाल, असिस्टेंट प्रोफेसर- राजनीति विज्ञान, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन- निदेशालय अध्ययन एवं प्रकाशन, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी- 263139

समाज विज्ञान एक अध्ययन SSS (N)-303

खण्ड 1 -समाज विज्ञान का परिचय		
1	समाज शास्त्र: अर्थ, परिभाषा, सिद्धांत, विषय-क्षेत्र, प्रकृति	1 – 12
2	राजनीति विज्ञान: अर्थ, परिभाषा, सिद्धांत, विषय-क्षेत्र, प्रकृति	13 – 41
3	इतिहास: अर्थ, परिभाषा, सिद्धांत, विषय-क्षेत्र, प्रकृति	42 – 55
4	लोक-प्रशासन: अर्थ, परिभाषा, सिद्धांत, विषय-क्षेत्र, प्रकृति	56 – 66
खण्ड 2 -समाज विज्ञान के विषयों में अंतर्संबंध		
5	समाजशास्त्र का अन्य विषयों से अंतर्संबंध एवं अध्ययन के दृष्टिकोण	67 – 77
6	राजनीति विज्ञान का अन्य विषयों से अंतर्संबंध एवं अध्ययन के दृष्टिकोण	78 – 91
7	अर्थशास्त्र का अन्य विषयों से अंतर्संबंध एवं अध्ययन के दृष्टिकोण	92 – 104
8	लोक प्रशासन का अन्य विषयों से अंतर्संबंध एवं अध्ययन के दृष्टिकोण	105 – 114
9	मनोविज्ञान का अन्य विषयों से अंतर्संबंध एवं अध्ययन के दृष्टिकोण	115 – 132
खण्ड 3 -सामाजिक शोध		
10	सामाजिक शोध और सामाजिक अनुसंधान के प्रकार	133 – 150
11	शोध प्रारूप, उपकल्पनाएँ एवं अवलोकन का विस्तृत अध्ययन	151 – 178
12	निदर्शन: प्रकृति एवं पद्धतियाँ	179 – 200
13	सूचनाओं के प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोत	201 – 215
14	सामग्री का वर्गीकरण एवं प्रदर्शन	216 – 237

इकाई- 1 समाजशास्त्र: अर्थ, परिभाषा, प्रकृति एवं विषय-क्षेत्र

इकाई की रूपरेखा

- 1.0 प्रस्तावना
- 1.1 उद्देश्य
- 1.2 समाजशास्त्र का अर्थ व परिभाषा
 - 1.2.1 समाजशास्त्र समाज का अध्ययन
 - 1.2.2 समाजशास्त्र सामाजिक संबंधों का अध्ययन
 - 1.2.3 समाजशास्त्र सामाजिक जीवन, घटनाओं, व्यवहार एवं कार्यों का अध्ययन है
- 1.3 समाजशास्त्र की प्रकृति
 - 1.3.1 समाजशास्त्र विज्ञान के रूप में
- 1.4 समाजशास्त्र का विषय क्षेत्र
 - 1.4.1 स्वरूपात्मक अथवा विशिष्टवादी संप्रदाय
 - 1.4.2 समन्वयात्मक संप्रदाय
- 1.5 समाजशास्त्र की विषय वस्तु
 - 1.5.1 दुर्खीम के अनुसार समाजशास्त्र की विषयवस्तु
 - 1.5.2 एलेक्स इन्कलिस के अनुसार समाजशास्त्र की विषयवस्तु
 - 1.5.2.1 ऐतिहासिक विधि
 - 1.5.2.2 अनुभाविक विधि
 - 1.5.2.3 विश्लेषण विधि
- 1.6 सारांश
- 1.7 शब्दावली
- 1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 1.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 1.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है यह एक ऐसा विषय है, जिसमें मानव समाज के विभिन्न स्वरूप, संरचना व प्रक्रियाओं का क्रमबद्ध तरीके से अध्ययन किया जाता है। अगस्त कॉम्टे प्रथम विचारक हैं, जिन्होंने एक व्यवस्थित विज्ञान के रूप में समाजशास्त्रविषय का निर्माण उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में किया। उनको मानवीय तथा सामाजिक एकता पर बल देना वाला प्रथम समाजशास्त्री माना जाता है। उनका विचार था कि कोई भी ऐसा नहीं है जिसने कि समाज के विभिन्न पहलुओं का समग्र रूप में अध्ययन किया हो। इस कमी को दूर करने के लिए उन्होंने इस नवीन विषय का निर्माण किया। इसीलिए कॉम्टे को समाजशास्त्रविषय का जनक या जन्मदाता माना जाता है। समाजशास्त्रविषय का जनक मात्र इसीलिए नहीं कि उन्होंने इस नवीन विषय को प्रथमतः नाम प्रदान किया अपितु इसीलिए भी कि उन्होंने इस विज्ञान को 'विज्ञानों के संस्तरण' में तार्किक व उचित स्थान दिलवाने में तथा

सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग की संभावना को जोरदार शब्दों में व्यक्त करने में भी सफलता प्राप्त की। इस इकाई का उद्देश्य समाजशास्त्र के अर्थ, परिभाषा व प्रकृतिको स्पष्ट करना है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- समाज शास्त्र के अर्थ और परिभाषा को समझ पाएंगे।
- समाज शास्त्र की प्रकृति और विषय वस्तु को के सम्बन्ध में जान पाएंगे।

1.2 समाजशास्त्र का अर्थ व परिभाषा

समाजशास्त्र शब्द की व्युत्पत्ति दो शब्दों से मिलकर बनी है जिसमें से पहला शब्द 'सोसियस' (Socius) लैटिन भाषा से और दूसरा शब्द 'लोगस' (logus) ग्रीक भाषा से लिया गया है। इस प्रकार समाजशास्त्र का शाब्दिक अर्थ समाज का शास्त्र या समाज का विज्ञान है। डॉन मार्टिनल ने बताया है कि यदि मानव प्रकृति से दार्शनिक है तो स्वभावतः वह समाजशास्त्री भी है, क्योंकि सामाजिक जीवन उसका स्वाभाविक उद्देश्य है। समाजशास्त्र को एक नवीन विज्ञान के रूप में स्थापित करने का श्रेय फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान आगस्त काँम्टे को है, इनको समाजशास्त्र का जन्मदाता भी कहा जाता है। उन्होंने ही सर्वप्रथम इस शब्द का प्रयोग 1838 ई० में किया था। यद्यपि पहले उन्होंने इसे 'सोशल फिजिक्स' (Social Physics) कहा परन्तु बाद में इसे समाजशास्त्र (Sociology) का नाम दिया। अतएव आपको समाजशास्त्र के जनक के रूप में भी जाना जाता है। कालांतर में दुर्खीम, स्पेंसर, मैक्स वेबर एवं अन्य विद्वानों ने समाजशास्त्र को एक अकादमिक विज्ञान के रूप में विकसित करने हेतु अपने महत्वपूर्ण योगदान दिए। समाजशास्त्र की उत्पत्ति के मूल स्रोतों पर प्रकाश डालते हुए गिंसबर्गने लिखा है कि यह स्पष्ट रूप से माना जा सकता है कि समाजशास्त्र की उत्पत्ति राजनीति दर्शन, इतिहास, विकास के जैविकीय सिद्धांत एवं उन सभी सामाजिक और राजनीतिक सुधार आंदोलनों पर आधारित है जिन्होंने सामाजिक दिशाओं का सर्वेक्षण करना आवश्यक समझा। इस प्रकार स्पष्ट है कि सामाजिक घटनाओं का अध्ययन व मानवीय संबंधों की जटिलता के अध्ययन का विश्लेषण दोनों को यथार्थता की कसौटी पर कसने के लिए समाजशास्त्र का अविर्भाव एक समाजविज्ञान के रूप में 19वीं शताब्दी में हुआ।

विभिन्न विद्वानों ने समाजशास्त्र को एक समाज-वैज्ञानिक विषय व सामाजिक विषय के रूप में अपने-अपने तरीकों से परिभाषित करने के प्रयास किए। विषयांतर्गत सार को समझने हेतु कुछ परिभाषाएं निम्नवत हैं:-

वार्ड के अनुसार, “समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है।”

गिडिंग्स के अनुसार, “समाजशास्त्र समाज का वैज्ञानिक अध्ययन है।”

मैक्स वेबर के अनुसार, “समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो कि सामाजिक क्रिया के व्याख्यात्मक बोध को प्रस्तुत करने का प्रयास करता है, जिससे उसकी प्रक्रिया व प्रभावों की बुद्धिसंगत व्याख्या की जा सके।”

गिंसबर्गके अनुसार, “समाजशास्त्र मानवीय अंतर्क्रियाओं और अंतर्संबंधों, उनकी दशाओं और परिणामों का अध्ययन है।”

दुर्खीम के अनुसार, “समाजशास्त्र सामूहिक प्रतिनिधित्व के विज्ञान है।”

गिलिन और गिलिन के अनुसार, “व्यक्तियों के एक दूसरे के सम्पर्क में आने के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली ‘अन्तर्क्रियाओं’ के अध्ययन को ही समाजशास्त्र कहा जा सकता है।”

समाजशास्त्र की कोई सर्वमान्य परिभाषा देना एक कठिन कार्य है। विभिन्न विद्वानों ने इसकी परिभाषा भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से दी है। समाजशास्त्रियों द्वारा दी गई परिभाषाओं को हम निम्नलिखित प्रमुख श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं

1.2.1 समाजशास्त्र, समाज का अध्ययन है

अधिकांश विद्वान जैसे ओडम, वार्ड, जिसबर्ट, गिडिंग्स आदि समाजशास्त्र को समाज के अध्ययन या समाज के विज्ञान के रूप में परिभाषित करते हैं। यही दृष्टिकोण अधिकांश प्रारंभिक समाजशास्त्रियों का भी रहा है जिन्होंने समाज का समग्र के रूप में अर्थात् इसे एक संपूर्ण इकाई मानकर अध्ययन करने पर बल दिया है। ओडम के अनुसार “समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो समाज का अध्ययन करता है।” वार्ड के अनुसार, “समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है।” जिसबर्ट के अनुसार, “समाजशास्त्र सामान्यतः समाज के विज्ञान के रूप में परिभाषित किया जाता है।” इसी भांति गिडिंग्स के अनुसार, “समाजशास्त्र समग्र के रूप से समाज का क्रमबद्ध वर्णन तथा व्याख्या है।” समाज के अध्ययन के रूप में दी गई समाजशास्त्र की उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि केवल ‘समाजशास्त्र’ का शाब्दिक अर्थ ही ‘समाज का अध्ययन’ या ‘समाज का विज्ञान’ नहीं है अपितु ओडम, वार्ड, जिसबर्ट तथा गिडिंग्स आदि विद्वानों ने इसकी परिभाषा देते समय भी समाज को इस विषय का मुख्य अध्ययन बिंदु बताया है। समाज का अर्थ सामाजिक संबंधों की एक व्यवस्था, जाल अथवा ताने-बाने से है इससे किसी समूह के सदस्यों के बीच पाए जाने वाले पारस्परिक अंतर्संबंधों की जटिलता का बोध होता है। अन्य शब्दों में जब सामाजिक संबंधों की एक व्यवस्था पनपती है तभी हम उसे समाज कहते हैं। विज्ञान क्रमबद्ध ज्ञान या किसी तथ्य अथवा घटना से संबंधित वस्तुनिष्ठ रूप से जानकारी प्राप्त करने का एक तरीका है। इसमें अवलोकन, परीक्षा, प्रयोग, वर्गीकरण तथा विश्लेषण द्वारा वास्तविकता को समझने का प्रयास किया जाता है। यह प्रघटना के पीछे छिपे तथ्य अथवा वास्तविकता को प्राप्त करने का एक मार्ग है। इस प्रकार, जब हम समाजशास्त्र को समाज का विज्ञान कहते हैं तो हमारा तात्पर्य ऐसे विषय से है जो समाज तथा इसके विभिन्न पहलुओं का क्रमबद्ध अध्ययन करता है।

1.2.2 समाजशास्त्र सामाजिक संबंधों का अध्ययन है

कुछ विद्वानों यथा मैकाइवर एवं पेज, क्यूबर, रोज, सिमेल, ग्रीन आदि ने समाजशास्त्र को सामाजिक संबंधों के क्रमबद्ध अध्ययन के रूप में परिभाषित किया है। सामाजिक संबंधों से हमारा अभिप्राय दो अथवा दो से अधिक ऐसे व्यक्तियों के संबंधों से है जिन्हें एक दूसरे का आभास है तथा जो एक दूसरे के लिए कुछ न कुछ कार्य कर रहे हैं। यह जरूरी नहीं है कि संबंध मधुर तथा सहयोगात्मक ही हों, ये संघर्षात्मक या तनावपूर्ण भी हो सकते हैं। समाजशास्त्री इन दोनों तरह से संबंधों का अध्ययन करते हैं। सामाजिक संबंध उसी परिस्थिति में पाए जाते हैं। जिसमें दो या अधिक व्यक्ति अथवा दो या अधिक समूह परस्पर अंतर्क्रिया में भाग लें। सामाजिक संबंध तीन प्रकार के हो सकते हैं-प्रथम, व्यक्ति तथा व्यक्ति के बीच, द्वितीय व्यक्ति तथा समूह के बीच तथा तृतीय एक समूह और दूसरे समूह के बीच। पति, पत्नी, भाई, बहिन, पिता, पुत्र के संबंध पहली श्रेणी के उदाहरण हैं। छात्रों का अध्यापक के साथ संबंध दूसरी श्रेणी का उदाहरण है। एक टीम का दूसरी टीम अथवा एक राजनीति दल का दूसरे राजनीति दल से संबंध तीसरी श्रेणी का उदाहरण है। मैकाइवर एवं पेजके अनुसार समाजशास्त्र सामाजिक संबंधों के विषय में है। संबंधों के इस जाल को हम ‘समाज’ कहते हैं। क्यूबर के अनुसार “समाजशास्त्र को मानवसंबंधों के वैज्ञानिक ज्ञान के ढांचे के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। रोज के अनुसार, समाजशास्त्र मानव संबंधों का

विज्ञान है। सिमेल के अनुसार, 'समाजशास्त्र मानवीय अंतर्संबंधों के स्वरूपों का विज्ञान है'। इसी भांति ग्रीन के अनुसार, इस प्रकार समाजशास्त्र मनुष्य का उसके समस्त सामाजिक संबंधों के रूप में समन्वय करने वाला और सामान्य अनुमान निकालने वाला विज्ञान है।

सामाजिक संबंधों के अध्ययन के रूप में समाजशास्त्र को परिभाषित करने वाली उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट पता चल जाता है कि समाजशास्त्र की मुख्य विषय वस्तु व्यक्तियों में पाये जाने वाले सामाजिक संबंध है।

1.2.3 समाजशास्त्र सामाजिक जीवन, घटनाओं, व्यवहार एवं कार्यों का अध्ययन है

कुछ विद्वानों यथा ऑर्गबर्न एवं निमकॉफ, बेनेट एवं ट्यूमिन, किंबल यंग, सोरोकिन आदि ने समाजशास्त्र को सामाजिक जीवन, व्यक्तियों के व्यवहार एवं उनके कार्यों तथा सामाजिक घटनाओं के अध्ययन के रूप में परिभाषित किया है। ऑर्गबर्न एवं निमकॉफ के अनुसार "समाजशास्त्र सामाजिक जीवन का वैज्ञानिक अध्ययन है।" बेनेट एवं ट्यूमिन के अनुसार समाजशास्त्र सामाजिक जीवन के ढांचे और कार्यों का विज्ञान है।" यंग के अनुसार समाजशास्त्र समूहों में मनुष्यों के व्यवहार का अध्ययन करता है। इसी भांति सोरोकिन के अनुसार समाजशास्त्र सामाजिक, सांस्कृतिक घटनाओं के सामान्य स्वरूपों, प्रारूपों और विभिन्न प्रकार के अंतर्संबंधों का सामान्य विज्ञान है।

उपर्युक्त विवेचन से हमें पता चलता है कि समाज का विज्ञान होने के नाते समाजशास्त्र समाज के अन्य विज्ञानों यथा राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, मानवशास्त्र आदि से भिन्न है। इसमें हम सामाजिक जीवन का ही अध्ययन करते हैं। इसके साथ ही साथ सामाजिक व्यवहार एवं सामाजिक कार्यों का अध्ययन भी इस विषय को अन्य सामाजिक विज्ञानों से पृथक करता है। सामाजिक व्यवहार का अर्थ ऐसा व्यवहार है जो अन्य व्यक्तियों के व्यवहार या उनकी प्रत्याशित अनुक्रिया को ध्यान में रखकर किया जाता है।

1.2.4 समाजशास्त्र सामाजिक समूहों का अध्ययन है

व्यक्ति समाज में अकेला नहीं रहता अपितु अन्य व्यक्तियों के साथ रहता है। वास्तव में, व्यक्ति का जीवन विभिन्न सामाजिक समूहों का सदस्य होने के कारण ही संगठित जीवन है। हेरी एम जॉनसन के अनुसार समाजशास्त्र सामाजिक समूहों, उनके आंतरिकस्वरूपों या संगठन के स्वरूपों, उन प्रक्रियाओं जो उसे संगठन में बनाए रखती हैं या परिवर्तित करती हैं और समूहों के बीच पाए जाने वाले संबंधों का अध्ययन करने वाला विज्ञान है।" जॉनसन की परिभाषा से हमें पता चलता है कि समाजशास्त्र सामाजिक समूहों, इनमें पाए जाने वाले संगठनों तथा इनसे संबंधित प्रक्रियाओं का अध्ययन है। जब दो या दो से अधिक व्यक्ति किसी लक्ष्य या उद्देश्य को पाने के लिए एक दूसरे को प्रभावित करते हैं या अंतर्क्रिया करते हैं और इसके परिणामस्वरूप उनके मध्य सामाजिक संबंध स्थापित होते हैं। तभी उन व्यक्तियों के संग्रह को समूह कहा जा सकता है। इस प्रकार समूह के तीन तत्व हो सकते हैं- प्रथम, दो या दो से अधिक व्यक्तियों का संग्रह, द्वितीय, उनमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संबंधों का होना तथा तृतीय, उनकी क्रियाओं का आधार सामान्य हित या उद्देश्य का होना।

सभी समूह सामाजिक संबंधों के संकाय होते हैं। इस अर्थ में किसी भी समूह में उनके सदस्यों के बीच कुछ लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आंशिक सहकार निहित करता है। समूह के सहकारिता पक्ष का यह अर्थ नहीं है कि इसके सदस्यों के बीच वैमनस्य हो ही नहीं सकता। एक समूह में प्रतिद्वंद्विता और स्थायी घृणा का बाजार गर्म हो सकता है। जैसे कि कुछ परिवार होते हैं, लेकिन वह फिर भी समूह बना रहता है। उसके सदस्य भी यदा कदा अपनी अंतर्क्रियाओं में कतिपय लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सहकार करते रहते हैं। समाजशास्त्र व्यक्ति-व्यक्ति के परस्पर

संबंधों की अपेक्षा समूह-समूह के परस्पर संबंधों तथा एक जाति से दूसरी जातियों से संबंध तथा एक वर्ग से दूसरे वर्गों से संबंध को अधिक महत्व देता है।

1.3 समाजशास्त्र की प्रकृति

क्या समाजशास्त्र में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया जा सकता है या नहीं? यह प्रश्न समाजशास्त्र की स्थिति या प्रकृति से संबंधित प्रश्न है, अर्थात् इसका संबंध इस तथ्य का पता लगाना है कि क्या समाजशास्त्र विज्ञान है या नहीं? तो इसमें वैज्ञानिक पद्धति की कौन सी विशेषताएं पाई जाती हैं और यदि यह विज्ञान नहीं है तो इसमें कौन सी ऐसी आपत्तियां हैं जिनके आधार पर इसे विज्ञान नहीं कहा जा सकता है। इस प्रश्न के बारे में विद्वानों में मतैक्य का अभाव पाया जाता है। प्रमुख रूप से हमारे सामने दो दृष्टिकोण रखे गए हैं- समाजशास्त्र एक विज्ञान है तथा समाजशास्त्र विज्ञान नहीं है।

प्रथम दृष्टिकोण में इस बात पर बल दिया जाता है कि समाजशास्त्र अन्य विज्ञानों की तरह ही एक विज्ञान है तथा समाज, सामाजिक प्रघटनाओं एवं सामाजिक पहलुओं का वैज्ञानिक अध्ययन किया जा सकता है। दूसरे दृष्टिकोण के समर्थक इस बात पर बल देते हैं कि सामाजिक घटनाओं की प्रकृति एवं सामाजिक व्यवहार इतना जटिल है कि इनका वैज्ञानिक अध्ययन संभव नहीं है। अतः समाजशास्त्र को एक विज्ञान नहीं कहा जा सकता। इन दोनों दृष्टिकोणों के समर्थकों ने अपने-अपने दृष्टिकोणों की पुष्टि करने के लिए अनेक तर्क दिए हैं जिनका संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है-

1.3.1 समाजशास्त्र विज्ञान के रूप में

समाजशास्त्र में विज्ञान की निम्नलिखित विशेषताएं पायी जाती हैं-

1. समाजशास्त्र में सामाजिक संबंधों सामाजिक अंतर्क्रियाओं, सामाजिक व्यवहार एवं समाज का अध्ययन कल्पना के आधार पर नहीं किया जाता अपितु इनको वास्तविक रूप से वैज्ञानिक पद्धतिद्वारा समझने का प्रयास किया जाता है। वैज्ञानिक पद्धतिके द्वारा ही उपकल्पनाओं का परीक्षण एवं सामाजिक नियमों या सिद्धांतोंका निर्माण किया जाता है।
2. समाजशास्त्रीय ज्ञान प्रमाण पर आधारित है क्योंकि समाजशास्त्री किसी बात को बलपूर्वक मानने के लिए नहीं कहते अपितु तर्क एवं प्रमाणों के आधार पर इसकी व्याख्या करते हैं।
3. समाजशास्त्र तथ्यों का यथार्थ रूप से वर्णन ही नहीं करता अपितु इनकी व्याख्या भी करता है। इसमें प्राप्त तथ्यों का बढ़ा-चढ़ाकर या आदर्श एवं कल्पना से मिश्रित करने प्रस्तुत नहीं किया जाता अपितु वास्तविक घटनाओं (जिस रूप में वह विद्यमान है) का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।
4. समाजशास्त्र में वैज्ञानिक पद्धतिद्वारा एकत्र आंकड़ों को व्यवस्थित करने के लिए उनका वैज्ञानिक वर्गीकरण किया जाता है तथा तर्क के आधार पर निर्वचन करके निष्कर्ष निकाले जाते हैं। क्योंकि तथ्यों का वर्गीकरण, उनके क्रम का ज्ञान व सापेक्षित महत्व का पता लगाना है कि विज्ञान है और इन सब बातों को हम समाजशास्त्रीय विश्लेषणों में स्पष्ट देख सकते हैं, अतः समाजशास्त्र एक विज्ञान है।
5. समाजशास्त्र अपनी विषयवस्तु में कार्य-कारण संबंधों की खोज करता है, अर्थात् इसका उद्देश्य विभिन्न सामाजिक घटनाओं के बारे में आंकड़े एकत्र करना ही नहीं है अपितु उनके कार्य-कारण संबंधों एवं

परिणामों का पता लगाना भी है। प्राकृतिक विज्ञानों में कार्य-कारण संबंधों का निरीक्षण प्रयोगशाला में किया जाता है परंतु समाजशास्त्र में यह अप्रत्यक्ष प्रयोगात्मक पद्धति अर्थात् तुलनात्मक पद्धतिद्वारा ही संभव है।

6. समाजशास्त्र में वैज्ञानिक पद्धति द्वारा अध्ययन किए जाते हैं तथा सामाजिक वास्तविकता को समझने का प्रयास किया जाता है इसलिए इसमें सामान्यीकरण करने एवं सिद्धांतों का निर्माण करने के प्रयास भी किए गए हैं, यद्यपि एक आधुनिक विषय होने के कारण इनमें अधिक सफलता नहीं मिल पाई है।

रोबर्ट बीरस्टीड (Robert Bierstedt) का कहना है समाजशास्त्र की वास्तविक प्रकृति वैज्ञानिक है। इसे उन्होंने निम्नांकित विशेषताओं द्वारा स्पष्ट किया है-

1. **समाजशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है, प्राकृतिक विज्ञान नहीं-** समाजशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है क्योंकि इसकी विषयवस्तु मौलिक रूप से सामाजिक है अर्थात् इनमें समाज, सामाजिक घटनाओं सामाजिक प्रक्रियाओं, सामाजिक संबंधों तथा अन्य सामाजिक पहलुओं एवं तथ्यों का अध्ययन किया जाता है। प्रत्यक्ष रूप से इसका प्राकृतिक या भौतिक वस्तुओं से कोई संबंध नहीं है अतः यह प्राकृतिक विज्ञान नहीं है। समाजशास्त्र स्वयं संपूर्ण सामाजिक विज्ञान नहीं है अपितु सामाजिक विज्ञानों में से एक विज्ञान है।
2. **समाजशास्त्र एक वास्तविक (निश्चयात्मक) विज्ञान है, आदर्शात्मक विज्ञान नहीं-** समाजशास्त्र वास्तविक घटनाओं का अध्ययन, जिस रूप में वे विद्यमान हैं, करता है तथा विश्लेषण में किसी आदर्श को प्रस्तुत नहीं करता या अध्ययन के समय किसी आदर्शात्मक दृष्टिकोण को नहीं अपनाया जाता। अतः यह एक वास्तविक विज्ञान है, आदर्शात्मक नहीं। अवलोकन प्रविधि द्वारा आंकड़ों के संकलन तथा कार्य-कारण संबंधों के अध्ययन पर बल देने के कारण भी यह एक वास्तविक विज्ञान है। समाजशास्त्र इस बात का अध्ययन नहीं करता है कि वास्तविक स्थिति क्या है।
3. **समाजशास्त्र एक विशुद्ध विज्ञान है, व्यावहारिक विज्ञान नहीं-** समाजशास्त्र विशुद्ध विज्ञान है क्योंकि इसका सम्मुख उद्देश्य मानव समाज से संबंधित सामाजिक घटनाओं का अध्ययन, विश्लेषण एवं निरूपण कर ज्ञान का संग्रह करना है। विशुद्ध विज्ञान क्योंकि सैद्धांतिक होता है इसीलिए इसके द्वारा संचित ज्ञान अनिवार्य रूप से व्यावहारिक रूप में नहीं लाया जा सकता।

रोबर्ट बीरस्टीड ने यह स्पष्ट कर दिया है कि इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि समाजशास्त्र व्यर्थ या अव्यावहारिक विज्ञान है, परंतु समाजशास्त्र की इसमें कोई रुचि नहीं कि प्राप्त ज्ञान का प्रयोग व्यावहारिक क्षेत्रों पर कैसे लागू किया जाता है।

समाजशास्त्र की वास्तविक प्रकृति के बारे में रोबर्ट बीरस्टीड द्वारा बताई गई विशेषताओं से स्पष्ट हो जाता है कि समाजशास्त्र एक ऐसा सामाजिक विज्ञान है जो निरपेक्ष वास्तविक, विशुद्ध, अमूर्त और सामान्य होने के साथ-साथ तार्किक तथा अनुभवाश्रित भी है। यह प्राकृतिक विज्ञान, विशेष विज्ञान, व्यावहारिक विज्ञान, आदर्शात्मक विज्ञान तथा मूर्त विज्ञान नहीं है।

1.4 समाजशास्त्र का विषय क्षेत्र

प्रायः कुछ लोग विषय क्षेत्र (Scope) तथा विषय वस्तु (Subject-Matter) को एक ही समझ लेते हैं जबकि दोनों में पर्याप्त अंतर है। विषय क्षेत्र का तात्पर्य वे संभावित सीमाएं हैं जहां तक किसी विषय का अध्ययन संभव होता है, जबकि विषय वस्तु से निश्चित सीमाएं हैं जिनके अंतर्गत अध्ययन किया जा सकता है। प्रत्येक सामाजिक विज्ञान व्यक्तियों के सामाजिक जीवन को तथा विभिन्न घटनाओं को अपने-अपने दृष्टिकोण से देखने का प्रयास करता है। उदाहरणार्थ, अर्थशास्त्र आर्थिक दृष्टिकोण से, राजनीतिशास्त्र राजनीतिक दृष्टिकोण से, मनोविज्ञान मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से तथा समाजशास्त्र सामाजिक दृष्टिकोण से घटनाओं का अध्ययन करते हैं। विभिन्न दृष्टिकोण होने के बावजूद किसी भी सामाजिक विज्ञान का विषय क्षेत्र निर्धारित करना एक कठिन कार्य है। एक आधुनिक विज्ञान होने के नाते समाजशास्त्र में यह कठिनाई अन्य विज्ञानों की अपेक्षा कहीं अधिक है। कालबर्टन (Calberton) के अनुसार समाजशास्त्र क्योंकि लचीला विज्ञान है अतः यह निश्चित करना पूर्ण रूप से कठिन कार्य है कि इसकी सीमा कहां से प्रारंभ होती है, कहां समाजशास्त्र मनोविज्ञान तथा कहां मनोविज्ञान समाजशास्त्र बन जाता है अथवा जैविक सिद्धान्त समाजशास्त्रीय सिद्धान्त बन जाता है। समाजशास्त्र के विषय क्षेत्र के बारे में प्रमुख विद्वान एकमत नहीं हैं। इसके बारे में हमारे सामने निम्नांकित दो प्रमुख परिप्रेक्ष्य, दृष्टिकोण (या संप्रदाय) प्रस्तुत किए गए हैं-

1.4.1 स्वरूपात्मक अथवा विशिष्टवादी संप्रदाय

इस संप्रदाय के प्रमुख प्रणेता तथा समर्थक जॉर्ज सिमेल, स्माल, वीरकांत, मैक्स वेबर, वॉन बीज आदि विद्वान हैं। इन विद्वानों के दृष्टिकोण में समाजशास्त्र स्वतंत्र, विशिष्ट तथा शुद्ध विज्ञान है। इसका प्रमुख लक्ष्य मानवीय संबंधों के स्वरूपों का अध्ययन करना है। इस संप्रदाय के अनुसार समाजशास्त्र अन्य सामाजिक विज्ञानों की तुलना में पृथक् अस्तित्व रखता है। अन्य सामाजिक विज्ञान वही अध्ययन नहीं करते हैं जो समाजशास्त्र करता है। स्माल यह मानते हैं कि समाजशास्त्र सामाजिक संबंधों का विशिष्ट अध्ययन है। इनका मत जॉर्ज सिमेल के मत से मिलता-जुलता है। उनका कहना है कि समाजशास्त्र का कार्य सामाजिक संबंधों और व्यवहारों या क्रियाओं के मूल रूप का विशिष्ट अध्ययन करना मात्र है, न कि समाज में होने वाली प्रत्येक घटना अथवा क्रिया का। वीरकांत भी समाजशास्त्र को विशिष्ट विज्ञान मानते हैं। इनके अनुसार समाजशास्त्र को मानसिक संबंधों के उन स्वरूपों का अध्ययन करना चाहिए जो एक-दूसरे को बांधते हैं। वीरकांत के अनुसार ये मानसिक संबंध प्रेम, स्नेह, वात्सल्य, ममता, सम्मान आदि से व्यक्त होते हैं। वॉनबीज का विचार है कि समाजशास्त्र के अध्ययन के क्षेत्र के अंतर्गत सामाजिक संबंधों के स्वरूपों का अध्ययन किया जाना चाहिए। इसके लिए उन्होंने सामाजिक संबंधों के 650 प्रकारों की चर्चा भी की है। मैक्सवेबर का विचार है कि समाजशास्त्र को सामाजिक व्यवहार का अध्ययन करना चाहिए। सामाजिक व्यवहार एक प्रकार की ऐसी क्रिया है जो कर्ता के अभिप्राय से दूसरों के व्यवहारों से संबंधित है और उसी से *influenced* होती है। टॉनिज ने शुद्ध समाजशास्त्र के अध्ययन करने की दलील दी है। उन्होंने समाज एवं समुदाय में संबंधों के स्वरूपों के आधार पर अंतर किया है।

1.4.2 समन्वयात्मक संप्रदाय

इस समुदाय के प्रमुख समर्थक दुर्खीम, लेस्टर वार्ड, सोराकिन, हॉबहाउस आदि हैं। इस संप्रदाय के अनुसार समाजशास्त्र विशिष्ट विज्ञान न होकर एक सामान्य विज्ञान है। समाज का प्रत्येक भाग परस्पर संबंधित है। यदि उसके किसी एक भाग में परिवर्तन होता है तो उसका प्रभाव सारे समाज पर पड़ता है, अतएव सारे समाज का अध्ययन करना आवश्यक है।

1. **दुर्खीम-** इस्माइल दुर्खीम ने समाजशास्त्र को परिभाषित करते हुए कहा है कि “समाजशास्त्र सामूहिक प्रतिनिधित्वों (प्रतिनिधानों) का विज्ञान है।” प्रत्येक समाज में कुछ ऐसे विचार, धारणाएं और भावनाएं होती हैं, जोकि सामाजिक अंतर्क्रिया के समय व्यक्तिगत चेतना के पारस्परिक प्रभावों के कारण स्पष्ट हो जाती हैं और जीवन में सामने आने लगती हैं। इसी कारण समाज के अधिकांश सदस्य उसे अपना लेते हैं और उनका विकास सामाजिक प्रतीकों के रूप में हो जाता है चूंकि इन प्रतीकों को समाज के अधिकांश सदस्य मानते हैं, इसीलिए यह सामूहिक रूप से समस्त समूह के विभिन्न पक्षों का प्रतिनिधित्व करते हैं। समाजशास्त्र को सामूहिक प्रतिनिधित्वों को अपने विषय क्षेत्र में सम्मिलित करना चाहिए।
2. **वार्ड-** लेस्टर वार्ड का विचार है कि जिस प्रकार रसायनशास्त्र में दो वस्तुओं को मिला देने से एक नई वस्तु का जन्म होता है और उसका अध्ययन रसायनशास्त्र करता है, उसी प्रकार समाजशास्त्र ज्ञान की विभिन्न शाखाओं का समन्वय मात्र है। समाज का निर्माण करने वाले समूह एवं संस्थाएं आदि परस्पर एक-दूसरे से संबंधित हैं, जिसके कारण एक पर हुआ परिवर्तन दूसरों पर प्रभाव डालता है। इसी प्रकार समाजशास्त्र का आधार, अन्य सामाजिक विज्ञानों के परिणाम है। अतएव समाजशास्त्र को विभिन्न सामाजिक विज्ञानों से प्राप्त केंद्रीय विचारों का समन्वय एवं अध्ययन करना चाहिए।
3. **हॉबहाउस-** हॉबहाउस का दृष्टिकोण भी समन्वयात्मक है। इनके अनुसार विभिन्न विज्ञानों का अध्ययन इस प्रकार से किया जाना अनिवार्य है, जिसमें कि उनके सिद्धांतों में समन्वय संभव हो पाए। समाजशास्त्र सामान्य जीवन का अध्ययन उसी समय पर कर सकता है जब समाजशास्त्र अन्य सामाजिक विज्ञानों के आधार भूत विचारों का अध्ययन करे अथवा सामान्य केंद्रीय धारणाओं के खोजने का प्रयत्न करे इसलिए समाजशास्त्र अपने को विशेष प्रकार के संबंधों तक सीमित नहीं रख सकता।

उपर्युक्त दोनों विचारधाराएं परस्पर विरोधी हैं तथा दोनों का समान महत्व है। एक संप्रदाय के दृष्टिकोण से समाजशास्त्र विशेष संबंधों का अध्ययन करने वाला तथा दूसरे दृष्टिकोण से सामान्य संबंधों का अध्ययन करने वाला विज्ञान है। वास्तव में समाजशास्त्र के क्षेत्र से संबंधित दोनों दृष्टिकोणों में समन्वय करने की आवश्यकता है। एक ओर हमें समाज के मूल एवं सामान्य तत्वों का ज्ञान होना अनिवार्य है, जबकि दूसरी ओर सामाजिक जीवन के विशिष्ट पहलुओं की अवहेलना भी नहीं की जा सकती। अतः वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विषय-क्षेत्र के बारे में झगड़ा व्यर्थ है क्योंकि अपनी अध्ययन पद्धतिके अनुरूप समाजशास्त्र विशिष्ट एवं सामान्य दोनों ही है।

1.5 समाजशास्त्र की विषय वस्तु

किसी भी विषय की विषय वस्तु से तात्पर्य उन पहलुओं अथवा बातों से है, जिनका अध्ययन उसमें किया जाता है। विषय वस्तु का निर्धारण करना इसीलिए अनिवार्य है कि किसी भी विषय में सभी पहलुओं या बातों का अध्ययन नहीं किया जा सकता। ऐसा किसी भी विषय विशेष को अन्य विषयों से अलग करने के लिए भी अनिवार्य है।

अन्य विषयों की भांति समाजशास्त्र की भी निश्चित विषय वस्तु है, परंतु एक नवीन विषय होने के कारण समाजशास्त्र की विषय वस्तु के संदर्भ में विद्वानों में मतभेद पाए जाते हैं।

1.5.1 दुर्खीम के अनुसार समाजशास्त्र की विषय वस्तु

दुर्खीम के अनुसार समाजशास्त्र की विषय वस्तु को निम्न तीन भागों से विभक्त कर अध्ययन किया जाना चाहिए-

1. **सामाजिक स्वरूपशास्त्र-** इसके अंतर्गत सामाजिक संगठन बनाए रखने में सहायता करने वाली शक्तियों का अध्ययन किया जाता है। इसमें मुख्यतः भौगोलिक परिस्थितियां, जैसे जनसंख्या का घनत्व आदि, जिनका प्रभाव समाज के संगठन पर पड़ता है, का अध्ययन किया जाता है।
2. **सामाजिक शरीर रचना-** यह खंड अनेक उपखंडों में वर्गीकृत है तथा इनके अंतर्गत वे विषय आते हैं जिनका अध्ययन अन्य विशेष विज्ञान करते हैं, जैसे धर्म का समाजशास्त्र, कानून का समाजशास्त्र, ज्ञान का समाजशास्त्र आदि। समाजशास्त्र इनका समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से अध्ययन करता है।
3. **सामान्य समाजशास्त्र-** इसमें उन विधियों का अध्ययन किया जाता है जो सामान्य हितों व सामाजिक नियमों को सुरक्षित रखने के लिए महत्वपूर्ण हैं। दुर्खीम के दृष्टिकोण में यह भाग समाज का दार्शनिक अंग है।

1.5.2 एलेक्स इंकलिस के अनुसार समाजशास्त्र की विषय वस्तु

एलेक्स इंकलिस ने अपनी पुस्तक सोशियोलॉजी में समाजशास्त्र की विषय वस्तु का निर्धारण निम्नलिखित तीन विधियों द्वारा करने का प्रयास किया है-

1.5.2.1 ऐतिहासिक विधि

इस विधि द्वारा इंकलिस ने यह जानने का प्रयास किया है कि समाजशास्त्र के जन्मदाताओं ने इसकी विषय वस्तु के बारे में क्या कहा है। इसमें इन्होंने चार ऐसे प्रारंभिक समाजशास्त्रियों के विचारों का उल्लेख किया है जिन्होंने समाजशास्त्र को विज्ञान बनाने में सहायता की है। ये विद्वान निम्नलिखित हैं-

1. **ऑगस्ट कॉम्टे** कॉम्टे समाजशास्त्र के जन्मदाता माने जाते हैं क्योंकि उन्होंने ही 1838 ई0 में प्रथमतः समाजशास्त्र का प्रयोग किया था। उन्होंने अपना अधिक ध्यान समाजशास्त्र के अस्तित्व को स्वीकार करवाने में ही लगाया। वास्तव में कॉम्टे क्योंकि समाजशास्त्र को एक ऐसा विज्ञान मानते थे जिसमें सभी दृष्टिकोणों को एक साथ रखकर अध्ययन किया जा सकता है, अतः उन्होंने इसकी कोई विषयवस्तु निर्धारित नहीं की है। उन्होंने समाजशास्त्र की दो शाखाओं सामाजिक स्थैतिकी एवं सामाजिक गत्यात्मकता का उल्लेख किया है। प्रथम शाखा में उन्होंने अर्थव्यवस्था, परिवार, राजनीति आदि प्रमुख संस्थाओं के विश्लेषण पर बल दिया है, जबकि दूसरी शाखा में समाज को इकाई मानकर इसके विकास एवं परिवर्तन के अध्ययन पर बल दिया है। उन्होंने समाज का सप्रग रूप में अध्ययन करने को ही नहीं, अपितु समाजों के तुलनात्मक अध्ययनों को भी समाजशास्त्र की विषय वस्तु स्वीकार किया है।
2. **हरबर्ट स्पेंसर-** स्पेंसर की पुस्तक प्रिंसिपल्स ऑफ सोशियोलॉजी जोकि 1877 ई0 में तीन खंडों में प्रकाशित हुई, प्रथम समाजशास्त्रीय विश्लेषण करने वाली कृति मानी जाती है। उन्होंने कॉम्टे के विपरीत समाजशास्त्र में अध्ययन की जाने वाली बातों को अधिक स्पष्ट रूप से विवेचना की है। उन्होंने परिवार,

धर्म, सामाजिक नियंत्रण तथा उद्योग अथवा कार्य को ही समाजशास्त्र की विषय वस्तु नहीं बताया अपितु समितियों, समुदायों, श्रम-विभाजन सामाजिक विभिन्नीकरण तथा सामाजिक स्तरीकरण ज्ञान के समाजशास्त्र विज्ञान के समाजशास्त्र और कला के समाजशास्त्रीय विश्लेषण को समाजशास्त्र की विषय वस्तु में सम्मिलित किया है। उन्होंने भी संपूर्ण समाज को एक इकाई मानकर व्यापक पैमाने पर अध्ययन करने पर बल दिया है।

3. **इस्माइल दुर्खीम-** दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों के अध्ययन पर बल दिया तथा स्वयं श्रम विभाजन, आत्महत्या और धर्म जैसे सामाजिक तथ्यों का अध्ययन किया। उन्होंने धर्म, कानून, प्रतिमान, अपराध जनसंख्या, विज्ञान, कला आदि को तथा आर्थिक पहलुओं के समाजशास्त्रीय अध्ययन को समाजशास्त्र की विषयवस्तु में विशेष स्थान दिया है।
4. **मैक्स वेबर-** वेबर ने सामाजिक क्रिया, धर्म, आर्थिक जीवन के अनुपम पहलुओं जिसमें मुद्रा तथा श्रम विभाजन भी सम्मिलित है राजनीति दल, शक्ति एवं सत्ता अधिकारीतंत्र तथा अन्य बड़े संगठनों, जाति एवं वर्ग नगर अथवा संगीत पर स्वयं अध्ययन किए और इनकी महत्ता पर प्रकाश डाला।

1.5.2.2 अनभाविक विधि

इस विधि द्वारा इंकलिस ने यह जानने का प्रयास किया है कि आज समाजशास्त्र में किन बातों को अधिक महत्व दिया जा रहा है अर्थात् समकालीन समाजशास्त्री क्या कर रहे हैं? यह पता तीन स्रोतों द्वारा लगाया जा सकता है - अ- पाठ्यपुस्तकों का विश्लेषण, ब- विभिन्न विद्वानों द्वारा समाजशास्त्र की भिन्न शाखाओं का समर्थन तथा स- अनुसंधान पत्रिकाओं व अन्य रिपोर्टों में प्रकाशित लेख। होर्नल हार्ट ने 1952 ई० से 1958 तक की अवधि में अमेरिका में प्रकाशित 24 पाठ्यपुस्तकों का विश्लेषण करके 12 ऐसे पहलुओं या बातों का पता लगाया जिन्हें कम से कम 20 पाठ्य पुस्तकों में सम्मिलित किया गया था।

ये पहलू निम्नलिखित हैं- समाजशास्त्र में वैज्ञानिक पद्धति, समाजशास्त्र में व्यक्तित्व, संस्कृति, मानव समूह, जनसंख्या जाति तथा वर्ग, प्रजाति, सामाजिक परिवर्तन, आर्थिक संस्थाएं, परिवार, शिक्षा, धर्म।

1.5.2.3 विश्लेषण विधि

इंकलिस का कहना है कि समाजशास्त्र के जन्मदाताओं के विचार तथा समकालीन समाजशास्त्रियों के अध्ययन की रुचि के विषय समाजशास्त्र की विषय वस्तु को निर्धारित करने में पर्याप्त नहीं हैं। अतः समाजशास्त्र की विषयवस्तु को तार्किक विश्लेषण द्वारा निर्धारित करना अनिवार्य है। अन्य शब्दों में इस विधि द्वारा इंकलिस ने समाजशास्त्र की वृहद विषय वस्तु को तार्किक दृष्टि से परिसीमित करने का प्रयास किया है। इंकलिस के अनुसार समाजशास्त्र की विशिष्ट विषयवस्तु में तीन पहलुओं में घटते क्रम में सम्मिलित किया जा सकता है। ये पहलू निम्नलिखित हैं-

1. **समाजशास्त्र समाज का अध्ययन है-** समाजशास्त्र एक ऐसा विशिष्ट विज्ञान है, जिसमें समाज को समग्र के रूप में विश्लेषण की एक इकाई माना जाता है। इस पहलू में विशेष समाजों के आंतरिक विभेदीकरण तथा उनकी बाहरी विशेषताओं से संबंधित समाज के विकास तथा समस्याओं के अध्ययनों को सम्मिलित किया जा सकता है। मैक्स वेबर तथा किंग्सल डेविस के अध्ययन इस श्रेणी के अध्ययनों के उदाहरण हैं।

2. **समाजशास्त्र सामाजिक संस्थाओं का अध्ययन है-** समाजशास्त्र की विषय वस्तु का दूसरा विशिष्ट पहलू सामाजिक संस्थाओं का अध्ययन है। समाज का निर्माण करने वाले विभिन्न अंगों तथा सामाजिक संस्थाओं जैसे परिवार, चर्च, स्कूल, तथा राजनीतिक दल आदि के अध्ययन पर बल दिया जाता है। संस्थाओं की सामान्य विशेषताओं, इनके परस्पर एवं संबंधों एवं कार्यों के अध्ययन भी इस पहलू में सम्मिलित किए जा सकते हैं। इंकलिस के अनुसार इस पहलू में अधिक अध्ययन नहीं हुए हैं तथा आज बड़ी संस्थाओं की अपेक्षा छोटी संस्थाओं के अध्ययन में रुचि बढ़ती जा रही है।
3. **समाजशास्त्र सामाजिक संबंधों का अध्ययन है-** इंकलिस ने इस पहलू में सामाजिक संबंधों के अध्ययन पर बल दिया है। सामाजिक संबंध तीन प्रकार के हो सकते हैं- O;fDr- व्यक्ति के बीच व्यक्ति समूह के बीच तथा एक समूह और दूसरे समूह के बीच मैक्स वेबर, वॉन वीज, जॉर्ज सिमेल तथा टॉलकट पारसंस ने इस पहलू में महत्वपूर्ण अध्ययन किए हैं।

अभ्यास प्रश्न-

- समाजशास्त्र, समाज का विज्ञान है। सत्य / असत्य
- किसके अनुसार, 'समाजशास्त्र मानवीय अंतर्संबंधों के स्वरूपों का विज्ञान है'
क. सिमेल ख. वार्ड ग. ग्रीन घ. कॉम्टे
- समाजशास्त्र का जनक किसे कहा जाता है?
क. सिमेल ख. वार्ड ग. ग्रीन घ. कॉम्टे
- किसके अनुसार, "समाजशास्त्र समाज का वैज्ञानिक अध्ययन है।"
क. गिडिंग्स ख. मैक्स वेबर ग. गिंसबर्ग घ. कॉम्टे
- किसके अनुसार, "समाजशास्त्र मानवीय अंतर्क्रियाओं और अंतर्संबंधों, उनकी दशाओं और परिणामों का अध्ययन है।"
क. गिडिंग्स ख. मैक्स वेबर ग. गिंसबर्ग घ. कॉम्टे
- किसके अनुसार, 'समाजशास्त्र, समाज का विज्ञान है।'
क. सिमेल ख. वार्ड ग. ग्रीन घ. कॉम्टे

1.6 सारांश

समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है। यह एक विषय है जिसमें मानव समाज के विभिन्न स्वरूपों, उसकी विविध संरचनाओं, प्रक्रियाओं इत्यादि का वस्तुनिष्ठ एवं क्रमबद्ध रूप में अध्ययन किया जाता है, ये अन्य विषयों की तरह एक स्वतंत्र विषय है, इस प्रकार जब हम समाजशास्त्र को समाज का विज्ञान कहते हैं तो हमारा तात्पर्य ऐसे विषय से है जो समाज तथा इसके विभिन्न पहलुओं का क्रमबद्ध अध्ययन करता है।

1.7 शब्दावली

समाजशास्त्र— समाजशास्त्र वह विषय है जो समाज का क्रमबद्ध अध्ययन करता है

सामाजिक अंतर्क्रिया— दो या दो से अधिक O;fDrयों के बीच होने वाली अर्थपूर्ण क्रिया को सामाजिक अंतर्क्रिया कहते हैं

परिप्रेक्ष्य- परिप्रेक्ष्य का अर्थ एक विशिष्ट नजरिया है जिसके द्वारा कोई व्यक्ति अपने अध्ययन को समन्वित व सुव्यवस्थित करता है

1.8 अभ्यासा प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य, 2. सिमेल, 3. कॉम्ट, 4. गिडिंग्स, 5. गिंसबर्ग 6. वार्ड

1.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Arnold M. Rose, Sociology, Boston: Houghton Mifflin, 1962
2. Bierstedt, Robert, The Social Order, New York: McGraw Hill, 1957
3. Bottomore, T.B., Sociology: A Guide to Problems and Literature, London: Allen and Unwin, 1969
4. Johnson, Harry M., Sociology: A Systematic Introduction, London: Routledge & Kegan Paul, 1961
5. Gillin And Gillin : Cultural Sociology

1.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Lumley, F.E., Principles of Sociology, New York: MacGraw-Hill Book Company, 1935.
2. Johnson, Harry M., Sociology : A Systematic Introduction, London : Routledge & Kegan Paul, 1961.
3. Gisbert, P., Fundamentals of Sociology, New Delhi: Prentice-Hall of India, 1965.

1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. समाजशास्त्र क्या है? कुछ प्रमुख परिभाषाओं के संदर्भ में विवेचना कीजिए।
2. समाजशास्त्र की प्रकृति की विवेचना कीजिए।
3. समाजशास्त्र को परिभाषित करते हुए उसकी प्रकृति की विवेचना कीजिए।

इकाई- 2 राजनीति विज्ञान: अर्थ, परिभाषा, सिद्धान्त, विषय-क्षेत्र, प्रकृति

इकाई की संरचना

- 2.0 प्रस्तावना
- 2.1 उद्देश्य
- 2.2 राजनीति विज्ञान का परिचय
- 2.3 राजनीति विज्ञान की परिभाषा, क्षेत्र और प्रकृति
 - 2.3.1 राजनीति विज्ञान की परम्परागत परिभाषाएं
 - 2.3.2 राजनीति विज्ञान की आधुनिक परिभाषाएं
 - 2.3.3 परम्परागत राजनीति विज्ञान का क्षेत्र
- 2.4 राजनीति विज्ञान की प्रकृति- विज्ञान अथवा कला
- 2.5 राजनीति विज्ञान के अध्ययन की उपयोगिता
- 2.6 परम्परावादी राजनीति विज्ञान की विशेषताएँ
- 2.7 आधुनिक राजनीति विज्ञान की विशेषताएँ
- 2.8 परम्परागत और आधुनिक राजनीति विज्ञान में अन्तर
- 2.9 राजनीतिक सिद्धान्त: अर्थ, परिभाषा
- 2.10 राजनीतिक सिद्धान्तों की विशेषताएँ
- 2.11 राजनीतिक सिद्धान्त का कार्यक्षेत्र
- 2.12 राजनीतिक सिद्धान्त के महत्व
- 2.13 सारांश
- 2.14 शब्दावली
- 2.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 2.16 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 2.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 2.18 निबन्धात्मक प्रश्न

2.0 प्रस्तावना

21वीं सदी, वैश्वीकरण, उदारीकरण, निजीकरण, तकनीकीकरण, संचार क्रान्ति जैसे तमगों से सुशोभित की जा रही है। राजनीति विज्ञान जो ईसा पूर्व चौथी सदी में पैदा हुआ निरन्तर गतिशील रहकर आज की इकसवीं शदी में भी बना है। इस लम्बे सफर में राजनीति विज्ञान का स्वरूप, अध्ययन क्षेत्र, अध्ययन के उपकरण, उपागम, सिद्धान्त समयानुसार अनुकूलन करते हुए परिवर्तित व परिवर्धित होते रहे, जो अनुकूलन नहीं कर पाये मृत हो गये। राजनीति विज्ञान चूँकि मानवीय-सामाजिक विज्ञान है, अतः गतिशीलता व परिवर्तन उसकी प्रकृति के अंग हैं।

इस पुस्तक की पहली इकाई में हम राजनीतिक्या है? राजनीति विज्ञान के उद्भव, अर्थ, प्रकृति और क्षेत्र का अध्ययन करेंगे।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप-

- राजनीति मूलतः क्या है ? को समझ सकेंगे।
- राजनीति विज्ञान की परम्परागत और आधुनिक परिप्रेक्ष्य में अर्थ, प्रकृति एवं क्षेत्र को समझ सकेंगे।
- परम्परागत और आधुनिक राजनीति विज्ञान की विशेषताओं का विवरण दे सकेंगे।
- परम्परागत और आधुनिक राजनीति विज्ञान के खास पहलुओं को पहचान कर, दोनों के मध्य अन्तर कर सकेंगे और
- राजनीति विज्ञान के महत्व का जायजा ले सकेंगे।

2.2 राजनीति विज्ञान का परिचय

राजनीति संघर्षों या विवादों का शांतिपूर्ण समाधान है। राजनीति हमेशा बहस, चर्चा-परिचर्चा, मतदान, सहमति-असहमति से संबद्ध रही है। राजनीति में स्पष्ट रूप से हिंसा का अभाव होता है। यदि हिंसा के साथ राजनीति हो रही हो तो उसे सभ्यतापूर्ण आचरण नहीं माना जाता। राजनीति ऐसे विषयों से निकट है जो विवादास्पद होते हैं या जिस पर व्यक्ति अथवा समूहों के विभिन्न मत या हित जुड़े होते हैं। इन हितों अथवा मतों का अन्तर विवाद को जन्म देता है। विवादों को शांतिपूर्ण एवं हिंसारहित तरीकों से सुलझाना राजनीति का मूलभूत लक्षण है। कुल मिलाकर, राजनीति दुष्ट 'मानवीय प्रवृत्तियों' पर रोक लगाने की एक सभ्य प्रक्रिया है जो अनिवार्य एवं वांछनीय है। राजनीति सार्वजनिक विषयों से संबंधित गतिविधि है। निजी मामलों को तभी राजनीतिक माना जाता है जब वे नियम या कानून के परिक्षेत्र में लाये जाएं। राजनीति सभी समाजों एवं सभी कालों में सम्पन्न होने वाली गतिविधि है। संभव है कि भिन्न-भिन्न समाजों एवं कालखण्डों में राजनीति के प्रति आम लोगों की रुचि में पर्याप्त अंतर हो सकता है तथापि कुछ मात्रा में यह सभी समाज एवं काल में सम्पन्न होती रहती है। इस प्रकार राजनीति एक अनिवार्य गतिविधि है जिसके बिना कोई समाज अस्तित्व में नहीं बना रह सकता।

राजनीति को सत्ता से जोड़ने की प्रवृत्ति प्रबल रही है। सत्ता शक्ति का वैध एवं सर्वस्वीकार्य रूप होती है। प्रायः शासन एवं सत्ता को पर्याय के रूप में प्रयोग कर लिया जाता है। मानव में शक्ति की लालसा सदैव बनी रहती है। ब्रिटिश राजनीति दार्शनिक थॉमस हॉब्स (1588-1279) ने शक्ति प्राप्ति को मानव स्वभाव का मुख्य गुण माना है। मानव शक्ति प्राप्त कर सुरक्षित रह सकता है और अपने सुख में वृद्धि करता है। हॉब्स के अनुसार मानव की शक्ति की लालसा का समापन उसके जीवन के साथ ही होता है। शक्ति को प्रायः कुछ विद्वानों ने राजनीति का केन्द्रीय तत्व माना है। केटलिन ने राजनीति को शक्ति का विज्ञान कह कर संबोधित किया है। शक्ति राज्य की एक आधारभूत आवश्यकता है। राज्य अन्य समुदायों से इस बात पर भिन्नता रखता है कि उसके पास वैध दाण्डिक शक्ति है। यह शक्ति कानून के क्रियान्वयन के लिए आवश्यक होती है। शक्ति के अभाव में कानून, नैतिक नियम या उपदेश मात्र बने रह सकते हैं।

2.3 राजनीति विज्ञान परिभाषा, क्षेत्र और प्रकृति

राजनीति विज्ञान की प्राचीनता एक सर्वमान्य तथ्य है, जिसने प्राचीन काल में प्लेटो व अरस्तू से लेकर वर्तमान युग तक उल्लेखनीय प्रगति की है। यूनानियों को इसके जनक होने का श्रेय जाता है क्योंकि यूनानियों ने ही सबसे पहले

राजनीतिक प्रश्नों को आलोचनात्मक और तर्क सम्मत चिन्तन की दृष्टि से देखा। शब्द राजनीति विज्ञान अंग्रेजी भाषा के शब्द Political Science का हिन्दी रूपान्तरण है, जिसकी उत्पत्ति यूनानी भाषा के शब्द पोलिस से हुई है। यूनानी भाषा में पोलिस का अभिप्राय है नगर-राज्य। 500 ई0पू0 पहले यूनानी लोग इन्हीं छोटे-छोटे नगर राज्यों में ही रहते थे और इन नगर-राज्यों की स्थिति एवं राजनीतिक गतिविधियों से सम्बन्धित ज्ञान को 'राजनीति' (पोलिटिक्स) कहा जाता था। स्पष्ट है कि 'राजनीति' उतनी ही पुरानी है जितना कि मानव संगठन। राजनीति ने सदा ही सामाजिक जीवन में निर्णायक भूमिका निभाई है। वर्तमान समय में यह भूमिका लगातार बढ़ती ही जा रही है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन यूनानी चिन्तन में व्यक्ति, राज्य (नगर-राज्य) और समाज एक दूसरे के पर्याय थे। राजनीति, समाज और व्यक्ति को निर्देशित करने वाले आदर्श थे- सद्गुण, अच्छाई, भलाई और ज्ञान। यानि की राजनीति की यूनानी अवधारणा मुख्य रूप से नैतिक, दार्शनिक, आदर्शवादी, प्रत्ययवादी और आदर्शमूलक रही। कालान्तर में राजनीति विज्ञान के जीवन काल में कुछ महत्वपूर्ण पड़ाव आये जहाँ पर महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए जैसे यूनानी काल की समाप्ति के बाद रोमन काल, इन दो कालों के राजनीतिक चिन्तन में तात्त्विक अन्तर देखने को मिलते हैं। प्राचीन यूनानियों की दार्शनिक अवधारणा से अलग प्राचीन रोमवासियों ने राजनीति की न्यायवादी या कानूनी व्याख्या दी। उनके लिए राजनीति एक ऐसी गतिविधि थी, जिसका सम्बन्ध 'साम्राज्य' से था। ज्ञातव्य है कि रोमन काल में शनैः-शनैः नगर राज्य लुप्त होने लगे थे और उनके स्थान पर 'साम्राज्यों' की स्थापना प्रारम्भ हो रही थी, जिसका नियमन, कतिपय सामान्य और तय नियमों द्वारा होता था। रोम में राजनीतिक सिद्धान्त में बराबर यह प्रयास रहता था कि नागरिक कानून को प्राकृतिक कानून के आदर्श के पास लाया जाए। इस प्रकार पाश्चात्य जगत के राजनीतिक चिन्तन/सिद्धान्तों में दार्शनिक और कानूनी दोनों ही प्रकार की अवधारणा के दर्शन होते हैं। इसी प्रकार मध्य काल (500 ई0 से 1400 ई0 तक) का राजनीति विज्ञान अथवा राजनीति, धर्म के चारों ओर बुनी गई। फलतः राजनीति की मध्ययुगीन संकल्पना (अवधारणा) सामन्तवादी युग में मूलतः धर्मशास्त्रीय आदेशात्मक और संकीर्ण थी क्योंकि राजनीतिक सत्ता स्वतंत्र नहीं थी, वह चर्च के अधीन थी और चर्च सर्वोच्च धार्मिक संगठन था।

किन्तु पुनर्जागरण व धर्मसुधार आन्दोलनों से आधुनिक युग की शुरुआत ने राजनीति विज्ञान को एक नयी आबो-हवा दी। राजनीति में धर्म निरपेक्षता का वातावरण, मानव चिन्तन, लौकिक चिन्तन, वैज्ञानिक सोच, तार्किक चिन्तन का जन्म हुआ। औद्योगिक क्रान्ति ने राजनीतिक चिन्तन में नयी धाराएँ जोड़ दी- व्यक्तिवाद, उदारवाद; किन्तु मार्क्सवादी चिन्तन ने पूँजीवाद का विरोध किया, नया चिन्तन सामने आया- समाजवाद, साम्यवाद। मार्क्सवादी चिन्तन ने दुनियाँ दो धड़ों में बाँट दी। कई चिन्तकों को लगा कि राजनीति विज्ञान ने ऐसा चिन्तन, दर्शन व सिद्धान्त मार्क्सवाद के रूप में ढूँढ लिया है जो तत्कालीन समस्याओं का एकमात्र समाधान है। किन्तु ऐसा नहीं हुआ, लगभग 1903 ई0 में शिकागो विश्वविद्यालय (अमेरिका) के युवा राजनीतिक अध्ययताओं ने एक प्रतिक्रियावादी आन्दोलन शुरू कर दिया। प्लेटो से लेकर वर्तमान 19वीं शदी के आखिरी वर्षों तक के राजनीतिक चिन्तन को नकार दिया। घोषणा की कि अभी तक राजनीति विज्ञान में जितना अध्ययन हुआ, उन्होंने जो तकनीकें अपनायीं; सब व्यर्थ और अनुपयोगी हैं। दरअसल ये समय समाज विज्ञानों के जीवन का वह दौर था, जहाँ सारे सामाजिक विषय 'विज्ञान बनने की दौड़' में शामिल थे। ऐसे में शिकागो के राजनीतिक अध्ययताओं को लगा कि उनका विषय भी 'विज्ञान' बनाया जाये। परिणाम स्वरूप राजनीति विज्ञान में व्यवहारिकतावादी आन्दोलन का प्रवेश हुआ। यही वह परिवर्तन सीमा है जिससे पूर्व का राजनीति विज्ञान 'परम्परागत राजनीति विज्ञान' और जिसके बाद का राजनीति विज्ञान आधुनिक राजनीति विज्ञान कहलाता है। उल्लेखनीय है लम्बे समय तक राजनीति

विज्ञान, राजनीतिक सिद्धान्त, राजनीतिक दर्शन समानार्थी शब्दों के रूप में प्रयुक्त किये जाते रहे। यद्यपि बाद में कई विद्वानों ने इनमें भेदक रेखा खींचने का सार्थक प्रयास किया।

एक विषय बरबस ध्यान खींचता है कि आज जब दुनियाँ 'ग्लोबल विलेज' का रूप ले चुकी है, इंटरनेट जैसी संचार तकनीक फैल चुकी है, ऐसे में राजनीति विज्ञान और विशेष रूप से आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्तों की क्या प्रासंगिकता है?

‘आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त’ विषय के अन्तर्गत प्रायः उन सिद्धान्तों का समावेश किया जाता है जिनकी रचना सन् 1903 ई० के बाद हुई है। यह अत्यन्त व्यापक क्षेत्र है जिसे निश्चित सीमाओं में बाँध पाना कठिन है। व्यवहारिकतावादी आन्दोलन से लेकर वर्तमान में नारीवादी आन्दोलन तक सभी इसकी सीमा में समाये हुए हैं। जहाँ तक विषय की प्रासंगिकता का प्रश्न है इसमें कोई संदेह नहीं होना चाहिए कि आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त पूर्णतया प्रासंगिक हैं। यद्यपि यह सत्य है कि समाज विज्ञान होने के नाते इन सिद्धान्तों में उतनी निश्चितता व स्पष्टता नहीं है जितनी प्राकृतिक विज्ञानों के विषय में होती है।

यद्यपि व्यवहारिकतावाद की अपनी कुछ कमियाँ रही हैं किन्तु इसने राजनीति विज्ञान को निश्चित रूप से एक नयी दृष्टि प्रदान की। अब राजनीति में अध्ययन इकाई मनुष्य का राजनीतिक व्यवहार बनाया गया। वस्तुतः मनुष्य के राजनीतिक व्यवहार को जाने बगैर राजनीति के सम्बन्ध में लिए गये निर्णय सदैव असफल होंगे। अतः इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है व्यवहारिकतावादी सिद्धान्त न केवल आज प्रासंगिक है बल्कि सदैव प्रासंगिक रहेगा।

इसी प्रकार यदि डेविड ईस्टन के व्यवस्था सिद्धान्त को लें तो यह 1950 के दशक, जब इसे ईस्टन ने प्रतिपादित किया, से अधिक आज प्रासंगिक नजर आता है। मूल्यों का सम्पूर्ण समाज के लिए आधिकारिक आबंटन होना आवश्यक है चूँकि आज अधिकांश राज्य लोकतांत्रिक रास्ते पर चल रहे हैं। आज यदि मूल्यों का आबंटन सम्पूर्ण समाज के लिए न होकर किसी वर्ग विशेष के लिए होता है, तो वहीं पर दंगे, हड़ताल, तालाबंदी, जलूस आदि देखने को मिलते हैं। समाज में व्यवस्था बनाये रखने के लिए ऐसे राजनीतिक सिद्धान्तों की नितान्त आवश्यकता नजर आती है।

संचार क्रान्ति ने आज दुनियाँ को वैश्विक गाँव में बदल दिया है। ऐसे में संचार की भूमिका राजनीति विज्ञान में और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। किसी भी राजनीतिक व्यवस्था को कब, क्या और कैसे निर्णय लेने हैं, इसका निर्धारण पूरी व्यवस्था से प्राप्त सूचनाओं के अनुरूप होता है। सूचना तंत्र व्यवस्था में प्राण तत्व रक्त की भाँति है। सही सूचना, सही समय पर सही निर्णय लेने में सहायक होती है। आज आतंकवाद के बढ़ते नेटवर्क को तोड़ने के लिए सरकार को उससे अधिक बेहतर सूचना तंत्र बनाना होगा। चाहे मुद्रा आपेन्सिव हो या डिफेन्सिव, दोनों मामलों में सूचना तंत्र की महत्वपूर्ण भूमिका है। कार्ल डायच ने संचार सिद्धान्त की रचना करके न केवल राजनीति विज्ञान को बल्कि सम्पूर्ण मानव समाज को एक महत्वपूर्ण देन प्रदान की है।

राजनीतिक विकास, राजनीतिक आधुनिकीकरण, राजनीतिक समाजीकरण, राजनीतिक संस्कृति, राजनीतिक भर्ती, राजनीतिक सहभागिता आदि अनेक ऐसे आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त हैं, जिनकी वर्तमान समाज को पग-पग पर आवश्यकता पड़ती है। चुनावी मामला हो या विदेश नीति का मामला या कोई अन्य ये सिद्धान्त मार्ग दर्शक की भूमिका निभाते हैं। आधुनिकीकरण व विकास के मापदण्डों पर कोई देश कैसे पहुँचता है, यह जानकारी हमें यही सिद्धान्त देते हैं।

विचारधारा, आज एक महत्वपूर्ण विषय है जो आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्तों में शामिल किया जाता है। यह एक ऐसा विषय है जो प्राचीन काल से आज तक हर समय प्रासंगिक बना रहा है। विचारधारा, मानवीय समाज को जोड़ने, एक आदर्श स्थिति तक पहुँचने का मार्ग, मानव की पूर्णता की दृष्टि की और इशारा करती है। व्यवहारिक

दृष्टि से अपने उद्देश्यों को छिपाने का यह एक लबादा है। विश्व के सभी देश किसी न किसी विचारधारा से प्रेरित व अनुप्राणित हैं। चाहे वह मार्क्सवादी हो, फेबियनवादी, पूँजीवादी, साम्यवादी, व्यक्तिवादी, आदर्शवादी, उदारवादी, माओवादी, या गाँधीवादी या कोई अन्य जैसे फासीवादी, नाजीवादी। इससे नितांत स्पष्ट है 'विचारधारा' का अध्ययन किये बगैर राजनीतिक विज्ञान व स्वयं राजनीतिक व्यवस्थाएँ अपूर्ण ही रहेंगी। इधर 1960 के दशक से कुछ विद्वानों ने विचारधारा के अंत का बिगुल बजाया। डेनियल बेल यह स्पष्ट किया कि उत्तर आधुनिकीकरण काल में सभी राज्य आर्थिक विकास व भौतिकवाद की ओर भाग रहे हैं, चाहे वे किसी भी विचारधारा के क्यों न हों, ऐसे में विचारधारा का कोई महत्व नहीं रह जाता और ऐसा लगता है विचारधारा का अंत हो गया है। किन्तु डेनियल का यह विचार विद्वानों को स्वीकार्य नहीं है क्योंकि विश्व आज भी विचारधाराओं में बांटा है।

उपरोक्त कुछ उदाहरणों को प्रस्तुत करने का मन्तव्य केवल इतना है कि 'आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त' विषय आज की परिस्थितियों में अधिक प्रासंगिक हो गया है। राजनीति विज्ञान 'शासन के संचालन' का दिशाग्र होता है। समय-समय पर जिन सिद्धान्तों की आवश्यकता महसूस हुई, उन्हें गढ़ा गया। 'आवश्यकता अविष्कार की जननी होती है', इस शाश्वत नियम से राजनीति विज्ञान भी बँधा है और इसके परिणाम भी समय-समय पर सामने आये हैं चाहे वह राष्ट्रीय राजनीति का क्षेत्र हो या अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का क्षेत्र हो।

आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त, ऐसे विषयों से जुड़ा है, जो न केवल राजनीतिक अध्येताओं, शोधकर्ताओं व विद्यार्थियों के लिए लाभदायक हैं बल्कि आम जनता की रुचि के भी हैं, जैसे राजनीतिक भागीदारी, भर्ती, मतदान आदि आम जनता से जुड़े प्रश्न हैं।

फिर आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त इस दृष्टिकोण से भी प्रासंगिक है कि इनके उद्भव के बाद राजनीतिक विज्ञान को 'स्वायत्त विषय' के रूप में आवश्यक सामग्री प्रचुर मात्रा में प्राप्त हो गयी। प्रत्येक विषय की स्वायत्ता की यह माँग होती है कि उसके अपने उपकरण, तकनीके, पद्धतियाँ व सिद्धान्त हों, आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्तों ने इन माँगों को पूरा किया है।

आज कोई भी विषय एकांगी रूप से मनुष्य अध्ययन नहीं कर सकता है। अतः राजनीति विज्ञान के नये परिप्रेक्ष्य में अंतः अनुशासनीय पद्धति पर जोर दिया गया। अंतः अनुशासनात्मकता आधुनिकता का लक्षण है, अतः यह स्वतः सिद्ध है कि आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त प्रासंगिकता की कसौटी पर खरे उतरते हैं।

इधर दुनियाँ भर में विश्वविद्यालयों में जिस प्रकार राजनीतिक सिद्धान्तों की रचना हेतु बैच/विभाग स्थापित किये गये हैं, उनसे भी आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्तों की उपयोगिता स्पष्ट होती है।

आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त, 'समस्या-समाधान' के फार्मूले पर आधारित है। यहाँ केवल 'आदर्श' की कल्पना नहीं की जाती बल्कि समाज में व्याप्त समस्याओं का समाधान ढूँढा जाता है। कोई भी अनुशासन जब 'समस्या-समाधान' के साथ जुड़ जाता है तो उसकी प्रासंगिकता स्वतः सिद्ध हो जाती है। आज आधुनिक राजनीति विज्ञान में न्याय, समानता, स्वतंत्रता, क्रान्ति जैसे विषयों पर चर्चा होती है। समस्या के कारण ढूँढे जाते हैं, उनके परिणामों पर चर्चा होती है, फिर समाधान की तलाश शुरू होती है, तब कहीं राजनीतिक सिद्धान्त अस्तित्व में आता है, मुद्दा चाहे आरक्षण का हो, लिंगभेद का, नारी-पराश्रितता का या कोई अन्य, हमारे पास आज राजनीतिक सिद्धान्त है जो इन समस्याओं से निपटने के लिए दिशा निर्देशन करते हैं।

आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त व्यापक विषय है, जो अपने कलेवर में स्थानीय से अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश तक को समेटे हुए है। इस स्थिति में इसकी प्रासंगिकता पर प्रश्न उठाना, उचित प्रतीत नहीं होता है।

जैसा कि ऊपर के अध्ययन से आपको पता चला होगा कि प्राचीन यूनान में नगर-राज्यों का अध्ययन करने वाला विषय 'राजनीति' कहलाता था। कालान्तर में नगर-राज्य लुप्त हो गये और इनके स्थान पर रोमन काल में साम्राज्यों

की स्थापना हुई। पुनः आधुनिक काल में राष्ट्रीय राज्यों की उत्पत्ति हुई। स्वाभाविक रूप से राज्य के इस विकसित और विस्तृत स्वरूप से सम्बन्धित विषय को राजनीति विज्ञान कहा जाने लगा। राज्य, कानून, प्रभुसत्ता और सम्बन्धित संस्थाएं राजनीति विज्ञान के प्रमुख विषय हो गए। बीसवीं शती के तीसरे दशक में अमेरिका में व्यवहारावाद के जन्म ने राजनीति विज्ञान के अनुभववादी और वैज्ञानिक शास्त्र की वकालत की और राजनीति में मूल्यों के बजाय तथ्यों की मांग की। हालांकि, दो दशकों बाद राजनीतिक विश्लेषण में मूल्यों की वापसी 'उत्तर-व्यवहारावाद' के रूप में हुई। इस प्रकार राजनीति विज्ञान उन सब बातों का सार है, जो विगत शताब्दियों में घटित हुई हैं। इसी कारण राजनीति विज्ञान की परिभाषा, क्षेत्र और प्रकृति के सम्बन्ध में विद्वानों की राय एक नहीं है। हमें राजनीति विज्ञान की विभिन्न परिभाषाएं मिलती हैं जिन्हें दो खास भागों में बाँट सकते हैं। हालाँकि कोई भी हिस्सा एक-दूसरे से अलग नहीं है।

2.3.1 राजनीति विज्ञान की परम्परागत परिभाषा

परम्परागत दृष्टिकोण से दी गयी परिभाषाओं में विभिन्न पाश्चात्य विचारकों ने राजनीति विज्ञान के अध्ययन का मुख्य क्षेत्र राज्य व सरकार को माना गया है। इन विद्वानों की परिभाषाओं का अध्ययन निम्नांकित तीन रूपों में किया जा सकता है-

- **राज्य के अध्ययन के रूप में**

गार्नर के अनुसार- "राजनीति विज्ञान का प्रारम्भ व अन्त राज्य से ही होता है।"

ब्लंटश्री ने लिखा है, "राजनीति विज्ञान वह विज्ञान है जिसका संबंध राज्य से है और जो यह समझने का प्रयत्न करता है कि राज्य के आधारभूत तत्व क्या हैं, उसका आवश्यक स्वरूप क्या है, उसकी किन विविध रूपों में अभिव्यक्ति होती है तथा उसका विकास कैसा हुआ है।"

गैरीज ने राजनीति विज्ञान को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "राजनीति विज्ञान राज्य के उदभव, विकास उद्देश्य तथा राज्य की समस्त समस्याओं का उल्लेख करता है।"

जैम्स के अनुसार- "राजनीति विज्ञान राज्य का विज्ञान है।"

डॉ० जकारिया के शब्दों में- "राजनीति विज्ञान व्यवस्थित रूप से उन आधारभूत सिद्धान्तों का निरूपण करता है, जिनके अनुसार समष्टि रूप में राज्य को संगठित किया जाता है और प्रभुसत्ता का प्रयोग किया जाता है।"

- **सरकार के अध्ययन के रूप में**

राजनीति विज्ञान के कुछ विचारकों ने राजनीति विज्ञान को सरकार का अध्ययन माना है। उनके मतानुसार राज्य तो अमूर्त संस्था है, यदि उसे समझना है तो उसके मूर्तरूप सरकार को ही समझना होगा। सीले, जेम्स, लीकॉक इसी श्रेणी के विद्वान हैं। उल्लेखनीय है कि सरकार के अध्ययन के रूप में राजनीति-विज्ञान का आरम्भ अमेरिका में हुआ।

सीले के अनुसार- "राजनीति विज्ञान उसी प्रकार सरकार के तत्वों का अनुसंधान करता है जैसे सम्पत्ति शास्त्र सम्पत्ति का, जीव विज्ञान जीवन का, बीजगणित अंको का तथा ज्यामितिशास्त्र स्थान एवं लम्बाई - चौड़ाई का करता है।"

लीकॉक ने लिखा है कि "राजनीति - विज्ञान सरकार से संबंधित विधा है।"

- **राज्य और सरकार दोनों के अध्ययन के रूप में**

राजनीति विज्ञान के कुछ विद्वानों का मत है कि राजनीति विज्ञान, राज्य और सरकार दोनों का अध्ययन है। इनके मतानुसार एक के बगैर दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती, क्योंकि राज्य को अभिव्यक्ति के लिए सरकार की और सरकार के अस्तित्व की संकल्पना के लिए राज्य की उपस्थिति अनिवार्य है। पॉल जैनेट, गिलक्राइस्ट, गैटिल, डिमॉक, प्रो0आशीर्वादम्, लॉस्की आदि विद्वानों ने इसी मत का समर्थन किया है।

गिलक्राइस्ट के अनुसार- “राजनीति विज्ञान वस्तुतः राज्य और सरकार की सामान्य समस्याओं का अध्ययन करता है।”

डिमॉक ने भी राजनीति विज्ञान को इसी प्रकार परिभाषित करते हुए लिखा है कि राजनीति विज्ञान का संबंध राज्य तथा उसके साधन सरकार से है।

आशीर्वादम् के अनुसार, “राजनीति विज्ञान राज्य और शासन दोनों का ही विज्ञान है।”

पॉल जैनेट के अनुसार, “राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र का वह भाग है, जिसमें राज्य के आधार और सरकार के सिद्धान्त का विचार किया जाता है।”

राजनीति विज्ञान की उपर्युक्त सभी परम्परागत परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राजनीति विज्ञान की उपर्युक्त सभी परिभाषाएँ अपूर्ण हैं क्योंकि इनमें मानवीय तत्व की उपेक्षा की गयी है। राज्य और सरकार के अध्ययन में मानवीय तत्व सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। व्यक्ति के जीवन को अत्यधिक प्रभावित करने के कारण ही राजनीति विज्ञान में राज्य और सरकार का अध्ययन किया जाता है। मानवीय तत्व के अध्ययन के बिना राजनीति विज्ञान का अध्ययन नितान्त औपचारिक, निर्जीव तथा संस्थागत ही माना जायेगा।

हरमन हैलन के अनुसार, “राजनीति विज्ञान के सम्पूर्ण स्वरूप का निर्धारण उसकी मानव विषयक मौलिक मान्यताओं द्वारा ही होता है।”

2.3.2 राजनीति विज्ञान की आधुनिक परिभाषा

परम्परागत राजनीति विज्ञान या तो स्वतंत्रता, समता, न्याय जैसे राजनीतिक विचारों पर बल देता है, या राज्य, सरकार, कानून इत्यादि जैसी राजनीतिक संस्थाओं पर। लेकिन 20वीं शताब्दी में राजनीति विज्ञान की सबसे प्रमुख प्रवृत्ति रही, व्यवहारवाद, जिसने परम्परागत राजनीति विज्ञान को आधुनिक राजनीति विज्ञान के मार्ग में आगे बढ़ाया। ग्राहम वालास, ए0एफ0 डहल, बैटले, मैक्सवेयर, चार्ल्स मेरियम, जार्ज कैटलिन, हैरोल्ड लास्वेल, डेविड ईस्टन आदि व्यवहारवादियों ने ‘राज्य’ एवं अन्य संस्थाओं मात्र के अध्ययन के बजाय राजनीतिक व्यवस्था, मानव व्यवहार एवं राजनीतिक प्रक्रियाओं के अध्ययन पर बल दिया। राजनीतिक संस्थाओं के पीछे कार्य कर रही प्रभावशाली शक्तियों पर प्रकाश डालने का इन्होंने प्रयास किया। फलतः राजनीतिक अध्ययन का रुख संस्थात्मक और संगठनात्मक दृष्टिकोण से हटकर लोगों की राजनीतिक गतिविधियों, दिशा, प्रेरणा और आचरण पर केन्द्रित हो गया। विचारों के अध्ययन का स्थान तथ्यों और प्रमाणों के अध्ययन ने ले लिया तथा राजनीति विज्ञान को आधुनिक लेखकों ने शक्ति, सत्ता, प्रभाव का अध्ययन बताया। कुछ परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं।

कैटलिन के अनुसार, “राजनीति विज्ञान शक्ति का विज्ञान है।”

डेविड ईस्टन के अनुसार, “राजनीति विज्ञान समाज में मूल्यों का सत्तात्मक वितरण है।”

लासवेल और केपलान के अनुसार, “एक आनुभाविक खोज के रूप में राजनीति विज्ञान शक्ति के निर्धारण और सहभागिता का अध्ययन है।”

डॉ० हसजार और स्टीवेन्सन के अनुसार, “राजनीतिशास्त्र अध्ययन का वह क्षेत्र है जो प्रमुखतया शक्ति सम्बन्धों का अध्ययन करता है। इन शक्ति सम्बन्धों के कुछ प्रमुख रूप हैं, व्यक्तियों में परस्पर, व्यक्ति और राज्य के मध्य शक्ति सम्बन्ध और राज्यों में परस्पर शक्ति सम्बन्ध।”

रॉबर्ट ए० डहल के अनुसार, “राजनीति विज्ञान का शक्ति, नियम व सत्ता से सम्बन्ध है।”

आलमण्ड तथा पावेल के अनुसार, “आधुनिक राजनीति विज्ञान में हम राजनीतिक व्यवस्था का अध्ययन और विश्लेषण करते हैं।”

उपरोक्त राजनीति विज्ञान सम्बन्धी परम्परावादी और आधुनिक परिभाषाओं के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान में यह केवल राज्य अथवा सरकार से सम्बन्धित विज्ञान नहीं, बल्कि मनुष्य के राजनीतिक व्यवहार, राजनीतिक क्रियाओं व प्रक्रियाओं, शक्ति, सत्ता तथा मानव समूहों की अन्तःक्रियाओं का विज्ञान है।

2.3.3 परम्परागत राजनीति विज्ञान का क्षेत्र

किसी अनुशासन के अध्ययन क्षेत्र से तात्पर्य होता है कि उसमें किन-किन बातों/विषयों का अध्ययन किया जायेगा। राजनीति विज्ञान एक ऐसा अनुशासन है जिसके क्षेत्र का निश्चयात्मक अध्ययन करना जटिल कार्य है। समय के साथ-साथ इसके क्षेत्र में संकुचन व विस्तार होता चला आया है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम इसका विवेचन परम्परागत परिप्रेक्ष्य व आधुनिक परिप्रेक्ष्य में कर सकते हैं।

अ-राजनीति विज्ञान का परम्परागत परिप्रेक्ष्य में क्षेत्र- प्राचीन काल में यूनान में राजनीति विज्ञान का क्षेत्र विस्तृत था, क्योंकि तत्कालीन समय में राज्य न केवल एक राजनीतिक संस्था थी अपितु नैतिक संस्था भी थी। राज्य व समाज में किसी प्रकार का भेद नहीं था। मानव जीवन के प्रत्येक पहलु का अध्ययन इस अनुशासन के अन्तर्गत किया जाता था। यही कारण था कि अरस्तू ने राजनीति विज्ञान को “प्रधान विज्ञान” मास्टर साईंस की संज्ञा प्रदान की। कैटलिन ने अपनी पुस्तक “पॉलिटिकल थियरी: व्हाट इज इट?” में इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है। अरस्तू ने राजनीति की परिधि में राष्ट्रीय राज्य व्यवस्थाएँ नागरिक, दास प्रथा, अन्तर्राष्ट्रीय राज्य-व्यवस्थाएँ, पैतृक व्यवस्थाएँ, धार्मिक संगठन, व्यापारिक संस्थान और कर्मचारियों के संगठन को भी शामिल कर लिया। रोमन साम्राज्य में राजनीति विज्ञान की परिधि में वैधानिकता का समावेश हो गया। मध्ययुग में राजनीति विज्ञान का क्षेत्र ‘चर्च व राज्य की सर्वोच्चता का संघर्ष’ बन गया। बोंदा ने राजनीति विज्ञान के क्षेत्र में सम्प्रभुता के तत्व का समावेश कर दिया और राजनीति विज्ञान का अध्ययन सम्प्रभुता के संदर्भ में किया जाने लगा। ये राजनीति विज्ञान के क्षेत्र के संकुचन का परिचायक था। 19वीं शताब्दी में अन्य विषयों के स्वतंत्र अनुशासन के रूप में अस्तित्व में आने के कारण राजनीति विज्ञान भी पृथक विषय बन गया है। फ्रेडरिक पोलक ने परम्परागत राजनीति विज्ञान के क्षेत्र को दो खण्डों में विभाजित किया है- पहला सैद्धान्तिक राजनीति विज्ञान और दूसरा व्यवहारिक राजनीति विज्ञान।

सैद्धान्तिक राजनीति विज्ञान के अन्तर्गत राज्य की आधारभूत समस्याओं का अध्ययन किया जाता है, जबकि व्यवहारिक राजनीति विज्ञान में राज्य के क्रियात्मक स्वरूप तथा निरन्तर परिवर्तनशील सरकारों के वास्तविक रूप की विवेचना की जाती है। पोलक की भाँति गुडनॉव व सिजविक ने भी परम्परागत राजनीति विज्ञान का विभाजन किया है।

परम्परागत राजनीति विज्ञान के क्षेत्र के अन्तर्गत निम्नांकित पांच विषयों का अध्ययन किया जाता है-

1. **राज्य का अध्ययन**-राजनीति विज्ञान के क्षेत्र का वर्णन करते हुए गैटिल ने लिखा है-, “राजनीति विज्ञान राज्य के भूतकालीन स्वरूप की ऐतिहासिक गवेषणा, उसके वर्तमान स्वरूप की विश्लेषणात्मक व्याख्या तथा उसके आदर्श स्वरूप की राजनीतिक विवेचना है। “इस प्रकार राजनीति विज्ञान में राज्य की उत्पत्ति, उसका विकास, संगठन, आवश्यक तत्वों, प्रक्रियाओं, उद्देश्यों, कार्यों के साथसाथ नागरिकों के साथ - उसके संबंधों तथा अन्य राज्यों, अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ उसके संबंधों का अध्ययन किया जाता है। गिलक्राइस्ट ने राजनीति विज्ञान के क्षेत्र को परिभाषित करते हुए लिखा है, “राजनीति विज्ञान में यह बतलाया जाता है कि राज्य क्या है, क्या रहा है और इसे क्या होना चाहिए? गार्नर ने भी राजनीति विज्ञान का विषय राज्य घोषित किया है। उसने राजनीति विज्ञान को परिभाषित करते हुए लिखा है “राजनीति विज्ञान का प्रारम्भ व अन्त राज्य पर ही होता है।” गैरीज, गुडनॉव, एक्टन, ब्लंटश्ली तथा जकारिया ने भी राजनीति विज्ञान का क्षेत्र राज्य घोषित किया है।
2. **सरकार का अध्ययन**-परम्परागत राजनीति विज्ञान में सरकार का अध्ययन किया जाता है: सरकार राज्य का अभिन्न अंग है राज्य एक अमूर्त संस्था है जबकि सरकार उसका मूर्त रूप है। क्रॉसे के अनुसार, “सरकार ही राज्य है और सरकार में ही राज्य पूर्णता प्राप्त कर सकता है, वस्तुतः सरकार के बिना राज्य का अध्ययन अपूर्ण है।” सरकार राज्य की प्रभुसत्ता का प्रयोग करती है। सरकार ही राज्य की इच्छाओं और आकांक्षाओं को व्यावहारिक रूप प्रदान करती है। सरकार के विभिन्न रूपों का अध्ययन राजनीतिशास्त्र में किया जाता है। सरकार के विभिन्न अंगों (व्यवस्थापिका), कार्यपालिका और न्यायपालिका का अध्ययन भी इसमें किया जाता है। लीकॉक ने तो स्पष्टतया (, “राजनीतिशास्त्र को सरकार का अध्ययन कहा जाता है।”
3. **स्थानीय, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का अध्ययन**- प्राचीन भारतीय राजनीति विज्ञान में कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में राजनीति विज्ञान के क्षेत्र में स्थानीय, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं, इन तीनों का समावेश किया। उसने ग्राम पंचायत, राष्ट्रीय संस्थाओं व परराष्ट्र संबंध का अध्ययन किया। इसी प्रकार यूनानी राजनीतिक चिन्तक अरस्तू ने भी इन तीनों श्रेणियों से संबंधित समस्याओं का अध्ययन ‘पालिटिक्स’ में किया। स्थानीय संस्थाओं की कार्यप्रणाली का अध्ययन तथा इसमें नागरिकों का सहयोग आदि विषय राजनीति विज्ञान के महत्वपूर्ण अंग हैं। स्थानीय स्वायत्तता एवं शासन की समस्याओं का अध्ययन राष्ट्रीय समस्याओं की पृष्ठभूमि में किया जा सकता है।
4. **अन्तर्राष्ट्रीय विधि, संबंधों व संगठनों का अध्ययन**-राजनीति विज्ञान के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय - कानूनों का अध्ययन किया जाता है, जैसे सन्धि, प्रत्यर्पण, मानवाधिकार, संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर का अनुपालन आदि। इसके अतिरिक्त विभिन्न देशों के आपसी संबंधों व अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों का, राज्यों की विदेश नीति, युद्ध व शांतिकाल में अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों की भूमिका आदि भी राजनीति विज्ञान की विषय वस्तु है।
5. **राजनीतिक सिद्धान्तों व विचारधाराओं का अध्ययन** राजनीति विज्ञान का सबसे महत्वपूर्ण विषय है - “राजनीतिक सिद्धान्त”। इसके अन्तर्गत राज्य की उत्पत्ति, संगठन, विकास, प्रक्रिया से लेकर उसके

उद्देश्यों व कार्यों संबंधी सभी सिद्धान्तों और जीवन के सामान्य तथ्यों का अध्ययन किया जाता है। राजनीतिक सिद्धान्तों का जन्म 'संकटकाल' में होता है जितने भी महान दार्शनिक या चिन्तक हुए हैं सब अपने युग के संकट काल की उपज हैं। उन पर इस संकट का इतना जबरदस्त प्रभाव रहा कि उन्होंने उसके समाधान के लिए ऐसे सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जो आज भी प्रासंगिक नजर आते हैं। उदाहरणार्थ - अरस्तू ने क्रांति के कारणों व समाधान का इतना गहन अध्ययन किया कि आज भी उसे कोई काट नहीं सकता। विचारधारा के रूप में राजनीतिक सिद्धान्त की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। मार्क्स की विचारधारा ने पूरे विश्व को दो धड़ों में विभाजित कर दिया। अतः राजनीति विज्ञान में विचारधाराओं का अध्ययन महत्वपूर्ण व अपृथक्करणीय अंग है।

6. **शासन प्रबन्ध का अध्ययन-** लोक प्रशासन राजनीति विज्ञान का एक भाग होते हुए भी आज पृथक् विषय बन गया है परन्तु उसकी मूल बातों का अध्ययन राजनीति विज्ञान के अन्तर्गत आज भी किया जाता है। असैनिक कर्मचारियों की भर्ती, प्रशिक्षण, उन्नति, उनका जनता के प्रतिनिधियों से सम्बन्ध तथा प्रशासन को अति कुशल और लोकहितकारी तथा उत्तरदायी बनाने के बारे में अध्ययन राजनीति विज्ञान में किया जाता है।
7. **अन्य सामाजिक विज्ञानों का अध्ययन** मनुष्य की जो राजनीतिक क्रियाएँ होती हैं वे उसकी - परिस्थितियों की उपज होती हैं। आज मनुष्य आर्थिक, सामाजिक, नैतिक, मनोवैज्ञानिक आदि अवधारणाओं से बँधा हुआ है। मनुष्य की राजनीतिक क्रियाओं के पूर्ण अध्ययन करते समय उक्त विषयों का अध्ययन भी होना चाहिए। कार्ल मार्क्स ने राजनीतिक क्रियाओं को समझने के लिए मनोविज्ञान के अध्ययन पर बल दिया। शिकागो संस्थान के विचारक मनुष्य के राजनीतिक क्रियाकलापों को समझने के लिए उसके समस्त सामाजिक वातावरण के अध्ययन पर बल देते हैं।
8. **राजनीतिक दलों तथा दबाव गुटों का अध्ययन** राजनीतिक दल और दबाव गुट वे संस्थाएँ हैं जिनके - द्वारा राजनीतिक जीवन को गति दी जाती है। आजकल तो राजनीतिक दलों और दबाव गुटों के अध्ययन का महत्व संविधान और शासन के औपचारिक संगठन के अध्ययन से अधिक है। इस प्रकार का अध्ययन राजनीतिक जीवन को वास्तविकता से सम्बन्धित करता है।

राजनीति विज्ञान के क्षेत्र के सम्बन्ध में आधुनिक दृष्टिकोण

द्वितीय विश्वयुद्ध (1939-45) से पूर्व यह मान्यता थी कि राजनीति विज्ञान का अध्ययन विषय केवल व्यक्तियों का राजनीतिक जीवन, राज्य और अन्य राजनीतिक संस्थाएँ ही हैं। यद्यपि ग्राहम वालास, ए० एफ० बेंटले, केटलिन, लासवेल आदि विचारकों ने इस बात का प्रतिपादन किया था कि राजनीति विज्ञान का अध्ययन केन्द्र राजनीतिक संस्थाओं को न मानकर इस संस्थाओं की चालक शक्ति- मानवीय व्यवहार को बनाया जाना चाहिए। युद्ध के पश्चात् तो यह प्रवृत्ति उग्र रूप से सामने आई और इसने एक क्रान्तिकारी रूप धारण कर लिया। इसके प्रवर्तक डेविड ईस्टन ने इसे व्यवहारवादी आन्दोलन का नाम दिया। व्यवहारवादी आन्दोलन में इस बात पर बल दिया जाता है कि मनुष्य अपना राजनीतिक जीवन एकान्त में व्यतीत नहीं करता वरन् समाज में रहकर व्यतीत करता है और समस्त सामाजिक जीवन के संदर्भ में ही मनुष्य के राजनीतिक जीवन को समझा जा सकता है।

1. **आधुनिक राजनीति विज्ञान में राजनीतिक व्यवस्था का अध्ययन:** आधुनिक राजनीति विज्ञान 'राजनीतिक व्यवस्था' के अध्ययन पर बल देता है। आधुनिक राजनीति वैज्ञानिकों डेविड ईस्टन एवं आमण्ड पावेल के अनुसार

राजनीतिक व्यवस्था पारस्परिक सम्बन्धों का ऐसा जाल है, जिसके द्वारा समाज सम्बन्धी आधिकारिक निर्णय लिये जाते हैं और उन्हें लागू किया जाता है। समाज में विद्यमान अन्य उपव्यवस्था जैसे आर्थिक व्यवस्था, धार्मिक व्यवस्था, सांस्कृतिक व्यवस्था और राजनीतिक व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण अंतर है जो इसे अन्य उपव्यवस्थाओं में श्रेष्ठ स्थान प्रदान करती है। वह है इसके निर्णयों का आधिकारिक होना तथा सम्पूर्ण समाज पर लागू होना तथा समाज द्वारा इनका पालन न किये जाने की स्थिति में शक्ति के आधार पर इन्हें समाज पर बाध्यकारी रूप से आरोपित करना। राजनीतिक व्यवस्था की इसी विशेषता की ओर संकेत करते हुए डेविड ईस्टन ने लिखा है कि, “यह राजनीतिक मूल्यों का सम्पूर्ण समाज के लिए आधिकारिक आबंटन है।” राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत आन्तरिक व बाह्य परिवेश, इनसे राजनीतिक व्यवस्था पर पड़ने वाले तनावों व दबावों, परिवेश से आने वाली माँगों व समर्थनों, शासन व्यवस्था के तीनों अंग, प्रतिसम्भरण प्रक्रिया आदि का अध्ययन किया जाता है।

2. अन्य सामाजिक विज्ञानों का अध्ययन है: राजनीति विज्ञान अन्य सामाजिक विज्ञानों से अलग हटकर अपनी समस्याओं का अध्ययन नहीं कर सकता। अन्य सामाजिक विज्ञान भी मानव से सम्बन्धित होने के कारण मानव के किसी विशेष पहलू का अध्ययन करते हैं। मानव जीवन के राजनीतिक विचारों को प्रभावित करने में सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक, मनोवैज्ञानिक आदि तत्व भी महत्वपूर्ण समझे जाते हैं। राजनीति विज्ञान का अध्ययन अन्य सामाजिक विज्ञानों के अध्ययन के बिना अधूरा माना जाता है। ग्राहम वालास आदि ने राजनीतिक व्यवहार को समझने के लिए मनोविज्ञान की ओर संकेत किया है। राजनीति विज्ञान जो एक समय अपने अध्ययन के लिए केवल राजनीतिक तत्वों का ही ध्यान रखता था, आज अपने अध्ययन में आर्थिक, सामाजिक, भौगोलिक आधारों की भी खोज करता है।

3. राजनीति विज्ञान शक्ति एवं प्रभाव का अध्ययन: आधुनिक राजनीति विज्ञान से सम्बद्ध विद्वान, राजनीति विज्ञान को शक्ति एवं प्रभाव का अध्ययन मानते हैं। कैटलिन इसे ‘शक्ति का विज्ञान’ मानता है। लासवेल भी राजनीति विज्ञान को ‘शक्ति के निर्धारण और सहभागिता’ का अध्ययन मानता है।

4. राजनीतिक व्यवहार का अध्ययन: यह माना जाता है कि राजनीतिक संस्थाएँ जिसके द्वारा संचालित की जाती हैं, उसके अध्ययन को प्रमुखता दी जानी चाहिए। आज की लोकतान्त्रिक पद्धति में चुनाव, राजनीतिक घटनाओं को मानव व्यवहार प्रभावित करता है। इसलिए राजनीतिक व्यवहार का अध्ययन आवश्यक है।

5. राजनीतिक क्रियाओं का अध्ययन: आधुनिक राजनीति विज्ञान के अध्ययन में राजनीतिक क्रियाओं को भी सम्मिलित किया जाता है क्योंकि इन सभी क्रियाओं के योग से ही राजनीतिक प्रक्रिया का जन्म होता है।

6. राजनीतिक विज्ञान सार्वजनिक सहमति और सामान्य मत का अध्ययन: आधुनिक राजनीति विज्ञान के अध्ययन में सहमति और सामान्य मत का भी अध्ययन सम्मिलित किया जाता है। बेनफील्ड के शब्दों में, “किसी विषय अथवा समस्या को संघर्षमय बनाने अथवा सुलझाने वाली गतिविधियाँ (समझौता, वार्ता, तर्क-वितर्क, विचार-विनिमय, शक्ति प्रयोग आदि) राजनीति विज्ञान के अंग हैं।”

7. राजनीति विज्ञान समस्याओं व संघर्ष का अध्ययन: डायक व ओडगार्ड के मत में आज राजनीति विज्ञान के क्षेत्र के अन्तर्गत विभिन्न समस्याओं और संघर्षों का भी अध्ययन किया जाता है क्योंकि ये समस्याएँ एवं संघर्ष राजनीति विज्ञान को गम्भीर रूप से प्रभावित करती हैं।

8. विविध विषय क्षेत्र: राजनीति विज्ञान के अनेक आधुनिक विद्वानों ने राजनीति विज्ञान में अनेक विविध विषयों को उसके विषय-क्षेत्र में सम्मिलित किया है। वह राज्य की अपेक्षा राजनीतिक व्यवस्था को राजनीति विज्ञान का विषय मानते हैं; कुछ अन्य विद्वान राजनीतिक संस्कृति, समाजीकरण, राजनीतिक-आर्थिक विकास आदि को आधुनिक राजनीति विज्ञान का अंग मानते हैं। राजनीतिक संचार को कुछ अन्य विद्वानों ने राजनीति विज्ञान का

अंग कहा है, जबकि दूसरों ने राजनीतिक संस्थात्मक संचार व राजनीति को आधुनिक राजनीति विज्ञान की विषय-वस्तु में सम्मिलित किया है। आधुनिक राजनीति विज्ञान का कार्य, वास्तव में, कठिन कार्य है। वह परम्परागत राजनीति विज्ञान की उपलब्धियों व उनकी समस्याओं को अपने विषय-क्षेत्र में समेट लेना चाहता है, साथ ही, वह भविष्य की राजनीतिक व्यवस्था तथा वर्तमान राजनीति की अनेक क्रियाओं, प्रक्रियाओं तथा उनकी वैज्ञानिक पद्धतियों को भी अपने विषय-क्षेत्र में सम्मिलित करना चाहता है। इस संदर्भ में रोलां, पिनाक तथा स्मिथ ने राजनीति विज्ञान की विषय-सामग्री को ध्यान में रखते हुए उसकी परिभाषा बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत की है। वे कहते हैं कि, “क्या है और क्या होना चाहिए तथा दोनों (यथार्थ एवं आदर्श) के बीच सामंजस्य कैसे बैठाया जाये, इस दृष्टि से सरकार और राजनीतिक प्रक्रिया के व्यवस्थित अध्ययन को राजनीतिक विज्ञान कहा जा सकता है।”

2.4 राजनीति विज्ञान की प्रकृति- विज्ञान अथवा कला

राजनीति विज्ञान को विज्ञान की श्रेणी में रखा जाए या कला की श्रेणी में, यह बात आज भी पूर्ण स्पष्ट नहीं है। इसका कारण यह है कि आज भी कुछ विद्वान इसे विज्ञान स्वीकार करने में हिचकते हैं, जबकि कुछ विद्वान इसे विज्ञान मान चुके हैं। इस पर विचार करने से पूर्व यह उचित है कि पहले ‘विज्ञान’ शब्द की परिभाषा पर विचार कर लिया जाए।

विज्ञान की परिभाषा- प्राकृतिक विज्ञानों के विचारक अपने विषयों को ही विज्ञान स्वीकार करते हैं; जैसे- रसायनशास्त्र, भौतिक विज्ञान, गणित, जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान आदि विषय ही विज्ञान हैं, परन्तु विज्ञान की परिभाषा को सामान्यतया अब दूसरे रूप में स्वीकार किया जाने लगा है। विज्ञान की सामान्य परिभाषा है कि, “विज्ञान किसी विषय के क्रमबद्ध ज्ञान को कहते हैं।”

इस परिभाषा की अंग्रेजी के शब्दकोष चैम्बर्स डिक्शनरी से भी पुष्टि की जा सकती है, उसके अनुसार, “विज्ञान वह ज्ञान है जो पर्यवेक्षण और प्रयोग पर आधारित हो, भली-भाँति परीक्षित तथा क्रमबद्ध हो और सामान्य सिद्धांतों में समाहित हो।” विज्ञान की परिभाषा गार्नर ने इन शब्दों में दी है, “विज्ञान उस एकीकृत ज्ञान भण्डार को कहते हैं जिसकी प्राप्ति विधिवत पर्यवेक्षण, अनुभव और अध्ययन द्वारा हुई हो और जिसके तथ्यों का उनमें परस्पर उचित सम्बन्ध स्थापित करके क्रमबद्ध वर्गीकरण किया गया हो।”

उक्त परिभाषाओं से विज्ञान की निम्नलिखित विशेषताएँ प्रकट होती हैं-

1. विज्ञान में प्रयोगात्मक विधियों को काम में लाया जाता है।
2. निश्चित विधि तथा तर्क के आधार पर सामान्य सिद्धान्तों की स्थापना की जाती है।
3. विज्ञान के सिद्धान्त या नियम निश्चित तथा अटल होते हैं, वे सभी स्थानों और समयों में लागू होते हैं।
4. विज्ञान में भविष्यवाणी करने की अपूर्व क्षमता है।
5. प्रत्येक निष्कर्ष विवेचनात्मक है, अतः विश्लेषण के लिए उत्तरदायी है।
6. प्रत्येक निष्कर्ष कार्यकारण के सम्बन्ध को स्पष्ट करता है।

विज्ञान की परिभाषा कर लेने के पश्चात् अब देखना होगा कि क्या राजनीति विज्ञान को विज्ञान की श्रेणी में रखा जाए या नहीं। इसको कुछ विद्वान विज्ञान स्वीकार करते हैं; जैसे- अरस्तू ने इसे सर्वोच्च और पूर्ण विज्ञान माना है। बर्नाडशा इसे मानवीय सभ्यता को सुरक्षित रख सकने वाला विज्ञान कहते हैं। इनके अतिरिक्त बोदां, हॉब्स, मॉन्टेस्क्यू, ब्राडस, ब्लुट्श्ली, जैलीनेक, डॉ0 फाइनर, लास्की जैसे विद्वान भी इसे विज्ञान की श्रेणी में रखते हैं,

जबकि इसके विपरीत बकल, कॉम्टे, मेटलैण्ड, लियर्ड, केटलिन, मोस्का, ब्रोमन, बर्क जैसे विद्वान राजनीति विज्ञान को विज्ञान स्वीकार नहीं करते हैं। अब इन दोनों पर विस्तार से विचार कर लेना उचित होगा।

राजनीति विज्ञान, विज्ञान नहीं है

बकल, कॉम्टे, मेटलैण्ड आदि विचारक इस विषय को विज्ञान स्वीकार नहीं करते। इसका कारण यह है कि उनके अनुसार विज्ञान ज्ञान की वह शाखा है जिसके अन्तर्गत कार्य और कारण में सदैव निश्चित सम्बन्ध पाया जाता हो और जिसके निष्कर्ष निश्चित एवं शाश्वत हों। इस आधार पर वे राजनीतिविज्ञान को विज्ञान स्वीकार नहीं करते हैं। कॉम्टे का विचार है कि, “राजनीति विज्ञान के विशेषज्ञ उसकी अध्ययन विधियों, सिद्धान्तों एवं निष्कर्षों के सम्बन्ध में एकमत नहीं हैं। इसमें विकास की निरन्तरता का अभाव है जिनके आधार पर भविष्य के लिए ठीक निष्कर्ष निकाले जा सकें।” बकल के अनुसार, “ज्ञान की वर्तमान दशा में राजनीतिविज्ञान का विज्ञान होना तो दूर रहा, यह कलाओं में भी सबसे पिछड़ी हुई कला है।”

विज्ञान शब्द इस विषय के साथ जुड़ने पर मेटलैण्ड को बहुत दुःख है। उनके शब्दों में, “जब मैं राजनीतिशास्त्र शीर्षक के अन्तर्गत प्रश्न देखता हूँ तो मुझे प्रश्नों पर नहीं बल्कि शीर्षक पर आश्चर्य होता है।” मेटलैण्ड के अनुसार राजनीति विज्ञान, विज्ञान हो ही नहीं सकता।

इन विद्वानों ने अपने कथन के पक्ष एवं समर्थन में निम्न तर्क प्रस्तुत किये हैं-

1. सुनिश्चित परिभाषित शब्दावली का अभाव- राजनीति विज्ञान में हम एक निश्चित परिभाषिक शब्दावली का अभाव पाते हैं। इसे राजनीति, राजनीतिक दर्शन तथा राजनीति विज्ञान आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है। इसके अनेक ऐसे शब्द हैं जिनके वास्तविक अर्थ के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद पाये जाते हैं। विज्ञान में H₂O का अर्थ प्रत्येक स्थान पर एक ही होगा, चाहे वह ब्रिटेन हो या भारत किन्तु राजनीति विज्ञान में स्वतंत्रता, समानता, न्याय, सम्प्रभुता, लोकतंत्र, लोकमत, संघवाद एवं अधिकार आदि के भिन्न-भिन्न देशों में विद्वानों द्वारा भिन्न-भिन्न अर्थ लगाए जाते हैं। इस तरह जिस विषय का अपना कोई स्पष्ट एवं निश्चित स्वरूप ही न हो, उसे विज्ञान की संज्ञा कैसे दी जा सकती है।

2. सर्वमान्य नियमों तथा तथ्यों का अभाव- भौतिक तथा प्राकृतिक विज्ञानों की भाँति इसमें सर्वमान्य नियमों, तथ्यों तथा सिद्धान्तों का निर्धारण नहीं हो पाता है। विज्ञान में कुछ निश्चित नियम तथा सिद्धान्त होते हैं जो सर्वमान्य एवं सार्वभौम होते हैं। उदाहरणार्थ, ज्यामिति का यह नियम अटल एवं सर्वमान्य है कि, “एक त्रिभुज के तीनों कोणों का योग दो समकोण के बराबर होता है।” किन्तु राजनीतिविज्ञान में ऐसा नहीं है। इसी तरह गति विज्ञान के नियमानुसार, “प्रत्येक क्रिया की उतनी ही विपरीत प्रतिक्रिया होती है” का नियम भी अटल एवं शाश्वत है। इसी तरह इसमें गणितके 2 और 2 चार अथवा भौतिक विज्ञान के ‘गुरुत्वाकर्षण नियम’ की भाँति किन्हीं सर्वमान्य एवं शाश्वत नियमों का सर्वथा अभाव पाया जाता है। यदि एक ओर आदर्शवादी राज्य की सर्वोच्च सत्ता को मान्यता देते हैं तो दूसरी ओर, साम्यवादी तथा अराजकतावादी इसको अमान्य करते हैं।

यदि बेंजामिन फ्रैंकलिन, लास्की और एबेसीज जैसे विद्वान एक सदनीय व्यवस्थापिका के पक्षधर हैं तो लैकी, सिजविक तथा ब्लंटश्री आदि इसके घोर विरोधी हैं। यदि एक पक्ष के लिए प्रजातंत्र सर्वश्रेष्ठ शासन पद्धति है तो दूसरे पक्ष के लिए वह बहुत बुरी तथा निकृष्ट शासन पद्धति है। अन्य तथ्यों तथा सिद्धान्तों के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार के मतभेद एवं विरोधाभास दिखाई पड़ते हैं।

3. प्रयोग व पर्यवेक्षण सम्भव नहीं- इसमें भौतिक तथा प्राकृतिक विज्ञानों की भाँति प्रयोग एवं पर्यवेक्षण की सुविधाएं प्राप्त नहीं हैं। इसमें हम भौतिक, रसायन, जीव एवं मौसम विज्ञानों आदि की भाँति प्रयोगशालाओं में

जाकर तथ्यों तथा पदार्थों के सम्बन्ध में कोई निश्चित एवं सन्तोषजनक समाधान नहीं निकाल सकते हैं क्योंकि इसका सम्बन्ध मानव एवं उससे सम्बन्धित विचारधाराओं से होता है जिनका प्रयोग प्रयोगशालाओं या वेधशालाओं में सम्भव नहीं है। अर्थात् विज्ञान में हम ताप या गैस का दबाव सही-सही माप सकते हैं क्योंकि वे निर्जीव और भावनाहीन होती हैं, जबकि मानव के आवेग, उत्तेजना, भावना अभिलाषा, क्रोध, प्रेम और विचार का ठीक-ठीक और बार-बार नहीं माप सकते हैं, क्योंकि मानव का स्वभाव परिवर्तनशील, प्रतिक्रियावादी और भावना प्रधान होता है। ब्राइस के शब्दों में, “भौतिक विज्ञान में एक निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए बार-बार प्रयोग किया जा सकता है किन्तु राजनीति में एक प्रयोग बार-बार नहीं दोहराया जा सकता है।”

4. भविष्यवाणी सम्भव नहीं- विज्ञान में निश्चित नियम होने से शत-प्रतिशत सही भविष्यवाणी की जा सकती है; जैसे- ज्योतिष विद्या के आधार पर बहुत समय पूर्व चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण की भविष्यवाणी की जाती है और जो पूर्णतया सत्य सिद्ध होती है। परन्तु ऐसी भविष्यवाणी हमारे विषय के सम्बन्ध में नहीं की जा सकती है। राजनीतिविज्ञानी यह नहीं बता सकता कि किस निश्चित विचार का जनता पर क्या असर होगा या किस देश में कब जन-असन्तोष फैलकर क्रान्ति लाएगा और कब जन-समर्थन सरकार को मिलेगा। इसी आधार पर बर्क ने कहा था कि, “राजनीति विज्ञान में भविष्यवाणी करना मूर्खता है।” लॉस्की के भी कहा है कि, “हम अनुभव के आधार पर भविष्यवाणी कर सकते हैं। हमारी भविष्यवाणी तथ्यों के अभाव एवं अनिश्चितता के कारण सीमित है।”

5. कार्य-कारण में निश्चित सम्बन्ध का अभाव- विज्ञान की एक विशेषता यह है कि उसमें प्रत्येक कार्य का एक निश्चित और स्पष्ट कारण होता है। उदाहरण के लिए, यदि जल को एक निश्चित मात्रा तक गर्म किया जाए तो वह वाष्प बन जाता है और यदि निश्चित मात्रा तक ठंडा किया जाए तो बर्फ बन जाता है। इसका कोई अपवाद नहीं है। परन्तु राजनीतिविज्ञान में कार्य-कारण का सम्बन्ध इतना स्पष्ट और निश्चित नहीं हो सकता है। यह कहना कठिन होगा कि कौन-सी राजनीतिक घटना किस कारण से हुई? क्योंकि प्रत्येक राजनीतिक घटना के अनेक जटिल कारण हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, भारतीय स्वतंत्रता के पीछे किसी अकेले कारण को बताना सही नहीं होगा अथवा किसी देश में होने वाली क्रान्ति के पीछे किसी अकेले कारण को उत्तरदायी नहीं माना जा सकता है। अतः राजनीतिविज्ञान में कार्य का कारण उतना निश्चित और स्पष्ट नहीं होता है जितना कि प्राकृतिक विज्ञानों में होता है।

6. निश्चित अध्ययन पद्धति का अभाव- भौतिक विज्ञानों की अध्ययन पद्धति निश्चित होती है, इस कारण इनका अध्ययन निष्कर्ष सही निकालता है। राजनीति विज्ञान की अनेक अध्ययन पद्धति हैं जिससे इसके परिणाम अनिश्चित होते हैं। इसकी कार्यविधि, प्रक्रिया, आदर्श और निष्कर्ष एक समान नहीं हो पाते हैं। चार्ल्स ए० बीयर्ड के शब्दों में, “राजनीति और इतिहास के प्रत्येक वर्णन में अस्पष्टता रहती है और रहनी भी चाहिए क्योंकि इनके विद्यार्थी मानव कार्यों का अध्ययन करते समय उस मानसिक दशा में नहीं रहते जिस प्रकार कि भौतिकी की समस्याओं का अध्ययन करते समय मग्न रहते हैं।”

7. अध्ययन विषय आत्मपरक है, वस्तुपरक नहीं- प्राकृतिक विज्ञान वस्तुपरक होता है। इसकी अध्ययन वस्तु निर्जीव होने के कारण अनुसंधानकर्ता मानवीय भावनाओं से परे रहते हुए तटस्थता के साथ अध्ययनरत बना रहता है, लेकिन राजनीति विज्ञान का अध्ययन विषय मानव है, अतः यह आत्मपरक होता है। इसलिए अध्ययनकर्ता का तटस्थ रहना बहुत कठिन होता है।

उपर्युक्त तथ्यों के कारण हम राजनीति विज्ञान को अन्य प्राकृतिक तथा भौतिक विज्ञानों की भाँति विशुद्ध विज्ञान नहीं मान सकते हैं। इसी आधार पर विलोबी का कथन है कि, “राजनीति का विज्ञान बनना न तो सम्भव है और न ही वांछनीय।” इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि राजनीति विज्ञान में वैज्ञानिकता का सर्वथा अभाव है।

राजनीति विज्ञान, 'विज्ञान' है

राजनीति विज्ञान को विज्ञान न मानने के समर्थन में जो तर्क दिए गए हैं उनमें सत्यांश अवश्य हैं, लेकिन वे पूर्णतया सत्य सत्य नहीं हैं। वर्तमान समय के शोधों से राजनीतिक विज्ञान का जिस तीव्र गति से विकास हुआ है तथा इसके अध्ययन के लिए जो वैज्ञानिक अध्ययन पद्धतियाँ प्रयोग की गई हैं, उनसे राजनीतिविज्ञान, विज्ञान सिद्ध होता है। विज्ञान के तत्वों की विवेचना और सूक्ष्म अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि विज्ञान की बहुत-सी मान्यताएँ और तत्व राजनीति विज्ञान पर भी लागू किए जा सकते हैं। राजनीतिविज्ञान के विज्ञान होने के पक्ष में कुछ तथ्य निम्न प्रकार हैं-

1. सुस्पष्ट, सुनिश्चित एवं क्रमबद्ध अध्ययन विज्ञान का महत्वपूर्ण लक्षण है कि वह क्रमबद्ध ज्ञान होता है। यह लक्षण राजनीतिविज्ञान में भी पूर्ण रूप से पाया जाता है। राजनीतिविज्ञान में राज्य का उद्भव, विकास के चरण, सरकार के प्रकार, अन्य राजनीतिक संस्थाओं, विचारधाराओं का क्रमबद्ध ज्ञान उपलब्ध है। राजनीतिविज्ञान का आज जो भी अध्ययन किया जाता है उसका आधार भूतकालीन ज्ञान ही है। विषय के अधिकांश नियम स्थापित हो गए हैं। इसकी सभी बातों का एक क्रमबद्ध ज्ञान के रूप में अध्ययन किया जा सकता है।
2. पर्यवेक्षण तथा प्रयोग सम्भव विज्ञान की भाँति राजनीति विज्ञान में भी बहुत कुछ पर्यवेक्षण एवं प्रयोग - सम्भव हैं। राजनीति विज्ञान अपने आप में एक अनूठी तथा विशाल प्रयोगशाला है जहाँ विभिन्न सिद्धान्तों तथा शासन पद्धतियों का सफल परीक्षण एवं प्रयोग किया जा सकता है। राजनीति विज्ञान में तो पर्यवेक्षक एवं प्रयोगों की व्यवस्था रहती है। जैसे लोकतंत्रात्मक तथा अन्य शासन पद्धतियों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि लोकतंत्रात्मक शासन पद्धति अन्य पद्धतियों की अपेक्षा कहीं अधिक लोकप्रिय एवं लोकहित के प्रति सजग रहती है। संघवाद, बहुलवाद, समाजवाद, साम्यवाद, लोकप्रिय सम्प्रभुता तथा लोक कल्याणकारी राज्य की धारणा आदि का राजनीति में समावेश एक प्रयोग के तौर पर ही हुआ है तथा उन्हें अत्यधिक सफलता भी प्राप्त हुई है।
3. यद्यपि इसमें पदार्थ विज्ञानों की भाँति प्रयोगशालाओं में बैठकर पूर्ण निश्चितता एवं सरलता से प्रयोग तो नहीं किये जा सकते, फिर भी राजनीति विज्ञान में प्रयोग होते रहे हैं और होते जा रहे हैं। गार्नर के शब्दों में, "प्रत्येक नवीन कानून का बनना, प्रत्येक नई संस्था का गठन तथा प्रत्येक नई बात का प्रारम्भ एक प्रयोग ही होता है।" भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्तर्गत अपनाया गया अहिंसात्मकसत्याग्रह, भारतीय शासन तथा राजनीति में पंचायती राज, सामुदायिक विकास योजना तथा प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण की योजना आदि इसी प्रकार के राजनीतिक प्रयोगों के ही उदाहरण हैं।
4. सर्वमान्य नियमों तथा सिद्धान्तों की क्षमताराजनीति विज्ञान में भी प्राकृतिक तथा भौतिक विज्ञानों की - भाँति कुछ सामान्य नियम एवं शाश्वत सिद्धान्त हैं। राज्य, विधि, न्याय, शिक्षा तथा क्रान्तियों आदि के सम्बन्ध में कुछ ऐसे सार्वजनिक एवं शाश्वत नियम एवं निश्चित सिद्धान्त हैं जो प्रत्येक परिस्थिति तथा देश में लागू होते हैं। इनके आधार पर कुछ सामान्य निष्कर्ष भी निकाले जा सकते हैं। प्लेटो का न्याय एवं शिक्षा सिद्धान्त, अरस्तू का राज्य वर्गीकरण तथा क्रान्ति का सिद्धान्त, रोमनविधि सिद्धान्त, बोदों का

सम्प्रभुता सिद्धान्त, रूसो तथा लॉक की स्वतंत्रता सम्बन्धी धारणा तथा गाँधी जी के सत्याग्रह सम्बन्धी विचार प्रायः सर्वमान्य तथा शाश्वत सिद्धान्तों के रूप में हैं।

5. कार्य-पदार्थ विज्ञानों की भाँति राजनीति विज्ञान में भी कार्य-करण सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है-करण सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते हैं। अनुभव यह दर्शाता है कि जब भी कोई शासक अत्याचारी, अनुत्तरदायी एवं क्रूर होता है एवं शासन व्यवस्था जनहितकारी नहीं होती तो वहाँ फ्रांस, रूस, भारत तथा अन्य एशियाई तथा अफ्रीकी देशों की भाँति क्रान्तियाँ तथा विद्रोह अवश्य होते हैं। बंगलादेश तथा अफगानिस्तान की क्रान्तियाँ इसका एक प्रमुख तथा ताजा उदाहरण हैं। क्रान्ति के सम्बन्ध में कार्यकारण-का सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। इस तरह इसमें यद्यपि पदार्थ विज्ञानों की भाँति प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता, फिर भी विशेष घटनाओं के अध्ययन से कुछ सामान्य परिणाम एवं निष्कर्ष तो निकाले ही जा सकते हैं। ब्राइस द्वारा इस तथ्य को स्वीकार किया गया है।
6. भविष्यवाणी की क्षमताजहाँ त-क भविष्यवाणियों का सम्बन्ध है, इसमें प्राकृतिक विज्ञानों की भाँति तो भविष्यवाणी नहीं की जा सकती किन्तु इसमें भी भविष्यवाणियाँ हो सकती हैं और बहुधा सत्य भी सिद्ध होती हैं। उदाहरणार्थ, वर्तमान में देश में होने वाले चुनावों के सम्बन्ध में विभिन्न सर्वेक्षणों द्वारा भविष्यवाणियों की जाती रही हैं और बहुतसी भविष्यवाणियाँ सत्यता की कसौटी पर खरी भी उतरी हैं। - डॉ० फाइनर के मतानुसार, “इसमें हम निश्चिततापूर्वक भविष्यवाणियाँ नहीं कर सकते किन्तु सम्भावनाएँ तो व्यक्त कर ही सकते हैं। लार्ड ब्राइस के शब्दों में, “भौतिक विज्ञान में भविष्यवाणी निश्चित होती है, राजनीति में सम्भावना से अधिक नहीं।” परन्तु इससे इस विषय के विज्ञान होने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि मौसम विज्ञान की भविष्यवाणियाँ पूर्ण सत्य नहीं होती हैं, लेकिन फिर भी उसे सापेक्ष सत्य के आधार पर ही विज्ञान माना जाता है, यही स्थिति राजनीति विज्ञान की है। लॉर्ड ब्राइस के अनुसार, “राजनीति विज्ञान की तुलना ऋतु विज्ञान जैसे अपूर्ण विज्ञान से की जा सकती है।”

मतैक्यता का अभाव एवं परिभाषिक शब्दावली का अभाव होना भी कुछ अधिक सही नहीं माना जा सकता है। वस्तुतः राजनीति विज्ञान की वैज्ञानिकता के सम्बन्ध में प्रथम पक्ष द्वारा उठायी गयी आपत्तियाँ तथा शंकाएँ बहुत कुछ निराधार एवं बेबुनियाद प्रतीत होती हैं। भौतिक तथा प्राकृतिक विज्ञानों से भिन्न होने के बाद भी राजनीति विज्ञान एक विज्ञान है। अधिकांश राजनीतिक विचारक इसे विज्ञान मानने के पक्ष में हैं।

निष्कर्ष के रूप में हम यही कह सकते हैं कि विज्ञान के दो रूप हैं-संकीर्ण और वृहद्। संकीर्ण विज्ञान प्राकृतिक विज्ञान ही होता है क्योंकि विज्ञान की सत्यता, निश्चितता, क्रमबद्धता एवं प्रयोग की सुविधा प्राकृतिक विज्ञानों में ही मिल सकती है। दूसरी तरफ वृहद् विज्ञान से अभिप्राय है- ज्ञान की वह शाखा जो क्रमबद्ध ज्ञान प्रस्तुत करती है; जैसे- अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र, राजनीतिविज्ञान, समाजशास्त्र, भाषा विज्ञान आदि। राजनीति विज्ञान में प्राकृतिक विज्ञान की निश्चितता, शुद्धता, क्रमबद्धता तथा प्रयोग की सुविधा न होते हुए भी इसमें वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग, सामान्य सिद्धान्तों का पाया जाना, भविष्यवाणी की सम्भावना पाई जाती है। इसलिए यह विषय वृहद् अर्थ में विज्ञान है, लेकिन प्राकृतिक विज्ञान की तरह शुद्ध विज्ञान नहीं है। इसे एक सामाजिक विज्ञान कहा जा सकता है, क्योंकि-

1. राजनीति विज्ञान का सम्बन्ध सामाजिक और राजनीतिक जीवन की जटिल समस्याओं से होता है।

2. मनुष्य का स्वभाव परिवर्तनशील एवं जटिल होता है, इसलिए सिद्धान्त के आधार पर इसका अध्ययन नहीं किया जा सकता।
3. राजनीतिविज्ञान पर अचेतन रूप में व्यक्ति के व्यक्तिगत विचारों एवं द्वेषों का प्रभाव होता है।
4. राजनीति विज्ञानी को अपने विषय के मौलिक पहलू को भी ध्यान में रखना होता है।

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राजनीतिविज्ञान, प्राकृतिक विज्ञान की श्रेणी में न आते हुए भी सामाजिक विज्ञान है। गिलक्राइस्ट के शब्दों में, “यद्यपि सामाजिक विज्ञानों में प्राकृतिक विज्ञानों जैसी यथार्थता प्राप्त करना कठिन है तथापि सामाजिक समस्याओं पर उसी वैज्ञानिक ढंग से विचार किया जा सकता है जैसा कि रसायनशास्त्र या भौतिकशास्त्र में।” लार्ड ब्राइस ने इसे ऋतु विज्ञान की भाँति अपूर्ण और अविकसित विज्ञान कहा है। सर फ्रेडरिक पोलक के अनुसार, “जिस प्रकार नैतिकता का विज्ञान है, उसी भाव में और उसी तरह अथवा लगभग उसी सीमा तक राजनीति भी विज्ञान है।”

राजनीति विज्ञान एक कला है

चूँकि राजनीति विज्ञान को कुछ कारणों से एक पूर्ण तथा विशुद्ध विज्ञान मानना तर्कसंगत एवं उचित प्रतीत नहीं होता। अतः अनेक विद्वानों द्वारा इसे कला के अन्तर्गत रखा गया है। ब्लंटश्ली के शब्दों में, “राजनीति से विज्ञान की अपेक्षा कला का ही कहीं अधिक बोध होता है तथा उसका सम्बन्ध राज्य के व्यावहारिक कार्यों एवं राज्य के संचालन से है।” गैटिल ने भी इसे कला ही माना है किन्तु बकल जैसे विद्वान भी हैं जो इसे कलाओं में भी सबसे पिछड़ी हुई कला मानते हैं।

कला का अर्थ एवं उद्देश्य

कला का आशय एवं उद्देश्य जीवन की सुन्दरतम अनुभूति से है। वह मानव की श्रेष्ठ कल्पनाओं की सुन्दर अभिव्यक्ति है। कला का उद्देश्य जीवन को मधुर एवं समुन्नत बनाना है। कला का उद्देश्य ठोस तथ्यों का प्रतिपादन करना है। निम्न आधारों पर हम इसकी विवेचना कर सकते हैं-

1. एक कलाकार की भाँति राजनीति विज्ञानी भी अपने विचारों की अभिव्यक्ति बहुत अच्छे ढंग से करने का प्रयास करते हैं। वे विचारों तथा तथ्यों का आकर्षक रंगों के माध्यम से उसे लोकप्रिय, भव्य तथा लोकोपयोगी बनाने का भी प्रयत्न करते हैं। संगीत एवं कला की भाँति ही राजनीति विज्ञान का उद्देश्य भी राज्य एवं नागरिकों के लिए आदर्श सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर मानव जीव को समुन्नत, सुखी, आदर्श एवं मधुर बनाना होता है।
2. राज्य अपने उद्देश्यों की पूर्ति एवं कार्य संचालन के लिए जिस प्रकार के नियम, साधन या उपाय अपनाता है, वह कला के अन्तर्गत ही आते हैं। व्यावहारिक राजनीति का सम्बन्ध कला से ही है।
3. स्वयं शासन करना भी एक श्रेष्ठ कला ही है। इसीलिए प्लेटो शासन का उत्तरदायित्व योग्य तथा प्रशिक्षित दार्शनिकों को ही सौंपने के पक्ष में था। प्रायः प्रत्येक शासन में एक अच्छे तथा आदर्श शासक की आवश्यकता एवं महत्व पर बल दिया जाता है। शासक के पास सूझबूझ एवं चतुराई होनी चाहिए-, ताकि उसे अपने उद्देश्यों में सफलता प्राप्त हो सके।

इस प्रकार शासन करना स्वयं अपने आप में एक श्रेष्ठ कला है। अतः बकल का यह कथन निराधार प्रतीत होता है कि, “राजनीति कलाओं में भी सबसे पिछड़ी हुई कला है।” वस्तुतः राजनीति एक श्रेष्ठ कला है।

2.5 राजनीति विज्ञान के अध्ययन की उपयोगिता

अरस्तू मानव जीवन को नैतिक और सभ्य बनाने के लिए राजनीति विज्ञान के अध्ययन को आवश्यक समझता था। मनुष्य के जीवन में राजनीति विज्ञान के अध्ययन के महत्व को नकारा नहीं जा सकता है। संक्षेप में, राजनीति विज्ञान के अध्ययन की उपयोगिता निम्नवत् है-

1. मानव अधिकारों एवं कर्तव्यों का ज्ञान राजनीति विज्ञान अध्ययन से व्यक्ति मानवीय अधिकारों का ज्ञान प्राप्त कर अपने व्यक्तित्व का सर्वोच्च विकास कर सकते हैं तथा कर्तव्यों का ज्ञान प्राप्त कर समाज एवं राज्य की उन्नति में योगदान दे सकते हैं। राजनीति विज्ञान मानव को उसके अधिकार और कर्तव्यों का ज्ञान कराता है जिससे मनुष्य समाज की श्रेष्ठतम इकाई के रूप में जीवन व्यतीत कर सके। इसके साथ ही राजनीति विज्ञान व्यक्तियों में परस्पर उचित सम्बन्ध स्थापित करके संघर्ष के स्थान पर सहयोग के सिद्धान्तों को प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार राजनीति विज्ञान का अध्ययन व्यक्ति और समाज दोनों के लिए ही उपयोगी है।
2. राष्ट्रीय और संवैधानिक इतिहास का ज्ञान राजनीति विज्ञान के अध्ययन के आधार पर अपने देश की - प्राचीन गौरव और प्राचीन असफलताओं का ज्ञान होता है। भारतीय राजनीति का विद्यार्थी अपने देश के राष्ट्रीय इतिहास का अध्ययन करने के उपरान्त यह निश्चित कर सकता है कि हमारी आजादी कितने बलिदानों के परिणाम स्वरूप मिली है, इसलिए इसकी हमें सदैव रक्षा करनी चाहिए। इस प्रकार विभिन्न देशों के राजनीति विज्ञान के विद्यार्थी अपने अपने देश की प्राचीन परम्पराओं-, इतिहास और संस्कृति का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।
3. राज्य एवं सरकार का ज्ञान राजनीति विज्ञान में राज्य और सरकारों के संगठन -, गुणदोषों का अध्ययन - सा रूप सर्वोत्तम होगा-किया जाता है। सरकार के विभिन्न रूपों में हमारे देश के लिए कौन, सरकार के कार्यों का मूल्यांकन किस आधार पर किया जाए, सरकार की कमियों को दूर करने के उपाय आदि की जानकारी राजनीति विज्ञान से मिलती है। शासन व्यवस्था और सरकार के अधिकार और कर्तव्यों का विश्लेषण भी इसमें किया जाता है।
4. उत्तम प्रशासन कला का ज्ञान राजनीति विज्ञान के अन्तर्गत प्रशासन को कुशल और जनहितकारी बनाने - के लिए सरकारी कर्मचारियों के चयन और प्रशिक्षण आदि विषयों का अध्ययन किया जाता है। वर्तमान में राजनीति विज्ञान के अन्तर्गत उत्तम प्रशासन तथा प्रशासन को जनता के प्रति अधिक से अधिक उत्तरदायी बनाने के उपायों पर विचार किया जा रहा है।
5. उदार मानवीय दृष्टिकोण का निर्माता -आधुनिक युग में वैज्ञानिक प्रगति के कारण सम्पूर्ण विश्व ने एक इकाई का रूप धारण कर लिया है और समस्त विश्व के मनुष्य एकदूसरे के बहुत निकट आ गये हैं। - राजनीति विज्ञान हमें अपने और विश्व के दूसरे देशों का ज्ञान प्रदान कर हमारे दृष्टिकोण को व्यापक और उदार बनाता है। राजनीति विज्ञान हमें परिवार, जाति, गाँव और नगर के अतिरिक्त राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर विचार करने की क्षमता प्रदान करता है। यह शिक्षा देता है कि व्यक्ति से परिवार बड़ा है,

परिवार से गाँव, गाँव से जिला, जिला से प्रान्त और प्रान्त से देश और देश से बड़ा विश्व है। व्यक्ति को परिवार के हित में, परिवार को गाँव के हित में, गाँव को जिला के हित में, जिला को प्रान्त के हित में, प्रान्त को राष्ट्र के हित में अपने स्वार्थ त्यागने चाहिए। क्षेत्रीय संकीर्णता, भाषावाद, जातिवाद, रंगभेद, लिंगभेद, धर्मभेद सबसे ऊपर उठकर मानव मात्र की समानता को एक मात्र आधार मानें और विश्व कल्याण की भावना से कार्य करें। आज राजनीति विज्ञान मानव को विश्व राज्य निर्माण करने की ओर प्रेरणा दे रहा है। यदि ऐसा हो सका तो समस्त मानवमानव के भेद सदैव के लिए समाप्त हो जाएँगे।-

6. राजनीतिक चेतना का विकास राजनीति विज्ञान नागरिकों में राजनीतिक चेतना जाग्रत करता है। - राजनीतिक चेतना के अभाव में नागरिक अपने कर्तव्यों का पालन उचित रूप में नहीं कर पाते हैं और भ्रष्ट हो सकते हैं। राजनीति विज्ञान के ज्ञान से सम्पन्न राजनीतिक चेतना युक्त-नेता तथा प्रशासक पथ जनता शासकों को भ्रष्ट होने से रोकती है तथा सरकार की गलत नीतियों की आलोचना कर शासन को जनहितकारी बनाने का यथासम्भव प्रयास करती है। राजनीतिक दृष्टि से जागरूक जनता ही बाह्य आक्रमण तथा आन्तरिक संकटों का सामना कर सकती है।
7. अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का ज्ञानसंचा -र के द्रुतगति के साधनों ने सारे विश्व को समेट कर आज बहुत छोटा कर दिया है। आज विश्व के किसी भी कोने में कोई घटना घटती है, उसकी तुरन्त सूचना दुनियाभर को हो जाती है और उसका प्रभाव भी किसी न किसी रूप में दूसरों पर पड़ता ही है। आज कोई भी घटना स्थानीय या राष्ट्रीय नहीं रह पाती है। ऐसी स्थिति में राज्यों के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन आवश्यक भी हो जाता है और महत्वपूर्ण भी। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध तथा अन्तर्राष्ट्रीय विधि राजनीति विज्ञान के भाग ही हैं। इसके माध्यम से ही निःशस्त्रीकरण, अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं, अन्तर्राष्ट्रीय विचारधाराओं आदि का अध्ययन किया जाता है, जो प्रत्येक देश के लिए अनिवार्य है। विदेश सम्बन्ध और राष्ट्रीय राजनीति पर अन्तर्राष्ट्रीय दबाव, शीतयुद्ध, आर्थिक साम्राज्यवाद जैसे महत्वपूर्ण प्रश्नों की जानकारी इस विषय से मिलती है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि राजनीति विज्ञान का अध्ययन हमारे लिए महत्वपूर्ण है। आज यह सम्भव नहीं है कि व्यक्ति राजनीति विज्ञान के प्रति उपेक्षा बरतें। व्यक्ति भले ही राजनीति में रूचि न रखे या राजनीति से दूर रहना चाहे परन्तु राजनीति उससे दूर नहीं रह पाती है, उन तक पहुँच ही जाती है। रॉबर्ट ए0 डहल के अनुसार, “राजनीति आज मानवीय अस्तित्व का अपरिहार्य तत्व बन गई है। प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी रूप में, किसी न किसी समय, किसी न किसी प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था से सम्बद्ध है।” आज राजनीति विज्ञान का अध्ययन द्रुतगति से अधिकाधिक उपयोगी होता जा रहा है। आइवर ब्राउन के अनुसार, “सामाजिक जीवन के वास्तविक मूल्य के प्रति यदि सहज बुद्धि से देखा जाय तो राजनीति विज्ञान का अध्ययन उपयोगी और सार्थक सिद्ध होगा।”

2.6 परम्परावादी राजनीति विज्ञान की विशेषताएँ

परम्परागत राजनीति विज्ञान कल्पना और दर्शन पर आधारित है। यह अपने प्रतिपादक राजनीतिक दार्शनिक एवं चिन्तकों के व्यक्तित्व एवं दृष्टिकोण से प्रभावित रहा है। अधिकांश दार्शनिक विचारक आचारशास्त्र या दर्शनशास्त्र से प्रभावित रहे हैं। उन्होंने मानवीय चिन्तन में सामाजिक लक्ष्यों तथा मूल्यों की ओर ध्यान दिया है। उदाहरणार्थ- हम यूनानी विचारकों द्वारा प्रतिपादित नैतिक जीवन की उपलब्धि का विचार, मध्ययुग के ईसाई सन्त दार्शनिकों

का ईश्वरीय राज्य स्थापित करने का विचार तथा आदर्शवादियों के विवेक से साक्षात्कार ले सकते हैं। इन विद्वानों के विचारों को परानुभववादी कहा गया है। उनके व्यक्तिपरक विचार और उनकी चिन्तन प्रणाली निगमनात्मक है। आधुनिक युग में परम्परागत राजनीति विज्ञान के प्रबल समर्थकों की काफी संख्या है। यहाँ हम रूसो, काण्ट, हीगल, टी०एच० ग्रीन, बोसांके, लास्की, ओकशॉट, लियो स्ट्रॉस इत्यादि की रचनाओं में प्लेटो के विचारों की झलक देख सकते हैं।

परम्परागत राजनीति विज्ञान की प्रमुख विशेषतायें निम्नवत् स्पष्ट की जा सकती हैं-

1. 'राज्य' की प्रधानता एवं राज्य को एक नैतिक सामाजिक अनिवार्य संस्था माना है। फलतः उद्देश्य आदर्श राज्य की खोज ही नहीं रहा, अपितु इसके लिए अत्यधिक हठधर्मिता रही।
2. कल्पनात्मक, आदर्शों का अध्ययन एवं दर्शनशास्त्र से घनिष्ठता।
3. अध्ययन प्रतिपादक राजनीतिक दार्शनिकों एवं चिन्तकों के व्यक्तित्व से प्रभावित, फलतः व्यक्तिनिष्ठ अध्ययन।
4. अपरिष्कृत परम्परागत अध्ययन पद्धतियों दार्शनिक का प (ऐतिहासिक) प्रयोग, फलतः वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग नहीं किया गया।
5. अध्ययन में नैतिकता और राजनीतिक मूल्यों पर विशेष बल दिया गया है।
6. यह प्रधानतः संकुचित अध्ययन है क्योंकि इसमें सिर्फ पाश्चात्य राज्यों की शासन व्यवस्था पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। एशिया, अफ्रीका एवं लैटिन अमेरिका आदि की राजनीतिक व्यवस्थाओं के अध्ययन को महत्व नहीं दिया गया है।

2.7 आधुनिक राजनीति विज्ञान की विशेषताएँ

आधुनिक राजनीति विज्ञान अभी विकासशील अवस्था में है। आधुनिक राजनीति विज्ञान की मुख्य विशेषताएँ निम्नांकित हैं-

1. आधुनिक राजनीति विज्ञान के क्षेत्र में अध्ययन मुक्तता की प्रवृत्ति पायी जाती है। यह परम्परागत राजनीति विज्ञान की सीमाओं को तोड़कर अध्ययन करते हैं। राजनीतिक घटनाएँ तथा तथ्य जहाँ भी उपलब्ध हों, चाहे वे समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र या धर्मशास्त्र के विषय हों, अब राजनीति विज्ञान के विषय बन गये हैं। उनका मानना है कि राजनीतिक व्यवहार को प्रभावित करने वाली वास्तविक परिस्थितियों का अध्ययन किया जाये तथा उन्हीं के आधार पर राजनीतिक घटनाक्रम की व्याख्या व विश्लेषण किया जाये।
2. आधुनिक राजनीति विज्ञान व्यवहारिकतावादी अनुभावनात्मक व यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाने पर जोर देता है। अधिकांश अध्ययनग्रंथ विश्लेषणात्मक व अनुभवात्मक हैं, जो पर्यवेक्षण माप, तार्किकता, युक्तियुक्तता आदि तकनीकों पर आधारित हैं।
3. आधुनिक राजनीति विज्ञान विभिन्न सामाजिक विज्ञानों तथा प्राकृतिक विज्ञानों से काफी प्रभावित रहा है। अतः नवीन पद्धतियों में वैज्ञानिक पद्धति को प्रमुख स्थान दिया गया है। इसी के साथ वैज्ञानिक मूल्य-सापेक्षतावाद को भी प्रमुख स्थान प्रदान किया गया, जिसका तात्पर्य है कि एक शोधकर्ता शोध करते समय स्वयं के मूल्यों, धारणाओं, पूर्वाग्रहों को शोध से पृथक रखता है। उसके आचरण में बौद्धिक निष्पक्षता तथा सत्यनिष्ठा पायी जाती है। यह तात्त्विकता का विवेचन करता है तथा अतितथ्यवादिता से

बचता है। वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग द्वारा अब राजनीति वैज्ञानिक सामान्यीकरणों व्याख्याओं और सिद्धान्तनिर्माण कठोर श-निर्माण में लगे हैं। अब सिद्धान्त-ोध प्रक्रियाओं पर आधारित है। शोध व सिद्धान्त में निश्चित संबंध में पाये जाने लगे हैं। सिद्धान्त निर्माण की प्रक्रिया अब शोधउन्मुखी हो गयी है।-

4. आधुनिक राजनीति विज्ञान के विद्वान इस तथ्य से सुपरिचित हैं कि जिन संस्थाओं और विषयों का अध्ययन वे करते हैं, उनका अध्ययन अन्य अनुशासनों में भी किया जा रहा है। अतः राजनीति विज्ञान को पृथक अस्तित्व प्रदान किया जाना चाहिए। डेविड ईस्टन, रॉबर्ट डहल, आमण्ड, पॉवेल, कोलमैन, ल्यूसियन पाई, सिडनी वर्बा, कार्ल डायच, मैक्रीडीस आदि विद्वानों ने राजनीति विज्ञान को स्वतंत्र अनुशासन बनाये जाने के प्रयत्न किये। उदाहरणार्थ डेविड ईस्टन ने “राजनीति को मूल्यों का सम्पूर्ण समाज के लिए आधिकारिक वितरणसे पृथक व (व्यवस्थाओं) आंबटन बताकर इसे अन्य अनुशासनों/श्रेष्ठ घोषित किया।
5. आधुनिक राजनीति विज्ञान के विद्वान राजनीतिक तथ्यों और निष्कर्षों में एक सम्बद्धता एवं क्रमबद्धता लाना चाहते हैं। अपने क्षेत्र में विशिष्ट सुविज्ञता विकसित करना चाहते हैं ताकि वह स्वायत्ता प्राप्त कर सके। इसके लिए उन्होंने व्यवस्था सिद्धान्त या सामान्य व्यवस्था सिद्धान्त को राजनीतिक विज्ञान में ग्रहण किया। नियंत्रण और नियमन से संबंधित होने के कारण राजनीति विज्ञान की मौलिकता स्वतः प्रमाणित है।
6. आधुनिक राजनीति विज्ञान अध्ययन की इकाई के रूप में मानव व्यवहार को चुनता है। अतः उससे संबंधित सभी तत्वों व तथ्यों का विश्लेषण किया जाना आवश्यक हो जाता है। इस विषय की अन्तः अनुशासनात्मकता इसका प्रमुख आधार है। किसी भी राजनीतिक घटना का अध्ययन करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि उस घटना से संबंधित मनुष्य वास्तव में किनकिन तत्वों से प्रभावित है लेकिन - यह कार्य अत्यन्त जटिल होता है। अतः निष्कर्ष निकलता है कि जितने अनुशासन हैं उतनी ही दृष्टियाँ हैं। अतः यह कार्य सामान्य सिद्धान्त “एकीकरण” के माध्यम से किया जाता है। कुछ विद्वानों ने अन्तः अनुशासनीय दृष्टिकोण के स्थान पर ‘परिअनुशासनात्मक-’ (पैनया अधि अनुशासनीय (डिसिप्लिनरी-कहना अधिक पसंद किया है। (डिसिप्लिनरी-ट्रांस) दृष्टिकोण
7. आधुनिक राजनीति विज्ञान तात्कालीक समस्याओं का समाधान करने पर ध्यान देता है। व्यवहारिकतावादी क्रांति के माध्यम से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि राजनीति विज्ञान विशुद्ध विज्ञान बनकर मात्र प्रयोगशालाओं और पुस्तकालयों तक सीमित हो जायेगा, किन्तु उत्तरव्यवहारिकतावादी युग ने - अपने आपको मूल्यों, नीतियों ओर समस्याओं से सम्बद्ध रखा तथा अपने अध्ययन से नागरिकों शासन को नीतिनिर्माताओं व राजनीतिज्ञों को लाभान्वित करने का प्रयास किया है।-
8. आधुनिक राजनीति विज्ञान की अभी अपनी प्रारम्भिक अवस्था है। उसके पास अभी निश्चित सिद्धान्तों का अभाव है, किन्तु वह इस दिशा में प्रयत्नरत है। माइकेल हस इस ओर संकेत करते हुए तीन बिन्दुओं के आधार पर यह बताते हैं कि आधुनिक राजनीति विज्ञान में सिद्धान्त निर्माण की प्रवृत्ति दिखायी देती है। ये तीन बिन्दु हैं-निर्णयनिर्माण-, राजनीतिक विकास और द्वन्द तथा एकीकरण।

2.8 परम्परागत और आधुनिक राजनीति विज्ञान में अन्तर

राजनीति विज्ञान की परिभाषा और क्षेत्र के सम्बन्ध में परम्परागत दृष्टिकोण का प्रतिपादन ब्लंटश्री, गैरिस, सीले, गार्नर, लास्की आदि विद्वानों द्वारा किया गया है। आधुनिक दृष्टिकोण के प्रमुख प्रतिपादक हैं- डेविड, ईस्टन, रॉबर्ट डहल, जी०ई०जी० केटलिन, मैक्स वेबर और एच०डी० लासवेल आदि। राजनीति विज्ञान की परिभाषा, प्रकृति और क्षेत्र के सम्बन्ध में परम्परागत दृष्टिकोण व आधुनिक दृष्टिकोण की तुलना निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर की जा सकती है-

1. परम्परागत दृष्टिकोण राजनीतिक संस्थाओं- राज्य, सरकार आदि के अध्ययन पर विशेष बल देता है लेकिन आधुनिक दृष्टिकोण व्यक्तियों के व्यवहार के अध्ययन को सर्वाधिक प्रमुखता देता है। इस रूप में आधुनिक राजनीतिक अध्ययन में मानव के मनोवेगों, इच्छाओं, प्रेरणाओं और आकांक्षाओं का अध्ययन किया जाता है।
2. परम्परागत दृष्टिकोण ने स्वयं को केवल राजनीतिक क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं तक ही सीमित रखा है लेकिन आधुनिक दृष्टिकोण इस बात पर बल देता है कि व्यक्ति के राजनीतिक जीवन को सामाजिक जीवन के सन्दर्भ में ही उचित रूप से समझा जा सकता है। अतः राजनीतिक अध्ययन में अन्तर-अनुशासनात्मक दृष्टिकोण को अपनाया जाना चाहिए।
3. परम्परागत दृष्टिकोण मूल्यों से युक्त तथा मूल्यों पर आधारित है अतः उसमें व्यक्तिनिष्ठता का आ जाना स्वाभाविक है लेकिन आधुनिक दृष्टिकोण का उद्देश्य राजनीति विज्ञान में लगभग पदार्थ विज्ञानों की सीमा तक वस्तुनिष्ठता लाना है, अतः इसमें मूल्यमुक्त दृष्टिकोण अपनाने का प्रयास किया गया है। किन्तु इसके -रूचिकर परिणाम न निकलने के कारण आज यह विचार मान्य हो गया है कि राजनीतिक अध्ययन मूल्य सापेक्ष होना चाहिए लेकिन उसे वैज्ञानिकता प्रदान करने का प्रयास नहीं किया जाना चाहिए।
4. परम्परागत दृष्टिकोण में राजनीति विज्ञान के आदर्शात्मक पक्ष पर बल दिया गया है, जबकि आधुनिक दृष्टिकोण आदर्शवादी पक्ष के स्थान पर यथार्थवादी पक्ष पर अधिक बल देता है।
5. परम्परागत दृष्टिकोण राजनीतिक संस्थाओं के अध्ययन पर बल देता है जिससे यह औपचारिक अध्ययन बनकर रह गया है, जबकि आधुनिक दृष्टिकोण राजनीतिक संस्थाओं की अपेक्षा उन साधनों तथा प्रक्रियाओं को अधिक महत्व देता है जिनके आधार पर राजनीतिक संस्थाएँ कार्य करती हैं। इसी कारण आधुनिक राजनीतिक अध्ययनों में एक वास्तविकता आ गयी है।
6. परम्परागत दृष्टिकोण राजनीति विज्ञान के अध्ययन के लिए परम्परागत, ऐतिहासिक, तुलनात्मक और दार्शनिक पद्धतियों का प्रयोग करते हैं लेकिन आधुनिक दृष्टिकोण में मनोवैज्ञानिक प्रयोग एवं पर्यवेक्षक की पद्धतियों तथा सांख्यिकी और नमूना सर्वेक्षण आदि पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है।
7. परम्परागत दृष्टिकोण अनुमान, सम्भावनाओं और कल्पनाओं पर आधारित है जिससे उसके निष्कर्षों में प्रामाणिकता व निश्चयात्मकता का अभाव होता है लेकिन आधुनिक दृष्टिकोण ठोस तथ्यों पर आधारित होने के कारण निष्कर्षों की निश्चयात्मकता तथा प्रामाणिकता की खोज में है। यह सामान्यीकरणों को जन्म देने या सामान्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने के प्रयास में संलग्न है।

संक्षेप में, आधुनिक राजनीति विज्ञान और परम्परागत राजनीति विज्ञान में उपर्युक्त विभिन्नताओं के बाद भी ये दोनों एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं। आधुनिक राजनीति विज्ञान ने इसे विसतार प्रदान कर अधिक से अधिक वैज्ञानिक बनाने का प्रयत्न किया है।

2.9 राजनीतिक सिद्धान्त: अर्थ, परिभाषा (Political Theory: Meaning, Definitions)

राजनीतिक सिद्धान्त के अर्थ को समझने के लिए 'राजनीतिक' और 'सिद्धान्त' इस दोनों ही शब्दों को अलग अलग समझने की आवश्यकता है। पहले 'सिद्धान्त' शब्द को समझने का प्रयास करेंगे। सिद्धान्त को अंग्रेजी में (Theory) थ्योरी कहते हैं जो कि एक ग्रीक शब्द है जिसका संबंध अन्य दो शब्दों (i) थ्यूरिया (Theoria) (ii) थ्योरमा (Theorema) से है। (i) थ्यूरिया, का अर्थ है जो हमारे आस पास घटित हो रहा है उसे समझने की क्रिया अथवा प्रक्रिया; इसे 'सैद्धांतिकरण' (Theorizing) कहा जाता है तथा (ii) थ्योरमा, जिसका अर्थ है वह निष्कर्ष जो इस 'सैद्धांतिकरण' की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप निकलते हैं। इन दोनों शब्दों की विशिष्टता यह है कि ये सैद्धांतिकरण प्रक्रिया (Activity of Theorizing) तथा इस प्रक्रिया से निकलने वाले निष्कर्ष (Outcome of the activity) में अंतर करती है। शब्द सैद्धांतिकरण का संबंध किसी घटना को समझने का प्रयत्न है। इसका अभिप्राय किसी परिणाम अथवा निष्कर्ष को सिद्ध करना अथवा उसे वैध ठहराना नहीं है।

दूसरा शब्द 'राजनीतिक' भी ग्रीक भाषा से संबन्धित शब्द 'पोलिस' से निकला है जिसका अर्थ है नगर-राज्य अर्थात् किसी भी समुदाय के अच्छे जीवन से संबन्धित सभी पक्षों के लिए निर्णय लेने की सामूहिक शक्ति। अपने आधुनिक रूप में 'राजनीतिक' शब्द राज्य तथा इससे संबन्धित संस्थाओं जैसे सरकार, विधानमंडल अथवा सार्वजनिक नीति का प्रतिनिधित्व करता है।

राजनीतिक सिद्धान्त उन मौलिक विचारों, अवधारणाओं और सिद्धांतों का बौद्धिक अन्वेषण है जो समाज के संगठन, कामकाज और शासन को आकार देते हैं। यह एक अकादमिक अनुशासन है जो राजनीति, सत्ता और अधिकार की जटिल गतिशीलता को समझने और उसका विश्लेषण करने का प्रयास करता है, जिसका उद्देश्य सरकार की प्रकृति, नागरिकों के अधिकारों, जिम्मेदारियों, संसाधनों और अवसरों के उचित और न्यायसंगत वितरण में अंतर्दृष्टि प्रदान करना है।

अपने मूल में, राजनीतिक सिद्धान्त गहन महत्व के प्रश्नों पर प्रकाश डालता है, जैसे कि राजनीतिक प्राधिकरण की उत्पत्ति, व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा में राज्य की भूमिका, और एक समुदाय के भीतर न्याय और समानता की खोज। आलोचनात्मक अध्ययन के माध्यम से, राजनीतिक सिद्धान्तकार उन अंतर्निहित दार्शनिक नींव को उजागर करने का प्रयास करते हैं जो राजनीतिक प्रणालियों और संस्थानों को रेखांकित करते हैं, जो मानवीय मामलों के पाठ्यक्रम को प्रभावित करते हैं।

राजनीतिक सिद्धान्त की उत्पत्ति प्राचीन सभ्यताओं में देखी जा सकती है, जहां प्लेटो, अरस्तू और कन्फ्यूशियस जैसे विचारकों ने शासन, नैतिकता और आदर्श राज्य की प्रकृति पर विचार किया था। पूरे इतिहास में, मैकियावेली के "द प्रिंस", थॉमस हॉब्स के "लेविथान" और जॉन लॉक के "टू ट्रीटीज ऑफ़ गवर्नमेंट" जैसे मौलिक कार्यों ने सामाजिक अनुबंध, मानव स्वभाव और शासकों और शासितों के बीच संबंधों के बारे में हमारी समझ को आकार दिया है।

समकालीन समय में, वैश्वीकरण, तकनीकी प्रगति और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के लगातार बदलते परिदृश्य के कारण आने वाली नई चुनौतियों को अपनाते हुए, राजनीतिक सिद्धान्त विकसित हो रहा है। राजनीतिक सिद्धान्तकार

मानवाधिकार और सामाजिक न्याय से लेकर पर्यावरणीय नैतिकता और समाज पर राजनीतिक विचारधाराओं के प्रभाव तक के विषयों पर चर्चा करते हैं।

विभिन्न विद्वानों ने राजनीतिक सिद्धान्त की विभिन्न परिभाषाएँ दी। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं:

एंड्रयू हेकर (Andrew Hacker) के अनुसार, “ राजनीतिक सिद्धान्त में ‘तथ्य’ (Fact) और मूल्य (Values) दोनों समाहित हैं। वे एक दूसरे के पूरक हैं। दूसरे शब्द में हर सिद्धान्त शास्त्री एक वैज्ञानिक और ‘दार्शनिक’ है, दोनों की भूमिका निभाता है। (Every political theorist worthy of the name plays double role.. He is part scientist and part philosopher and he will divide his time between the two pursuits according to his own temperament and interests.)

जेर्मिनो (Germino) के अनुसार, “ राजनीतिक सिद्धान्त मानवीय सामाजिक अस्तित्व की उचित व्यवस्था के सिद्धांतों का आलोचनात्मक अध्ययन है”। (Political Theory is the critical study of the principles of right order in human social existence.)

जॉर्ज सेबाइन (George Sabine) के अनुसार “व्यापक तौर पर राजनीतिक सिद्धान्त से अभिप्राय उन सभी बातों से है जो कि राजनीति से संबन्धित या प्रासंगिक है और संकीर्ण दृष्टि में इसका अर्थ राजनीतिक समस्याओं की विधिवत छानबीन से है। (Broadly political theory means ‘as anything about politics or relevant to politics’ and narrowly as the disciplined investigation of political problems.)

2.10 राजनीतिक सिद्धांतों की विशेषताएँ /Characteristics of Political Theory

राजनीतिक सिद्धान्त राजनीति विज्ञान के भीतर एक अनुशासन है जो राजनीतिक प्रणालियों और व्यवहार को रेखांकित करने वाले सिद्धांतों, अवधारणाओं और विचारों को समझने और उनका विश्लेषण करने का प्रयास करता है। इसमें विभिन्न राजनीतिक विचारों, विचारधाराओं और दर्शन का व्यवस्थित अध्ययन और परीक्षण शामिल है। यहाँ राजनीतिक सिद्धान्त की कुछ प्रमुख विशेषताएँ दी गई हैं-

1. **मानक प्रकृति (Normative Nature)** -राजनीतिक सिद्धान्त अपने दृष्टिकोण में मानक है, जिसका अर्थ है कि यह मूल्य, नैतिकता और राजनीतिक प्रणालियों को आदर्श रूप से कैसे कार्य करना चाहिए, के प्रश्नों से संबंधित है। इसका उद्देश्य न्याय, समानता, स्वतंत्रता और अन्य नैतिक सिद्धांतों को बढ़ावा देने वाली सरकार और नीतियों के सर्वोत्तम रूपों का मूल्यांकन और निर्धारण करना है।
2. **वैचारिक विश्लेषण(Conceptual Analysis)** -राजनीतिक सिद्धान्त में शक्ति, अधिकार, वैधता, न्याय, स्वतंत्रता, लोकतंत्र और अधिकारों जैसी मुख्य राजनीतिक अवधारणाओं का गहन अन्वेषण शामिल है। लक्ष्य राजनीतिक घटनाओं के बारे में हमारी समझ को बढ़ाने के लिए इन अवधारणाओं को स्पष्ट और परिष्कृत करना है।
3. **ऐतिहासिक और दार्शनिक जड़ें (Historical and Philosophical Roots)** -राजनीतिक सिद्धान्त अक्सर ऐतिहासिक और दार्शनिक स्रोतों पर आधारित होता है, जिसमें प्लेटो, अरस्तू, मैकियावेली, हॉब्स, लोके, रूसो और कई अन्य जैसे शास्त्रीय राजनीतिक दार्शनिकों के काम शामिल हैं। इसमें समकालीन राजनीतिक विचारक भी शामिल हैं।

4. **वैचारिक परीक्षण (Ideological Examination)** -राजनीतिक सिद्धांत विभिन्न विचारधाराओं की जांच करता है, जैसे उदारवाद, रूढ़िवाद, समाजवाद, नारीवाद और अन्य। यह उनकी उत्पत्ति, अंतर्निहित धारणाओं और राजनीतिक अभ्यास के लिए निहितार्थ का विश्लेषण करता है।
5. **आलोचनात्मक विश्लेषण (Critical Analysis)** -राजनीतिक सिद्धांतकार आलोचनात्मक सोच और विश्लेषण में संलग्न होते हैं, मौजूदा राजनीतिक संस्थानों, प्रथाओं और सामाजिक मानदंडों पर सवाल उठाते हैं। उनका उद्देश्य राजनीतिक प्रणालियों के भीतर संभावित पूर्वाग्रहों, विरोधाभासों और छिपी शक्ति संरचनाओं को उजागर करना है।
6. **सार और सैद्धांतिक** -राजनीतिक सिद्धांत अनुभवजन्य डेटा के बजाय अमूर्त और सैद्धांतिक विचारों से संबंधित है। यह राजनीतिक घटनाओं को समझने के लिए सामान्य सिद्धांत और रूपरेखा स्थापित करना चाहता है।
7. **अंतःविषय दृष्टिकोण** -राजनीतिक सिद्धांत अक्सर अपने विश्लेषण को समृद्ध करने के लिए दर्शन, इतिहास, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र और अन्य क्षेत्रों से अंतर्दृष्टि प्राप्त करते हुए एक अंतःविषय दृष्टिकोण अपनाता है।

2.11 राजनीतिक सिद्धान्त का कार्यक्षेत्र

राजनीति का क्षेत्र उतना ही व्यापक है जितनी की मनुष्य की गतिविधियां। जीवन का कोई भी क्षेत्र या पहलू ऐसा नहीं जो राजनीति से अछूता हो। उदारवादियों ने राजनीति का रिश्ता केवल सरकार और नागरिकों तक ही सीमित रखा जबकि मार्क्सवादियों ने उत्पादन के साधनों पर भी सरकार का ही स्वामित्व माना है। नारीवादी पारिवारिक और घरेलू मामलों में भी राजी के हस्तक्षेप की वकालत करते हैं। इस आधार पर देखा जा सकता है कि राजनीति विज्ञान का कार्यक्षेत्र काफी व्यापक है। निम्नलिखित विषयों को राजनीतिक सिद्धान्त के कार्यक्षेत्र में सम्मिलित किया जा सकता है-

1. **राज्य का अध्ययन-** प्राचीन कल से ही राज्य की उत्पत्ति, प्रकृति तथा कार्यक्षेत्र पर विचार होता रहा है। राज्य की उत्पत्ति कैसे हुई? उसका विकास कैसे हुआ? राज्य की नगरराज्य से लेकर वर्तमान की - राष्ट्रीय राज्य तक की विकास यात्रा किसप्रकार की? राज्य से संबंधित बुनियादी सवालों का इसके अंतर्गत अध्ययन किया जाता है। इससे संबंधित विद्वान राज्य की उत्पत्ति के विभिन्न सिद्धान्त जैसे कि देवीय उत्पत्ति के सिद्धान्त, सामाजिक समझौता सिद्धान्त, भौतिकवादी सिद्धान्त का विश्लेषण करते हैं।
2. **सरकार का अध्ययन-** राजनीतिक सिद्धांत राज्य के भीतर सरकारों के कामकाज और संरचना का अध्ययन करता है। इसमें शक्तियों के पृथक्करण, सरकार की विभिन्न शाखाओं (कार्यकारी), विधायी और न्यायपालिका की भूमिका और निर्णय लेने और नीति कार्यान्वयन के तंत्र की जांच करना (शामिल है) राजनीतिक सिद्धांतकार शासन की अवधारणा और शासकों और नागरिकों के बीच संबंधों का भी विश्लेषण करते हैं।
3. **शक्ति का अध्ययन-** वर्तमान में शक्ति की अवधारणा का अध्ययन राजनीतिक सिद्धान्तका महत्वपूर्ण विषय बन चुका है। यह विश्लेषण करता है कि राजनीतिक अभिनेताओं और संस्थानों द्वारा सत्ता कैसे अर्जित की जाती है? कैसे वैध बनाई जाती है? और उसका प्रयोग कैसे किया जाता है। सत्ता

और उसके स्रोतों की अवधारणा राजनीतिक सिद्धांत में एक केंद्रीय विषय है, क्योंकि यह निर्धारित करती है कि शासन करने और बाध्यकारी निर्णय लेने का अधिकार किसके पास है।

4. **मानवीय व्यवहार का अध्ययन-** राजनीतिक सिद्धांत मानता है कि राजनीति मूलतः मानवीय व्यवहार और अंतःक्रियाओं से संचालित होती है। इस प्रकार, यह पता लगाता है कि व्यक्ति और समूह राजनीतिक संदर्भों में कैसे व्यवहार करते हैं, वे कैसे राय बनाते हैं, निर्णय लेते हैं और राजनीतिक प्रक्रिया में भाग लेते हैं। मानव व्यवहार को समझने से राजनीतिक सिद्धांतकारों को मतदान पैटर्न, जनता की राय और राजनीतिक आंदोलनों और सामाजिक परिवर्तन की गतिशीलता का विश्लेषण करने में मदद मिलती है।
5. **नीति निर्माण प्रक्रिया का अध्ययन :** राजनीतिक सिद्धांत नीतिनिर्माण की प्रक्रिया की जांच करता है, जिसमें सरकारी नीतियों का निर्माण, कार्यान्वयन और मूल्यांकन शामिल है। यह समझने का प्रयास करता है कि नीतियां कैसे विकसित की जाती हैं, नीतिगत निर्णयों को प्रभावित करने वाले कारक और समाज पर नीतियों का प्रभाव क्या है। राजनीतिक सिद्धांतकार विभिन्न नीति दृष्टिकोणों की प्रभावशीलता का आकलन कर सकते हैं और सार्वजनिक नीतियों के मूल्यांकन और सुधार के लिए मानक ढांचे की पेशकश कर सकते हैं।
6. **अंतरराष्ट्रीय सम्बन्धों का अध्ययन :** राजनीतिक सिद्धांत अपना दायरा अंतरराष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन तक बढ़ाता है, जो राष्ट्रराज्यों, गैरराज्य अभिनेताओं और अंतरराष्ट्रीय संगठनों के बीच - बातचीत की जांच करता है। राजनीतिक सिद्धांतकार कूटनीति, युद्ध और शांति, वैश्विक शासन, अंतरराष्ट्रीय कानून और देशों के बीच शक्ति और प्रभाव की गतिशीलता जैसे विषयों का विश्लेषण करते हैं। वे अंतरराष्ट्रीय प्रणाली की प्रकृति और वैश्विक क्षेत्र में राज्यों की भूमिका पर विभिन्न सिद्धांतों और दृष्टिकोणों का पता लगाते हैं।
7. **क्षेत्रीय सहयोग संगठनों का अध्ययन :** राजनीतिक सिद्धांत में क्षेत्रीय सहयोग संगठनों का अध्ययन शामिल है, जो सहयोग को बढ़ावा देने और आम चुनौतियों का समाधान करने के लिए एक विशेष भौगोलिक क्षेत्र के देशों द्वारा गठित संस्थान हैं। इन संगठनों के राजनीतिक, आर्थिक, सुरक्षा या सामाजिक उद्देश्य हो सकते हैं। राजनीतिक सिद्धांतकार क्षेत्रीय और वैश्विक मामलों पर उनके गठन, कामकाज और प्रभाव के साथसाथ क्षेत्रीय गतिशीलता को आकार देने में उनकी भूमिका की - जांच करते हैं।
8. **नारीवाद का अध्ययन:** राजनीतिक सिद्धांत के दायरे में, नारीवाद अध्ययन का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। नारीवादी राजनीतिक सिद्धांत राजनीति और समाज में लिंग की भूमिका की आलोचनात्मक जांच करता है। यह विश्लेषण करता है कि लिंग कैसे सत्ता संरचनाओं, राजनीतिक भागीदारी और नीति परिणामों को आकार देता है। नारीवादी राजनीतिक सिद्धांतकार लैंगिक समानता और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के लक्ष्य के साथ लिंग आधारित असमानताओं, भेदभाव और पितृसत्ता को समझने और चुनौती देने का प्रयास करते हैं।

2.12 राजनीतिक सिद्धान्त के महत्व

1. **ज्ञान का सरलीकरण** -सिद्धान्त ज्ञान का सरलीकरण है। इससे किसी भी विषय को समझने में आसानी होती है। सिद्धान्त प्रतिमान स्थापित करके विभिन्न तथ्यों को प्रतीक में बादल देता है। विभिन्न तथ्यों और घटनाओं को प्रतीक बनाकर परिभाषित करना सिद्धान्त की महत्ता है।
2. **नए शोध उपकरण खोजना** -सिद्धान्त की सहायता से नए प्रयोग व आविष्कार के लिए नए शोध उपकरण खोजता है। वह सिद्धान्त उतना ही ज्यादा उपयोगी सिद्ध होगा जो नए सिद्धान्त खोजने की क्षमता रखता है।
3. **अन्वेषकों के लिए लाभदायक** -डेविड ईस्टन का विचार है कि राजनीतिक सिद्धान्त अन्वेषण के लिए विशेषकर लाभदायक है। डेविड ईस्टन ने यह विचार प्रकट किया है कि यदि सैद्धांतिक रूपरेखा पहले “विद्यमान होगी तो विभिन्न प्रकार के तथ्यों को क्रमबद्ध करना और सामान्यीकरण निश्चित करने का कार्य सरलतापूर्वक किया जा सकता है।
4. **स्वायत्त अनुशासन के रूप में प्रतिष्ठित करना** -राजनीति विज्ञान को एक स्वायत्त अनुशासन के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए अपरिहार्य है। इसी पर इस विषय में एकीकरण ‘राजनीतिक सिद्धान्त’, सामंजस्य, पूर्वकथनीयता एवं वैज्ञानिकता लाना तथा अन्य शोध संभावनाएँ निर्भर हैं।
5. **शासन प्रणाली एवं शासकों को औचित्यपूर्णता प्रदान करना** -शासन प्रणाली एवं शासकों के कार्यों को औचित्यपूर्णता प्रदान करने में सिद्धान्त एक उपकरण कि भूमिका अदा करता है।

अभ्यास प्रश्न -

1. राजनीति विज्ञान अंग्रेजी भाषा के शब्द Political Science का हिन्दी रूपान्तरण है। सत्य असत्य/
2. यूनानी भाषा में पोलिस का अभिप्राय है नगरराज्य-। सत्य असत्य/
3. डेविड ईस्टन ने 1950 के दशक में व्यवस्था सिद्धान्त दिया सत्य/असत्य/
4. राजनीति विज्ञान का सरोकार मूल्यों के आधिकारिक आबंटन से है, किसने कहा है ?
5. कैटलिन ने अपनी पुस्तक “पॉलिटिकल थियरी: व्हाट इज इट?”
6. ‘राजनीति विज्ञान का प्रारम्भ व अन्त राज्य से ही होता है किसने कहा है?’
7. “राजनीति विज्ञान राज्य का विज्ञान है।” किसने कहा है
8. राजनीति विज्ञान उसी प्रकार सरकार के तत्वों का अनुसंधान करता है जैसे सम्पत्ति शास्त्र सम्पत्ति का, जीव विज्ञान जीवन का, बीजगणित अंको का तथा ज्यामितिशास्त्र स्थान एवं लम्बाई-चौड़ाई का करता है।” किसने कहा है ?

2.13 सारांश

समय के साथ राजनीति विज्ञान की परिभाषा और उसका क्षेत्र बदला है। यूरोपिय संस्थाओं, अमरीकी व्यवहारवाद और पाश्चात्य राजनीतिक दर्शन, ने अपने ढंग से राजनीति विज्ञान के विकास में योगदान दिया है। परम्परागत तथा आधुनिक ‘राजनीति विज्ञान’ की परिभाषाओं के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि यह अब केवल राज्य अथवा

सरकार से सम्बन्धित विज्ञान नहीं, बल्कि मनुष्य के राजनीतिक व्यवहार, राजनीतिक क्रियाओं व प्रक्रियाओं, शक्ति, सत्ता तथा मानव समूहों की अन्तःक्रियाओं का विज्ञान है। आज आधुनिक दृष्टिकोण ने राजनीति विज्ञान के क्षेत्र को और अधिक विस्तृत कर दिया है। राजनीति विज्ञान सैद्धान्तिक दृष्टि से विज्ञान बन चुका है और जब राजनीति विज्ञान के सैद्धान्तिक पक्ष को व्यवहारिक जीवन में उतारा जाता है तो यह कला बन जाता है। यह विषय इस तरह कला और विज्ञान दोनों ही बन जाता है। फलतः आज राजनीति विज्ञान का अध्ययन हमारे लिए अधिकधिक उपयोगी होता जा रहा है।

2.14 शब्दावली

दृष्टिकोण: समस्याओं और प्रश्नों को देखने के नजरिया, उदाहरण; व्यवहारात्मक अथवा परम्परामूलक दृष्टिकोण।

प्रामाणिक: कोई आदेश, जो शक्ति और महत्व का आभास दे और जिसके पालन की सम्भावना हो।

आनुभाविक, इंद्रियानुभाविक: निरीक्षण, प्रयोग और अनुभव पर आधारित ज्ञान अथवा अध्ययन।

नैतिक: सिद्धान्त अथवा व्यवहार; जो उचित या अनुचित सम्बन्धी नैतिक विश्वासों पर आधारित किसी नैतिक पद्धति विशेष से प्रभावित हो अथवा पहले के विश्वासों से पैदा हो।

भौतिकवादी: धन और सांसारिक वस्तुओं की अत्यधिक इच्छा रखने वाला भौतिकवादी मानता है कि धन और वस्तुओं का स्वामित्व ही संसार में सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है।

नामावली: वस्तुओं का वर्गीकरण।

व्यावहारिकतापरक वास्तववाद: ऐसी विचारधारा या चिंतन, जो तथ्यों या जीवन के यथार्थ अनुभवों पर आधारित होती है। इसमें हठधर्मिता या आदर्शवाद नहीं होता।

नगर राज्य: प्राचीन यूनान की व्यवस्था, जिसमें राज्य और समाज मिलकर नगर-राज्य बनाते हैं। नगर राज्य केवल वैध अथवा कानूनी राज्य ही नहीं होता था, बल्कि अपने नागरिकों के जीवन के नैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और सौन्दर्यनुभूति के पक्षों पर समान रूप से ध्यान देता था।

उग्र परिवर्तनवादी: ऐसा व्यक्ति, जो समाज में आमूल परिवर्तन लाना चाहता हो।

पुनः प्रवर्तनवादी, पुनरुज्जीवनवादी: ऐसा व्यक्ति, जो ठहरे हुए धर्म या संस्कृति में फिर से नये जीवन का संचार करके उसे लोकप्रिय बनाना चाहता हो।

प्रभुसत्ता, सम्प्रभुता: विधिनिर्माण और नियंत्रण के मामले में सर्वोच्च शक्ति; आमतौर से राज्य-शक्ति पर प्रयुक्त। दो प्रकार की प्रभुसत्ता- 1. आन्तरिक और 2. बाह्य।

धर्मशास्त्र सम्बन्धी: धर्म या ईश्वर के अध्ययन से सम्बन्धित।

सार्वभौमिक: ऐसी विचारधारा या चिंतन, जिसका सम्बन्ध संसार के सारे लोगों से हो।

अनुभव सिद्ध सिद्धान्त: तथ्यों के अनुभव, प्रयोग और अवलोकन से निर्मित सिद्धान्त।

आदर्शमूलक: आदर्श द्वारा प्राप्त एक प्रकार की मनोवृत्ति या एक नीति-संहिता, यानि समाज विशेष में व्यवहार के नियम।

2.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य, 2. सत्य, 3. सत्य, 4. डेविड ईस्टन, 5. सत्य, 6. गार्नर, 7. जैम्स, 8. सीले

2.16 सन्दर्भग्रन्थ सूची

1. जैन, पुखराजराजनीति विज्ञान -, एस0बी0पी0जी0 पब्लिकेशन, आगरा
2. सिंहल, एस0सी0- राजनीतिक सिद्धान्त, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा
3. आशीवादम, ए0डी0 तथा मिश्र, कृष्णकान्तराजनीति विज्ञान -, एस0 चॉद कम्पनी लि0, नई दिल्ली
4. गाबा, ओमप्रकाश राजनीति सिद्धान्त की रूप -रेखा, मयूर पेपर बैक्स, नोयडा
5. जौहरी, जे0सी0 एवं सीमाआधुनिक राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त -, स्टर्लिंग पब्लिकेशन प्रा0 लि0, नई दिल्ली

2.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वर्मा, एस0पी0- मार्टन पालिटिकल थ्योरी, विकास प्रकाशन, नई दिल्ली
2. दास, पी0जी0- मार्टन पालिटिकल थ्योरी, न्यू सेंट्रल बुक एजेंसी, कलकत्ता
3. जैन, एम0पी0- पालिटिकल थ्योरी, आर्थस गिल्ड पब्लिकेशन, दिल्ली
4. संधु, ज्ञान सिंह राजनीतिक सिद्धान्त -, दिल्ली विश्वविद्यालय
5. वर्मा, एस0एल0- एडवांसड मार्टन पालिटिकल थ्योरी, नेशनल पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली.

2.18 निबंधात्मक प्रश्न

1. परम्परागत राजनीति विज्ञान का विषय क्षेत्र क्या है? स्पष्ट कीजिए।
2. परम्परागत दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए राजनीति विज्ञान की प्रकृति का विवेचन कीजिए।
3. क्या राजनीति विज्ञान एक विज्ञान है अथवा कला? अपने विचार दीजिए।
4. राजनीति विज्ञान के अध्ययन की उपयोगिता स्पष्ट कीजिए।
5. परम्परागत राजनीति विज्ञान की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
6. आधुनिक राजनीति विज्ञान की परिभाषा एवं क्षेत्र की समीक्षा करें।
7. परम्परागत एवं आधुनिक राजनीति विज्ञान में अन्तर बताइए।
8. आधुनिक राजनीति विज्ञान की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
9. आधुनिक राजनीति विज्ञान शक्ति का अध्ययन है, संक्षेप में बताइए।

इकाई- 3 इतिहास: अर्थ, परिभाषा, सिद्धांत, विषय-क्षेत्र, प्रकृति

इकाई की संरचना

- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 उद्देश्य
- 3.3 इतिहास का अर्थ
- 3.4 इतिहास का महत्व
- 3.5 इतिहास की प्रकृति
- 3.6 इतिहास के समग्र अध्ययन हेतु अन्य विषयों के अध्ययन की आवश्यकता
- 3.7 इतिहास के क्षेत्रों के वर्ग तथा उनके प्रकार
- 3.8 इतिहास की विषय-वस्तु
- 3.9 इतिहास के स्वरूप का विभाजन
- 3.10 इतिहास के प्रमुख भेद
- 3.11 इतिहास का अन्य विषयों से सम्बन्ध
 - 3.11.1 इतिहास और धर्मशास्त्र
 - 3.11.2 इतिहास और नीति शास्त्र
 - 3.11.3 इतिहास और राजनीति शास्त्र
 - 3.11.3 इतिहास और समाजशास्त्र
 - 3.11.5 इतिहास और भूगोल
 - 3.11.6 इतिहास और साहित्य
 - 3.11.7 इतिहास और दर्शन
- 3.12 इतिहास का व्यापक क्षेत्र
- 3.13 सारांश
- 3.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 3.15 पारिभाषिक शब्दावली
- 3.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 3.17 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

इतिहास मानव-समाज, विश्व-संस्कृति, सामाजिक परिवर्तन, युद्ध, क्रान्ति तथा राजनीतिक विप्लव के फलस्वरूप - राष्ट्रों के उत्थान-पतन का वृत्तांत है

चूंकि इतिहासकार, घटनाओं के दृष्टा तथा प्रायः उनके भागीदार हैं इसलिए वो आम तौर पर घटनाओं का विवरण अपने समय के परिप्रेक्ष्य में करते हैं बेनेदेत्तो क्रोचे के अनुसार – ‘समस्त इतिहास, समकालीन है.’ लेकी इतिहास को नैतिक क्रान्ति का लेखा-जोखा तथा उसकी व्याख्या मानता है और लेबनीज़ उसे धर्म के वास्तविक निरूपण

के रूप में देखता है। कार्ल मार्क्स के अनुसार – ‘आज तक विद्यमान सभी समाजों का इतिहास, वास्तव में वर्ग-संघर्ष का इतिहास है।’ इतिहास का अत्यधिक महत्व है। प्रसिद्ध चीनी दार्शनिक कन्फ्यूशियस कहता है – ‘यदि तुम भविष्य को परिभाषित करना चाहते हो (उसे समझना चाहते हो) तो अतीत का अध्ययन करो।’

इतिहास के प्रेरक प्रसंग हमारे जीवन में अत्यधिक महत्व रखते हैं। महान व्यक्तियों के व्यक्तित्व और कृतित्व से हम बहुत कुछ सीख सकते हैं। कौटिल्य के ‘अर्थशास्त्र’ का अध्ययन कर हम आदर्श शासक के मापदंडों से अवगत हो सकते हैं। औपनिवेशिक शासन में जहाँ गौरांग प्रभुओं द्वारा गुलाम भारत के नागरिकों को अर्ध-सभ्य और बर्बर समझा जा रहा था वहाँ इतिहास के माध्यम से संसार को यह ज्ञात हुआ कि भारत में लगभग 5000 वर्ष पूर्व हड़प्पा सभ्यता जैसी उन्नत सभ्यता थी। इतिहास ही हमको यह बतलाता है कि हिटलर और उसकी ही जैसी रोगी-मानसिकता वालों का अहंकार, घृणा, जातीय-श्रेष्ठता तथा संकुचित-राष्ट्रीयता की भावना का परित्याग करने में ही संसार का कल्याण है।

हमारा इतिहास-विषयक दृष्टिकोण, हमारे वर्तमान-विषयक दृष्टिकोण को विकसित करता है और हमको यह सुझाता है कि हम वर्तमान में विद्यमान अपनी समस्याओं अतीत के ज्ञान की सहायता से कैसे सुलझाएँ। 18 वीं शताब्दी के ब्रिटिश विचारक एडमंड बर्क ने भी इतिहास के अध्ययन को बेहतर वर्तमान और बेहतर भविष्य के लिए आवश्यक माना है – ‘वो लोग जो इतिहास नहीं जानते हैं, वो उसे दोहराने के लिए अभिशप्त हैं।’ इतिहास की प्रकृति आंशिक रूप से एक विज्ञान की है, आंशिक रूप से कला के एक विषय की और आंशिक रूप से एक दर्शन की भी है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य विभिन्न विद्वानों के इतिहास के अर्थ विषयक विचारों से आपको परिचित कराना है और मानव-जीवन में इतिहास के महत्व तथा इतिहास की प्रकृति से भी आपको अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

- 1- प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक के विद्वानों द्वारा इतिहास के अर्थ की व्याख्या और उसके परिभाषा के विषय में।
- 2- विभिन्न इतिहास-दार्शनिकों तथा विचारकों द्वारा इतिहास के महत्व को स्पष्ट करने के विषय में।
- 3- इतिहास को खुद को दोहराने की अपनी प्रकृति के विषय में
- 4- इतिहास को खुद को न दोहराने की अपनी प्रकृति के विषय में
5. इतिहास की रेखीय प्रकृति के विषय में।

3.3 इतिहास का अर्थ

भारतीय दर्शन में ‘इतिहास’ शब्द ‘इति-ह-आस’ से निर्मित है, जिसका अर्थ है—“निश्चित रूप से ऐसा हुआ।” आचार्य दुर्ग के अनुसार, अतीत के जिन घटनाक्रमों को प्रमाणित किया जा सके, वही इतिहास कहलाता है। प्रारंभ में यह केवल आख्यानों, नायकों की गाथाओं और लोक-कथाओं तक सीमित था, किंतु वास्तव में इसमें वे सभी घटनाएँ सम्मिलित हैं जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मानव-जीवन को प्रभावित करती हैं।

पाश्चात्य परंपरा में 'हिस्ट्री' शब्द ग्रीक 'हिस्टोरिया' से बना, जिसका अर्थ है—अन्वेषण द्वारा प्राप्त ज्ञान। हेरोडोटस ने 'हिस्ट्री' शब्द का प्रयोग सबसे पहले "अन्वेषण" के लिए किया। यूनान और रोम में यह अतीत की घटनाओं के विश्लेषण और लिखित वृत्तांत से जुड़ा। बाद में अंग्रेजी में 'हिस्ट्री' का अर्थ घटनाओं की गाथा तथा अतीत के व्यवस्थित अध्ययन से लिया जाने लगा।

अरब इतिहासकार इब्न खल्दून ने इतिहास को मानव-समाज, संस्कृति, सामाजिक परिवर्तन, युद्ध और राजनीतिक क्रांतियों के माध्यम से राष्ट्रों के उत्थान-पतन का विवरण माना। उनके अनुसार इतिहास केवल घटनाओं का संग्रह नहीं, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण भी है।

विभिन्न विचारकों ने इतिहास की प्रकृति पर मत व्यक्त किए हैं। कार्लाइल ने इसे महान पुरुषों की गाथा कहा, जबकि कार्ल मार्क्स ने वर्ग-संघर्ष का इतिहास माना। ई. एच. कार के अनुसार इतिहास अतीत और वर्तमान के बीच निरंतर संवाद है। स्पेंगलर ने इसे रेखिक न मानकर वृत्तात्मक प्रवृत्ति वाला बताया। संक्षेप में, इतिहास अतीत की सत्यनिष्ठ घटनाओं का ऐसा वृत्तांत है, जो मानव जीवन के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों को समझने की कुंजी प्रदान करता है।

इतिहास, रसायन शास्त्र, भौतिक शास्त्र और जीव विज्ञान शैक्षिक अनुशासन हैं। इन अनुशासनों में निरंतर अध्ययन कर नई-नई खोज की जाती हैं। समय के साथ-साथ ज्ञान में वृद्धि के कारण इन विषयों में अन्वेषण की प्रणालियों में परिवर्तन होता रहता है और फिर इन में नई-नई खोजें होती हैं। ये विषय रूढ़िवादी नहीं हैं, इन विषयों में कही जाने वाली बात का सदैव एक ही अर्थ नहीं होता है और हमारा विश्व भी समय बदलने के साथ बदलता रहता है। इस दृष्टिकोण से हम केवल इतिहास को ही नहीं, अपितु प्रतिष्ठित वैज्ञानिक विषयों को भी कला के अंतर्गत मान सकते हैं।

1. कार्य जिनको मिलाकर मानव-अतीत बनता है। इस सन्दर्भ में इतिहास – अतीत का वास्तविक वृत्तांत है।
2. अतीत का वृत्तांत और उस वृत्तांत हेतु उपयुक्त अन्वेषण की विधियाँ। इस सन्दर्भ में इतिहास का अर्थ – अतीत में हुई घटनाओं का अध्ययन तथा उनका वर्णन है।

स्पेंगलर इतिहास की व्याख्या करते हुए कहता है – 'मानव-जीवन अपनी आंतरिक प्रवृत्ति तथा मौलिक प्रेरणा से विकास और निर्माण की जिस प्रक्रिया में गतिमान है, उसी का नाम इतिहास है।' स्पेंगलर इतिहास को एक निरंतर एवं क्रमबद्ध प्रक्रिया नहीं मानता है। इतिहास को 'प्रागैतिहासिक काल', 'प्राचीन काल', 'मध्य काल' तथा 'आधुनिक काल' में विभाजित किया जाना उसे स्वीकार्य नहीं है। स्पेंगलर के अनुसार इतिहास की प्रवृत्ति रेखात्मक नहीं अपितु वृत्तात्मक (चक्रीय) है।

जी. आर. एल्टन के अनुसार – 'इतिहास का सम्बन्ध अतीत में हुए मनुष्य के उन सभी कथनों, विचारों, कार्यों तथा कष्टों से है जिन्होंने वर्तमान के लिए अपनी धरोहर छोड़ी है। इतिहास में मनुष्य के अतीत की विशिष्ट घटनाओं का, तथा उसके जीवन में हुए विशिष्ट बदलावों का अध्ययन किया जाता है।' ई. एच. कार के अनुसार – 'इतिहास – अतीत और वर्तमान के मध्य एक चिरंतन संवाद है और इतिहासकार का मुख्य कार्य, वर्तमान की पहली को समझने की कुंजी के रूप में अतीत को भलीभांति समझना है।'

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि इतिहास के केंद्र में मुख्यतः मानव-गतिविधियाँ हैं और इसमें प्रगति एवं विकास हेतु मानव-संघर्ष का अध्ययन किया जाता है। इतिहास में परिवर्तन का अत्यधिक महत्त्व है क्योंकि जीवन में भी नियमतः परिवर्तन होते हैं। इसलिए सच्चा इतिहासकार वह है जो कि अपने दृष्टिकोण में जीवन के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में हो चुके, हो रहे, तथा होने वाले परिवर्तनों को महत्ता प्रदान

करे. संक्षेप में हम कह सकते हैं कि अतीत में घटित घटनाओं का वास्तविक तथा सत्यनिष्ठापूर्ण वृत्तांत – इतिहास है.

इतिहास का तात्पर्य, अतीत में हुई घटनाओं की उत्पत्ति का अन्वेषण करना, उनका अन्तः-सम्बन्ध समझना तथा उनकी एक-दूसरे से तुलना करना होता है. यह समाज में गतिमान बलों के आकार तथा उनकी रूपरेखा के अन्वेषण का प्रयास करता है. थॉमस कार्लाइल को इतिहास में 'ग्रेटमैन थ्योरी' (महापुरुष का सिद्धांत) का भाष्यकार माना जाता है. उसका विचार है – 'सार्वभौमिक इतिहास महान पुरुषों के कार्यों (उपलब्धियों) पर आधारित है.' इतिहास 'उन घटनाओं का वृत्तांत है जो कि मानवजाति के मध्य घटित हुई हैं इन में राष्ट्रों, राज्यों का उत्थान-पतन सहित. ऐसे अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तन भी सम्मिलित हैं जिन्होंने कि मानव-जाति की राजनीतिक और सामाजिक स्थिति को प्रभावित किया है

इतिहास प्रायः वस्तुपरक दृष्टिकोण से घटनाओं के कारणों तथा उनके प्रभावों का अन्वेषण करता है. इतिहासकार इतिहास की प्रकृति तथा उसकी उपयोगिता पर बहस करते हैं. सर वाल्टर रैले के अनुसार – 'इतिहास का लक्ष्य तथा उसका कार्य-क्षेत्र है – अतीत में हुई घटनाओं के उदाहरणों से हमको ऐसी बुद्धि प्रदान करना जो कि हमारे कर्मों तथा हमारी आकांक्षाओं का मार्ग-दर्शन कर सके. अरस्तू के अनुसार – 'इतिहास अपरिवर्तनशील भूतकाल का वृत्तांत है.'

सर जॉन सीले के अनुसार – 'इतिहास, प्राचीन राजनीति है.' कार्ल मार्क्स के अनुसार – 'आज तक विद्यमान सभी समाजों का इतिहास, वास्तव में वर्ग-संघर्ष का इतिहास है.' लार्ड ऐक्टन के अनुसार – 'मानव-स्वातंत्र्य की कहानी को बतलाना ही इतिहास है.' अमेरिकी इतिहासकार एलेन नेविन के अनुसार – 'इतिहास वह पुल है जो कि अतीत को वर्तमान से जोड़ता है और हमको भविष्य को जाने वाला मार्ग दर्शाता है.'

'व्हाट इज हिस्ट्री' में ई. एच. कार कहता है – 'इतिहासकार तथा तथ्यों के मध्य निरंतर पारस्परिक क्रिया का प्रक्रम, इतिहास है. इसमें वर्तमान तथा अतीत के मध्य शाश्वत संवाद होता है. 'इतिहास' शब्द का हम दो अलग-अलग अर्थों में प्रयोग कर सकते हैं

3.4 इतिहास का महत्व

इतिहास मानव-जीवन के लिए प्रेरणा का स्रोत है। कन्फ्यूशियस ने कहा था कि यदि भविष्य को समझना है तो अतीत का अध्ययन करना चाहिए। महान शासकों और व्यक्तित्वों से हमें आदर्श, त्याग, न्यायप्रियता और प्रशासनिक कुशलता की शिक्षा मिलती है। सम्राट अशोक का चंडाशोक से धम्मशोक में रूपांतरण, विक्रमादित्य का न्याय, भोज का साहित्य-प्रेम तथा शेरशाह की प्रशासनिक व्यवस्था आज भी शासकों के लिए मार्गदर्शक है।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र हमें शासन-व्यवस्था की सूझ-बूझ सिखाता है। अमीर खुसरो की रचनाएँ गंगा-जमुनी तहजीब और सांप्रदायिक सौहार्द का संदेश देती हैं। अकबर के दरबार में स्वतंत्र आलोचना की परंपरा धार्मिक सहिष्णुता का उदाहरण है। इस प्रकार इतिहास हमें सांस्कृतिक बहुलता और सामाजिक समरसता का मूल्य सिखाता है। औपनिवेशिक काल में इतिहास ने भारतीय गौरव को पुनः जगाया। हड़प्पा सभ्यता, दशमलव पद्धति और शून्य जैसी खोजों ने भारत की प्राचीन प्रगति का प्रमाण प्रस्तुत किया। राजा राममोहन राय और ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने ऐतिहासिक शोध द्वारा सती प्रथा और विधवा पुनर्विवाह जैसे प्रश्नों पर समाज सुधार को गति दी।

इतिहास केवल घटनाओं का लेखा-जोखा नहीं, बल्कि अतीत से वर्तमान और भविष्य को जोड़ने का माध्यम है। ई.एच. कार ने इसे अतीत और वर्तमान के बीच संवाद कहा है। यह हमें गलतियों से बचने, बेहतर नीतियाँ बनाने और समाज को दिशा देने में सहायता करता है।

इतिहास का उद्देश्य केवल जानकारी नहीं बल्कि आत्म-ज्ञान और मूल्य-बोध है। यह मनुष्य को आलोचनात्मक दृष्टि, विवेकशीलता और दूरदर्शिता प्रदान करता है। सही मायनों में इतिहास वह दर्पण है जिसमें झाँककर हम अपनी सभ्यता, संस्कृति और मानवीय अनुभवों से सीख लेकर भविष्य का निर्माण कर सकते हैं।

3.5 इतिहास की प्रकृति

इतिहास की प्रकृति जटिल और बहुआयामी है। इसमें विज्ञान, कला और दर्शन – तीनों के तत्व समाहित हैं। विज्ञान की भाँति इसमें तथ्यों का निष्पक्ष अध्ययन और प्रमाणों का उपयोग होता है, कला की तरह इसमें वर्णन शैली और प्रस्तुतीकरण महत्वपूर्ण है, तथा दर्शन की तरह इसमें घटनाओं के पीछे निहित कारणों और विचारधाराओं की खोज की जाती है। इस दृष्टि से इतिहास को केवल तथ्यों का संग्रह न मानकर, एक सृजनात्मक और चिंतनपरक अनुशासन माना जाता है।

कई इतिहासकारों का मानना है कि इतिहास स्वयं को दोहराता है। अतीत की घटनाओं, युद्धों, षड्यंत्रों और राज्यों के उत्थान-पतन में समानताएँ दिखाई देती हैं। इब्न खल्दून ने इतिहास को संस्कृति का विज्ञान माना और कहा कि सभ्यताएँ जन्म लेती हैं, विकसित होती हैं और अंततः पतन को प्राप्त होती हैं। स्पेंगलर ने भी संस्कृतियों को जैव इकाई की तरह बताया जिनका जीवन-चक्र बचपन से वृद्धावस्था तक चलता है।

इसके विपरीत कुछ इतिहासकार यह मानते हैं कि इतिहास स्वयं को कभी नहीं दोहराता। प्रत्येक घटना अपने आप में अद्वितीय होती है और भले ही उसमें ऊपरी समानता दिखाई दे, किन्तु वह अन्य घटना से भिन्न ही होती है। ली बेंसन ने कहा कि इतिहासकार खुद को दोहराता है, लेकिन इतिहास नहीं। डेविड इरविंग ने इसे नित्य परिवर्तित होते वृक्ष के समान बताया। पारसी और यहूदी परंपराओं ने भी इतिहास को संघर्ष और उद्देश्यपरक प्रक्रिया माना है।

हेगेल ने इतिहास को रेखीय और द्वंद्वात्मक माना। उनके अनुसार इतिहास धारणा और प्रति-धारणा के संघर्ष से संश्लेषण की ओर बढ़ता है। इस प्रक्रिया में विरोधी विचार टकराकर नए रूप में परिणत होते हैं। काल और दिक् को उन्होंने इतिहास की दो आँखें कहा – जो समय और स्थान के आधार पर इसकी व्याख्या करते हैं। इस प्रकार इतिहास एक सतत प्रगतिशील धारा है।

समय के साथ इतिहास-दृष्टि और लेखन की तकनीक भी बदलती रही है। रैंके का मानना था कि प्रत्येक युग को उसके अपने संदर्भ में समझना चाहिए और आधुनिक मूल्यों की कसौटी पर परखना उचित नहीं। उन्होंने इतिहास को “जैसा वास्तव में हुआ था” के रूप में देखने पर बल दिया। इससे इतिहास के तथ्यों के वस्तुनिष्ठ और अनुभवजन्य अध्ययन की परंपरा विकसित हुई।

मार्क्सवादी इतिहासकारों ने इतिहास को द्वंद्वात्मक और आंशिक रूप से नियतिवादी माना। उनके अनुसार इतिहास वर्ग-संघर्ष से संचालित होता है और इसका लक्ष्य वर्गहीन समाज की स्थापना है। ई.एच. कार ने कारणत्व को इतिहास का मूल तत्व बताया और कहा कि प्रत्येक घटना का एक कारण होता है। इस प्रकार इतिहास को समझने के लिए कारण और परिणाम का गहन अध्ययन आवश्यक है।

3.6 इतिहास के समग्र अध्ययन हेतु अन्य विषयों के अध्ययन की आवश्यकता

इतिहास को अन्य विषयों की शाखा के रूप में देखा जाए तो यह प्रारंभ में दर्शन और राजनीति शास्त्र का अंग रहा, किंतु धीरे-धीरे एक स्वतंत्र विषय के रूप में विकसित हुआ। यह सामाजिक विज्ञान (Social Science) की श्रेणी में आता है और समय, समाज तथा परिस्थितियों के अनुरूप इसका क्षेत्र निरंतर विस्तृत होता रहा है। इतिहास केवल घटनाओं का वर्णन न होकर मानव जीवन, सभ्यता और समाज की निरंतर प्रगति का दर्पण है।

वर्तमान में इतिहास का स्वरूप अत्यंत व्यापक है। इसमें न केवल प्रागैतिहासिक काल से मानव सभ्यता के विकास, कृषि, व्यापार, तकनीकी और सांस्कृतिक प्रगति का अध्ययन शामिल है, बल्कि पुरातत्व (Archaeology), भूगोल (Geography), अर्थशास्त्र (Economics), भाषा-विज्ञान (Linguistics) और विज्ञान (Science) जैसे अनुशासनों की सहायता से भी इसे समझा जाता है। इतिहास आज मानवता, समाज और विश्व-व्यवस्था की समग्र प्रक्रिया का वैज्ञानिक और मानवतावादी अध्ययन है।

3.7 इतिहास के क्षेत्रों के वर्ग तथा उनके प्रकार

इतिहासकारों ने इतिहास विषय के अंतर्गत अनेक क्षेत्रों में उसका वर्गीकरण किया है इन में से कुछ वर्ग हैं – राजनीतिक इतिहास, आर्थिक इतिहास, सामाजिक इतिहास, सांस्कृतिक इतिहास, बौद्धिक अथवा वैचारिक इतिहास आदि। इतिहास के इन वर्गों के उप-वर्ग भी होते हैं। जैसे कि हम राजनीतिक इतिहास के अंतर्गत एक विशिष्ट समय के एक विशिष्ट क्षेत्र की एक विशिष्ट घटना के इतिहास का अध्ययन करते हैं जैसे कि पुनर्जागरण काल में फ्लोरेंस में चित्रकला और मूर्तिकला का विकास। अथवा 1789 की फ्रांसीसी क्रांति। अथवा 1930 में गांधी जी का दांडी मार्च।

इतिहास के कुछ प्रकार ऐसे हैं जो अन्य विषयों से सम्बद्ध होने के साथ-साथ इतिहास से भी सम्बद्ध हैं। जैसे कि – कला का इतिहास, आविष्कारों का तथा तकनीकी इतिहास, भौगोलिक खोजों का इतिहास, प्रशासनिक इतिहास, चर्च का इतिहास, जन-सांख्यिकी का इतिहास, नृजाति-इतिहास आदि। पहला अंकित इतिहास हमको गुफा-मानव के चित्रों में मिलता है। इस से पहले तो हमको जो भी जानकारी मिलती है वह जीवावशेषों के अध्ययन से मिलती है। मिट्टी से बर्तन, खिलौने आदि बनाने की तकनीक, धातु के उपकरण बनाने की विधि, कागज बनाने की विधि आदि ने इतिहास के इतिहास के स्वरूप को बिल्कुल बदल दिया। इतिहास के इतिहास में भाषा तथा लिपि के विकास का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। इसीलिए लिखित वृत्तांतों से पहले की सूचनाओं पर आधारित ज्ञान को हम इतिहास के अंतर्गत नहीं रखते और उसे प्रागैतिहासिक काल की श्रेणी में रखते हैं।

3.8 इतिहास की विषय-वस्तु

समय के साथ इतिहास की विषय-वस्तु का निरंतर विस्तार होता गया। प्राचीन काल में इसे मात्र घटनाओं का विवरण भर माना जाता था, परंतु पुनर्जागरण (Renaissance) काल में राजनीति, समाज और संस्कृति को भी इसमें समाहित कर लिया गया। अब इतिहास केवल घटनाओं तक सीमित न रहकर सामाजिक आवश्यकताओं का दर्पण बन गया। घटनाओं के अध्ययन में मनुष्यों की मानसिक अवस्था का भी अवलोकन किया जाने लगा, जिससे इतिहास में दर्शन (Philosophy) और मनोविज्ञान (Psychology) का प्रवेश हुआ। इस प्रक्रिया में इतिहास व्यक्ति (Individual) से ऊपर उठकर समाज (Collectivity) तक पहुँच गया। नेबूर (Niebuhr) और रैंके (Ranke) जैसे प्रत्यक्षवादी इतिहासकारों ने सार्वभौमिक इतिहास-लेखन पर बल देकर इसे व्यापक बनाया, किंतु रैंके और सीले (Seeley) ने जब इतिहास को केवल राजनीति तक सीमित किया तो आलोचकों ने इसे संकुचन का प्रयास माना। हर्डर (Herder) ने भूगोल, जलवायु और पर्यावरण को शामिल कर इसकी विषय-वस्तु को विस्तृत किया। वहीं स्पेंगलर (Spengler) और टॉयनबी (Toynbee) ने राष्ट्रों की बजाय सभ्यताओं और संस्कृतियों का इतिहास प्रस्तुत कर सार्वभौमिक दृष्टिकोण को बल दिया। इस प्रकार इतिहास अब शासन, कानून,

परंपराएँ, धर्म, कला, संस्कृति और समाज की बौद्धिक, भौतिक तथा भावनात्मक गतिविधियों का अध्ययन बन गया।

दार्शनिक दृष्टिकोण से आर. जी. कॉलिंगवुड (R. G. Collingwood) का मत था कि ऐतिहासिक ज्ञान अतीत में मनुष्य की विचार-प्रक्रिया का पुनर्निर्माण है, और इतिहास की विषय-वस्तु मानव का कार्य-व्यवहार होना चाहिए। हेगेल (Hegel) ने इसे समाज और राज्य माना तथा संस्कृति, राष्ट्र और राजनीतिक-आंदोलनों को इसमें सम्मिलित किया। व्यावसायिक दृष्टिकोण से भी इतिहास की परिभाषा युग की आवश्यकताओं पर निर्भर रही। जहाँ हीरोडोटस (Herodotus) और थ्यूसीडाइड्स (Thucydides) ने इसे पूर्वजों की स्मृति तक सीमित रखा, वहीं टॉयनबी ने मानव जीवन से संबंधित समस्त कार्य-व्यापार को इसमें शामिल किया। क्रोचे (Croce) ने सभी मानवीय कार्यों को, जबकि ए. एल. राउज (A. L. Rowse) ने भौगोलिक, आर्थिक, पर्यावरणीय, प्रशासनिक, धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों को विषय-वस्तु के रूप में स्वीकार किया। इस प्रकार इतिहास अब केवल घटनाओं का क्रम न होकर संपूर्ण मानवीय जीवन और सभ्यता के विकास का व्यापक अध्ययन है।

3.9 इतिहास के स्वरूप का विभाजन

जॉन डिबी तथा कार्ल मार्क्स द्वारा इतिहास का विभाजन

इतिहास का स्वरूप विविध प्रकार का है। सामान्यतः इसे दो वर्गों में विभाजित किया जाता है –

1. अतीत कालिक इतिहास
2. समसामयिक इतिहास

जॉन डिबी ने इतिहास के इन दोनों प्रकारों में समसामयिक इतिहास को अधिक महत्त्व दिया है।

कार्ल मार्क्स ने साम्यवादी विचारधारा के विकास से पूर्व के इतिहास को 'प्रागैतिहासिक इतिहास' कहा है और उसने इतिहास को चार भागों में बांटा है –

1. एशियाई इतिहास
2. प्राचीन यूरोपीय इतिहास
3. सामंतशाही इतिहास
4. पूँजीवादी इतिहास

स्पेंगलर द्वारा इतिहास का विभाजन

स्पेंगलर ने इतिहास को दो भागों में विभाजित किया है –

1. प्रकृति-विषयक इतिहास- प्रकृति-विषयक इतिहास से स्थायित्व, मूर्तिमान तथा सादृश्य गुण वाली वस्तुएं सम्बद्ध हैं।
2. मानव-विषयक इतिहास - मानव-विषयक इतिहास से गतिशील, अमूर्त, प्रक्रियात्मक तथा निर्माण वाली विशेषताओं की वस्तुएं सम्बद्ध हैं।

डी. डी. कोसाम्बी द्वारा भारतीय इतिहास का काल विभाजन

इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास को अनेक कालों में विभाजित किया है। मार्क्सवादी विचारक एवं इतिहासकार प्रोफ़ेसर डी. डी. कोसाम्बी द्वारा उत्पादन और उत्पादन के संसाधनों के परिप्रेक्ष्य में भारतीय इतिहास का काल विभाजन उल्लेखनीय है –

1. नगरीय स्थिर, सिन्धु घाटी संस्कृति (3000 से 1500 ईसा पूर्व)

2. आर्यीकरण अर्थात् उत्तरकालीन कांस्य तथा प्रारंभिक लौह-युग (1500 से 800 ईसा पूर्व)
 3. आर्यों की ग्रामीण संस्कृति से नगरीय सभ्यता के विकास तक और मगध साम्राज्य की स्थापना तक (800 से 250 ईसा पूर्व तक)
 4. आदिम प्रकार का सामंतवादी युग (250 ईसा पूर्व से 300 ईसवी तक)
 5. विशुद्ध सामंतवादी युग (300 ईसवी से 1200 ईसवी अर्थात् उत्तर भारत में मुस्लिम आधिपत्य के प्रारंभ तक)
 6. जागीरदारी, मनसबदारी और जमींदारी का युग (1200 से ब्रिटिश आधिपत्य से पूर्व तक का युग)
 7. आधुनिक पूंजीवादी युग तथा नए स्वदेशी बुर्जुआ शासन का प्रारंभ
- प्रोफेसर कोसाम्बी ने केवल - कृषि, व्यापार, दास, सामंतवाद, व्यक्तिगत संपत्ति और पूंजीवाद के विकास के आधार पर ही भारतीय इतिहास का जो काल विभाजन किया है उसमें इतिहास के धार्मिक सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं की नितांत उपेक्षा की गयी है।

3.10 इतिहास के प्रमुख भेद (Types of History)

क्र	इतिहास का प्रकार	व्याख्या / परिभाषा	मुख्य विशेषताएँ / उदाहरण
1.	सैनिक इतिहास	अतीत के युद्धों, संघर्षों तथा उनकी रणनीतियों और प्रभावों का अध्ययन।	आर्यों के लोहे के हथियारों से द्रविड़ों की हार, बाबर की तुलुगमा रणनीति, अंग्रेजों की बंदूकधारी पैदल टुकड़ियाँ।
2.	क्लियोमैट्रिक्स	सामाजिक और आर्थिक इतिहास को समझने हेतु गणितीय प्रणाली और आर्थिक सिद्धांतों का उपयोग।	परिमाणात्मक (quantitative) विधियों से विश्लेषण।
3.	तुलनात्मक इतिहास	एक ही समय या समान परिस्थितियों में विभिन्न समाजों का तुलनात्मक अध्ययन।	प्रस्तावक: बैरिंगटन मूर, टोयनबी, स्पेंगलर आदि।
4.	सांस्कृतिक इतिहास	लोक-संस्कृतियों, परम्पराओं, कलाओं, सभ्यताओं के जीवन और अनुभवों का अध्ययन।	स्पेंगलर: इतिहास = संस्कृतियों का नाटक; टॉयनबी: समाज/सभ्यता = इकाई। इसमें संगीत, चित्रकला, स्थापत्य, वस्त्रकला आदि।

5.	कूटनीतिक इतिहास	राष्ट्रों/राज्यों के बीच कूटनीतिक और राजनीतिक संबंधों का इतिहास।	लियोपोल्ड वोन रैंके का प्रभाव; शासकों और राजनीतिज्ञों पर केंद्रित।
6.	आर्थिक इतिहास	आर्थिक गतिविधियों, विकास और अवनति का अध्ययन।	व्यापार, श्रमिक, जनसांख्यिकी इतिहास; सांख्यिकी + ऐतिहासिक विधियाँ।
7.	राजनीतिक इतिहास	शासकों, वंशावलियों, षड्यंत्रों, उत्तराधिकार संघर्षों का अध्ययन।	रैंके द्वारा महाशक्तियों और नेताओं पर बल।
8.	विचारों/बौद्धिक इतिहास	मानवीय विचारों, सिद्धांतों, दार्शनिक धाराओं का अध्ययन।	रूसो, वोल्टेयर, मोंटेस्क्यू; कार्ल लीम्प्रे प्रवर्तक; फ्रांसीसी क्रांति की पृष्ठभूमि।
9.	सार्वभौमिक इतिहास	सम्पूर्ण विश्व के इतिहास का समग्र अध्ययन।	पोलीबियस, सेंट ऑगस्टाइन, इब्न खल्दून, हेगेल, मार्क्स, टॉयनबी, स्पेंगलर।
10.	भौगोलिक खोजों का इतिहास	भौगोलिक उपकरणों और खोजों की भूमिका का अध्ययन।	कोलंबस, वास्कोडिगामा, डियाज़; वाणिज्यिक क्रांति व औपनिवेशिक साम्राज्य।
11.	मुद्राशास्त्र	धातु व कागज की मुद्राओं का विकास एवं अध्ययन।	आर्थिक इतिहास का अंग।
12.	पुरालिपि शास्त्र	प्राचीन लिपियों के अध्ययन की विधा।	हड़प्पा लिपि आज भी अपठनीय।
13.	सामाजिक इतिहास	समाज, जीवनशैली, सामाजिक प्रक्रियाओं व नियमों का इतिहास।	कॉम्टे, टॉयनबी, ट्रेवेलियन, रेनीयर के विचार।
14.	विधिक, प्रशासकीय व संवैधानिक इतिहास	विधि, प्रशासन और संवैधानिक संरचनाओं का विकास।	मनुस्मृति, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, 'आइन-ए-अकबरी'।

15.	धार्मिक इतिहास	धर्मों का उदय-पतन, दर्शन, अनुष्ठान और उनके प्रभाव।	अशोक-कनिष्क द्वारा बौद्ध धर्म का प्रसार; क्रूसेड, जिहाद, शिवाजी।
16.	औपनिवेशिक इतिहास	उपनिवेशवाद, शोषण और प्रभुत्व का इतिहास।	अंग्रेजों की दृष्टि में 1857 = सिपाही विद्रोह; सावरकर = प्रथम स्वतंत्रता संग्राम।
17.	आविष्कार और तकनीकी इतिहास	वैज्ञानिक-तकनीकी आविष्कार और उनके प्रभाव।	बारूद, छापाखाना, वाष्प इंजन, हवाई जहाज, आइंस्टाइन का सापेक्षता सिद्धांत।
18.	यात्रा-वृत्तांत	यात्रियों के अनुभवों से लिखा गया इतिहास।	मेगस्थनीज की इंडिका, फाह्यान, ह्वेनसांग, इब्न बतूता, मार्को पोलो, बिशप हेबर।
19.	दैनन्दिनी	व्यक्तिगत डायरी-लेखन के आधार पर इतिहास।	मार्कस ऑरेलियस की <i>Meditations</i> , एनी फ्रैंक की <i>Diary of a Young Girl</i> ।
20.	हिस्ट्री फ्रॉम बिलो (History from Below)	आम लोगों, उपेक्षितों और उपाश्रित वर्गों का इतिहास।	जॉर्ज लेफ़ब्रे द्वारा प्रयोग; 1960 के दशक में ब्रिटिश मार्क्सवादी इतिहासकारों ने विकसित किया।

3.11 इतिहास का अन्य विषयों से सम्बन्ध

3.11.1 इतिहास और धर्मशास्त्र

पौराणिक कथाओं में ही नहीं, अपितु इतिहास में भी धर्म के मार्ग पर चलने वालों की विजय और अधर्म का मार्ग अपनाने वालों की सदा पराजय दिखाई जाती रही है। सेंट अगस्टाइन के ऐतिहासिक ग्रन्थ – ‘सिटी ऑफ़ गॉड’ में धर्म की पाप पर विजय दिखाई गयी है। ईसाई इतिहास लेखन की विशिष्टताओं में इतिहास में ईश्वरीय इच्छा की महत्ता, ऐतिहासिक बलों की दैविक प्रकृति तथा इतिहास लेखन के आधार-स्रोत के रूप में बाइबिल की महत्ता सम्मिलित हैं। इसी प्रकार अनेक मुस्लिम इतिहासकारों ने भी मुस्लिम शासकों की अन्य धर्मावलम्बियों पर विजय को इस्लाम की फ़तेह माना है। अनेक आधुनिक पाश्चात्य इतिहासकारों में भी इसी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। गिबन, ह्यूम, मैकाले, एटन, मैकलैड आदि ने इतिहास-लेखन में धर्म को प्रमुखता दी है।

3.11.2 इतिहास और नीति शास्त्र

इतिहास में 'नैतिक' और 'अनैतिक' पर सदैव विमर्श होता रहा है। इतिहास में प्रायः विजेता वर्ग के कृत्यों को तथा उसके दृष्टिकोण को, नैतिक तथा पराजितों के कृत्यों व उनके दृष्टिकोण को, अनैतिक ठहराया जाता रहा है। टॉयनबी सभ्यताओं के पतन का एक प्रमुख कारण उसके निवासियों की जीवन-शैली का अनैतिक होना मानता है।

3.11.3 इतिहास और राजनीति शास्त्र

कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' से लेकर मेकियावेली के 'दि प्रिंस' तक राजनीति शास्त्र तथा इतिहास का प्रगाढ़ सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है। रैंके के इतिहास-लेखन में भी राजनीतिशास्त्र तथा इतिहास का अन्तरंग सम्बन्ध दिखाई पड़ता है।

3.11.4 इतिहास और समाजशास्त्र

समाजशास्त्र के संस्थापक अगस्ते कौमंते ने इतिहास और समाजशास्त्र में भेद नहीं किया है। उसके अनुसार – 'इतिहास सामाजिक भौतिकशास्त्र है, इसके अंतर्गत मानवीय व्यवहार के सामान्य नियमों का अध्ययन होता है।'

3.11.5 इतिहास और भूगोल

किसी क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियां वहां के नागरिकों की प्रकृति के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। उदाहरण के लिए भारत जैसे प्राकृतिक सम्पदा से परिपूर्ण देशवासियों को अपने निर्वाहन अथवा अस्तित्व-संरक्षण के लिए कभी भी अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं पड़ी इसलिए भारतीय इतिहास में विदेशों में किए गए सैनिक अभियान नाम मात्र के हैं जब कि मंगोलिया अथवा तुर्किस्तान जैसे दुर्गम एवं साधन-हीन क्षेत्रों के निवासियों का इतिहास सैनिक-अभियानों से भरा पड़ा है। 15 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से हुई भौगोलिक खोजों ने तो इतिहास का स्वरूप ही बदल दिया। वास्तव में इतिहास और भूगोल के एक ही सिक्के के दो पहलू कहा जाए तो कोई अतिशायक्ति नहीं होगी।

3.11.6 इतिहास और साहित्य

प्राचीन काल से ही ऐतिहासिक घटनाओं को साहित्य का विषय बनाया जाता रहा है। मध्यकालीन इंग्लैंड के इतिहास को जानने के लिए वाल्टर स्कॉट के उपन्यासों में रुचिकर सामग्री उपलब्ध होती है। रूमानी इतिहासकार हर्डर भी इतिहास और साहित्य के अभिन्न सम्बन्ध को स्वीकार करता है।

3.11.7 इतिहास और दर्शन

इतिहास पहले दर्शन शास्त्र का ही अंग माना जाता था। नेबूर तथा रैंके ने इसे एक स्वतंत्र विषय के रूप में प्रतिष्ठित किया था। फिर भी इतिहास और दर्शन के मध्य प्रगाढ़ सम्बन्ध रहा है। हेगेल के दर्शन का कार्ल मार्क्स के इतिहास-लेखन पर स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। स्पेंगलर तथा टॉयनबी केवल इतिहासकार नहीं हैं, अपितु दार्शनिक-इतिहासकार हैं।

3.12 इतिहास का व्यापक क्षेत्र

आज किसी भी विषय का हम एकल अध्ययन नहीं कर सकते और न ही ऐसा करने का हमको हठ करना चाहिए। इतिहास की तो यह विशेषता है कि प्रत्येक विषय में उस विषय के इतिहास का अध्ययन किया जाता है इसलिए इतिहास की व्यापकता और उसकी उपयोगिता पर कोई प्रश्न नहीं उठाया जा सकता। इतिहास का क्षेत्र और उसकी व्याप्ति असीमित है। सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि आज भी इसके क्षेत्र का विस्तार हो रहा है और आगे भी होता रहेगा।

3.13 सारांश

इतिहास सामाजिक विज्ञान की एक प्रमुख शाखा है, जो समय और परिस्थितियों के साथ निरंतर परिवर्तित होती रही है। इसकी विषय-वस्तु में भूगोल, जलवायु, शासन, धर्म, कला, परंपराएँ और मानव-जीवन के विविध पहलुओं का समावेश किया जाता है। विभिन्न विचारकों ने इतिहास की विषय-वस्तु को अलग-अलग दृष्टिकोण से परिभाषित किया है—कॉलिंगवुड ने इसे मानव के विचार-प्रक्रिया और व्यवहार से जोड़ा, हेगेल ने इसे समाज और राज्य से, जबकि टॉयनबी ने इसे मानव-जीवन की समस्त गतिविधियों का प्रतिफल माना। इतिहास को विभिन्न श्रेणियों में बाँटा गया है, जैसे सैनिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, कूटनीतिक और सामाजिक इतिहास। इसके अतिरिक्त इतिहास का अन्य विषयों—राजनीति शास्त्र, समाजशास्त्र, दर्शन, भूगोल और साहित्य—से गहरा संबंध है।

इतिहास केवल अतीत का विवरण नहीं है बल्कि यह वर्तमान और भविष्य को समझने का एक साधन भी है। कन्फ्यूशियस, थ्यूसीडाइड्स और बर्क जैसे चिंतकों ने इतिहास को जीवन के लिए शिक्षा और मार्गदर्शन का साधन माना है। इतिहास से हमें महान शासकों और विचारकों के व्यक्तित्व व कृतित्व से प्रेरणा मिलती है, जैसे चन्द्रगुप्त का कुशल प्रशासन, अशोक का मानवीय दृष्टिकोण या कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र'। औपनिवेशिक काल में इतिहास ने यह सिद्ध किया कि भारत जैसी प्राचीन सभ्यता का योगदान विश्व मानवता के लिए कितना महत्वपूर्ण रहा है। इतिहास हमें बताता है कि घृणा और संकीर्णता से पतन होता है, जबकि न्याय, परिश्रम और सहिष्णुता से समाज का उत्थान संभव है।

इतिहास का स्वरूप बहुआयामी है—यह विज्ञान भी है, कला भी और दर्शन भी। इतिहास की प्रकृति चक्रीय मानी जाती है, जिसमें उत्थान और पतन का क्रम चलता रहता है। इब्न खल्दून, स्पेंगलर और टॉयनबी जैसे इतिहासकारों ने संस्कृतियों के उदय और पतन को इस चक्रीय सिद्धांत से जोड़ा। हेगेल ने इतिहास को द्वंद्वात्मक संघर्ष की प्रक्रिया कहा, जबकि मार्क्स ने इसे वर्ग-संघर्ष के माध्यम से वर्गहीन समाज की ओर बढ़ता हुआ माना। आधुनिक दृष्टिकोण यह मानता है कि इतिहास नित्य परिवर्तनशील है और प्रत्येक पीढ़ी इसे नए सिरे से व्याख्यायित करती है। इस प्रकार इतिहास मानवता का दर्पण है, जो न केवल अतीत को संजोता है बल्कि वर्तमान को दिशा और भविष्य को दृष्टि भी प्रदान करता है।

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1. इतिहास की विषय-वस्तु की दार्शनिक अवधारणा
2. सार्वभौमिक इतिहास
3. आविष्कारों तथा तकनीकी विकास का इतिहास

3.14 पारिभाषिक शब्दावली

बिग बैंग थ्योरी – जॉर्ज लेमेत्रे द्वारा प्रतिपादित ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का सिद्धांत जिसके अनुसार ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति एक विस्फोट का परिणाम थी।

पीत्रा दुरा – इतालवी अलंकरण शैली - सफ़ेद संगमरमर पर रंगीन (बहुमूल्य अथवा अर्ध-बहुमूल्य) पत्थर की पच्चीकारी

इन-ले-वर्क – किसी एक रंग के पत्थर पर दूसरे रंग के पत्थर की पच्चीकारी

क्रूसेड – ईसाइयों द्वारा धर्म-विजय हेतु सैनिक-अभियान

वाइट मैन्स बर्डन – गौरांगों का सभी अश्वेतों को सभ्य बनाने का दायित्व। इन शब्दों का प्रथम प्रयोग, रुडयार्ड किपलिंग ने अपनी एक कविता में किया था।

कार्बन डेटिंग - रेडियो कार्बन के क्षरण के मापन द्वारा कार्बनिक पदार्थों की आयु निर्धारित करने की विधि

पारसी धर्म – जरथुस्त्र द्वारा विकसित अग्नि-पूजक धर्म

हेलेनिस्तिक सभ्यता – सिकंदर महान की ईरानी साम्राज्य पर तथा मध्य-पूर्व पर विजय के परिणामस्वरूप यूनानी सभ्यता के विस्तार के रूप में विकसित सभ्यता

इब्न खल्दूम – 13 वीं शताब्दी का महान अरब इतिहास-दार्शनिक जिसका ग्रन्थ 'मुकद्दमा', धर्म-निरपेक्ष इतिहास-लेखन का सशक्त प्रतिनिधित्व करता है।

सॉलोमन – महान यहूदी शासक जो कि अपनी बुद्धिमत्ता के लिए विख्यात है

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए

1. भारतीय दर्शन के अनुसार इतिहास का अर्थ
2. मार्क्सवादियों की दृष्टि में इतिहास की प्रकृति

3.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए इतिहास की विषय-वस्तु की दार्शनिक अवधारणा
2. देखिए सार्वभौमिक इतिहास
3. देखिए आविष्कारों तथा तकनीकी विकास का इतिहास
1. देखिए भारतीय दर्शन के अनुसार इतिहास का अर्थ
2. देखिए मार्क्सवादियों की दृष्टि में इतिहास की प्रकृति

3.16 सन्दर्भ ग्रन्थ

कॉलिंगवुड, आर. जी. 'दि आइडिया ऑफ़ हिस्ट्री' न्यूयॉर्क, 1993

गूच, जी0 पी0 - दि हिस्ट्री एण्ड दि हिस्टोरियन्स ऑफ़ दि नाइन्टीन्थ सेन्चुरी, लन्दन, 1913

इगर्स, जॉर्ज जी0, जेम्स, एम0 पावेल - लियोपोल्ड रैंके एण्ड दि शेपिंग ऑफ़ दि हिस्टोरिकल डिसिप्लिन, न्यूयॉर्क, 1990

श्रीधरन, ई0 - ए टैक्स्ट बुक ऑफ़ हिस्टोरियोग्राफी, नई दिल्ली, 2013

लियोपोल्ड वान रैंके (सम्पादन: इगर्स, जॉर्ज, जी0) - 'दि थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस ऑफ़ हिस्ट्री', न्यूयॉर्क, 2011

- कार, ई0 एच0 (अनुवादक: चक्रधर, अशोक) - 'इतिहास क्या है', नई दिल्ली, 1993
- थापर, रोमिला (सम्पादक) - 'इतिहास की पुनर्व्याख्या' नई दिल्ली, 1991
- बुद्धप्रकाश - 'इतिहास दर्शन' इलाहाबाद, 1962
- वर्मा, लालबहादुर - 'इतिहास के बारे में', इलाहाबाद, 2000
- शर्मा, रामविलास - 'इतिहास दर्शन', नई दिल्ली, 1995
- टोश, जॉन - 'दि पर्सूट ऑफ़ हिस्ट्री: एम्स, मेथड्स एंड न्यू डायरेक्शंस इन दि स्टडी ऑफ़ मॉडर्न हिस्ट्री' हालो, 1999
- लाल, के. बी. - 'पाश्चात्य दर्शन, वाराणसी, 1990,
- 'दि सोशल कॉन्ट्रैक्ट' (रूसो) अंग्रेजी अनुवाद - मॉरिस क्रेस्टन', लन्दन, 2007
- रेनियर, जी. जे. - 'हिस्ट्री: इट्स पर्पज एंड मेथड' न्यूयॉर्क, 1965
- चौबे, झारखंड - 'इतिहास-दर्शन', वाराणसी, 2015
- सिंह, परमानन्द - 'इतिहास-दर्शन, दिल्ली, 2013
- कॉलिंगवुड आर. जी. - 'दि मैप ऑफ़ नॉलिज', ऑक्सफ़ोर्ड, 1923
- लियोपोल्ड वान रैंके (सम्पादन: राजर वाइन्स) - 'दि सीक्रेट ऑफ़ वर्ड हिस्ट्री: सेलेक्टेड राइटिंग्स ऑन दि आर्ट एण्ड साइंस ऑफ़ हिस्ट्री', न्यूयॉर्क, 2010
- रैंके, लियोपोल्ड वान, 'यूनिवर्सल हिस्ट्री: दि ओलडेस्ट ग्रुप ऑफ़ नेशंस एंड दि ग्रीक्स', स्क्रिबनेर, 1883
- वेल्स, एच. जी. - 'दि आउटलाइन ऑफ़ हिस्ट्री: बीइंग ए प्लेन हिस्ट्री ऑफ़ लाइफ एंड मैनकाइंड' न्यूयॉर्क, 1921
- कॉम्टे, अगस्ते - 'पॉजिटिव फ़िलोसोफी' (अंग्रेजी अनुवाद - मार्तेन्यू एच., लन्दन, 1961

3.17 निबंधात्मक प्रश्न

1. इतिहास के प्रेरक प्रसंग किस प्रकार हमारे दृष्टिकोण को व्यापक बनाते हैं? सोदाहरण व्याख्या कीजिए.
2. अन्य विषयों से इतिहास के संबंधों पर चर्चा कीजिए.

इकाई 4: लोक प्रशासन का अर्थ, परिभाषा, सिद्धान्त, विषय-क्षेत्र एवं प्रकृति

इकाई की संरचना

- 4.0 प्रस्तावना
- 4.1 उद्देश्य
- 4.2 लोक प्रशासन का अर्थ एवं परिभाषा
- 4.3 लोक प्रशासन की प्रमुख विशेषताएं
- 4.4 लोक प्रशासन की प्रकृति
 - 4.4.1 एकीकृत एवं प्रबन्धकीय दृष्टिकोण
 - 4.4.2 लोक प्रशासन विज्ञान है या कला
- 4.5 लोक प्रशासन का विषय क्षेत्र
 - 4.5.1 संकुचित दृष्टिकोण
 - 4.5.2 व्यापक दृष्टिकोण
 - 4.5.3 पोस्टकार्ब दृष्टिकोण
 - 4.5.3 आदर्शवादी दृष्टिकोण
- 4.6 लोक प्रशासन का महत्व
- 4.7 सारांश
- 4.8 शब्दावली
- 4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 4.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 4.12 निबंधात्मक प्रश्न

4.0 प्रस्तावना

किसी भी विषय का अध्ययन प्रारम्भ करते समय विद्यार्थी सर्वप्रथम विषय की आधारभूत बातों से परिचित होना चाहते हैं। आप अपने दिनपर दिन के अनेक कार्यों के सन्दर्भ में प्रशासन के सम्पर्क में आते होंगे और इतना तो जानते ही होंगे कि प्रशासन वह संगठन है जो हमारे जीवन की विभिन्न क्रियाओं को नियंत्रित एवं प्रभावित करता है। एक क्रिया के रूप में लोक प्रशासन उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव का संगठित जीवन। किन्तु अध्ययन के एक विषय के रूप में इसका विकास आधुनिक काल में हुआ है, प्रारंभिक काल में लोक प्रशासन का कार्य शांति एवं व्यवस्था बनाये रखना, अपराध रोकना तथा पारस्परिक विवादों को सुलझाने जैसे कार्यों तक सीमित था। किन्तु आधुनिक लोक कल्याणकारी राज्यों में इसका कार्य-क्षेत्र एवं प्रभाव कई गुणा बढ़ गया है, शासन का स्वरूप चाहे कैसा भी हो, लोक प्रशासन राजनितिक व्यवस्था का एक अपरिहार्य तत्व है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ सकेंगे कि लोक प्रशासन क्या है, इसके अन्तर्गत किन विषयों का अध्ययन किया जाता है तथा इसका हमारे व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक जीवन में क्या महत्व है?

4.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

1. लोक प्रशासन के अर्थ को समझ सकेंगे तथा इसकी परिभाषा कर सकेंगे।
2. लोक प्रशासन की प्रमुख विशेषताओं को रेखांकित कर सकेंगे।
3. लोक प्रशासन की प्रकृति को स्पष्ट कर सकेंगे।
4. लोक प्रशासन के महत्व पर प्रकाश डाल सकेंगे।

4.2 लोक प्रशासन का अर्थ एवं परिभाषा

लोक प्रशासन, प्रशासन का एक विशिष्ट अंग है। प्रशासन एक सुनिश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए मनुष्यों द्वारा परस्पर सहयोग का नाम है। इसका अर्थ है 'कार्यों का प्रबन्ध करना अथवा लोगों की देखभाल करना।' यह एक व्यापक प्रक्रिया है, जो सभी सामूहिक कार्यों के विषय में चाहे सार्वजनिक हो या व्यक्तिगत, नागरिक हो या सैनिक, बड़े कार्य हों या छोटे, सभी के सम्बन्ध में लागू होता है। दूसरे शब्दों में प्रशासन शब्द के अंतर्गत निजी एवं सरकारी गतिविधियों का प्रबन्धन सम्मिलित है। इस अर्थ में प्रशासन को विश्व विद्यालयों, चिकित्सालयों, व्यापारिक कम्पनियों, विभिन्न सरकारी विभागों आदि में देखा जा सकता है। लोक प्रशासन, प्रशासन का वह भाग है जिसका सम्बन्ध शासन की गतिविधियों से होता है। व्यक्तिगत प्रशासन के विपरीत यह शासकीय कार्यों का प्रबन्धन है। एक विशिष्ट राजनैतिक व्यवस्था के अंतर्गत लोक प्रशासन राजनीतिक निर्णयों को कार्यरूप में परिवर्तित करने का एक साधन है। इसके द्वारा "सरकार के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति होती है" इसका सम्बन्ध सार्वजनिक समस्याओं से है। यह लोक हित के लिए सरकार द्वारा किया गया संगठित प्रयास है। यह राजनीतिक प्रक्रिया का भी एक भाग है, क्योंकि लोक नीति के निर्धारण में यह महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। समाज को सुविधायें प्रदान करने हेतु अनेक निजी समूहों और व्यक्तियों से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह निजी प्रशासन से कई दृष्टियों से भिन्न है।

अध्ययन के एक विषय के रूप में लोक प्रशासन सामाजिक विज्ञान की वह शाखा है जो मुख्य रूप से शासन के क्रियाकलापों तथा प्रक्रियाओं से सम्बन्ध रखता है। इसे जन प्रशासन, सार्वजनिक प्रशासन या सरकारी प्रशासन भी कहा जाता है। 'लोक' शब्द का प्रयोग सार्वजनिकता का सूचक है तथा इस विषय को एक विशिष्टता प्रदान करता है। सरकार के तीन अंग होते हैं: व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका। क्या लोक प्रशासन में सरकार के तीनों अंगों का अध्ययन किया जाना चाहिए? इस विषय पर विद्वानों में मतभेद है, जिसके कारण लोक प्रशासन की अलग-अलग परिभाषाएँ की गयी हैं।

लोक प्रशासन की कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं-

“लोक प्रशासन में वे सभी कार्य आ जाते हैं, जिनका उद्देश्य सार्वजनिक नीतियों को पूरा करना अथवा क्रियान्वित करना होता है”- एल0डी0 व्हाइट

“कानून को विस्तृत एवं क्रमबद्ध रूप से क्रियान्वित करने का नाम ही लोक प्रशासन है। कानून को क्रियान्वित करने की प्रत्येक क्रिया एक प्रशासकीय क्रिया है।”- वुडरो विल्सन

“साधारण प्रयोग में लोक प्रशासन का अर्थ उन क्रियाओं से है जो राष्ट्रीय, प्रान्तीय तथा स्थानीय सरकारों की कार्यपालिका शाखाओं द्वारा सम्पादित की जाती है।”- एच0 साइमन

“सामान्यतः लोक प्रशासन, प्रशासन विज्ञान का वह भाग है जो शासन से विशेषकर इसके कार्यपालिका पक्ष से सम्बन्धित है जहाँ सरकार का कार्य किया जाता है। यद्यपि विधायिका एवं न्यायपालिका से सम्बन्धित समस्याएँ भी स्पष्ट रूप से प्रशासकीय समस्याएँ ही हैं।” - लूथर गुलिक

उपर्युक्त परिभाषाओं के अवलोकन से स्पष्ट है कि लोक प्रशासन शब्द का प्रयोग संकुचित तथा व्यापक दोनों सन्दर्भों में किया जाता है। संकुचित सन्दर्भ में, इसका प्रयोग केवल कार्यपालिका द्वारा किये जाने वाले कार्यों के सन्दर्भ में किया जाता है। व्यापक सन्दर्भ में, लोक प्रशासन को सरकार अर्थात् व्यवस्थापिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के कार्यों के समग्र अध्ययन से जोड़ा गया है। मोटे तौर पर एल0डी0 व्हाइट के इस कथन से सहमति व्यक्त की जा सकती है कि “लोक प्रशासन में वे सभी कार्य आ जाते हैं जिनका उद्देश्य लोक नीति को पूरा करना अथवा क्रियान्वित करना होता है।”

4.3 लोक प्रशासन की प्रमुख विशेषताएँ

लोक प्रशासन का अर्थ एवं इसकी विभिन्न परिभाषाओं को जानने के उपरान्त आप इसकी प्रमुख विशेषताओं को निम्नलिखित रूपों में रेखांकित कर सकते हैं-

1. लोक प्रशासन, प्रशासन का वह भाग है जिसका सम्बन्ध लोक नीतियों को कार्यरूप में परिणत करने से है।
2. यह सार्वजनिक हित के लिए व्यक्ति तथा उसके साधनों का संगठित प्रयास है।
3. इसके अंतर्गत व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका तीनों शाखाएं और उनके परस्पर सम्बन्ध आते हैं, किन्तु औपचारिक रूप से यह सरकारी अधिकारीतंत्र पर ही विशेष रूप से- केन्द्रित होता है।
4. आधुनिक काल में लोक नीति के निर्धारण में भी यह महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
5. इसका उद्देश्य निश्चित नियमों के अनुसार सरकारी कार्यों का निर्देशन तथा संचालन है।
6. यह किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जाने वाला कार्य है।
7. प्रशासन करने वाले व्यक्ति के पास अधिकार का होना आवश्यक है। इसी के आधार पर वह दूसरों से किसी कार्य में सहयोग प्राप्त करता है।
8. इसमें एक से अधिक व्यक्तियों के सहयोग से कार्य किया जाता है। एक व्यक्ति द्वारा किये गये कार्य को लोक प्रशासन की संज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती है।
9. यह निजी प्रशासन से कई दृष्टियों में भिन्न है।
10. समाज को सुविधायें प्रदान करने की प्रक्रिया में यह निजी समूहों और व्यक्तियों से निकट सम्बन्ध रखता है।

4.4 लोक प्रशासन की प्रकृति

अब तक आप यह समझ चुके होंगे कि लोक प्रशासन का अर्थ क्या है? अब हम इस विषय की प्रकृति पर विचार करेंगे।

लोकप्रशासन एक गतिशील विषय है जिसकी प्रकृति में निरन्तर परिवर्तन होता रहा है। इस विषय के स्वरूप पर बदलती हुई सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों एवं अन्य संबंधित सामाजिक विज्ञानों का व्यापक प्रभाव पड़ा है। सामान्यतया लोक प्रशासन की प्रकृति पर दो दृष्टियों से विचार किया जाता है- प्रथम इस दृष्टि से कि

इस विषय के अंतर्गत किन क्रियाकलापों का अध्ययन किया जाना चाहिए और दूसरे इस दृष्टि से कि यह विज्ञान है या कला या दोनों का समन्वित रूप।

4.4.1 एकीकृत एवं प्रबन्धकीय दृष्टिकोण

लोक प्रशासन की परिभाषा की तरह इसकी प्रकृति के विश्लेषण के सम्बन्ध में भी विद्वान एकमत नहीं है। इस सम्बन्ध में मुख्यतया दो दृष्टिकोण हैं जिन्हें एकीकृत तथा प्रबन्धकीय दृष्टिकोण कहा जा सकता है।

एकीकृत दृष्टिकोण के अनुसार किसी निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सम्पादित की जाने वाली क्रियाओं का समग्रीकरण का योग ही प्रशासन है चाहे वे क्रियाएँ लेखन, प्रबन्धन या सफाई सम्बन्धी ही क्यों न हो। इस प्रकार उपक्रम अथवा उद्यम विशेष में कार्यरत संदेशवाहक, फोरमैन, चौकीदार, सफाई कर्मचारी तथा शासन के सचिवों एवं प्रबन्धकों तक के कार्य को प्रशासन का भाग माना गया है। इस दृष्टिकोण में उपक्रम में कार्यरत छोटे कर्मचारियों से लेकर बड़े अधिकारियों तक के कार्यों को प्रशासन का भाग माना जाता है। व्हाइट इसी दृष्टिकोण के समर्थक है। दूसरी ओर प्रबन्धकीय दृष्टिकोण केवल उन्हीं लोगों के कार्यों को प्रशासन मानता है, जो किसी उपक्रम सम्बन्धी केवल प्रबन्धकीय कार्यों का सम्पादन करते हैं। प्रबन्धकीय कार्य का लक्ष्य उपक्रम के विभिन्न क्रियाओं का एकीकरण, नियन्त्रण तथा समन्वय करना होता है। साइमन, स्मिथबर्ग तथा थॉमसन इस दृष्टिकोण के समर्थक हैं। उनके मतानुसार “प्रशासन शब्द अपने संकुचित अर्थों में आचरण के उन आदर्शों को प्रकट करने के लिए प्रयोग किया जाता है, जो अनेक प्रकार के सहयोगी समूहों में समान रूप से पाये जाते हैं।” लूथर गुलिक के अनुसार, “प्रशासन का सम्बन्ध कार्य पूरा किये जाने और निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति से है।”

उपर्युक्त दोनों दृष्टिकोणों में मौलिक अन्तर है। एकीकृत दृष्टिकोण को स्वीकार करने पर हमें किसी उद्यम में लगे सभी कर्मचारियों के कार्यों को प्रशासन के अंतर्गत मानना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त, विषय-वस्तु के अन्तर के कारण एक क्षेत्र का प्रशासन दूसरे क्षेत्र के प्रशासन से भिन्न होगा। जैसे- शिक्षा के क्षेत्र का प्रशासन लोक निर्माण के प्रशासन से भिन्न होगा। दूसरी तरफ प्रबन्धकीय दृष्टिकोण को स्वीकार करने पर प्रशासन प्रबन्धन की तकनीक बनकर रह जाती है। प्रबन्धक का कार्य संगठन करना तथा उद्देश्य की प्राप्ति हेतु जन तथा साधन सामग्री का प्रयोग करना है। यह दृष्टिकोण प्रशासन को अपने आप में भिन्न तथा पृथक् क्रिया मानता है तथा प्रत्येक क्षेत्र के प्रशासन को एक ही दृष्टि से देखता है।

अब आपके मन में यह दुविधा उत्पन्न हो गयी होगी कि उपर्युक्त दोनों दृष्टिकोणों में किसे उपयुक्त माना जाय? वास्तव में उपर्युक्त दोनों दृष्टिकोणों में किसी की भी पूर्णतः उपेक्षा नहीं की जा सकती। सच तो यह है कि प्रशासन का ठीक अर्थ उस प्रसंग पर निर्भर करता है जिस सन्दर्भ में शब्द का प्रयोग किया जाता है। अध्ययन विषय के रूप में प्रशासन उन सरकारी प्रयत्नों के प्रत्येक पहलू की परीक्षा करता है, जो कानून तथा लोक नीति को क्रियान्वित करने हेतु सम्पादित किये जाते हैं। एक प्रक्रिया के रूप में इससे वे सभी प्रयत्न आ जाते हैं जो किसी संस्थान में अधिकार-क्षेत्र प्राप्त करने से लेकर अंतिम ईंट रखने तक उठाये जाते हैं तथा व्यवसाय के रूप में यह किसी भी सार्वजनिक संस्थान के क्रियाकलापों का संगठन तथा संचालन करता है।

4.4.2 लोक प्रशासन विज्ञान है या कला

लोक प्रशासन की प्रकृति को पूर्ण रूप से समझने के लिए आपको यह भी जानना होगा कि यह विषय कला है अथवा विज्ञान अथवा दोनों का समन्वित रूप। एक प्रक्रिया के रूप में लोक प्रशासन को सामान्यतया एक कला समझा जाता है। कला का अपना कौशल होता है और वह व्यवस्थित ढंग से व्यवहार में लायी जाती है। प्रशासन

एक विशेष क्रिया है जिसमें एक विशेष ज्ञान तथा तकनीकीकौशल की आवश्यकता होती है। अन्य कलाओं की भाँति प्रशासन को भी अभ्यास से सीखा जा सकता है। वर्तमान में प्रशासनिक दक्षता के लिए 'निपुण' तथा 'विशिष्ट' प्रकार के दक्ष लोगों की आवश्यकता सरकार के विभिन्न आयामों में महसूस की जा रही है। प्रशासनिक कला में निपुणता हासिल करने के लिए व्यक्ति में धैर्य, नियन्त्रण, हस्तान्तरण, आदेश की एकता आदि गुणों का होना आवश्यक है। इन गुणों के अभाव में प्रशासक अपने कर्तव्यों का सफलतापूर्वक निष्पादन नहीं कर सकता। लूथर गुलिक के अनुसार "एक अच्छे प्रशासक को 'पोस्टकार्ड' तकनीकों में पारंगत होना चाहिए।" जो विचारक प्रशासन को कला नहीं मानते, उनका तर्क है कि प्रशासन की सफलता और असफलता मानवीय वातावरण एवं परिस्थितियों पर निर्भर करती है। एक स्थान पर एक प्रशासक उन्हीं तकनीकों से सफल हो जाता है और दूसरे स्थान पर असफल हो जाता है। यह सच है कि सामाजिक और मानवीय पर्यावरण प्रशासन की कार्यकुशलता को उसी प्रकार प्रभावित करते हैं जिस प्रकार खेल का मैदान बदलने पर नया वातावरण खिलाड़ी के कौशल को प्रभावित करता है। किन्तु प्रशासन एक कौशल है। प्रत्येक व्यक्ति इस कौशल को हासिल नहीं कर सकता। प्रशिक्षण और अभ्यास के बाद ही इस उच्चतम कला को ग्रहण किया जा सकता है। अतः यह कहना उचित होगा कि लोक प्रशासन एक कला है।

अब प्रश्न यह उठता है कि इस विषय को विज्ञान का दर्जा दिया जाय या नहीं। यह एक विवादित प्रश्न है तथा इसका उत्तर इस बात पर निर्भर करता है कि हम विज्ञान शब्द का प्रयोग किस अर्थ में करते हैं। साधारणतः विज्ञान शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है- व्यापक और संकीर्ण।

व्यापक अर्थ में इस शब्द का प्रयोग 'अनुभव एवं पर्यवेक्षण से प्राप्त क्रमबद्ध ज्ञान' के रूप में किया जाता है। इसी अर्थ में हम सामाजिक विज्ञानों को जिनमें राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, आदि शामिल हैं, विज्ञान की संज्ञा प्रदान करते हैं। दूसरे अर्थ में विज्ञान, ज्ञान का वह निकाय है जो ऐसे परिशुद्ध सामान्य सिद्धान्तों की स्थापना करता है जिनके आधार पर एक बड़ी सीमा तक परिणामों के सम्बन्ध में पूर्वकथन किया जा सकता है। इस प्रकार के विज्ञानों को 'शुद्ध विज्ञान' के नाम से पुकारा जाता है, जैसे- भौतिकी, रसायनशास्त्र और गणित। सामान्यता लोक प्रशासन को एक 'सामाजिक विज्ञान' माना जाता है, यद्यपि इस विषय पर सभी विद्वान एकमत नहीं हैं। विद्वानों का एक ऐसा वर्ग भी है जो इस विषय को विज्ञान नहीं मानते। ऐसे विद्वानों द्वारा निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं-

मानवीय क्रियाओं से सम्बन्धित हो ने के कारण लोक प्रशासन के नियम कम विश्वसनीय होते हैं। ये स्थान और काल के अनुसार बदलते रहते हैं।

1. लोक प्रशासन के क्षेत्र में सर्वसम्मत एवं सार्वभौमिक सिद्धान्तों का अभाव है।
2. विज्ञान की भाँति लोक प्रशासन के पास कोई ऐसी प्रयोगशाला नहीं है जहाँ पूर्व अर्जित तथ्यों की सत्यता स्थापित की जा सके।
3. विज्ञान में नैतिक मूल्यों एवं आदर्शों का कोई स्थान नहीं होता जबकि लोक प्रशासन के सिद्धान्त निरन्तर प्रशासकीय क्रिया की तथ्यपरक एवं आदर्शपरक धारणाओं, अर्थात् 'क्या है' और 'क्या होना चाहिए' के बीच झूलते रहते हैं।
4. इसमें पूर्व कथनीयता अर्थात् भविष्यवाणी करने की क्षमता का अभाव है।
5. प्रशासकीय आचरण न तो पूर्णतः विवेकनिष्ठ होता है और न ऐसा होना सम्भव ही है। ऐसी स्थिति में उसके विज्ञान होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

इसमें कोई दो राय नहीं कि संकीर्ण अर्थ में लोक प्रशासन को विज्ञान की संज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती, परन्तु विषय से सम्बद्ध अधिकांश विद्वानों में इस बात पर मतैक्य पाया जाता है कि व्यापक अर्थ में लोक प्रशासन के विज्ञान होने के दावे को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

लोक प्रशासन के विज्ञान होने के समर्थन में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं-

1. एक विषय के रूप में लोक प्रशासन, प्रशासन से सम्बन्धित ज्ञान का क्रमबद्ध अध्ययन करता है।
2. इस विषय के अध्ययन के लिए लगभग सुनिश्चित क्षेत्र निर्धारित कर लिया गया है तथा इस आधार पर इसे अन्य शास्त्रों से पृथक किया जा सकता है।
3. गत वर्षों में प्रशासन के क्षेत्र में जो पर्यवेक्षण, परीक्षण तथा अनुसंधान हुये हैं, उनके परिणामस्वरूप अनेक सुनिश्चित अवधारणाएँ तथा परिकल्पनाएँ विकसित हुई हैं।
4. भारी संख्या में ऐसे तथ्यों का संग्रह कर लिया गया है, जिन पर वैज्ञानिक अध्ययन की पद्धतियों का प्रयोग किया जा रहा है।
5. अन्य सामाजिक विज्ञानों की भाँति लोक प्रशासन में भी कुछ ऐसे सामान्य सिद्धान्त विकसित किये जा चुके हैं, जो प्रभावी शासन की स्थापना के लिए पथ प्रदर्शक का काम कर सकते हैं।
6. यह विषय तथ्यों एवं घटनाओं की वैज्ञानिक विवेचना करता है और इसके माध्यम से प्रशासक अनुमान लगा सकते हैं कि इन घटनाओं के क्या परिणाम होंगे अर्थात् इसमें ?ें भविष्यवाणी करने की क्षमता है।
7. इस विषय से सम्बन्धित घटनाओं का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करने के उपरान्त इस प्रकार के कारण खोजे की जा सकती हैं, जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि समान कारणों का काफी बड़ी सीमा तक समान प्रभाव होता है। उक्त सन्दर्भ में सच तो यह है कि प्रत्येक ज्ञान के दो पहलू होते हैं एक कला - का और दूसरा विज्ञान का। उदाहरण के लिए, फोटोग्राफी अथवा औषधि विज्ञान कला भी है और विज्ञान भी। इसी प्रकार लोक प्रशासन विज्ञान और कला दोनों का समन्वित रूप है। चार्ल्स बेयर्ड के अनुसार, लोक प्रशासन उतना ही विज्ञान है जितना कि अर्थशास्त्र। उनके मत में जिस प्रकार प्राकृतिक विज्ञानों के क्षेत्र में अनुसंधान, वैज्ञानिक समितियों तथा वैज्ञानिकों द्वारा ज्ञान एवं परिकल्पनाओं के आदानप्रदान ने - ज्ञान की परिशुद्धता में वृद्धि की है, उसी प्रकार हम यह आशा कर सकते हैं कि प्रशासन के क्षेत्र में भी अनुसंधान, प्रशासकीय समितियों तथा प्रशासकों के पारस्परिक आदानप्रदान भी ज्ञान की परिशुद्धता में - वृद्धि करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि लोक प्रशासन केवल तथ्यों अर्थात् 'क्या है' का ही अध्ययन नहीं करता, वरन् आदर्शों अर्थात् 'क्या हो ना चाहिए' का भी अध्ययन करता है। इस प्रकार अन्य सामाजिक विज्ञानों की भाँति यह तथ्यपरक एवं आदर्शपरक दोनों प्रकार का विज्ञान हो सकता है। अपने पारंपरिक रूप में यह एक तथ्यपरक विज्ञान ही बना रहा है। परन्तु आधुनिक विचारकों ने इस दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं किया। उनका कहना है कि प्रशासन का ध्येय श्रेष्ठ प्रशासन है। इस धारणा को स्वीकार कर लेने के बाद यह प्रश्न सहज ही उठता है कि श्रेष्ठ प्रशासन की कसौटी क्या है? स्पष्टतः इन प्रश्नों में प्रयोजनों और मूल्यों की समस्या निहित है और यह प्रश्न लोक प्रशासन को आदर्शमूलक अध्ययन का स्वरूप प्रदान करता है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि लोक प्रशासन एक प्रगतिशील विज्ञान है, जिसके निष्कर्ष अथवा सिद्धान्त भी नये अनुसंधान तथा नये अनुभव के अनुसार अपने आप को भी बदल डालते हैं। यह सही है कि समय-समय पर

प्रतिपादित किये जाने वाले विभिन्न मतों से लोक प्रशासन की समस्या के बारे में सही समझ कायम करने में सहायता मिली है, तथापि उनके सम्बन्ध में पूर्णता का दावा नहीं किया जा सकता है।

4.5 लोक प्रशासन का विषय क्षेत्र

लोक प्रशासन की प्रकृति को समझने के उपरान्त आप यह जानेंगे कि इस विषय के अंतर्गत किन तथ्यों तथा समस्याओं का अध्ययन किया जाता है, अर्थात् लोक प्रशासन का अध्ययन क्षेत्र क्या है? जिस प्रकार आपने इस विषय की परिभाषा तथा इसके स्वरूप के सम्बन्ध में विद्वानों में तीव्र मतभेद पाया, उसी प्रकार का मतभेद विषय के अध्ययन क्षेत्र के सम्बन्ध में भी पाया जाता है। वास्तव में, परिवर्तन के इस युग में लोक प्रशासन जैसे गतिशील विषय का क्षेत्र निर्धारित करना अत्यन्त मुश्किल कार्य है। मोटे तौर पर इस सम्बन्ध में निम्नलिखित दृष्टिकोण प्रचलित हैं-

4.5.1 संकुचित दृष्टिकोण

इस दृष्टिकोण के अनुसार लोक प्रशासन का सम्बन्ध शासन की कार्यपालिका शाखा से है, इसलिए इसके अंतर्गत केवल कार्यपालिका से सम्बन्धित कार्यों का अध्ययन किया जाना चाहिए। हर्वर्ट साइमन तथा लूथर गुलिक जैसे विद्वान इस दृष्टिकोण के समर्थक हैं। इस दृष्टिकोण को स्वीकार करने पर लोक प्रशासन के क्षेत्र के अंतर्गत निम्नलिखित बातें सम्मिलित की जा सकती हैं- कार्यरत कार्यपालिका अर्थात् असैनिक कार्यपालिका का अध्ययन, सामान्य प्रशासन का अध्ययन, संगठन सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन, कार्मिक प्रशासन का अध्ययन, वित्तीय प्रशासन का अध्ययन और प्रशासनिक उत्तरदायित्व एवं उपलब्धियों का अध्ययन।

4.5.2 व्यापक दृष्टिकोण

यह दृष्टिकोण लोक प्रशासन के क्षेत्र के अंतर्गत उन सभी क्रियाओं के अध्ययन पर बल देता है जिनका उद्देश्य लोक नीति को पूरा करना अथवा क्रियान्वित करना होता है। दूसरे शब्दों में इस दृष्टिकोण के अनुसार लोक प्रशासन के अंतर्गत सरकार के तीनों अंगों- कार्यपालिका, व्यवस्थापिका एवं न्यायपालिका से सम्बन्धित कार्यों का अध्ययन किया जाना चाहिए। निग्रो, व्हाइट, मार्क्स, विलोबी आदि विद्वान इस दृष्टिकोण के समर्थक हैं। इस दृष्टिकोण को स्वीकार करने पर लोक प्रशासन के विषय क्षेत्र की व्याख्या में निम्नलिखित बातें दृष्टिगोचर होती हैं- 1. समाज के सहयोगात्मक प्रयास का अध्ययन, 2. सरकार के तीनों अंगों का अध्ययन, 3. लोक नीति के निर्माण एवं क्रियान्वयन का अध्ययन, 3. प्रशासन के सम्पर्क में आने वाले निजी संगठनों एवं व्यक्तियों के व्यवहार का अध्ययन।

4.5.3 पोस्टकार्ड दृष्टिकोण

इस दृष्टिकोण के प्रमुख प्रणेता लूथर गुलिक हैं। यद्यपि गुलिक से पहले उर्विक, हेनरी फेयोल इत्यादि विद्वानों ने भी पोस्टकार्ड दृष्टिकोण अपनाया था, किन्तु इन विचारों को सुव्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करने का श्रेय गुलिक को जाता है। पोस्टकार्ड शब्द अंग्रेजी के सात शब्दों के प्रथम अक्षरों से मिलकर बना है। ये शब्द निम्नवत हैं- 1. Planning- योजना बनाना, 2. Organization- संगठन बनाना, 3. Staffing- कर्मचारियों की व्यवस्था करना, 3. Directing- निर्देशन करना, 4. Coordinaton- समन्वय करना, 6. Reporting- रपट देना और 7. Budgeting- बजट तैयार करना।

4.5.3 आदर्शवादी दृष्टिकोण

यह दृष्टिकोण इस मान्यता पर आधारित है कि लोककल्याणकारी राज्य और लोक प्रशासन में कोई अन्तर नहीं है। जिस प्रकार लोक कल्याणकारी राज्य का उद्देश्य जनता का हित करना है, ठीक उसी प्रकार लोक प्रशासन का अर्थ जनता के हित में सरकार के कल्याणकारी कार्यों को मूर्त रूप प्रदान करना है। लोक प्रशासन एक व्यापक विषय है और इसके अंतर्गत जनहित में किये जाने वाले समस्त कार्यों का अध्ययन किया जाना चाहिए। उपर्युक्त दृष्टिकोण की समीक्षा करने पर आपको यह स्पष्ट हो जायेगा कि इनमें से कोई भी दृष्टिकोण पूर्ण नहीं है।

प्रथम दृष्टिकोण लोक प्रशासन को शासन की कार्यपालिका शाखा से सम्बन्धित मानता है, लेकिन यथार्थ में यह केवल कार्यपालिका शाखा का ही अध्ययन नहीं है, बल्कि इससे बहुत ज्यादा है। दूसरे व्यापक दृष्टिकोण के मुताबिक लोक प्रशासन में सरकार के तीनों अंगों को शामिल किया गया है जिसे भी पूर्णतः उचित नहीं कहा जा सकता है। अगर इस दृष्टिकोण को माना जाए तो लोक प्रशासन अस्पष्ट विषय बनकर रह जायेगा। तीसरे दृष्टिकोण, जिसे 'पोस्टडॉर्ब' का नाम दिया जाता है इस आधार पर आलोचना की जा सकती है कि यह केवल प्रशासन की तकनीकों से सम्बन्धित है, उसके पाठ्य विषय से नहीं। इस दृष्टिकोण में यह भी कमी है कि इसमें मानवीय पहलू की उपेक्षा की गयी है। अंत में चौथा दृष्टिकोण आदर्शवादी दृष्टिकोण भी सही नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह लोक प्रशासन के वास्तविक क्षेत्र का विवेचन नहीं करके भविष्य में बनने वाले लोक प्रशासन के क्षेत्र का काल्पनिक वर्णन करने लगता है।

स्पष्टतः उपर्युक्त दृष्टिकोणों में किसी एक को पूर्णतः सही मानना ठीक नहीं है, परन्तु सत्यता का अंश सभी में है। यानि लोक प्रशासन सरकार के तीनों अंगों से सम्बन्धित है, परन्तु कार्यपालिका से ज्यादा जुड़ा हुआ है। इसमें 'पोस्टडॉर्ब' की प्रक्रिया अपनायी जाती है और इसका भावी स्वरूप विस्तृत और व्यापक है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि लोक प्रशासन में निम्नलिखित विषय क्षेत्रों का अध्ययन किया जाना चाहिए-

- सार्वजनिक कार्मिक प्रशासन का अध्ययन,
- सार्वजनिक वित्तीय प्रशासन का अध्ययन,
- प्रशासनिक अथवा संगठनात्मक सिद्धान्तों का अध्ययन,
- तुलनात्मक लोक प्रशासन का अध्ययन,

4.6 लोक प्रशासन का महत्व

किसी भी विषय के अध्ययनकर्ता सम्बन्धित विषय के अध्ययन में दिलचस्पी तभी लेते हैं, जबकि वह विषय उन्हें महत्वपूर्ण एवं उपयोगी प्रतीत होता है। लोक प्रशासन के इस विषय का अध्ययन करते समय आप भी विषय के महत्व को जानने को इच्छुक होंगे। राजनीतिक व्यवस्था का स्वरूप किसी भी प्रकार का हो, लोक प्रशासन एक अनिवार्यता है। आधुनिक युग में इसका महत्व इतना अधिक बढ़ गया है कि यह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करता है। यही कारण है कि सामाजिक विज्ञानों में लोक प्रशासन ने अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थिति प्राप्त कर ली है और प्रशासनिक व्यवस्था की आधारशिला के साथ-साथ सभ्यता की पहचान बन गया है। यह न केवल एक सैद्धान्तिक विषय है बल्कि सभ्य समाजों में व्यक्ति तथा सरकार के बीच औपचारिक सम्बन्धों को स्पष्ट करने वाला आवश्यक ज्ञान है। इस सम्बन्ध में चार्ल्स बेयर्ड ने ठीक ही कहा है कि “प्रशासन के विषय से अधिक महत्वपूर्ण अन्य कोई विषय नहीं हो सकता है। मेरे विचार से शासन तथा हमारी सभ्यता का

भविष्य इसी बात पर निर्भर करता है कि सभ्य समाज के कार्यों की पूर्ति के लिए प्रशासन का दार्शनिक, वैज्ञानिक तथा व्यावहारिक स्वरूप कितना विकसित होता है।”

लोक प्रशासन, प्रशासन का एक महत्वपूर्ण उपकरण है। देश में शांति एवं सुव्यवस्था स्थापित करना तथा नागरिकों को सुरक्षा प्रदान करना, पारंपरिक रूप से लोक प्रशासन के महत्वपूर्ण कार्य रहे हैं। आधुनिक काल में व्यक्ति की अपेक्षाओं, महत्वाकांक्षाओं तथा आवश्यकताओं में वृद्धि के साथ-साथ लोक प्रशासन का दायित्व भी बढ़ गया है। इसे कई अन्य चुनौतीपूर्ण कार्यों का सम्पादन करना पड़ता है। देश के विकास और प्रगति को आगे बढ़ाने के लिए सुचारू रूप से संचालन के लिए तथा इनके मार्ग में आने वाली समस्याओं से जूझने के लिए लोक प्रशासन अत्यन्त आवश्यक है। यह विकास एवं परिवर्तन का भी एक प्रमुख उपकरण बन गया है।

आज राज्य का स्वरूप लोककल्याणकारी है तथा यह जनता के उत्थान के लिए बहुमुखी योजनाएं चलाती है। इन योजनाओं की सफलता प्रशासन की कार्यकुशलता एवं निष्पक्षता पर निर्भर करती है। योजनाओं को लागू करने का कार्य लोक सेवकों द्वारा सम्पन्न किया जाता है। ऐसी स्थिति में राज्य और लोक प्रशासन में अन्तर नहीं रह गया है। डिमॉक के अनुसार “लोक प्रशासन सभ्य समाज का आवश्यक अंग तथा आधुनिक जीवन का एक प्रमुख तत्व है और इसने राज्य के उस स्वरूप को जन्म दिया है जिसे ‘प्रशासकीय राज्य’ कहा जाता है। वस्तुतः लोक प्रशासन व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक सम्पादित होने वाले तमाम कार्यों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।”

आज लोक प्रशासन सामाजिक परिवर्तन का भी एक प्रमुख साधन बन गया है। विकासशील देशों की परम्परागत जीवन शैली, अंधविश्वास रूढ़ियों तथा कुरीतियों में परिवर्तन लाना एक सामाजिक आवश्यकता है। सुनियोजित सामाजिक परिवर्तन के लिए शिक्षा, राजनीतिक चेतना, आर्थिक विकास, कानून, दबाव समूह तथा स्वयंसेवी संगठनों सहित प्रशासन भी एक उपकरण माना जाता है। सामाजिक परिवर्तन का हथियार होने के साथ-साथ लोक प्रशासन सामाजिक नियन्त्रण का माध्यम भी है। सामाजिक नियन्त्रण का तात्पर्य उस ढंग से है जिसके द्वारा सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था की एकता तथा स्थायित्व को बनाया रखा जा सके और जिसमें सामाजिक व्यवस्था परिवर्तनशील रहते हुए क्रियाशील रहे। हमारे देश में गरीबी, भूखमरी, बेरोजगारी, शोषण, महिला अत्याचार, बाल अपराध, दहेज, छुआछूत, आदि जैसी सामाजिक समस्याएँ विद्यमान हैं। ऐसी जटिल एवं व्यापक सामाजिक समस्याओं एवं कुरीतियों का समाधान केवल सरकार द्वारा निर्मित सामाजिक नीतियों एवं सामाजिक कानूनों द्वारा ही संभव है और इन नीतियों एवं कानूनों को क्रियान्वित करने में लोक प्रशासन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। लोक प्रशासन की भूमिका केवल नीतियों के क्रियान्वयन तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उसके निर्धारण में भी यह महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। नीतियों के निर्माण की औपचारिक जिम्मेदारी भले ही राजनीतिज्ञों की हो, लेकिन अपने विशिष्ट ज्ञान प्रशिक्षण तथा अनुभव के कारण एक सलाहकार के रूप में लोक सेवक नीतियों के निर्माण में अहम भूमिका निभाते हैं। वस्तुतः सरकार के कार्यों के सफल संचालन के लिए प्रशासनिक लोक सेवकों का सहयोग आवश्यक है। प्रशासन सरकार के हाथ-पैर हैं और सरकार की सफलता का महत्वपूर्ण माध्यम है।

लोक प्रशासन द्वारा प्रशासकों के प्रशिक्षण जैसे महत्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन करने प्रशासनिक व्यवस्था की गतिशीलता व उपादेयता में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी जाती है। प्रशिक्षण के द्वारा ही लोक प्रशासक यह सीख पाते हैं कि कानून व व्यवस्था बनाये रखा जाये। प्रशासनिक जीवन में समन्वय, संचार, सोपान, नियन्त्रण क्षेत्र इत्यादि की जानकारी भी प्रशासकों को लोक प्रशासन से ही सम्भव है। यही कारण है कि लोक सेवकों को लोक प्रशासन का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक अध्ययन करना पड़ता है।

भूमंडलीकरण एवं आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ होते समय कुछ विद्वानों ने यह आशंका व्यक्त की थी कि लोकप्रशासन का महत्व कम हो जायेगा। लेकिन वास्तविकता यह है कि भूमंडलीकरण एवं उदारीकरण के युग

में लोक प्रशासन की भूमिका और चरित्र में कुछ बदलाव आया है, लेकिन इसका महत्व कम नहीं हुआ है। अब लोक प्रशासन की एक नवीन भूमिका सुविधाकारक तथा उत्प्रेरक की है। यह और सक्रिय होकर देखता है कि विस्तृत होता हुआ निजी क्षेत्र राष्ट्र के कानून तथा नियमनों की संरचना के अंतर्गत क्रियाशील है या नहीं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सरकार का स्वरूप किसी भी प्रकार का हो लेकिन लोक प्रशासन का महत्व एवं इसकी भूमिका कम नहीं हो सकती। लोकतांत्रिक शासन प्रणाली ने तो इसके महत्व को और भी बढ़ा दिया है। आज लोक प्रशासन सभ्य समाज की प्रथम आवश्यकता है। देश में शांति-व्यवस्था एवं स्थिरता बनाये रखने तथा विकास कार्य एवं सामाजिक परिवर्तन को गति प्रदान करने के लिए लोक प्रशासन अपरिहार्य है। फाइनर के शब्दों में “कुशल प्रशासन सरकार का एक मात्र सहारा है जिसकी अनुपस्थिति में राज्य क्षत-विक्षत हो जायेगा।”

अभ्यास प्रश्न-

1. प्रशासन एक सुनिश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए मनुष्यों द्वारा परस्पर सहयोग का नाम है। सत्य/असत्य
2. प्रशासन का सम्बन्ध निजी समस्याओं से है। सत्य/असत्य
3. प्रशासन में वे सभी कार्य आ जाते हैं, जिनका उद्देश्य सार्वजनिक नीतियों को लागू करना है। सत्य/असत्य
4. एकीकृत दृष्टिकोण में लोक प्रशासन के अंतर्गत किन कार्यों को सम्मिलित किया जाता है ?
5. प्रबन्ध की दृष्टिकोण केवल उन्हीं लोगों के कार्यों को प्रशासन मानता है जो किसी उपक्रम संबंधी केवल प्रबन्ध की कार्य का संपादन करते हैं। सत्य असत्य/
6. एकीकृत दृष्टिकोण प्रत्येक क्षेत्र के प्रशासन को एक ही दृष्टि से देखता है। सत्य असत्य/
7. “एक अच्छे प्रशासक को पोस्टकॉब तकनीकों में पारंगत होना चाहिए” यह किसका कथन है ?
8. लोक प्रशासन के विज्ञान होने के पक्ष में दो तर्क प्रस्तुत कीजिए।
9. लोक प्रशासन के अध्ययन के चार विषयक्षेत्रों को निर्धारित कीजिए।-
10. लोक प्रशासन की भूमिका केवल नीतियों के क्रियान्वयन तक सीमित है। सत्य/असत्य
11. लोक प्रशासन विकास एवं परिवर्तन का प्रमुख उपकरण है। सत्य/असत्य
12. भूमंडलीकरण के इस युग में लोक प्रशासन की भूमिका एक सुविधाकारक एवं उत्प्रेरक की है। सत्य/असत्य/

4.7 सारांश

लोक प्रशासन प्रशासन का वह विशिष्ट भाग है, जिसमें उन सभी क्रियाकलापों का अध्ययन किया जाता है जो सार्वजनिक नीतियों को क्रियान्वित करने से सम्बन्धित है। यह एक गतिशील विषय है जिसके स्वरूप में निरंतर परिवर्तन होता रहा है। यह एक सामाजिक विज्ञान तथा व्यावहारिक कला का समन्वित रूप है। आधुनिक लोक कल्याणकारी राज्यों में इसकी भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो गयी है। यह न केवल शांति एवं सुव्यवस्था स्थापित करने का बल्कि विकास एवं सामाजिक परिवर्तन का भी एक प्रमुख उपकरण बन गया है। भूमंडलीकरण एवं उदारीकरण के युग में लोक प्रशासन के लिए नयी भूमिका का सृजन हुआ है।

इस इकाई में हमने लोक प्रशासन की आधारभूत विशेषताओं तथा इसके महत्व पर प्रकाश डाला है। अगले अध्याय में हम इस विषय के अध्ययन के विभिन्न दृष्टिकोण पर प्रकाश डालेंगे।

4.8 शब्दावली

प्रशासनिक राज्य- ऐसा राज्य जिसमें कार्यपालिका शाखा का प्रभुत्व होता है, यद्यपि इसमें व्यवस्थापिका तथा न्यायपालिका भी स्थापित रहते हैं।

लोककल्याणकारी राज्य- ऐसा राज्य जो समस्त जनता और विशेषकर कमजोर एवं जरूरतमंद लोगों अर्थात् निर्धन, वृद्ध, अपंग, बीमार इत्यादि लोगों को कानून और प्रशासन के द्वारा पर्याप्त सुविधायें प्रदान करता है।

प्रबन्धन- एक ऐसी प्रक्रिया जो प्रशासन द्वारा निर्धारित सीमाओं के अंतर्गत नीतियों के क्रियान्वयन से सम्बन्धित है।

लोक नीति- वे सार्वजनिक नीतियां जो सरकार द्वारा जनहित में निर्धारित की जाती हैं।

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य, 2. असत्य, 3. सत्य, 3. छोटे कर्मचारियों से लेकर बड़े अधिकारियों तक के कार्यों को, 4. सत्य, 6. असत्य, 7. लूथर गुलिक, 8. प्रशासन से सम्बंधित ज्ञान का क्रमबद्ध अध्ययन व सुनिश्चित अवधारणाओं तथा परिकल्पनाओं का विकसित होना इत्यादि, 9. सार्वजनिक क्रमिक प्रशासन, सार्वजनिक वित्तीय प्रशासन, संगठनात्मक सिद्धान्त और तुलनात्मक लोक प्रशासन, 10. असत्य, 11. सत्य, 12. सत्य

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थसूची

1. अवस्थी एवं माहेश्वरी; , 2008 लोक प्रशासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा, 2008 ,
2. व्हाइट, एल0डी0; , 1968 इंट्रोडक्शन टू दी स्टडी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, यूरेशिया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
3. निग्रो, फेलिक्स ए एवं निग्रो 0, लायड जी0; 1980, मॉडर्न पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, हार्पर और रो, न्यूयार्क।

4.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. पेरी, जे0; , 1989 हैन्डबुक ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन सैन फ्रांसिस्को।
2. वाल्डो, डवाइट, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन साइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेज।

4.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लोक प्रशासन की परिभाषा दीजिए तथा इसके प्रमुख लक्षणों को स्पष्ट कीजिये।
2. लोक प्रशासन की प्रकृति के सन्दर्भ में एकीकृत एवं प्रबन्ध कीय दृष्टिकोणों को स्पष्ट कीजिये।
3. लोक प्रशासन विज्ञान है अथवा कला तर्क सहित उत्तर दीजिए?
4. लोक प्रशासन के विषय क्षेत्र को स्पष्ट कीजिये।-
5. लोक प्रशासन विषय के महत्व पर प्रकाश डालिए। क्या भूमंडलीकरण के इस युग में इस विषयका महत्व कम हुआ है?

इकाई- 5 समाजशास्त्र का अन्य विषयों से अन्तर्सम्बन्ध एवं अध्ययन के दृष्टिकोण

इकाई की रूपरेखा

- 5.0 प्रस्तावना
- 5.1 उद्देश्य
- 5.2 समाजशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान
- 5.3 समाजशास्त्र और मानवशास्त्र
- 5.4 समाजशास्त्र और मनोविज्ञान
- 5.5 समाजशास्त्र और इतिहास
- 5.6 समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र
- 5.7 समाजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र
- 5.8 सारांश
- 5.9 शब्दावली
- 5.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 5.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 5.12 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 5.13 निबंधात्मक प्रश्न

5.0 प्रस्तावना

मानव जीवन के सभी पहलुओं को समझने के लिए उसके किसी एक नहीं बरन सभी पक्षों का अध्ययन आवश्यक होता है। मनुष्य के जीवन को प्राकृतिक और सामाजिक दोनों ही प्रकार के तत्व प्रभावित करते हैं। सामाजिक ज्ञान की सीमाएं इतनी अधिक विस्तृत हैं कि सभी सामाजिक विज्ञानों को इसमें से आवश्यक विषयवस्तु प्राप्त हो जाती है। इसीलिए विषयवस्तु की दृष्टि से विज्ञानों को प्रमुखतः दो श्रेणियों में बांटा गया है:-

- (i) प्राकृतिक विज्ञान
- (ii) सामाजिक विज्ञान

प्राकृतिक विज्ञानों के अंतर्गत क्रमशः भौतिकविज्ञान, रसायनविज्ञान, जीवविज्ञान, वनस्पति विज्ञान आदि आते हैं। सामाजिक विज्ञानों में अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, इतिहास आदि का अध्ययन किया जाता है। जहां प्राकृतिक विज्ञानों के अंतर्गत भौतिक जगत या उससे संबंधित घटनाओं का अध्ययन किया जाता है वहीं सामाजिक विज्ञानों में मानवीय क्रियाओं, समाज और सामाजिक प्रघटनाओं का विश्लेषण एवं व्याख्या की जाती है। अब प्रश्न यह उठता है कि इस समानता के बाद भी विभिन्न सामाजिक विज्ञानों को एक-दूसरे के पूर्णतया समान क्यों नहीं माना जाता है। वास्तविकता में इसका मुख्य कारण 'विशेष सामाजिक विज्ञान' और सामान्य सामाजिक विज्ञान की धारणा है। जैसे अर्थशास्त्र के अंतर्गत केवल आर्थिक क्रियाओं का, राजनीतिशास्त्र के अंतर्गत राज्यों से संबंधित तथ्यों का अध्ययन किया जाता है। यह दोनों ही विज्ञान एक विशेष प्रकार के एवं अपने ही क्षेत्र का अध्ययन करते हैं। इसीलिए इन्हें विशेष विज्ञान की श्रेणी में रखा जाता है। वहीं समाजशास्त्र समाज के किसी विशेष पहलू का अध्ययन न करके संपूर्ण समाज का अध्ययन करता है।

इसीलिए समाजशास्त्र की प्रकृति अन्य विशेष विज्ञानों की तुलना में भिन्न हो जाना स्वाभाविक है। उक्त तथ्यों को विभिन्न विद्वानों द्वारा इस प्रकार परिभाषित किया गया है।

कॉम्टे के अनुसार, “समाज एक समग्रता है जिसका अध्ययन अनेक भागों में विभाजित करके नहीं किया जा सकता।” स्पेंसर का कहना है कि समाजशास्त्र अनेक विज्ञानों का समन्वय है।

सोरोकिन के कथनानुसार, “समाजशास्त्र अन्य सामाजिक विज्ञानों का जनक नहीं है अपितु उसी प्रकार एक स्वतंत्र विज्ञान है जिस प्रकार दूसरे सामाजिक विज्ञानों का एक स्वतंत्र अस्तित्व होता है।”

सेलिंगमेन के अनुसार समाज विज्ञानों को उन मानसिक या सांस्कृतिक विज्ञानों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो कि व्यक्ति की क्रियाओं का समूह का सदस्य मानकर अध्ययन करते हैं।

गिलिन और गिलिन का कहना है कि समस्त सामाजिक विज्ञान मुख्य रूप से मानव क्रियाओं और व्यवहारों का उनके सामाजिक समूहों के सदस्य के रूप में अध्ययन करता है। वे आपस में मुख्य रूप से अपनी रुचियों की व्यवस्था के कारण अलग हैं।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेंगे -

1. समाजशास्त्र को एक सामाजिक विज्ञान के रूप में स्पष्ट करना तथा इसके अध्ययन और विशेषताओं को समझना।
2. विभिन्न समाज विज्ञानों के आपसी संबंध का अध्ययन करना और समाजशास्त्र का सामाजिक मानवशास्त्र, इतिहास, अर्थशास्त्र एवं राजनीति विज्ञान जैसे विषयों से अंतःसम्बंध व भिन्नताओं को रेखांकित करना।
3. समाजशास्त्र और अन्य समाज विज्ञानों के बीच के मूलभूत अंतर का विश्लेषण करना, जिसमें विषय-वस्तु, दृष्टिकोण एवं पद्धति के अंतर शामिल हों।
4. समाजशास्त्र और विशिष्ट समाज विज्ञानों के कार्यात्मक संबंधों को समझना, विशेषकर अर्थशास्त्र से इसके संबंध और राजनीति विज्ञान से इसके अंतर को स्पष्ट करना।

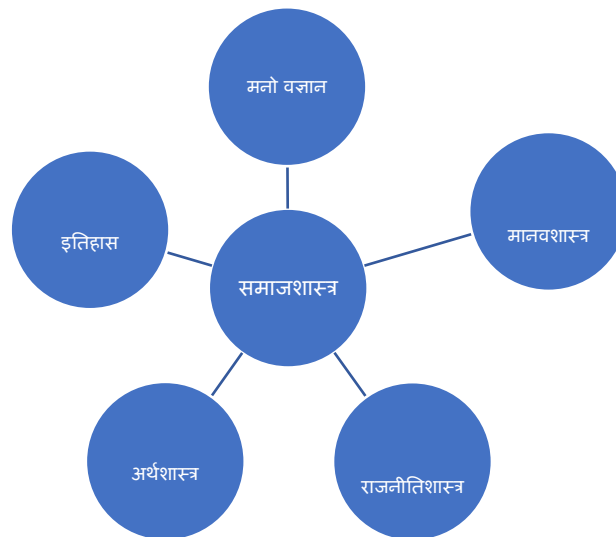
समाजशास्त्र और विशिष्ट समाज विज्ञानों के कार्यात्मक संबंधों को समझना, विशेषकर अर्थशास्त्र से इसके संबंध और राजनीति विज्ञान से इसके अंतर को स्पष्ट करना। इस प्रकार इन सभी पक्षों का अध्ययन करने के पश्चात आप विषय या घटना को समग्र रूप से देखना एवं समझना सीख सकेंगे।

5.2 समाजशास्त्र एक समाज विज्ञान

मनुष्य एक जिज्ञासु प्राणी है और इसी कारण मनुष्य की हमेशा से ही नई-नई खोज करना प्रकृति रही है। वह अपने इर्द-गिर्द व्याप्त समस्याओं को सुलझाने में प्रयासरत रहा है। इसीलिए विश्व की आधारभूत जिज्ञासाओं को तुष्ट करने के लिए एवं प्राकृतिक विश्व को भलीभांति समझने के लिए ही मनुष्य ने विज्ञान एवं वैज्ञानिक विधियों का निर्माण किया। इसी आवश्यकता ने समाजशास्त्र में वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग समाज एवं मानवीय व्यवहारों के अध्ययन के लिए किया जैसे अवलोकन एवं सांख्यिकीय, गणना आदि। समाजशास्त्र का अन्य विज्ञानों से संबंध को हम इस प्रकार समझ सकते हैं कि यदि समाजशास्त्र को हम मनोविज्ञान से जोड़कर देखते हैं तो पाते हैं कि इसके अंतर्गत हम सामाजिक सीख, मानव व्यक्तित्व एवं मानव व्यवहार को समाज में रहकर ही सीखते

हैं। मानवशास्त्र का संबंध भी इसी तरह का है जिसमें हम संस्कृति, सामाजिक संगठन एवं नातेदारी व्यवस्था को समाज के संदर्भ में देखते हैं। राजनीतिशास्त्र के अंतर्गत सामाजिक नियंत्रण, व्यक्ति और समाज एवं सामाजिक चेतना के संदर्भ में, इतिहास के अंतर्गत ऐतिहासिक पद्धति, सामाजिक परिवर्तन एवं कार्य-कारण संबंध के परिप्रेक्ष्य में समाजशास्त्र से जोड़ते हैं। अन्त में दर्शनशास्त्र को सामाजिक दर्शन, सामाजिक मूल्य एवं सामाजिक न्याय के परिप्रेक्ष्य में जोड़ सकते हैं।

विभिन्न समाज विज्ञानों में से प्रत्येक द्वारा सामाजिक-जीवन के किसी न किसी पहलू का अध्ययन किए जाने के कारण उन सभी में पारस्परिक संबंधों का होना स्वाभाविक है। प्रत्येक समाज विज्ञान समाज और मानवीय क्रियाओं का एक विशेष दृष्टिकोण से अध्ययन करता है, प्रत्येक का अपना एक विशिष्ट ध्यानबिंदु होता है। इस कृति से प्रत्येक सामाजिक विज्ञान की अपनी-अपनी विशिष्ट विषय-वस्तु या अध्ययन-सामग्री है और प्रत्येक ने अपनी विशेष अध्ययन-पद्धतियां को विकसित भी किया है।



अतः जहां तक समाजशास्त्र का अन्य समाज विज्ञानों के साथ संबंध का प्रश्न है, तो यह इन सभी में पारस्परिक आदान-प्रदान है। समाजशास्त्र अन्य समाज विज्ञानों से और अन्य समाज विज्ञान समाजशास्त्र से बहुत कुछ ग्रहण करते हैं। विभिन्न समाज विज्ञानों के साथ घनिष्ठ रूप से संबंधित होने के बावजूद समाजशास्त्र का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। इस प्रकार समाजशास्त्र का अन्य समाज विज्ञानों के बीच पाए जाने वाले संबंधों को हम इस प्रकार समझ या विवेचना कर सकते हैं।

5.3 समाजशास्त्र और मानवशास्त्र

इवांस प्रिचार्ड का मानना है कि सामाजिक मानवशास्त्र को समाजशास्त्रीय अध्ययनों की एक शाखा कहा जा सकता है, वह शाखा जो प्रमुखतः अपने को आदिम समाजों के अध्ययन में लगाती है। समाजशास्त्र शब्द का प्रयोग सभ्य समाजों की विशिष्ट समस्याओं के अध्ययन के लिए किया जाता है। सामाजिक मानवशास्त्र और समाजशास्त्र के बीच निकट का संबंध है, क्योंकि दोनों प्रबल रूप से समूह-व्यवहार के वैज्ञानिक सामान्यीकरणों से संबंधित हैं। सामाजिक मानवशास्त्र और समाजशास्त्र दोनों द्वारा समाजों का अध्ययन किया जाता है। सामाजिक

मानवशास्त्र द्वारा विशेषतः आदिम समाजों का अध्ययन किया जाता है जबकि समाजशास्त्र आधुनिक जटिल समाजों का अध्ययन करता है। दोनों सामाजिक विज्ञान सूक्ष्म एवं विशाल दोनों प्रकार से अध्ययन करते हैं। सामाजिक मानवशास्त्र में समाजों का उनकी संपूर्णता में अध्ययन किया जाता है। सामाजिक मानवशास्त्री आदिम लोगों की अर्थव्यवस्था, उनके परिवार और नातेदारी संगठनों का, उनकी प्रौद्योगिकी तथा कलाओं का सामाजिक व्यवस्थाओं के भागों के रूप में अध्ययन करता है। अतः यह कहा जा सकता है कि सामाजिक मानवशास्त्र सामाजिक परिस्थितियों में मनुष्य के व्यवहार का अध्ययन करता है। यहां पर यदि हम कुछ विद्वानों की परिभाषाओं के माध्यम से स्पष्ट करें कि मानवशास्त्र एवं समाजशास्त्र में क्या विभिन्नता एवं समानता है तो हम अच्छे से समझ सकेंगे।

क्रोबर के अनुसार समाजशास्त्र और मानवशास्त्र जुड़वा बहिनें हैं। सामाजिक मानवशास्त्री सरल और छोटे आदिम समाजों का अध्ययन कर समाजशास्त्री को आधुनिक जटिल सभ्य समाजों को समझने में सहायता पहुंचाता है। मानवशास्त्री समाजशास्त्री को मानव की प्रकृति को अधिक क्षमता के साथ समझने में योग देता है। दूसरी ओर समाजशास्त्री भी आधुनिक जटिल समाजों में विशिष्ट समस्याओं का अध्ययन कर मानवशास्त्री के लिए अनेक उपकल्पनाएं प्रस्तुत करता है।

समाजशास्त्र तथा मानवशास्त्र की दो शाखाओं-सांस्कृतिक एवं सामाजिक मानवशास्त्र द्वारा सामाजिक संरचना, सामाजिक संगठन, सामाजिक संस्थाएं, धर्मआदि का अध्ययन किया जाता है। अर्थात् दोनों की विषय वस्तु सामान्य है लेकिन परिप्रेक्ष्य अलग-अलग हैं। संस्कृति के विज्ञान के रूप में मानवशास्त्र समाजशास्त्र के काफी निकट है। किसी भी समाज के संबंध में यथार्थ जानकारी प्राप्त करने के लिए उस समाज की संस्कृति को समझना अत्यंत आवश्यक है।

मानवशास्त्रीय अध्ययन समाजशास्त्रीय अनुसंधानकर्ता के लिए अनुसंधान कार्य की पृष्ठभूमि तैयार करता है। यही कारण है कि इन दोनों विषयों का निकट का संबंध अनुसंधान की दृष्टि से भी अधिक लाभप्रद है। बोटोमोर ने भारत के संदर्भ में समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र के बीच पाए जाने वाले घनिष्ठ संबंध को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि भारतीय समाज न तो आदिम समाजों के समान पूरी तरह पिछड़ा हुआ है और न ही औद्योगिक समाजों के समान पूर्णतः विकसित। ऐसे समाजों में समाजशास्त्र व मानवशास्त्र के मध्य अधिक अंतर कोई अर्थ नहीं रखता। अतः स्पष्ट रूप से समाजशास्त्र और मानवशास्त्र घनिष्ठ रूप से परस्पर एक-दूसरे से संबंधित हैं। हॉबल कहते हैं कि 'विस्तृत अर्थों में समाजशास्त्र और सामाजिक मानवशास्त्र एक ही हैं, समान हैं।'

समाजशास्त्र और सामाजिक मानवशास्त्र में यद्यपि घनिष्ठ संबंध पाया जाता है, परंतु दोनों एक नहीं हैं, दोनों में कुछ महत्वपूर्ण अंतर निम्नानुसार हैं :

इनमें विषय-क्षेत्र की दृष्टि से अंतर पाया जाता है। सामाजिक मानवशास्त्र प्रमुखतः आदिम समाजों का अध्ययन करता है, जबकि समाजशास्त्र सभ्य समाजों का अध्ययन करता है। इन दोनों में पद्धति संबंधी अंतर भी पाया जाता है। वर्तमान में सामाजिक मानवशास्त्र में प्रमुखतः अर्द्ध-सहभागी अवलोकन पद्धति का प्रयोग किया जाता है। दूसरी ओर समाजशास्त्री साक्षात्कार अनुसूची या प्रश्नावली आदि बनाकर सूचनाएं एकत्र करता है तथा प्रलेखों एवं सांख्यिकीय पद्धति का सहारा लेता है।

अभ्यास के लिए आप यहां एक स्थिति का अध्ययन कर देख सकते हैं जिसमें आदिम समाज के अध्ययन में समाज की प्रासंगिकता को भी शामिल किया जाए तो आप यह देख सकेंगे कि किस प्रकार समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र का अन्तर्संबंध है।

5.4 समाजशास्त्र और मनोविज्ञान

समाज का निर्माण करने वाले परस्पर सामाजिक संबंध व्यक्ति, की मानसिकता से प्रभावित होते हैं। इस प्रकार व्यक्ति का मनोविज्ञान सामाजिक जीवन से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। यह सामाजिक दशाओं द्वारा निर्धारित होता है। इसका तात्पर्य है कि सामाजिक दशाएं जिस प्रकार होंगी मनुष्य उसी प्रकार से सोचेगा एवं व्यवहार करेगा। इस प्रकार हम समाजशास्त्र एवं मनोविज्ञान के बीच स्पष्ट विभाजन रेखा नहीं खींच सकते हैं। हां कुछ हद तक समाजशास्त्र को मनोविज्ञान पर निर्भर अवश्य मान सकते हैं। इस संदर्भ में कहा जा सकता है कि सामाजिक संबंधों एवं सामाजिक जीवन का अध्ययन तब तक नहीं किया जा सकता जब तक हम मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों, इच्छाओं, स्मृति, बुद्धि एवं प्रेरणाओं और उद्देश्यों का हमें कोई ज्ञान न हो। ये सभी आधार मनोवैज्ञानिक हैं।

किंबाल यंग ने सामाजिक मनोविज्ञान को 'पारस्परिक क्रियाएं करते हुए व्यक्तियों का अध्ययन कहकर परिभाषित किया है।

इस प्रकार सामाजिक मनोविज्ञान समाज में व्यक्तियों के अंतर्संबंधों एवं व्यवहारों का अध्ययन करता है।

टालकट पार्संस के अनुसार "मनोविज्ञान व्यवहार की प्राथमिक प्रक्रियाओं, जैसे-संज्ञान, सीख तथा स्मरण से संबंधित है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि जहां समाजशास्त्र सामाजिक व्यवस्था का अध्ययन करता है वहीं मनोविज्ञान मानसिक व्यवस्था का अध्ययन करता है।

5.5 समाजशास्त्र और इतिहास

समाजशास्त्र और इतिहास परस्पर घनिष्ठ रूप से अंतर्संबंधित हैं। जहां इतिहास समाज की अतीत की घटनाओं, समाज में रहने वाले लोगों के जीवन, समाज में आए परिवर्तनों, उन विचारों जो समाज को प्रभावित करते हैं और उन भौतिक दशाओं जो विकास में सहायक या असहायक हैं, का संकलन या रिकार्ड है। किसी भी समाज का वर्तमान चाहे उसके अतीत की प्रतिलिपि भले ही न हो परंतु अतीत की छाप उस पर अवश्य ही छोड़ता है। वर्तमान भविष्य का इतिहास है लेकिन वर्तमान ही भविष्य का निर्माण भी करता है। समाजशास्त्र समाज के ऐतिहासिक विकास के अध्ययन से संबंधित है। इन दोनों विषयों के बीच कुछ महत्वपूर्ण संबंध निम्न प्रकार हैं :

समाजशास्त्र समाज के ऐतिहासिक विकास के अध्ययन से संबंधित है। समाजशास्त्र सामाजिक संस्थाओं के रूप में जीवन के विभिन्न चरण, परंपरा, रीति-रिवाज आदि का अध्ययन करता है। समाजशास्त्र को इन सभी तथ्यों के अध्ययन के लिए इतिहास पर निर्भर रहना पड़ता है। इतिहास को जाने बिना वर्तमान का अध्ययन नहीं किया जा सकता। किसी भी समाज के अध्ययन एवं वास्तविक मूल्यांकन के लिए उसके इतिहास का ज्ञान आवश्यक है। दूसरी ओर इतिहास भी समाजशास्त्र द्वारा प्रतिपादित समाज व संगठन के सिद्धांतों की सामान्य दृष्टि को अध्ययन के लिए आधार बनाता है। जानकारी ली जाती है। इतिहास समाज की गतिशीलता पर प्रकाश डालता है और समाजशास्त्रीय अध्ययन में सहायक सिद्ध होता है।

घटनाओं के घटने के क्रम के संबंध में इतिहासकार की व्याख्या समाजशास्त्री के वर्तमान सामाजिक विश्लेषण का मार्गदर्शन करती है। अतीत के कार्य-करण संबंध के विश्लेषण में वर्तमान के लिए इस विश्लेषण को जो कि समाजशास्त्र का विषय क्षेत्र है, दोनों विज्ञानों को और अधिक समीप कर दिया है।

टॉयनबी की पुस्तक ए स्टडी ऑफ हिस्ट्री समाजशास्त्रीय अध्ययन में बहुत महत्वपूर्ण है। वर्तमान में इतिहास का अध्ययन भी सामाजिक दृष्टिकोण से किया जाने लगा है।

वैज्ञानिक अनुसंधानों और प्रौद्योगिकी विकास से विश्व की भौतिक निरंतरता कम होती जा रही है लेकिन मानसिक परिप्रेक्ष्य में विभिन्न समाजों को समीप लाने का प्रयत्न सम्मिलित रूप से इतिहासकार और समाजशास्त्री ही करेंगे। यदि इतिहासकार सृजनात्मक दृष्टिकोण में इतिहास लिखता है तो यहां रहने वाले विभिन्न संप्रदायों में पारस्परिक मेलजोल, सौहार्द और सहिष्णुता पनप सकती है, जो सभी के लिए हितकर है।

बीयरस्टीड के अनुसार 'अगर अतीत को शताब्दियों से लुढ़कता हुआ एक वस्त्र मान लिया जाए तो इतिहास की रुचि उन विशिष्ट धागों और किनारों में होगी जो उस वस्त्र को बनाता है, जबकि समाजशास्त्र की रुचि उस वस्त्र से दिखने वाले प्रतिमानों में होगी'। अतः इतिहास और समाजशास्त्र एक-दूसरे से संबंधित हैं। इतिहास का अध्ययन समाजशास्त्र के अध्ययन के बिना और समाजशास्त्र का अध्ययन इतिहास के अध्ययन के बिना पूर्ण नहीं हो सकता। जहां समाजशास्त्र में वर्तमान का ताना-बाना होता है, वहीं इतिहास में अतीत की सच्चाई होती है, जो स्पष्ट रूप से आधार प्रदान करती है। जी. ई. हावर्ड के अनुसार, 'इतिहास भूतकाल का समाजशास्त्र है और समाजशास्त्र वर्तमान का इतिहास'। समाजशास्त्र और इतिहास में समानता होने पर भी कुछ असमानता है -

- इतिहास व्यक्तिकरण का विज्ञान है जबकि समाजशास्त्र एक सामान्यीकरण का विज्ञान है। इतिहास और समाजशास्त्र में अंतरकाल का है। इतिहास अतीत का अध्ययन करता है तो समाजशास्त्र वर्तमान का। समाजशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र इतिहास की पृष्ठभूमि का अध्ययन है। जहां समाजशास्त्र सामाजिक प्रक्रिया के अंतर्गत घटने वाली कुछ घटनाओं का अध्ययन है। समाजशास्त्र भविष्य की ओर संकेत करने की क्षमता रखता है जबकि इतिहास केवल अतीत के यथार्थ का निरूपण करता है। समाजशास्त्र सामग्री संकलन में ऐतिहासिक सामग्री तथा ऐतिहासिक पद्धति को एक पद्धति के रूप में अपनाता है जबकि अन्य पद्धतियां भी उपयोग में लाई जाती हैं। इतिहास में अन्य पद्धतियों के प्रयोग की संभावनाएं नहीं हैं।
- समाजशास्त्र व्यापक है जबकि इतिहास संकुचित। समाजशास्त्री का मुख्य लक्ष्य समाज के सामान्य नियमों की खोज करना होता है, वहीं इतिहासकार का मुख्य लक्ष्य ऐतिहासिक घटनाओं का क्रमबद्ध तरीके से विवरण देना है। विशिष्ट समाजशास्त्रीय अध्ययन में प्रयोग की संभावना रहती है जबकि इतिहास के अध्ययन में प्रयोग संभव नहीं होता क्योंकि जो ऐतिहासिक घटना घटित हो चुकी है। उसे पुनः नहीं दोहराया जा सकता। इतिहास महत्वपूर्ण घटनाओं के विभिन्न पहलुओं पर अध्ययन करता है जबकि समाजशास्त्र किसी भी घटना को सामाजिक संबंधों के संदर्भ में समझता है। उदाहरण के लिए, इतिहासकार युद्ध के हर पहलू का अध्ययन करेंगे जबकि समाजशास्त्री युद्ध का एक सामाजिक घटना के रूप में अध्ययन करेंगे। वे लोगों पर युद्ध के प्रभाव आदि का अध्ययन करेंगे।

5.6 समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र

समाजशास्त्र का अर्थशास्त्र से संबंध को समझने से पहले हम अर्थशास्त्र को समझ लेंगे, तो विषय-वस्तु को समझने में आसानी होगी। अर्थशास्त्र के अंतर्गत मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं या आर्थिक व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है।

अर्थशास्त्र का अध्ययन भौतिक वस्तुओं या सेवाओं के उत्पादन, वितरण और उपभोग से संबंधित व्यक्ति के व्यवहार से है। ब्रिटिश अर्थशास्त्री मार्शल के अनुसार 'अर्थशास्त्र मनुष्य की उन क्रियाओं का अध्ययन करता है

जो कि आवश्यकताओं की संतुष्टि के भौतिक साधनों को प्राप्त करने के लिए की जाती है।' जबकि समाजशास्त्र के अंतर्गत मनुष्य की सामाजिक क्रियाओं या गतिविधियों का अध्ययन किया जाता है। समाजशास्त्र समग्र रूप में मानवीय व्यवहार एवं समाज को समझने का प्रयास करता है।

समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र के बारे में सिल्वरमैन ने लिखा है कि सामान्य कार्यों या लक्ष्यों के लिए इसे (अर्थशास्त्र) समाजशास्त्र नामक पितृ विज्ञान की, जो सभी सामाजिक संबंधों के सामान्य सिद्धांतों का अध्ययन करता है, एक शाखा माना जा सकता है। अर्थशास्त्र में मानव की आर्थिक क्रियाओं का जबकि समाजशास्त्र में सामाजिक जीवन के सभी पक्षों का अध्ययन किया जाता है। समाजशास्त्र आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन भी करता है। इसकी एक विशिष्ट शाखा समाजशास्त्रीय अर्थशास्त्र भी होगा लेकिन वास्तविकता यह है कि ये दोनों अपने-अपने अध्ययन क्षेत्र और विषय-सामग्री की दृष्टि से स्वतंत्र विज्ञान है।

समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र घनिष्ट रूप से एक-दूसरे से संबंधित हैं। कॉम्ट, जे.एस. मिल, पेरेंटो, वेबलिन, कार्ल मार्क्स, मैक्स वेबर आदि विद्वानों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से यह स्पष्टतः सिद्ध कर दिया है कि ये दोनों विज्ञान एक-दूसरे के पूरक हैं, इनका पृथक-पृथक रूप से अध्ययन नहीं किया जा सकता। इन दोनों समाजविज्ञानों में घनिष्ट संबंध है :

(1) व्यक्ति की सामाजिक क्रियाओं और व्यवहार पर आर्थिक परिस्थितियों का और आर्थिक क्रियाओं एवं व्यवहार पर सामाजिक परिस्थितियों का स्पष्ट रूप से रूप से प्रभाव पड़ता है। मैकाइवर के अनुसार आर्थिक घटनाएं सदैव सभी प्रकार की सामाजिक आवश्यकताओं एवं क्रियाओं के द्वारा निर्धारित होती हैं और बदले में स्वयं भी निरंतर सभी प्रकार की सामाजिक आवश्यकताओं तथा क्रियाओं का पुनर्निर्धारण, सृष्टि, संगठन एवं रूपांतरण करती रहती हैं।

(2) भौतिक साधनों को जुटाने के दौरान मनुष्य अन्य व्यक्तियों, समूहों, समाजों आदि के संपर्क में आता है। इस प्रकार उसकी आर्थिक क्रिया बहुत अंशों में सामाजिक क्रिया हो जाती है। आर्थिक क्रिया सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों से संचालित होती है।

(3) व्यावहारिक जीवन में व्यक्ति की व्यय-क्षमता सामाजिक स्थिति को प्रभावित करती है। भौतिक आवश्यकताओं के अतिरिक्त कई सामाजिक आवश्यकताएं जैसे स्पष्ट रूप से तथा विशेष स्तर की वेशभूषा, शादी-विवाह तथा उत्सवों, धार्मिक कृत्यों का व्यय आदि यद्यपि आर्थिक क्रिया से संबंधित नहीं है लेकिन इनका प्रभाव आर्थिक स्थिति पर एवं आर्थिक स्थिति का प्रभाव इन पर पड़ता है।

(3) दोनों शास्त्र एक-दूसरे के अध्ययन को व्यापकता और साथ ही स्पष्ट रूप से प्रदान करने में भी सहायता प्रदान करते हैं।

(4) समाज विशेष की परंपराएं, प्रथाएं, संस्थाएं तथा लोक विश्वास आर्थिक क्रियाओं को काफी प्रभावित करते हैं और स्वयं आर्थिक क्रियाएं सामाजिक संरचना को बहुत प्रभावित करती हैं।

(5) अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र ऐसी समस्याओं का अध्ययन करते हैं जो एक-दूसरे के क्षेत्र के अंतर्गत आती हैं - जैसे उद्योगीकरण, नगरीकरण, श्रम समस्याएं, श्रम कल्याण, बेकारी, निर्धनता, ग्रामीण समस्याएं, ग्रामीण पुनर्निर्माण आदि। इन समस्याओं पर जब तक आर्थिक और सामाजिक दोनों ही दृष्टिकोण से विचार नहीं किया जाता तब तक न तो इन्हें ठीक से समझा जा सकता है और न ही इन्हें हल किया जा सकता है।

मैक्स वेबर, कार्ल मार्क्स आदि विद्वानों ने अपने अध्ययनों के माध्यम से यह स्पष्ट कर दिया है कि आर्थिक और सामाजिक कारकों में घनिष्ट संबंध पाया जाता है। मैक्स वेबर ने "प्रोटेस्टेंट इथिक्स और स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म" में अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र के अंतर को स्पष्ट किया है। दूसरी ओर कार्ल मार्क्स समाज के

आर्थिक ढांचे को मूल संरचना कहते हैं। शेष सभी संस्थाएं उसकी उपज होती हैं और आर्थिक ढांचे में परिवर्तन से समाज की अन्य संस्थाओं में परिवर्तन की बात करते हैं। केरन के अनुसार, 'अर्थशास्त्रियों ने यह जान लिया है कि समाजशास्त्र सामाजिक नियंत्रण, सामाजिक सामंजस्य, सामाजिक शक्तियां, प्रतिस्पर्धा और सामूहिक व्यवहार की समस्या के स्पष्टीकरण में सहायक है तथा समाजशास्त्री समाज के अर्थशास्त्रीय पहलू को समझने के लिए बहुत अधिक अर्थशास्त्र की ओर झुकने लगे हैं। अतः समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र में घनिष्ठ संबंध है। वर्तमान में अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र में दिन-प्रतिदिन सहयोग बढ़ता जा रहा है। दूसरी ओर अर्थशास्त्र के आधुनिक विज्ञान समाज के मानवीय पक्ष को आर्थिक पक्ष के लिए महत्वपूर्ण आधार के रूप में देखने लगे हैं।

समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र में निम्नलिखित अंतर भी पाए जाते हैं-

- समाजशास्त्र मानव जीवन का सामान्य सर्वपक्षीय अध्ययन है जबकि अर्थशास्त्र केवल आर्थिक पक्ष का विशिष्ट अध्ययन है।
- समाजशास्त्र में प्रमुखतः सामाजिक संबंधों का जबकि अर्थशास्त्र में आर्थिक संबंधों का अध्ययन किया जाता है।
- समाजशास्त्र में सामाजिक जीवन के सभी पक्षों का जबकि अर्थशास्त्र में मानव जीवन के केवल आर्थिक पक्षों का अध्ययन किया जाता है।
- समाजशास्त्र का दृष्टिकोण समाजशास्त्रीय, बहुकारकीय और काफी व्यापक है जबकि अर्थशास्त्र का दृष्टिकोण आर्थिक और तुलनात्मक दृष्टि से सीमित है। अर्थशास्त्रीय विश्लेषण में केवल आर्थिक कारक को ही प्रमुखता दी जाती है।

इस प्रकार समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र समानताओं और असमानताओं के बावजूद एक-दूसरे से पारस्परिक संबंध रखते हैं क्योंकि आधारभूत एकता की कड़ी मानव है जिसके जीवन का अध्ययन दोनों ही करते हैं।

5.7 समाजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र

राजनीतिशास्त्र की रुचि, प्रमुखतः समाज के अध्ययन में है इस शास्त्र के द्वारा राज्य तथा राजकीय प्रशासन के अध्ययन पर विशेष जोर दिया जाता है। इस प्रकार राजनीतिशास्त्र राजनीतिक संबंधों का विस्तृत अध्ययन है। राजनीतिशास्त्र संगठित मानव संबंधों (राजनीतिक संबंधों) का अध्ययन करता है और ये संबंध सामाजिक संबंधों का ही एक अंग है। समाजशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र के बीच घनिष्ठ संबंध है। कुछ समय पूर्व तक राज्य और समाज में कोई भेद नहीं किया जाता था और इसी कारण समाजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र एक ही विषय के अंतर्गत आते थे। 18वीं एवं 19वीं शताब्दी में राज्य और समाज में अंतःक्रिया को समझने के लिए राज्य का अध्ययन राजनीतिशास्त्र के द्वारा और जाति, वर्ग, परिवार, धर्म एवं कानून आदि का समाजशास्त्र के द्वारा किया जाने लगा।

ऐतिहासिक दृष्टि से राजनीतिशास्त्र और समाजशास्त्र का घनिष्ठ संबंध है। इन विज्ञानों के संबंध को निम्नलिखित बिंदु दर्शाते हैं -

- (1) पूर्व काल में सामाजिक विषयों पर मुख्य पुस्तकें थीं - प्लेटो की रिपब्लिक, अरस्तू की पॉलिटिक्स और अन्य प्रतिष्ठित पुस्तकें जो कि पूर्वी और पश्चिमी राजनीतिशास्त्र में पूर्ण मानी जाती थीं।

(2) राजनीतिशास्त्र मनुष्य को एक राजनीतिक प्राणी मानता है पर वह राजनीतिक प्राणी क्यों और कैसे बना ? यह जानकारी समाजशास्त्र ही प्रदान करता है। इस प्रकार समाजशास्त्र की नींव पर राजनीतिशास्त्र के भवन का निर्माण होता है।

(3) राजनीतिशास्त्र मानव संबंधों का अध्ययन करता है जो कि सामाजिक संबंधों का अंग है। गिलक्राइस्ट के अनुसार 'राजनीतिशास्त्र मानव संबंधों के तथ्यों और सिद्धांतों को ग्रहण करता है, जिन सिद्धांतों और तथ्यों का अध्ययन तथा प्रतिपादन करना समाजशास्त्र का कर्तव्य है।'

(3) वर्तमान में दोनों शास्त्रों का संबंध इतना बढ़ गया है कि परिणामस्वरूप राजनीति का जीवन पर प्रभाव अध्ययन करने के लिए समाजशास्त्र की एक नवीन शाखा 'राजनीतिक समाजशास्त्र' का विकास हुआ है।

(4) राज्य की सदस्यता भी प्रायः जन्म से निर्धारित होती है। राज्य किस प्रकार का है, इसका सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा अन्य बातों पर प्रभाव पड़ता है। पारिवारिक प्रकार, शिक्षा, आस्थाएं, परम्पराएं एवं रीति-रिवाज इत्यादि राजनीतिक स्थिति द्वारा संचालित होते हैं।

भारतीय, अमेरिकी, रूसी या चीनी परिवारों का गठन एवं संरचना यहां की राजनीतिक विचारधारा के अनुकूल है। इस प्रकार राजनीतिक जीवन को सामाजिक जीवन से पृथक नहीं किया जा सकता। दोनों ही एक-दूसरे पर पारस्परिक प्रभाव डालते हैं। ज़िंसबर्ग के अनुसार 'समाजशास्त्र की उत्पत्ति राज्य के अतिरिक्त अन्य संस्थाओं के अध्ययन करने के लिए राजनीतिक अन्वेषण के क्षेत्र में विकास के फलस्वरूप हुई। उदाहरणतः परिवार के स्वरूप और संस्कृति और सभ्यता के अन्य तत्व जैसे आधार, धर्म और कलाएं सामाजिक उपज माने जाते हैं और एक-दूसरे के संदर्भ में इनका अवलोकन किया जाता है।'

(5) समाजशास्त्रीय सिद्धांतों एवं पद्धतियों का राजनीतिशास्त्र में काफी प्रयोग होने लगा है।

(7) राजनीतिक व्यवहार को समझने के लिए, उदाहरण के रूप में मतदान-व्यवहार को जानने के लिए सामाजिक तथ्यों, विभिन्न सामाजिक संस्थाओं जैसे जाति प्रणाली, संयुक्त परिवार प्रणाली, वर्ग-भेद, स्त्रियों की स्थिति आदि के संबंध में जानकारी आवश्यक है। प्रामाणिक आधार पर यह जानकारी समाजशास्त्र से ही मिल सकती है।

राजनीतिशास्त्र और समाजशास्त्र के बीच कुछ स्पष्ट अंतर हैं जो निम्नलिखित हैं -

(1) राजनीतिशास्त्र मानव के राज्य, राजनीतिक दल, नीति, आदि का अध्ययन करता है राजनीति शास्त्र जहां भी शक्ति है उसका अध्ययन करता है जाति में शक्ति है, राजनीति शास्त्री इसका भी अध्ययन करता है। जबकि समाजशास्त्र मानव के संपूर्ण संगठनों का अध्ययन करता है।

(2) समाजशास्त्र एक सामान्य विज्ञान है जबकि राजनीतिशास्त्र एक विशेष विज्ञान है। राजनीतिशास्त्र जीवन के एक विशिष्ट पक्ष का अध्ययन करता है जबकि समाजशास्त्र जीवन के सामान्य पक्षों का अध्ययन करता है।

(3) समाजशास्त्र सभी प्रकारों के सामाजिक संबंधों का अध्ययन करता है जबकि राजनीतिशास्त्र सामाजिक संबंधों के एक भाग संगठित संबंधों विशेषतः राजनीतिक संबंधों का अध्ययन करता है।

(3) समाजशास्त्र विभिन्न संस्थाओं, जिनमें सरकार भी शामिल हैं, के परस्पर-संबंध पर जोर देता है जबकि राजनीतिशास्त्र सरकार के भीतर चलने वाली प्रक्रियाओं पर।

(4) राजनीतिशास्त्र का दृष्टिकोण एकांगी या एक पक्षीय है जबकि समाजशास्त्र का दृष्टिकोण समग्र अथवा समष्टिमूलक है। इस भांति राजनीतिशास्त्र का दृष्टिकोण संकुचित है जबकि समाजशास्त्र का व्यापक।

(5) समाजशास्त्र सामाजिक नियंत्रण के औपचारिक एवं अनौपचारिक सभी प्रकार के साधनों के अध्ययन में, जबकि राजनीतिशास्त्र उन औपचारिक साधनों के अध्ययन में जिन्हें राज्य की अभिमति प्राप्त है, जैसे कानून में रूचि रखता है।

(6) समाजशास्त्र राज्य को महत्वपूर्ण सामाजिक संस्थाओं में से एक मानता है जबकि राजनीतिशास्त्र राज्य को समुदाय संचालित करने वाली सर्वोच्च शक्ति और राजनीतिक विधि का स्रोत मानता है।

(7) समाजशास्त्र एक व्यवहारात्मक विज्ञान है, परंतु राजनीतिशास्त्र व्यवहारात्मक विज्ञान की श्रेणी में नहीं आता। राजनीतिशास्त्र का ज्ञान केवल राजनीति के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है जबकि समाजशास्त्र का ज्ञान जीवन के सभी क्षेत्रों में उपयोगी सिद्ध होगा।

(8) दोनों शास्त्रों की अध्ययन-पद्धतियों में भी काफी अंतर पाया जाता है।

(9) समाज का विकास राज्य से पहले हुआ है और इस दृष्टि से समाजशास्त्र राजनीतिशास्त्र की तुलना में अधिक प्राचीन है।

अभ्यास प्रश्न

- 1 जी.ई. हावर्ड के अनुसार 'इतिहास भूतकाल का और समाजशास्त्र वर्तमान का'।
- 2 राजनीतिशास्त्र संगठित का अध्ययन करता है।
- 3 समाजशास्त्र एक विज्ञान है।
- 4 वर्तमान में सामाजिक मानवशास्त्र में प्रमुखतः का प्रयोग किया जाता है।

5.8 सारांश

विभिन्न सामाजिक विज्ञान परस्पर निर्भर हैं। हर समाज विज्ञान सामाजिक घटना में अपने विशिष्ट पहलू का अध्ययन करता है। परंतु मानव के संपूर्ण अध्ययन के लिए यह पर्याप्त नहीं है यद्यपि उसे पूरी तरह समझने के लिए संपूर्ण अध्ययन की आवश्यकता से इनकार नहीं किया जा सकता। समाजशास्त्र इस दिशा में प्रयास करता है। लेकिन इस विषय की भी अपनी सीमाएं हैं। इसलिए यह केवल सामान्य अध्ययन से ही अपने को संतुष्ट कर लेता है। सभी सामाजिक विज्ञानों का विषय एक है लेकिन उनके दृष्टिकोण भिन्नता के कारण उनकी विषय सामग्री में अंतर आ जाता है। सामाजिक विज्ञानों के एकीकरण से ही किसी सामाजिक घटना का पूर्ण रूप से अध्ययन किया जा सकता है। यदि किसी घटना का गहन अध्ययन करना है तो यह आवश्यक होगा कि इसके विभिन्न पक्षों का अलग-अलग विद्वानों द्वारा अध्ययन किया जाए तथा अंत में इनका एकीकरण करके संपूर्ण के आधार पर निष्कर्ष निकाला जाए। इस प्रकार 'सामाजिक विज्ञानों में एकता है, यह एकता काल्पनिक एकता नहीं है, यह विभिन्न भागों की एक गतिशील एकता है और एक भाग दूसरे भाग के लिए तथा अन्य भागों के लिए अनिवार्य है।'

अतः यह कहा जा सकता है कि समस्त सामाजिक विज्ञान एक-दूसरे पर निर्भर हैं। हर सामाजिक विज्ञान किसी घटना का विशिष्ट अध्ययन भी करता है और सामाजिक विज्ञानों के एकीकरण के द्वारा संपूर्ण अध्ययन करने का प्रयास भी किया जाता है।

5.9 शब्दावली

वर्ग-भेद – समाज में अलग-अलग वर्गों (जैसे अमीर-गरीब, ऊँच-नीच) के बीच का अंतर या विभाजन।

अंतःक्रिया – दो या अधिक व्यक्तियों, समूहों या तत्वों के बीच होने वाला प्रभाव और प्रतिक्रिया का आदान-प्रदान।

आधारभूत – जो किसी चीज़ की जड़ या नींव हो; सबसे मूलभूत और आवश्यक।

अंतर्संबंधित – आपस में जुड़ा हुआ या एक-दूसरे पर निर्भर।

आदिम – सबसे प्रारंभिक, प्राचीन या सभ्यता से पहले का।

5.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

- 1 समाजशास्त्र व इतिहास
- 2 मानव संबंधों (राजनीतिक संबंधों)
- 3 व्यवहारात्मक
- 4 अर्द्ध-सहभागी अवलोकन पद्धति

5.11 संदर्भग्रंथ सूची

1. Bottomore, T.B., Sociology
2. Berger, Peter, Invitation to Sociology, Doubleday, New York, 1953.
3. Mills, C.k., Wright, Sociological Imagination, Oxford, New York, 1949.
3. Forands, Abraham, Sociological Thoughts, Macmillan India, Delhi, 1984.

5.12 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

- Berger, Peter, Invitation to Sociology, Doubleday, New York, 1953.
- Mills, C.k., Wright, Sociological Imagination, Oxford, New York, 1949.
- Forands, Abraham, Sociological Thoughts, Macmillan India, Delhi, 1984.

5.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. समाजशास्त्र और इतिहास के बीच अंतर स्पष्ट कीजिए?
- 2- समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र में संबंध स्पष्ट कीजिए?
- 3- समाजशास्त्र और मानवशास्त्र के बीच अन्तर स्पष्ट कीजिये ?
- 4- समाजशास्त्र और राजनीति विज्ञान के बीच अन्तर स्पष्ट कीजिये ?

इकाई- 6 राजनीति विज्ञानका अन्य विषयों से अंतर्संबंध एवं अध्ययन के दृष्टिकोण

इकाई की रूपरेखा

- 6.0 प्रस्तावना
 - 6.1 उद्देश्य
 - 6.2 राजनीति विज्ञान का अन्य समाज विज्ञानों से सम्बन्ध
 - 6.2.1 राजनीति विज्ञान और दर्शन शास्त्र
 - 6.2.2 राजनीति विज्ञान और समाजशास्त्र
 - 6.2.3 राजनीति विज्ञान और इतिहास
 - 6.2.4 राजनीति विज्ञान और अर्थशास्त्र
 - 6.2.5 राजनीति विज्ञान और मनोविज्ञान
 - 6.3 सारांश
 - 6.4 शब्दावली
 - 6.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
 - 6.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची
 - 6.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
 - 6.8 निबन्धात्मक प्रश्न
-

6.0 प्रस्तावना

मानव एक ऐसा संश्लिष्ट जीव है जो एक साथ अनेक भूमिकाओं का निर्वहन करता है। सामाजिक प्राणी होने के नाते वह परिवार, जाति, धर्म, गाँव, शहर और राजनीतिक संगठनों के सदस्य के रूप में भूमिका निभाता है। उसके जीवन के विविध पक्षों सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक, नैतिक ऐतिहासिक आदि का विभिन्न समाज विज्ञानों द्वारा अध्ययन किया जाता है। मानवीय जीवन के विविध पक्षों, गतिविधियों को स्पष्ट करने के लिए सभी सामाजिक विज्ञानों की पूरक भूमिका होती है। इसलिए, मानव और समाज के मूल तत्व को समझने के लिए किसी विशिष्ट सामाजिक विज्ञान की सीमाओं का अतिक्रमण करना ही पड़ता है।

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में सामाजिक विज्ञानों के बीच के अंतःसम्बन्धों पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है और विज्ञानों के अध्ययन हेतु एक नई पद्धति अन्तर अनुशासनात्मक अध्ययन पद्धति अस्तित्व में आई है। इसके द्वारा एक विशेष समाज सम्बन्धी विषय का अध्ययन करने वाले विद्वान अन्य विषयों का अध्ययन करने वाले विद्वानों से समन्वय बनाये रखते हैं। अब विद्वानों ने इस तथ्य को भली-भाँति समझ लिया है कि विभिन्न समाज विज्ञानों का पृथक-पृथक अध्ययन लाभदायी नहीं हो सकता क्योंकि सम्पूर्ण समाज एक सूत्र में बंधा हुआ है और समाज से सम्बन्धित विविध पहलू भी परस्पर एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं। अतः उनका पृथक-पृथक अध्ययन किया जा सकना सम्भव नहीं है। विभिन्न समाज विज्ञानों के क्षेत्र में व्यवहारवार के उदय के पश्चात् यह तथ्य और भी अधिक उभरकर सामने आ गया है कि सभी समाज विज्ञानों का अध्ययन अन्तर-अनुशासनात्मक पद्धति से किया जाना चाहिए। इसी स्वाभाविक क्रम में, राजनीति विज्ञान ने भी इस प्रक्रिया में भाग लिया है। फलतः राजनीति विज्ञान के विद्वानों का मानना है कि मनुष्य के राजनीतिक व्यवहार का अध्ययन करने के लिए राजनीति विज्ञान का अध्ययन अन्तर-अनुशासनात्मक पद्धति से करना पड़ेगा क्योंकि मनुष्य समाज में रहकर जो

व्यवहार करता है, उसकी पृष्ठभूमि में मात्र राजनीतिक कारण नहीं होते वरन् उसके पीछे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, मनोवैज्ञानिक कारण भी होते हैं। डॉ० गार्नर के शब्दों में, “हम दूसरे समाज विज्ञानों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त किये बिना राजनीति विज्ञान एवं राज्य का पूर्ण ज्ञान ठीक उसी प्रकार प्राप्त नहीं कर सकते, जिस प्रकार गणित के बिना यंत्र विज्ञान और रसायनशास्त्र के बिना जीव विज्ञान का यथावत् ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

6.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:-

- राजनीति विज्ञान और दर्शनशास्त्र के बीच सम्बन्ध को समझ सकेंगे।
- राजनीति विज्ञान और समाजशास्त्र के बीच सम्बन्ध को समझ सकेंगे।
- राजनीति विज्ञान और इतिहास के बीच सम्बन्ध को समझ सकेंगे।
- राजनीति विज्ञान और अर्थशास्त्र के बीच सम्बन्ध को समझ सकेंगे।
- राजनीति विज्ञान और मनोविज्ञान के बीच सम्बन्ध को समझ सकेंगे।
- अंततः यह समझ सकेंगे किसमाज के विभिन्न पक्षों से सम्बन्ध रखने वाले विषयों में किस प्रकार से सम्बन्ध है।

6.2 राजनीति विज्ञान का अन्य समाज विज्ञानों से सम्बन्ध

राजनीति विज्ञान के अध्ययन में अन्य विषयों का सहयोग लेने की परम्परा बहुत प्राचीन है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि राजनीति विज्ञान का अन्य सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्ध बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। प्लेटो की उन समस्याओं के समाधान में बहुत अधिक रुचि थी जिनका सम्बन्ध कुटुम्ब की संरचना तथा शिक्षा की प्रकृति से था। इसका कारण यह था कि उसकी दृष्टि में कुटुम्ब तथा शिक्षा का महत्व उस आदर्श राज्य के निर्माण में बहुत अधिक था जिसकी वह कल्पना कर रहा था। अरस्तू को समाज में धन तथा प्रतिष्ठा के विभाजन की उतनी ही चिन्ता थी जितनी कि इस बात की थी कि राज्य का संविधान किस प्रकार का हो। लॉक, हीगल तथा मण्टेस्क्यू जैसे विचारकों ने भी मात्र राजनीति विज्ञान तक ही अपने विचारों को सीमित नहीं रखा था वरन् नीतिशास्त्र से सम्बद्ध प्रश्नों पर भी गम्भीरता से विचार किया था। कार्ल मार्क्स ने यह प्रयास किया था कि राजनीतिक व्यवहार का मुख्य स्रोत तकनीकी विकास तथा वर्ग संरचना के स्तर में खोजा जाना चाहिए। इन समस्त प्रश्नों का समाजशास्त्र से प्रत्यक्ष सम्बन्ध था।

वस्तुतः उन्नीसवीं सदी के अन्त तक ज्ञान को पृथक-पृथक शास्त्रों में विभाजित नहीं किया गया था। वे एक-दूसरे में सम्पूर्ण रूप से समायोजित थे। इसका मूल कारण यह था कि अर्थशास्त्री, मनोवैज्ञानिक, मानवशास्त्री तथा समाजशास्त्री भी राजनीति विज्ञान के विद्वानों के समान ही मानवीय समस्याओं के अध्ययन में रुचि ले रहे थे। यद्यपि उनके दृष्टिकोण परम्पर भिन्न थे। सन् 1390 में कोलम्बिया विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान विभाग की स्थापना के बाद भी विभिन्न विषयों के विद्वान राजनीति विज्ञान की गतिविधियों से जुड़े रहे। मैक्स वेबर, रॉबर्ट मिचेल्स, विल्फ्रेड पैरेटो और दुर्खीम जैसे समाजशास्त्री राजनीतिक विश्लेषण को भी अपने अध्ययन का अंग बनाये हुए थे। सन् 1908 में ग्राहम वालास की पुस्तक ‘Human Nature in Politics’ एवं आर्थर बेन्टले की पुस्तक ‘The Process of Government’ के प्रकाशन ने इस विचारधारा को और अधिक पृष्ठ किया कि राजनीति विज्ञान का अन्य सामाजिक विज्ञानों से घनिष्ठ सम्बन्ध है क्योंकि इन पुस्तकों में राजनीतिक प्रक्रियाओं का विवेचन मनोविज्ञान का आश्रय लेकर किया गया था। इन पुस्तकों ने इस विचारधारा की भी पुष्टि की कि मनुष्य का

राजनीतिक व्यवहार उसके सामाजिक, आर्थिक व मनोवैज्ञानिक व्यवहार से अनिवार्यतः प्रभावित होता है और उन्हें प्रभावित करता है। इसी प्रकार किसी समाज की राजनीतिक व्यवस्था उसकी सामाजिक, आर्थिक, नैतिक आदि व्यवस्थाओं से अनिवार्यतः प्रभावित होती है और उन्हें प्रभावित करती है। इसीलिए राजनीति विज्ञान में व्यवहारवादी क्रान्ति के प्रणेताओं ने मानव व्यवहार के अध्ययन के लिए 'अन्तर अनुशासनात्मक' दृष्टिकोण अपनाने पर बल दिया। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप राजनीति विज्ञान का अन्य समाज विज्ञानों से सम्बन्ध और अधिक घनिष्ठ हो गया है।

6.2.1 राजनीति विज्ञान और दर्शन

मानवीय और सामाजिक जीवन में दर्शन का महत्व स्पष्ट है। जी०टी० राजू ने सही कहा है कि 'दर्शन' जीवन का प्रकाश स्तम्भ है। यह जीवन और विचारों को गहराई से जोड़ता है। इसीलिए राजनीति विज्ञान को दर्शन से सचमुच बहुत लाभ मिलता है। यह राजनीतिक दर्शन ही है जिसमें राज्य और राजनीतिक जीवन के स्वरूप, राजनीतिक दायित्व के आधार और विभिन्न राजनीतिक प्रणालियों की गुणवत्ता की जाँच की जाती है और सार्वजनिक जीवन के लक्ष्य निर्धारित करने के लिए दर्शन और इतिहास की विधियों का प्रयोग किया जाता है। राजनीतिक दर्शन के कारण ही राजनीति विज्ञान को दृष्टि और संकल्पना का मूल ढाँचा प्रदान होता है। विचारधाराओं के मतभेद के बावजूद प्लेटो, अरस्तू, कौटिल्य, मनु, मैकियावेली, हॉब्स, लॉक, रूसो, मिल, हीगल, ग्रीन, मार्क्स और गाँधी आदि महान विचारकों ने विभिन्न राष्ट्रीय समाजों के राज्यों और शासनों को मूलभूत संकल्पनात्मक आधार प्रदान किया है। असल में दर्शन द्वारा निर्धारित विचारों और मानदंडों के सन्दर्भ में ही विशेष राजनैतिक कार्यों को अच्छी तरह समझा जा सकता है। इस दृष्टि से दर्शन विज्ञान के साथ सकारात्मक रूप में जुड़ा हुआ है। दर्शन से विज्ञान का नाता टूटने पर विज्ञान माध्यम मात्र रह जाता है, तब विज्ञान अपनी प्रासंगिकता खो देता है। इसलिए, राजनीति-दर्शन राजनीति विज्ञान के लिए जरूरी है। दर्शन के बिना राजनीति विज्ञान सत्ता का विज्ञान बन जाता है और एक ऐसा साधन बन जाता है, जिसकी सहायता से गलत और सही सभी प्रकार के उपायों से सत्ता को हथियाया जाए। यह मात्र सत्ता का राजनैतिक सिद्धान्त बनकर रह जाता है। इसलिए, यह जरूरी है कि इन दोनों के बीच संतुलन बनाये रखा जाए।

6.2.2 राजनीति विज्ञान और समाज शास्त्र

समाजशास्त्र अन्य सामाजिक विज्ञानों का जनक कहलाता है। यह एक सामाजिक विज्ञान है, जिसमें सामाजिक जीवन के सभी मूलभूत विषयों का अध्ययन होता है, जो मानव के क्रमिक विकास से सम्बन्धित होता है। यह समाज की उत्पत्ति, उसके विकास, सामाजिक रीति-रिवाजों आदि का अध्ययन करता है। इसके अन्तर्गत राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक इत्यादि सभी पहलू आ जाते हैं। अतएव कहा जा सकता है कि समाजशास्त्र सभी समाज विज्ञानों का जनक है। राजनीति विज्ञान और समाजशास्त्र एक-दूसरे के पूरक हैं। यह निम्न प्रकार स्पष्ट होता है:-

1. राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्रीय तत्वों से बँधा हुआ है:- समाजशास्त्र मानव जीवन के वंशीय, जातिगत, धार्मिक और राजनीतिक पहलुओं की विवेचना करता है। इसीलिए राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्र की उपेक्षा नहीं कर सकता। राज्य अथवा सरकार का समाजशास्त्र से पृथक् कोई अस्तित्व नहीं है। समाजशास्त्र यह बताता है कि राज्य संस्था का विकास मानव की कुछ नैसर्गिक प्रवृत्तियों का परिणाम है। इन प्रवृत्तियों को बल मुख्यतः इन तत्वों

से मिला है- रक्त सम्बन्ध, धार्मिक विश्वासों की एकता, आर्थिक आवश्यकतएँ तथा युद्ध और विजय। समाजशास्त्र के अध्ययन से यह भी पता चलता है कि प्रारम्भ में राज्यों का स्वरूप अत्यन्त सरल था किन्तु धीरे-धीरे उनके स्वरूप और कार्य क्षेत्र में वृद्धि होती चली गयी। एडम स्मिथ और कार्ल मार्क्स ने सामाजिक संरचना को अपने अध्ययन का आधार बनाया था। आधुनिक युग में रिचर्ड टॉनी, मैक्स वेबर(1353-1920), राबर्टो मिशेल्स(1365-1935), विल्फ्रेडो पैरेटो(1338-1923) और इमील दुर्खीम(1348-1919), मोस्का, कार्लमैनहाइम लासवेल और डेविड ईस्टन ने राजनीतिक संस्थाओं के अध्ययन के लिए समाजशास्त्र की विषय-वस्तु का सफलता पूर्वक उपयोग किया है। उन्होंने विस्तारपूर्वक यह समझाया है कि 'धर्म' का पूँजीवाद से क्या सम्बन्ध है, मजदूर वर्ग राजनीति को किस प्रकार प्रभावित करता है, शक्ति का राजनीति से क्या सम्बन्ध है तथा समाज की संरचना मतदान को किस प्रकार प्रभावित करती है। उदाहरणार्थ, शहरी मतदाताओं के आचरण को समझने के लिए हमें मुख्य रूप से इन बातों को जानना होगा- शहरीकरण से उत्पन्न समस्याएँ, शिक्षित बेरोजगारी, श्रमिक संख्या में हो रही वृद्धि तथा पानी, बिजली, स्वास्थ्य व शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएँ। इसी प्रकार ग्रामीण राजनीति को जातीय और धार्मिक विभिन्नताओं तथा कृषि-भूमि के स्वामित्व के सन्दर्भ में अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है।

2.सामाजिक सन्तुलन एवं सामंजस्य लाने में समाजशास्त्र की भूमिका:- समाजशास्त्र के आधार पर सामाजिक संघर्षों को समझने में सहायता मिलती है। फलस्वरूप राज्य इस तरह की नीतियाँ निर्धारित कर सकता है जिससे सामाजिक न्याय लाने में सहायता मिले और समाज में सन्तुलन व सामंजस्य स्थापित हो सके। सभी देशों और विशेषकर भारत में जहाँ भिन्न-भिन्न धर्मों और जातियों के लोग निवास करते हैं, राजनीतिज्ञों के सामने एक बड़ा प्रश्न राष्ट्रीय एकता को पुष्ट करने का उठता है। इस दृष्टि से समाजशास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत आँकड़े हमारा पर्याप्त मार्गदर्शन कर सकते हैं।

3.सार्वजनिक निर्णयों को प्रभावी बनाने में समाजशास्त्र की भूमिका:-राजनीति विज्ञान का एक कृत्य सार्वजनिक निर्णयों तक पहुँचना है। ये निर्णय तभी प्रभावशाली हो सकते हैं जब सम्बन्धित समूहों की सामाजिक प्रेरणाओं को ध्यान में रखा जाए। किसी भी सामाजिक कार्यवाही का सम्भावित प्रत्युत्तर क्या होगा और उसकी सफलता की कितनी सम्भावनाएँ हैं- यह निश्चित करने के लिए लोगों की मूल्य-परम्पराओं, अभिवृत्तियों, स्वभाव, मान्यताओं और पूर्वाग्रहों की जानकारी जरूरी होती है। इस प्रयत्न में समाज विज्ञान विशेष रूप से सहायक सिद्ध होता है। देखा जाए तो आज का राजनीति विज्ञान औपचारिक प्रक्रियाओं और संस्थाओं के अध्ययन से आगे बढ़कर अनौपचारिक संगठनों और प्रक्रियाओं को समझने के लिए तत्पर है और इसके लिए समाज विज्ञान का सहारा लेना जरूरी हो जाता है।

3.राजनीतिक विश्लेषण और राजनीतिक संस्थाओं का समाजशास्त्र पर प्रभाव:- राजनीतिक विश्लेषण और विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं के अध्ययन से समाजशास्त्र को काफी मदद मिली है। जैसे समाज के सन्दर्भ में राज्य ने निरन्तर समाज वैज्ञानिक विश्लेषण की विधियों को नियंत्रित किया है। समाज विज्ञानी शासन को उच्चतम सामाजिक संस्था के रूप में मान्यता देते हैं, क्योंकि शासन में समाज को दिशा देने और सामाजिक व्यवहार को नियमित करने की क्षमता होती है। आजकल तो राज्य का कार्य-क्षेत्र बहुत अधिक व्यापक हो गया है। विवाह, सम्पत्ति तथा पारिवारिक व्यवस्था, जिनका समाजशास्त्र से बहुत निकट का सम्बन्ध है, राज्य द्वारा नियमित होने लगे हैं। उदाहरणार्थ- परिवार नियोजन और दहेज सम्बन्धी सरकारी नीतियों ने भारतीय परिवार और विवाह प्रथा को काफी सीमा तक प्रभावित किया है।

निःसन्देह राजनीति विज्ञान और समाजशास्त्र में राजनीतिक समाज विज्ञान का उद्भव हुआ है जिसने राजनीतिक व्यवस्था, राजनीतिक विकास, राजनीतिक आधुनिकीकरण और राजनीतिक संस्कृति के रूप में संकल्पनात्मक ढाँचों के तौर पर राजनीति विज्ञान के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान किया है।

परन्तु राजनीति विज्ञान और समाज विज्ञान के बीच के कुछ महत्वपूर्ण अन्तर भी हैं, जिन्हें ध्यान में रखना आवश्यक है।

1. समाजशास्त्र का क्षेत्र राजनीति विज्ञान की अपेक्षा बहुत अधिक विस्तृत है। समाजशास्त्र सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करता है किन्तु राजनीति विज्ञान का सम्बन्ध केवल राज्य, सरकार और राजनीतिक संस्थाओं से ही है। सामाजिक परम्पराओं, धार्मिक विश्वासों तथा सांस्कृतिक गतिविधियों का समाजशास्त्र से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है किन्तु राजनीति विज्ञान के अन्तर्गत हम इन विषयों का विस्तृत अध्ययन नहीं करते।

2. राज्य-संस्था के उदय से पूर्व भी समाज विद्यमान था और राज्य की स्थापना से पूर्व ही मनुष्यों ने अनेक प्रकार के सामाजिक सम्बन्ध एवं सामाजिक बन्धन उत्पन्न कर लिये थे। समाजशास्त्र इन सम्बन्धों तथा आदिम मनुष्यों के रीति-रिवाजों व परम्पराओं की विस्तार से विवेचना करता है किन्तु राजनीति विज्ञान के अध्ययन का क्षेत्र इनसे सर्वथा भिन्न है।

6.2.3 राजनीति विज्ञान और इतिहास

हिस्ट्री(इतिहास) मूलतः ग्रीक शब्द है जिसका अर्थ है जाँच पड़ताल से ज्ञान प्राप्त करना या सीखना। सरल शब्दों में इतिहास मानव और समाज के अतीत के अनुभवों का बौद्धिक विश्लेषण और निर्वचन है। यह क्रमिक विकास का विवरण प्रस्तुत करने वाला मानव-समुदाय के विकास की कहानी है, यह मनुष्य के न केवल बौद्धिक, बल्कि आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक दशाओं के साथ ही उनके विकास, संगठन तथा पारस्परिक सम्बन्ध का भी वर्णन प्रस्तुत करता है, जहाँ तक राजनीति विज्ञान और इतिहास के सम्बन्ध का सवाल है, तो कहा जा सकता है कि इन शास्त्रों में काफी पुराना सम्बन्ध रहा है। यह भी कहा जा सकता है कि एक के अभाव में दूसरे का अध्ययन सम्भव नहीं है। कुछ विद्वानों जैसे सीले, बर्गेस आदि ने राजनीति विज्ञान और इतिहास के बीच पारस्परिक निर्भरता के सम्बन्ध में चर्चा की है।

सीले का कथन है कि, “राजनीति को यदि इतिहास के अध्ययन से परिष्कृत न किया जाये तो वह अशिष्ट बन जाती है और यदि इतिहास राजनीति से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर ले तो वह कोरा साहित्य रह जाता है।”

लॉर्ड ब्राइस के कथनानुसार, “राजनीतिशास्त्र ‘इतिहास’ और ‘राजनीति’ के मध्य स्थित है। इतिहास से हम जो शिक्षा ग्रहण करते हैं, उसका राजनीतिक संस्थाओं को सुधारने के लिए उपयोग किया जाता है।”

स्टर्ले ने ‘द स्टडी ऑफ हिस्ट्री’ नामक अपनी पुस्तक में कहा है कि इतिहास की उपयोगिता इस बात में है कि मानवता और सभ्यताओं के पिछले अनुभवों से सीख लेकर मनुष्य अपने मन को अनुशासित करें। इस प्रकार के अनुशासन से मनुष्य अपने अस्तित्व को बेहतर ढंग से समझ सकता है और इसके फलस्वरूप अपने जीवन को खुशियों से भरपूर बना सकता है।

राजनीति विज्ञान के लिए इतिहास की सामग्री अनेक प्रकार से उपयोगी है, जिसे निम्न रूपों में स्पष्ट किया जा सकता है-

1. राजनीतिक संस्थाओं के ऐतिहासिक विकास को जानना आवश्यक:- सर्वप्रथम यह कहना ज्यादा तर्कसंगत होगा कि राज्य एवं राजनीतिक संस्थाएँ इतिहास की देन हैं। प्राचीनकाल में राज्य का स्वरूप क्या था?

वर्तमान समय में जो राज्य का स्वरूप है वह क्रमिक विकास का परिणाम कहा जा सकता है। प्राचीनकाल में सरकारों का स्वरूप क्या था और आज के दौर में क्या है? इन सभी प्रश्नों का उत्तर इतिहास के माध्यम से ही प्राप्त किया जाता है। गार्नर ने कहा है कि, “इतिहास हमें ऐसी सामग्री प्रदान करता है जिसके द्वारा हम राजनीतिक संस्थाओं के विगत तथा वर्तमान स्वरूपों की ‘तुलना’ कर सकते हैं और इस तुलना के आधार पर कुछ निष्कर्ष निकाल सकते हैं”।

2. इतिहास राजनीति विज्ञान के भावी आदर्शों तथा सिद्धान्तों को निर्धारित करता है:- इतिहास मानव की सफलताओं का संग्रह तो है ही, साथ ही उसकी विफलताओं की भी जानकारी देता है। यहाँ यह कहा जा सकता है कि इतिहास राजनीति विज्ञान का शिक्षक है। अतीत में शासकों द्वारा जो नीतियाँ अपनाई गई उसका क्या परिणाम रहा। कहीं अकबर की नीति की सफलता तो कहीं दूसरी ओर औरंगजेब की धार्मिक नीति की असफलता राजनीतिज्ञों को शिक्षा देती हैं कि लौकिक राज्य की सफलता निश्चित है। जबकि धार्मिक कट्टरता का दौर अधिक चलने वाला नहीं। यही कारण है कि इतिहास में जो अतीत की घटनाओं का जिक्र है उस पर राजनीतिज्ञ सतर्क रहते हैं। यही कारण है कि धार्मिक अत्याचारों से समाज में उत्पन्न संकटों को ध्यान में रखकर ही राजनीतिक विज्ञानियों द्वारा धर्म निरपेक्ष राज्य के सिद्धान्त को जोर से वर्तमान में प्रसारित किया गया है। इसी प्रकार इतिहास ने बताया है कि जिन देशों में नागरिक सरकारें कुशल व सक्षम नहीं होतीं, जिन देशों में गरीबी मिटाने के प्रयास नहीं किये गये हैं, वहाँ बढ़ती हुई गरीबी और सामाजिक अत्याचार ने लोकतंत्रीय संस्थाओं का जीवन खतरे में डाल दिया है। इतिहास की इस शिक्षा की ओर यदि राजनीतिक नेताओं ने ध्यान नहीं दिया तो लोकतंत्र का ढाँचा लड़खड़ा कर टूट जायेगा। यहाँ इतिहास की कुछ ऐसी शिक्षाओं का उल्लेख आवश्यक हो जाता है, जो राजनीति विज्ञान के सिद्धान्तों को निरूपित करने में सजगता का संदेश देती है:-

1. निरंकुश राजतंत्र एक अभिशाप है।
2. सुप्रसिद्ध विद्वान हरदयाल के शब्दों में, “साम्राज्यवाद के कारण जिन देशों की स्वतंत्रता छिन जाती है, उनका तो अधःपतन होता ही है, स्वयं साम्राज्यवादी देशों के लिए भी साम्राज्य-नीति हितकर नहीं है।” आधुनिक साम्राज्यवादी शक्तियों को एशिया व अफ्रीका के मुक्ति-आन्दोलनों से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए, ताकि संसार को व्यर्थ के रक्तपात से बचाया जा सके।
3. जिन देशों में नागरिक सरकारें कुशल व सक्षम नहीं होतीं, उन देशों की राजनीति में सैनिक हस्तक्षेप की सम्भावना बढ़ जाती है।
4. यदि समाज के किन्हीं वर्गों को यत्नपूर्वक ‘राजनीतिक सत्ता’ से वंचित रखा जाता है तो ये वर्ग हिंसक साधनों से सत्ता हथियाने का प्रयत्न करते हैं।
5. इतिहास भूत, वर्तमान तथा भविष्य तीनों के बीच एक सूत्र स्थापित करता है:- इतिहास भूत, वर्तमान तथा भविष्य तीनों के बीच एक सूत्र स्थापित करता है तथा राजनीतिक वैज्ञानिकों के विचार क्षितिज को विस्तृत बनाने का काम करता है। राजनीतिक विचारों और राजनीतिक दर्शन को इतिहास की संरचना में छिपी प्राचीन परम्पराओं के साथ बहुत अच्छी तरह समझा जा सकता है। राजनीतिक विचारों का इतिहास ही हमें रोजमर्रे की राजनीतिक गतिविधियों के ‘मापदंड’ या ‘उपाय’ प्रदान करता है। जब कभी राजनीतिक सत्ता का प्रश्न आएगा, मैक्यवेली को नहीं भुलाया जा सकेगा, यदि मानव और समाज के बीच अन्योन्याश्रित ‘सम्बन्ध’ की बात उठेगी तो हॉब्स, लॉक और रूसो की उपेक्षा नहीं की जा सकेगी; जब कभी समाज की विषमताओं और भौतिक आवश्यकताओं का सवाल आएगा, कार्ल मार्क्स के योगदान को भुलाया नहीं जा सकेगा। आज की वर्तमान व्यवस्था को निश्चित रूप से प्रभावित करने वाले ऐसे ऐतिहासिक व्यक्तियों के और भी बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं। अमल रे और

मोहित भट्टाचार्य के शब्दों में कहा जा सकता है कि, “... हमें इतिहास बोध कराता है- ऐतिहासिक परिदृश्य प्रदान करता है। यह हमें सिखाता है कि घटनाएँ अपने आप में मात्र घटनाएँ नहीं होतीं, बल्कि वे अनंत क्रम की कड़ियाँ होती हैं।” इतिहास कई विकल्प प्रस्तुत करता है और राजनीति उनमें से सबसे सही विकल्प का चुनाव कर लेती है। इसी अर्थ में, आनुभविक विश्लेषण के लिए भी, इतिहास एक भव्य विश्लेषणात्मक पृष्ठभूमि प्रदान करता है। इसलिए वर्तमान प्रवृत्तियों और सम्बद्ध विषयों के विवेचन के लिए विभिन्न समाजों का ऐतिहासिक लेखा-जोखा लिया जाता है। यही भविष्य कालीन प्रवृत्तियों हेतु भी प्रयुक्त होता है।

इतिहास भी अपनी तरह से राजनीति और राजनीतिक विश्लेषण का ऋणी है। इतिहास लेखन में राजनीतिक विषय और संकल्पनात्मक ढाँचे इतिहासकार को काफी प्रभावित करते हैं। तभी सीले लिखता है कि, “इतिहास की शिक्षा के आधार पर राजनीतिक संस्थाओं के स्वरूप को सुधारने या परिष्कृत करने का प्रयास किया जाना चाहिए, वहीं वह यह भी कहता है कि इतिहास से यदि राजनीतिक घटनाओं को निकाल दिया जाये तो वह केवल साहित्य जगत की वस्तु बनकर रह जाता है? जैसे सामन्तवाद, राज्य के दैवी सिद्धान्त तथा राजा और धर्मसंघों के संघर्ष का अध्ययन किये बिना मध्ययुग के इतिहास का हमारा ज्ञान अपूर्ण रह जायेगा। इसी प्रकार यदि हम साम्राज्यवाद, राष्ट्रीयता, लोकतंत्रवाद और विभिन्न देशों के मुक्ति आन्दोलनों का अध्ययन न करें तो आधुनिक युग का इतिहास हमें निष्प्राण प्रतीत होगा। बीसवीं सदी के भारत के इतिहास का अध्ययन करने के लिए यह आवश्यक है कि हम विश्व शासन तंत्र इण्डियन नेशनल कांग्रेस, मुस्लिम लीग, साम्प्रदायिक राजनीति तथा भारतीय साम्यवादी दल के कार्यों, सन् 1919 तथा सन् 1934 के भारत शासन अधिनियमों, राष्ट्रवादी नेताओं के चमत्कारी नेतृत्व, राजनीतिक आन्दोलनों, दल-बदल की राजनीति, क्षेत्रीय राजनीतिक गतिविधियों और अन्य अनेक राजनीतिक घटनाओं का समुचित अध्ययन करें। इन राजनीतिक घटनाओं और राजनीतिक विचारधाराओं ने इतिहास की गति को समय-समय पर नया मोड़ दिया है।

निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि राजनीति विज्ञान एवं इतिहास कभी-कभी दोनों एक-दूसरे के पूरक हो जाते हैं, लेकिन ज्यादातर ये दोनों दो स्वायत्त हैं। राजनीति विज्ञान और इतिहास के परस्पर घनिष्ठता को प्रकट करते समय यह ध्यान रखना जरूरी है कि वर्तमान और भविष्य की समस्याओं पर केवल भूतकाल के परिणामों के आधार पर ही विचार न किया जाये। प्रत्येक समस्या पर विचार करते समय नयी परिस्थितियों और जनता के बदले मनोभावों को भी दृष्टिगत रखा जाय। तभी इतिहास, राजनीति विज्ञान के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकेगा। कार्ल फ्रेजरिंक, डी0 ब्रोगन, आर्नोल्ड बैरेंट और सारटोरी आदि विद्वानों ने राजनीति विज्ञान के लिए इतिहास का समुचित ढंग से उपयोग किया है।

6.2.4 राजनीति विज्ञान और अर्थशास्त्र

अर्थशास्त्र का मुख्य सरोकार उन तत्वों के विश्लेषण से है जो भौतिक उत्पादन, वितरण और विनिमय की प्रणाली के अन्तर्गत मनुष्यों के सामाजिक व्यवहार को प्रभावित करते हैं। इसमें उन तत्वों का पता भी लगाया जाता है जो निवेश अथवा आर्थिक संसाधनों के उपयोग से सम्बन्धित निर्णयों को प्रभावित करते हैं, जैसे कि ये तत्व पूँजी, श्रम और माल के उपयोग से सम्बन्धित निर्णयों को प्रभावित करते हैं। विस्तृत विश्लेषण करने पर पता चलता है कि ये निर्णय अनेक गैर-आर्थिक तत्वों से प्रभावित होते हैं, जैसे कि ये निर्णय सांस्कृतिक मूल्यों, इनसे जुड़े हुए व्यक्तियों के व्यक्तित्व, राजनीतिक आवश्यकताओं और सामाजिक स्थिति के विचार से भी बहुत प्रभावित होते हैं। किसी समुदाय का राजनीतिक परिवेश भी आर्थिक निर्णयों को दूर-दूर तक प्रभावित करता है।

प्राचीन समय में अर्थशास्त्र और राजनीति विज्ञान के बीच के अंतरंग सम्बन्ध बहुत गहरे थे। इसी कारण प्लेटो ने न्याय के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए न्याय को एक ऐसे समन्वयवादी उत्कृष्ट तत्व के रूप में देखा, जो आर्थिक विषय सहित समाज के सभी महत्वपूर्ण हितों की रक्षा कर सके। अरस्तू ने अर्थशास्त्र को गृह प्रबन्ध की कला के रूप में देखा और राजनीति को अनिवार्यतः अर्थशास्त्र से अभिन्न और अविभाज्य अंग के रूप में देखा। भारत में कौटिल्य ने अर्थशास्त्र और राजनीति के श्रेष्ठतम तत्वों को मिलाकर अर्थशास्त्र की परिकल्पना की थी। अपनी पुस्तक अर्थशास्त्र में उसने व्यापार, वाणिज्य, कृषि, मुद्रा तथा कर-व्यवस्था आदि आर्थिक विषयों के साथ शासन, न्याय, युद्ध, शान्ति, कूटनीति जैसे राजनीतिक विषयों का भी विस्तार से विवेचन किया है। वस्तुतः अर्थशास्त्र और राजनीति को एक साथ देखने की परम्परा ने आदम स्मिथ को, जो कि आधुनिक अर्थशास्त्र के प्रणेता थे, बराबर प्रभावित किया। उनका 'वैलथ ऑफ नेशन' जितनी अर्थशास्त्र की बात करता है, उतनी ही राजनीति विज्ञान की भी।

अर्थशास्त्र और राजनीति विज्ञान के बीच अत्यधिक निर्भरता के कारण उन्नीसवीं सदी में राजनीतिक अर्थशास्त्र नाम से एक नये शास्त्र का जन्म हुआ। राजनीतिक अर्थशास्त्र को एक शास्त्र के रूप में विकसित करने में आदम स्मिथ, रिकार्डो, कार्ल मार्क्स और अन्य विद्वानों की भूमिका सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण रही। परन्तु, दोनों शास्त्रों की परस्पर निर्भरता के बावजूद अर्थशास्त्र और राजनीति के परस्पर संघर्षों को छिपाना सम्भव नहीं रहा। इसी चरण में अर्थशास्त्र को राजनीतिक विचारों और दर्शन के जबदस्त प्रभाव से मुक्त करने का निश्चय किया गया। फलतः 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इसने धीरे-धीरे राजनीति विज्ञान से अपना सम्बन्ध तोड़ दिया और अहस्तक्षेप के सिद्धान्त की प्रेरणा से वस्तुओं की कीमतों और बाजार की प्रवृत्तियों पर ज्यादा ध्यान देना शुरू कर दिया। इसमें संदेह नहीं कि आज के युग में विकासशील राष्ट्रों को विशेष रूप से गरीबी की विकट और विस्तृत समस्या का सामना करना पड़ रहा है। इसमें संदेह नहीं कि अर्थशास्त्र ने इस क्षेत्र में बहुत उन्नति की और मांग, पूर्ति, प्रतिस्पर्धा, निवेश, उपयोगिता, लागत, लाभ, आयोजन, विकास इत्यादि के बारे में बहुत महत्वपूर्ण नियम और सिद्धान्त स्थापित किए। परन्तु बाद के दशकों में यह भी अनुभव किया गया कि आर्थिक प्रणाली को केवल बाजार की शक्तियों और खुली स्पर्धा के सहारे छोड़ देने पर सामाजिक दृष्टि से विनाशकारी परिणाम निकलते हैं; आर्थिक विषमताएं बेतहाशा बढ़ जाती हैं, निर्धन और दीन-हीन वर्गों का बेहिसाब शोषण होने लगता है, सामाजिक अन्याय का बोलबाला हो जाता है और समाज में तनाव और संघर्ष का वातावरण बन जाता है। इससे आर्थिक गतिविधियों के नियमन की आवश्यकता अनुभवन की गई और अर्थव्यवस्था को सार्वजनिक नियंत्रण में रखने के विचार को महत्व दिया जाने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि अर्थशास्त्र और राजनीतिशास्त्र की परस्पर अभिरूचि को नया जीवन मिल गया। इस प्रवृत्ति ने वर्तमान युग में राजनीतिक अर्थशास्त्र को एक नए रूप में विकसित किया है।

इधर राजनीति सिद्धान्त के दृष्टिकोण में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है। आज के राजनीति-सिद्धान्त का मुख्य सरोकार परस्पर विरोधी मांगों के समाधान से है। ये मांगें एक ही समुदाय के भीतर विभिन्न समूहों तथा वर्गों की ओर से रखी जा सकती हैं, या अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में विभिन्न राष्ट्रों की ओर से रखी जा सकती हैं। ये मांगें तरह-तरह की होती हैं परन्तु दुर्लभ संसाधनों के बँटवारे की मांगें इनमें सबसे प्रमुख होती हैं। दूसरे शब्दों में, ये मांगें मुख्यतः आर्थिक मांगें होती हैं। कोई भी राजनीतिक प्रणाली तब तक अपने आपको नहीं सम्भाल सकती जब तक वह परस्पर विरोधी मांगों में सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता स्थापित करने की क्षमता का परिचय न दे सके। इसके लिए आर्थिक शक्तियों और तत्वों की गहरी समझ जरूरी होती है। चाहे विदेश-व्यापार का क्षेत्र हो, या देश के भीतर आर्थिक जीवन के नियमन का मामला हो- राज्य की कोई भी नीति या निर्णय तब तक सार्थक नहीं हो

सकता जब तक उसके साथ जुड़े हुए आर्थिक प्रश्नों को भली-भांति समझकर सुलझा न लिया जाए। राज्य जब योजना निर्माण के क्षेत्र में कदम रखता है, या 'कल्याणकारी राज्य' 'सेवाधर्मी राज्य' या 'समाजवादी राज्य' के रूप में नागरिकों की आर्थिक सुरक्षा का दायित्व सम्भालता है और पूर्ण रोजगार रहन-सहन के उपयुक्त स्तर, उचित पोषण, स्वास्थ्य रक्षा, सार्वजनिक शिक्षा इत्यादि के कार्यक्रम बनाता है, तब अर्थशास्त्र की सहायता लेना अनिवार्य हो जाता है। आज के युग में विकासशील राष्ट्रों को विशेष रूप से गरीबी की विकट और विस्तृत समस्या का सामना करना पड़ रहा है। यहाँ यह सिद्ध हो जाता है कि राजनीति तक तक कृतकार्य नहीं हो सकती जब तक वह आर्थिक समस्या को प्रभावशाली ढंग से सुलझा नहीं सकती। मार्क्सवादी सिद्धान्त के अनुसार भी सम्पूर्ण राजनीति आर्थिक शक्तियों से नियमित होती है। अतः चाहे हम उदारवादी दृष्टि से सोचें, या मार्क्सवादी दृष्टि से-अर्थशास्त्र का ज्ञान राजनीति के ज्ञान तथा व्यवहार के लिए आवश्यक सिद्ध होता है।

1.आर्थिक परिस्थितियों सरकार के स्वरूप को निर्धारित करती है:- आर्थिक परिस्थितियों का प्रभाव सरकार के स्वरूप पर अवश्य पड़ता है। प्राचीन और मध्ययुगीन सरकारों का स्वरूप 'कुलीनतंत्रीय' था। उन दिनों राजनीतिक अधिकार सामन्ती वर्ग के हाथों में केन्द्रित थे। शासन का यह रूप जिसे हम 'कुलीनतंत्रीय' अथवा 'अभिजाततंत्र' कहते हैं, इसलिए विकसित हुआ था क्योंकि उस समय मशीनों का प्रचलन नहीं था। आज जो कार्य मशीनें करती हैं, उस युग में वही कार्य मनुष्य किया करते थे। अतः उस युग की अर्थव्यवस्था को देखते हुए यह स्वाभाविक ही था कि थोड़े से धनी-मानी जमींदार बहुसंख्यक लोगों को अपना दास बनाकर रखें और उन पर राज्य करें किन्तु औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप सामन्ती प्रथा समाप्त हो गयी। आधुनिक युग में लोकतंत्र के विकास का मुख्य कारण वह औद्योगिक क्रान्ति भी है जिसने दास-प्रथा का उन्मूलन किया है। इस प्रकार यह सत्य है कि आर्थिक परिस्थितियों सरकार के स्वरूप पर अवश्य ही महत्वपूर्ण प्रभाव डालती हैं।

2.राजनीतिक क्रान्तियाँ, आर्थिक शक्तियों से प्रभावित:- प्रत्येक प्रमुख 'क्रान्ति' के पीछे आर्थिक शक्तियों का हाथ रहा है। अमेरिका के स्वाधीनता संग्राम, फ्रांस की राज्य क्रान्ति, रूस व चीन की साम्यवादी क्रान्ति तथा राष्ट्रीय मुक्ति-आन्दोलनों का एक मुख्य कारण आर्थिक असन्तोष ही था।

3.भौतिक साधनों का श्रेष्ठतम बँटवारा:- आजकल राजनीति विज्ञान में सामाजिक व आर्थिक न्याय, औद्योगिक लोकतंत्र, लाइसेंस-प्रणाली, उद्योग-धन्धों का राष्ट्रीयकरण, राष्ट्रीय बचत तथा प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों की विशेष चर्चा होने लगी है। इसी कारण राजनीतिक विचारकों का मत है कि राज्य को अपनी नीति इस प्रकार निर्धारित करनी चाहिए जिसमें सभी को जीविका के समान साधन उपलब्ध हो सकें, देश की भौतिक सम्पत्ति कुछ गिने-चुने लोगों के हाथों में केन्द्रित न होने पाये तथा आर्थिक विवशता के कारण नागरिकों को ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु और शक्ति के अनुकूल न हों।

3.आर्थिक नियोजन तथा बजट पद्धति:- राजनीति विज्ञान में अर्थशास्त्र की और बहुत सी तकनीकों का समावेश होता चला जा रहा है। किन वस्तुओं का कितना उत्पादन किया जायेगा तथा वितरण का क्या ढंग होगा, इसका निर्णय राज्य द्वारा किया जाता है। 'नियोजन' एक ऐसी तकनीक है जो कम या अधिक मात्रा में अब सभी देशों में प्रयुक्त होने लगी है। सरकार बजट पद्धति का भी उपयोग करती है अर्थात् शासन के सभी विभाग आय व व्यय का ब्यौरा तैयार करके उसी के अनुरूप कार्य करते हैं। यह भी एक विशुद्ध अर्थशास्त्रीय विधि है। आय-कर, सम्पत्ति-कर, उत्तराधिकार शुल्क तथा अन्य करों द्वारा आय की असमानता को दूर करने का प्रयास किया जाता है।

‘राजनीति’ के लिए ‘अर्थशास्त्र’ बहुत उपयोगी है परन्तु हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि आर्थिक गतिविधियों पर भी राजनीति विज्ञान का व्यापक प्रभाव पड़ता है। ‘अर्थव्यवस्था’ पर ‘राजनीति विज्ञान’ के प्रभाव की चर्चा निम्नांकित बिन्दुओं के अन्तर्गत की जा सकती है-

1. अर्थव्यवस्था को प्रभावित करने वाले कानून:- उन्नीसवीं शताब्दी में इस सिद्धान्त का बोलबाला रहा कि “वस्तुओं को उनके हाल पर छोड़ दो” अर्थात् आर्थिक मामलों में राज्य किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न करे किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में इस सिद्धान्त का कोई मूल्य नहीं रह गया है। खाद्य पदार्थों में मिलावट रोकने हेतु कठोर कानून बनाये गये हैं तथा सूदखोरों पर भी सरकार विशेष नियंत्रण रखती है। यहाँ हम आर्थिक जीवन को नियंत्रित करने वाले और भी बहुत से कानूनों की चर्चा करना चाहेंगे, जैसे- न्यूनतम मजदूरी विधेयक, कामगार मुआवजा एक्ट, अनिवार्य दुर्घटना बीमा योजना, तथा श्रमिकों के लिए अधिकतम कार्य-काल का निर्धारण। गत कुछ वर्षों से राजनेताओं का सम्पूर्ण ध्यान इस बात पर केन्द्रित रहा है कि जनता के जीवन-स्तर को उठाने और मंहगाई को नियंत्रण में रखने के लिए किन नीतियों का अनुसरण किया जाये या कैसे कानून बनाये जायें।

2. विदेश-व्यापार और विदेशी निवेश पर राज्य का कठोर नियंत्रण देखने को मिलता है:- जहाँ तक विदेश व्यापार और विदेशी निवेश का प्रश्न है, उन पर तो राज्य का कठोर नियंत्रण स्थापित हो गया है। यातायात और संचार के साधनों का विकास हो जाने के कारण विदेश व्यापार में भी बहुत वृद्धि हुई है परन्तु ऐसा कोई राज्य नहीं है जो विदेश व्यापार पर नियंत्रण न रखता हो। विभिन्न देशों के बीच पूँजी का संचलन यानी किसी एक देश द्वारा दूसरे देशों में पूँजी निवेश करना भी सरकार की नीति पर ही निर्भर हो गया है।

3. राजनीतिक अस्थिरता, हिंसा और युद्धों का अर्थव्यवस्था पर प्रभाव:- राजनीतिक हिंसा, आन्तरिक कलह और युद्धों का देश की अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ता है। आर्थिक प्रगति बहुत सीमा तक इस बात पर निर्भर करती है कि देश में राजनीतिक स्थिरता है अथवा नहीं। संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, कनाडा, नार्वे, स्वीडन और स्विट्जरलैण्ड जैसे देश राजनीतिक हिंसा से मुक्त रहे हैं। इन देशों में सरकारें चुनावों के माध्यम से बदलती रही हैं। इससे वहाँ की अर्थव्यवस्था को एक सुदृढ़ आधार प्राप्त हो गया है। दूसरी ओर, एशिया अफ्रीका और लेटिन अमेरिका के अधिकांश देश राजनीतिक अस्थिरता का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। जिन देशों में राजनीतिक स्थिरता है, वहाँ अपेक्षाकृत आर्थिक विकास अधिक हुआ है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि राजनीति विज्ञान और अर्थशास्त्र दोनों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। आधुनिक युग के जिन अर्थशास्त्रियों ने राजनीति विज्ञान पर गहरा प्रभाव डाला है, उनमें केनेथ ऐरो, एंथोनी डाउन्स, डन्कन ब्लैक और जी० टूलोक के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। राजनीति विज्ञान के विद्वान अर्थशास्त्र की विधियों का खुलकर उपयोग करने लगे हैं।

6.2.5 राजनीति विज्ञान और मनोविज्ञान

मनोविज्ञान मानव के मन और व्यवहार का विज्ञान है। मनोविज्ञान की सहायता से ही मानव की अभिप्रेरणाओं और खास कामों का लेखा-जोखा लिया जाता है। इसलिए, मानव को समझने के लिए मनोविश्लेषणात्मक विधियों का प्रयोग किया जाता है। यह माना जाता है कि मानव मन की खास कार्यशैली के कारण ही खास काम सम्पन्न होते हैं। मनोवैज्ञानिक रूप से किसी व्यक्ति को जानकर ही आप उसे सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से बेहतर समझ सकते हैं।

राजनीति विज्ञान एक सामाजिक विज्ञान होने के कारण मनुष्य के अध्ययन से सम्बन्धित है। राजनीतिक संस्थाओं पर मानसिक गतिविधियों का प्रभाव पड़ना नितान्त स्वाभाविक है। यही कारण है कि राजनीति विज्ञान और मनोविज्ञान में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है।

ज्ञातव्य है कि सबसे पहले मैकियावली ने राजनीतिक गतिविधियों के आधार पर मनोविज्ञान का महत्व प्रतिपादित किया और हॉब्स ने इसे वैज्ञानिक स्वरूप दिया। हॉब्स को राजनीति के मनोवैज्ञानिक उपागम का जनक माना जाता है। मनोविज्ञानोन्मुखी राजनीतिक विश्लेषण पर सर्वाधिक बल देने वाले फ्रांसीसी और अंग्रेज लेखकों में प्रमुख रहे टार्डे, डरखाइम, लेबोन, ग्राहम वैलास और मैकडोगल। राजनीति विज्ञान के क्षेत्र में मनोविज्ञान के बढ़ते प्रभाव को ग्राहम वैलास ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भ्रमर दंजनतम पद च्वसपजपबे' में व्यक्त किया है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि मनुष्य अपने राजनीतिक व्यवहार में केवल विवेक के द्वारा प्रेरित नहीं होता, वह भावनाओं और आवेगों द्वारा भी प्रभावित होता है।

फ्रायड और दूसरे मनोवैज्ञानिकों ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि मानव व्यवहार का आधार उसके मन की अवचेतन प्रवृत्तियों हैं। इन प्रवृत्तियों का उद्गम उसकी दबी हुई इच्छाएं हैं। फ्रायड के अनुसार मनुष्य साधारणतः विवेक या बौद्धिक विश्लेषण के आधार पर कार्य नहीं करता। बुद्धि अवचेतन आवेगों की दासी है। यदि यह सच है तो राजनीति के विद्यार्थी को भी इन अवचेतन प्रेरणाओं और मनोवृत्तियों को समझना आवश्यक हो जाएगा। इन्हें बिना समझे वह राजनीतिक जीवन का न तो यथार्थवादी विश्लेषण कर सकता है और न उसके आदर्शों के सम्बन्ध में कोई निष्कर्ष निकाल सकता है। इसी प्रकार टोटल ने अपनी पुस्तक (शान्ति और युद्ध के दौरान मानववृत्ति) में यह बताया है कि शान्ति एवं युद्ध दोनों ही स्थितियों में किस प्रकार राष्ट्रीय नेता जनता के मनोभावों का अध्ययन कर उससे लाभ उठा सकते हैं। लिप्पमैन ने अपने ग्रन्थ 'लोकमत' में सर्वसाधारण जनता के मत, लोगों की हठधर्मी और उनके विचारों का विश्लेषण किया है। गुन्नार मिर्डल की प्रसिद्ध पुस्तक 'अमेरिकी दुविधा' अमेरिका के लोगों की मनोवृत्ति को भली प्रकार स्पष्ट करती है।

राजनीति विज्ञान के लिए मनोविज्ञान की उपादेयता निम्न प्रकार स्पष्ट की जा सकती है:-

1. यह उल्लेखनीय है कि भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न शासन प्रणालियों का आधार जन-समाज की मनोवृत्ति ही है। प्रमुख फ्रांसीसी पत्रकार बौतमी ने अपने दो महान ग्रन्थों में इंग्लैण्ड और अमेरिका के लोगों की मनोवृत्ति का विवेचन करके यह बताने का प्रयत्न किया है कि इन दोनों देशों की राजनीतिक संस्थाओं में जो मुख्य भेद हैं, उनका प्रमुख कारण लोगों की मनोवृत्ति ही है। इंग्लैण्ड एक लोकतंत्रीय देश होते हुए भी आज तक सम्राट के अस्तित्व को बनाये हुए है। इसके मूल में अंग्रेजों की भावना व मनोवृत्ति है। सम्राट का पद वहाँ यद्यपि कुछ सीमा तक निरर्थक और सारहीन हो गया है, तथापि इंग्लैण्ड के लोगों की ऐसी धारणा बन गयी है कि "जब तक बकिंघम महल में राजा अथवा रानी विद्यमान हैं, तभी तक वे शान्ति की नींद ले सकते हैं।" इस प्रकार वहाँ राजपद की व्यावहारिक उपयोगिता उतनी नहीं है जितनी कि उसके पीछे जन-साधारण की भावना है।

2. राज्य को किसी नवीन नीति का निर्धारण अथवा किसी नये कानून को बनाते समय समाज की मनोवृत्ति का भली प्रकार अध्ययन कर लेना चाहिए अन्यथा जनता उस नीति या कानून का स्वागत नहीं करेगी। आधुनिक युग में तो जनमत का महत्व अत्यधिक बढ़ गया है। लोकतंत्र का आधार 'जनमत' है और जनमत बनाने के लिए अब विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रचार-साधनों का उपयोग किया जाने लगा है। प्रो0 गेटेल के शब्दों में, "राजनीतिक दलों की प्रकृति आजकल पर्याप्त सीमा तक मनोवैज्ञानिक बन गयी है।"

3. जन-सामान्य के आचरण तथा उत्तेजित भीड़ के मनोभावों को समझे बिना कोई व्यक्ति सफल राजनीतिज्ञ अथवा जननेता नहीं बन सकता। उदाहरणार्थ- प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त जर्मनी की जनता में पराजय के कारण घोर

निराशा तथा असन्तोष उत्पन्न हो गया था। हिटलर ने उसे पहचाना और उससे लाभ उठाया। जनता में उत्साह, साहस और सैनिक भावना का संचार करने के लिए हिटलर और उसके साथी कहा करते थे कि, “मनुष्य को शेर की तरह निर्भय और खूनी होना चाहिए। सच्चा जर्मन वह है जो अपनी बुद्धि से नहीं अपितु अपने रक्त से सोचे।” इस प्रकार महात्मा गाँधी की सफलता का मुख्य कारण भी जनता की मनोवृत्ति का अध्ययन कर उसी के अनुरूप कार्य करना था। महात्मा गाँधी जानते थे कि भारत एक धर्म प्रधान देश है। इसीलिए उन्होंने धार्मिक प्रतीकों- प्रार्थना, उपवास, गौरक्षा, ब्रह्मचर्य, सत्याग्रह आदि का आश्रय लिया। गाँधीजी ने एक साधारण किसान की वेश-भूषा ग्रहण की और अपने संदेश को गाँव-गाँव तक पहुँचाया। इटली के महान देशभक्त मैजिनी की ही भाँति गाँधीजी ने भी अध्यात्मवाद का सहारा लिया और देशभक्ति को ‘धर्म’ व ‘उपासना’ का स्वरूप प्रदान किया।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि कोई भी राजनीतिज्ञ मनोविज्ञान के अध्ययन की उपेक्षा नहीं कर सकता। लॉर्ड ब्राइस ने तो यहाँ तक कह डाला है कि, “मनोविज्ञान ही राजनीति विज्ञान का आधार है।”

लेकिन इन दोनों के बीच में कुछ अन्तर भी है:-

1. प्रकृति:- राजनीति विज्ञान एक आदर्शवादी विज्ञान है जो ‘क्या था और क्या है?’ के साथ ही ‘क्या होना चाहिए?’ का भी अध्ययन करता है, जबकि मनोविज्ञान का आदर्श से कोई सम्बन्ध नहीं होता है।
2. विषय:- राजनीति विज्ञान मनुष्य के राजनीतिक संगठनों तथा कार्यों का अध्ययन करता है, जबकि मनोविज्ञान मनुष्य की मानसिक अवस्थाओं का भी अध्ययन करता है।
3. व्यवहारिक जीवन में महत्व:- मनोविज्ञान केवल मनुष्य की मनोवृत्तियों का अध्ययन करता है, जबकि राजनीति विज्ञान व्यवहारिक कार्यों का भी अध्ययन करता है।

अभ्यास प्रश्न

1. गुन्नार मिर्डल की प्रसिद्ध पुस्तक ‘अमेरिकी दुविधा’ है। सत्य असत्य/
2. टोटर की पुस्तक शान्ति और युद्ध के दौरान मानववृत्ति है। सत्य असत्य/
3. लॉर्ड ब्राइस के कथनानुसार, ‘राजनीतिशास्त्र’ ‘इतिहास’ और ‘राजनीति’ के मध्य स्थित है। सत्य असत्य/
4. स्टर्ले की पुस्तक ‘द स्टडी ऑफ हिस्ट्री’ है। सत्य असत्य/

6.3 सारांश

समाज में मानव की विविध भूमिकाओं और आवश्यकताओं को समझने के लिए राजनीति विज्ञान अन्य सामाजिक विज्ञानों के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करता है। क्योंकि मानवीय गतिविधियाँ किसी एक शास्त्र की विषय सामग्री तक सीमित नहीं रह सकती। मानवीय गतिविधियों को स्पष्ट करने के लिए सभी सामाजिक विज्ञानों की पूरक भूमिका होती है। फलतः मानव और समाज के मूल तत्व को समझने के लिए किसी विशिष्ट सामाजिक विज्ञान की सीमाओं का अतिक्रमण करना ही होता है। 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से सामाजिक विज्ञानों के बीच के अंतः सम्बन्धों पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। इसी स्वाभाविक क्रम में, राजनीति विज्ञान ने इस प्रक्रिया में सहज ढंग से भाग लिया है और आज के परिप्रेक्ष्य में राजनीति विज्ञान की उपयोगिता विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों से पैदा माँगों को पूरा करने के लिए, अपनी निश्चित आवश्यकताओं के अनुरूप अन्य शास्त्रों से सहायता लेकर पूर्ण करने में है। इसलिए सम्बन्धित शाखाओं से सम्बन्धित सामाजिक ज्ञान को सबसे अच्छे ढंग से

पेश करने के लिए सभी 'सामाजिक विज्ञान', अनिवार्यतः सहायक भूमिका अदा करते हैं। यह राजनीति विज्ञान ही है, जो राजनीतिक यथार्थ को साफ करने के लिए इस ज्ञान का उपयोग करता है।

6.4 शब्दावली

राजनीतिक अर्थशास्त्र: अध्ययन की वह शाखा जिसमें राजनीतिक विश्लेषण के लिए आर्थिक तत्वों की भूमिका पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है, आर्थिक प्रतिरूपों का प्रयोग किया जाता है और आर्थिक जीवन पर राजनीतिक निर्णयों के प्रभाव की जाँच की जाती है। इसमें उन संकल्पनाओं का विस्तृत विवेचन किया जाता है जो मनुष्यों की राजनीतिक तथा आर्थिक दोनों प्रकार की गतिविधियों पर समान रूप से लागू होती हैं, जैसे कि संसाधनों का आबंटन, मांगें, लागतें, उपयोगिता और इष्टतमकरण इत्यादि।

राजनीतिक समाज विज्ञान: अध्ययन की वह शाखा जिसमें राजनीतिक संस्थाओं, प्रक्रियाओं और विचारधाराओं, इत्यादि को सामाजिक संरचनाओं और प्रक्रियाओं के संदर्भ में रखकर देखा और परखा जाता है। इसमें राजनीतिक प्रणाली को सामाजिक प्रणाली की एक उपप्रणाली के रूप में देखा जाता है और उनके परस्पर सम्बन्ध का अन्वेषण किया जाता है।

राजनीतिक मनोविज्ञान: अध्ययन की वह शाखा जिसमें व्यक्तित्व और उसके राजनीतिक व्यवहार के परस्पर सम्बन्ध का पता लगाया जाता है; राजनीतिक अभिवृत्तियों की समानताओं और भिन्नताओं का अन्वेषण किया जाता है; राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया और नेतृत्व की शैलियों का विश्लेषण किया जाता है, राजनीतिक प्रभाव और प्रचार के बारे में अनुसंधान किया जाता है।

राजनीतिक दर्शन: अध्ययन की वह शाखा जिसमें मुख्यतः राजनीति के नैतिक और तात्त्विक पक्षों पर विचार किया जाता है। इसमें राज्य और राजनीतिक जीवन के स्वरूप, राजनीतिक दायित्व के आधार और विभिन्न राजनीतिक प्रणालियों की गुणवत्ता की जाँच की जाती है और सार्वजनिक जीवन के लक्ष्य निर्धारित करने के लिए दर्शन और इतिहास की विधियों का प्रयोग किया जाता है।

6.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य

6.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जैन, पुखराज- राजनीति विज्ञान, एस0बी0पी0जी0 पब्लिकेशन, आगरा
2. सिंहल, एस0सी0- राजनीतिक सिद्धान्त, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा
3. आशीवादम, ए0डी0 तथा मिश्र, कृष्णकान्त- राजनीति विज्ञान, एस0 चॉद कम्पनी लि0, नई दिल्ली
3. गाबा, ओमप्रकाश- राजनीति सिद्धान्त की रूपरेखा, मयूर पेपर बैक्स, नोयडा
4. जौहरी, जसी0 एवं सीमा- आधुनिक राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त, स्टर्लिंग पब्लिकेशन प्रा0 लि0, नई दिल्ली
5. वर्मा, एस0पी0- मॉडर्न पालिटिकल थ्योरी, विकास प्रकाशन, नई दिल्ली

6.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. दास, पी0जी0- मॉडर्न पालिटिकल थ्योरी, न्यू सेंट्रल बुक एजेंसी, कलकत्ता

-
2. जैन, एम0पी0- पालिटिकल थ्योरी, आर्थस गिल्ड पब्लिकेशन, दिल्ली
 3. संधु, ज्ञान सिंह- राजनीतिक सिद्धान्त, दिल्ली विश्वविद्यालय
 3. वर्मा, एस0एल0- एडवांसड मॉडर्न पालिटिकल थ्योरी, नेशनल पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली
-

6.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. राजनीतिक मामलों में दर्शन का क्या महत्व है।
2. राजनीति विज्ञान का इतिहास से सम्बन्ध बताइए। राजनीति विज्ञान के अध्ययन के लिए इतिहास की क्या उपयोगिता है?
3. राजनीति विज्ञान के विकास में समाजशास्त्र की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
3. राजनीति विज्ञान के अध्ययन में अर्थशास्त्र किस प्रकार उपयोगी है?
4. राजनीति विज्ञान और मनोविज्ञान के बीच सम्बन्ध पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।
5. राजनीति विज्ञान और भूगोल के सम्बन्ध पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

इकाई- 7 अर्थशास्त्र का अन्य विषयों से सम्बन्ध

- 7.1 प्रस्तावना (Introduction)
- 7.2 उद्देश्य (Objectives)
- 7.3 सामाजिक विज्ञान के प्रभाग (Division of Social Sciences)
 - 7.3.1- समाज शास्त्र (Sociology)
 - 7.3.2- राजनीति शास्त्र/विज्ञान (Political Science)
 - 7.3.3- नीति शास्त्र (Ethics)
 - 7.3.4- न्यायशास्त्र (Jurisprudence)
 - 7.3.5- इतिहास (History)
 - 7.3.6- मनोविज्ञान (Psychology)
 - 7.3.7- भूगोल (Geography)
 - 7.3.8- अर्थशास्त्र (Economics)
- 7.4 अर्थशास्त्र के प्रभाग एवं उसका सम्बन्ध (Division of Economics and its relation)
 - 7.4.1- उत्पादन (Production)
 - 7.4.2- उपभोग (Consumption)
 - 7.4.3- विनिमय (Exchange)
 - 7.4.4- वितरण (Distribution)
 - 7.4.5- राजस्व अथवा लोकवित्त (Public Finance)
 - 7.4.6- अर्थशास्त्र के प्रभागों में पारस्परिक सम्बन्ध (Interrelationship among division of Economics)
- 7.5 अर्थशास्त्र का अन्य विषयों से संबंध (Relation of Economics with other Disciplines)
 - 7.5.1- अर्थशास्त्र एवं समाज शास्त्र (Economics and Sociology)
 - 7.5.2- अर्थशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र (Economics and Political Science)
 - 7.5.3- अर्थशास्त्र एवं नीति शास्त्र (Economics and Ethics)
 - 7.5.4- अर्थशास्त्र एवं न्यायशास्त्र (Economics and Jurisprudence)
 - 7.5.5- अर्थशास्त्र एवं इतिहास (Economics and History)
 - 7.5.6- अर्थशास्त्र एवं मनोविज्ञान (Economics and Psychology)
 - 7.5.7- अर्थशास्त्र एवं भूगोल (Economics and Geography)
 - 7.5.8- अर्थशास्त्र एवं गणित (Economics and Mathematics)
- 7.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
- 7.7 सारांश (Summary)
- 7.8 शब्दावली (Glossary)
- 7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)
- 7.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Reference/Bibliography)

7.11 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)**7.12 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)****7.1 प्रस्तावना (Introduction)**

प्रस्तुत इकाई में आप सबसे पहले सामाजिक विज्ञान एवं अर्थशास्त्र के विभिन्न प्रभागों का अध्ययन करेंगे। अर्थशास्त्र के विभिन्न प्रभागों का अध्ययन के उपरान्त आप उनके मध्य पारस्परिक संबंधों को जानेगे। अंत में आप अर्थशास्त्र का अन्य शास्त्रों के बीच के अंतर्संबंधों को समझेंगे।

7.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- 1-सामाजिक विज्ञान के प्रभागों से अवगत हो सकेंगे।
- 2-अर्थशास्त्र के प्रभागों से अवगत हो सकेंगे।
- 3-अर्थशास्त्र के प्रभागों में परास्परिक संबंधों को भली भाँति जान सकेंगे।
- 4-अर्थशास्त्र का अन्य शास्त्रों से संबंधों की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

7.3 सामाजिक विज्ञान के प्रभाग (Division of Social Sciences)

व्यक्ति की व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति उसके स्वयं के क्रियाकलापों के द्वारा होती है। उसके स्वयं के साथ साथ कुछ अन्य आवश्यकताएं भी होती है। जिनकी पूर्ति आवश्यक रूप से समुदाय अथवा संयुक्त प्रयासों से ही हो सकती है। इन अर्थों में समूह की गतिविधियों से सम्बन्धित प्रक्रिया सामाजिक प्रक्रिया कहलाती है और इन प्रक्रियाओं को वर्गीकृत करने और समझने वाले विज्ञान सामाजिक विज्ञान कहलाते हैं।

“सामाजिक विज्ञानों को ऐसे मानसिक अथवा सांस्कृतिक विज्ञानों के रूप में परिभाषित किया जाता है जो व्यक्ति के समूह के सदस्य की गतिविधियों से सम्बन्धित रहते हैं। चूंकि मानव की सामान्य आवश्यकताएं अत्यधिक भिन्नता लिए होती है। अतः इनकी पूर्ति के लिए किए जा रहे सामूहिक क्रियाकलाप भी विविधता पूर्ण रहते हैं जिससे सामाजिक विज्ञानों की संख्या में भी वृद्धि होती है।”

अतः सामाजिक विज्ञान की सरलतम परिभाषा के अनुसार, वे उन सभी शैक्षणिक विषयों को इंगित करते हैं जिनका मनुष्य से उनके सामाजिक संदर्भों में सरोकार होता है। मानव समाज के विषय में संपूर्णतया से जाना अथवा बताया नहीं जा सकता है। अतः आवश्यक है कि मनुष्यों के द्वारा की जा रही है अंतःक्रियाओं को सुव्यवस्थित अध्ययन इकाईयों में विभक्त किया जाए। ऐसे विषय को हम अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र, समाज शास्त्र तथा अन्य अनेक नामों से सम्बोधित करते हैं। इनमें से प्रत्येक शास्त्र का अपना इतिहास, अपने विशिष्ट रुझान और शोध प्रणालियां रहती हैं।

7.3.1- समाज शास्त्र (Sociology)

आधुनिक सामाजिक विज्ञान में नवीनतम किंतु सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसका उद्देश्य उन नियमों का प्रतिपादन करना रहा है जो सामाजिक सम्बंधों की आधारशिला होते हैं। समाजशास्त्र को मानसिक विज्ञानों में श्रेष्ठतम व जटिलतम माना जा सकता है। इसे सामाजिक क्रिया के साथ वैज्ञानिक चिंतन का समन्वय माना जा सकता है।

समाजशास्त्र की प्रक्रिया में किसी भी शाश्वत स्थिति की पड़ताल की जाती है। उसके समाधान हेतु अनुसंधान की जाती है और अंततः समाधान के प्रधानों का व्यावहारिक रूप में क्रियान्वयन किया जाता है।

7.3.2- राजनीति शास्त्र/विज्ञान (Political Science)

सामाजिक विज्ञानों में आरम्भिक विषय सम्भवतः राजनीति शास्त्र रहा चूंकि मानव समूहों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण समूह राज्य के रूप में रहा है। जिस समय यूनान में वैज्ञानिक चिंतन शुरू हुआ। उस समय तक समस्त पूर्व राजनैतिक समूहों को राज्य के द्वारा समाहित किया जा चुका था। अतः यूनानी विद्वानों का मुख्य सरोकार राजनीति अथवा राजनीति विज्ञान से रहा। जो स्वशासित इकाईयों में सर्वोच्च इकाई अर्थात् पोलिस से सम्बंधित थी।

7.3.3- नीति शास्त्र (Ethics)

सभी मानवीय क्रियाओं का अंतिम लक्ष्य नैतिक जीवन को सुव्यवस्थित करना होता है। नैतिक आचरण मूलतः एक व्यक्तिगत प्रश्न हैं किंतु इसे सामाजिक प्रभावों का परिणाम माना जाता है। समूह के अभाव में नैतिक अथवा अनैतिक नहीं हो सकता। समुदायों के मध्य लगातार बढ़ते सम्पर्क से समूहों की नैतिकता का मुद्दा भी महत्वपूर्ण हुआ है। इस प्रकार नीतिशास्त्र का सम्बन्ध व्यक्तियों के साथ-साथ समूहों में भी स्थापित हो जाता है।

7.3.4- न्यायशास्त्र (Jurisprudence)

आरम्भिक समाज में भी सह-परम्पराओं को कठोर दमनात्मक नियमों के द्वारा कानून के रूप में ढाला गया था। कालांतर में अपेक्षाकृत विकसित राज्यों के अस्तित्व में आने के पश्चात् कानून को न्याय का प्रतीक माना गया। जिसमें न्यायशास्त्र की उत्पत्ति हुई। इस विज्ञान को विकसित करने में रोमन लोगों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। आधुनिक समय में न्यायशास्त्र का दायरा निरंतर रूप से विस्तृत होता रहा है। वैधानिक संबंधों को मानवीय समूहों के सभी पक्षों में विद्यमान पाया जा सकता है।

7.3.5- इतिहास (History)

परम्परागत सामाजिक विज्ञानों की श्रेणी में यूनानियों से सम्बंधित तीसरा विषय इतिहास रहा। हेरोडोटस को इतिहास का जनक माना जाता है। उसकी कृतियों में इतिहास विज्ञान के स्थान पर एक साहित्यिक कला अधिक प्रतीत होता है। शताब्दियों तक इतिहास, कला और विज्ञान का समन्वय बना रहा। थ्यूसीडाइडिज की लेखनी में इतिहास का केन्द्र राज्य को माना गया तथा इसकी प्रकृति वैज्ञानिक बनने लगी। आधुनिक युग के आरम्भ के साथ ही अब तक राजनैतिक विज्ञान के लिए सहायक रहा इतिहास विषय अपने क्षेत्र में अभिवृद्धि करता है। अब इसके अंतर्गत मनुष्य जीवन की बहु-आयामी गतिविधियों के साथ-साथ राजनैतिक संगठनों की गतिविधियों को भी समाहित किया गया। इस प्रकार इतिहास सामाजिक प्रक्रियाओं की व्याख्या के लिए एक परिहार्य स्रोत बन जाता है।

7.3.6- मनोविज्ञान (Psychology)

मनोविज्ञान के अंतर्गत व्यक्ति की मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। मानवीय व्यवहार का अध्ययन होने के कारण मनोविज्ञान आंशिक रूप से सामाजिक प्रकृति का बन जाता है। मनोविज्ञान के द्वारा मनुष्य जीवन तथा विचार प्रक्रिया के जैवकीय तथा यांत्रिकीय आधारों का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जाता है। एक मनोवैज्ञानिक

इस तथ्य से भली भांति अवगत रहता है कि सृष्टि की सम्पूर्ण प्रक्रिया को निर्धारण मानवीय के साथ साथ प्राकृतिक वातावरण भी करता है। अतः अलग व्याक्ति की अवधारणा भी निर्मूल है।

7.3.7- भूगोल (Geography)

भूगोल पृथ्वी की सतह के अध्ययन को कहा जाता है। इसके अंतर्गत प्राकृतिक के साथ-साथ सामाजिक प्रक्रियाओं के विस्तरण को भी समाहित किया जाता है। भूगोल मनुष्य तथा उसकी सामाजिक विरासत और दूसरी ओर मनुष्य तथा प्राकृतिक वातावरण की अंतःक्रिया को समझने का महत्वपूर्ण प्रयास है।

7.3.8- अर्थशास्त्र (Economics)

यूनानियों के दृष्टिकोण में राजनीति विज्ञान के पश्चात् द्वितीय स्थान पर अर्थशास्त्र को रखा गया। इसका सम्बंध ओइकोस दरबार से था। जो मनुष्य की सम्पत्ति से सम्बंधित विषयों के सम्बंध का प्रतीक था। दरबार को सुव्यवस्थित रखना जिसमें व्यक्ति की पत्नी, संतान तथा दासों को सम्मिलित किया गया था जोकि अत्यंत महत्वपूर्ण रहा किंतु यूनानियों ने धन की प्राप्ति को निश्चित रूप से एक निम्न प्रवृत्ति मानते हुए उस पर अधिक बल नहीं दिया जबकि कालांतर में (16 वी शताब्दी में) संपत्ति को राष्ट्रीय शक्ति का प्रतीक माना गया। आधुनिक अर्थशास्त्र की उत्पत्ति के लिए मार्ग सशक्त हो जाता है। राष्ट्रीय महत्व के अंतर्गत ही डी. वाटेविल के द्वारा इस विषय के लिये राजनीति अर्थशास्त्र का नामकरण प्रस्तावित हुआ। चूंकि संपत्ति सम्बंधों की नवीन व्यवस्था का निर्धारण राज्य के द्वारा ही किया जाना था। यह धारणा इतनी बलवती थी की अन्यथा रूप में सरकारी नियंत्रण के विरोधी एडम स्मिथ अर्थशास्त्र के लिये राजनीति अर्थशास्त्र नामकरण का समर्थन करते हैं। 17 वी शताब्दी में विषय की वास्तविक सामाजिक प्रवृत्ति स्पष्ट हुई तथा इसे यूनानियों के द्वारा दिया गया प्राचीन नाम अर्थात् Economics पुनः प्राप्त हो सका।

7.4 अर्थशास्त्र के प्रभाग एवं उसका सम्बन्ध (Division of Economics and its relation)

अर्थशास्त्र का अन्य शास्त्रों से संबंध को जानने से पहले हमें अर्थशास्त्र के विभिन्न प्रभागों और उनके मध्य पारस्परिक संबंधों को जानना आवश्यक है। आइये हम अर्थशास्त्र के विभिन्न प्रभागों और उनके बीच के अंतर्संबंधों को समझे।

अर्थशास्त्र के प्रभाग (Division of Economics)

अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु की व्याख्या एक अन्य ढंग से भी की जा सकती है। प्राचीन फ्रांसीसी अर्थशास्त्री जे. बी. से (J.B. Say) ने 1803 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'Traite de Economic Politique' में अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री को उत्पादन, उपभोग और वितरण तीन मूल प्रभागों में विभाजित किया था। लगभग 100 वर्षों तक अर्थशास्त्री जे. बी. से (J.B. Say) का अनुसरण करते रहे किन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री विनिमय तथा राजस्व को भी अर्थशास्त्र के महत्वपूर्ण प्रभाग मानते हैं।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से अर्थशास्त्र को पाँच प्रभागों में विभाजित किया जाता है:-

7.4.1- उत्पादन (Production)

वस्तुओं में तुष्टिगुण का सृजन ही उत्पादन कहलाता है। प्रो. पेन्सन के शब्दों में, "वस्तु में मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करने की योग्यता, गुण अथवा शक्ति में वृद्धि करना ही उत्पादन है।" कोई भी व्यक्ति हमेशा किसी नवीन

वस्तु का उत्पादन नहीं कर सकता परन्तु उसकी उपयोगिता में परिवर्तन कर सकता है। अर्थशास्त्र के इस प्रभाग में उत्पादन के अनेक साधनों (भूमि, श्रम, पूँजी, प्रबन्ध तथा साहस), उत्पत्ति के नियमों, उत्पादन के पैमाने आदि विषयों का अध्ययन किया जाता है।

7.4.2- उपभोग (Consumption)

अर्थशास्त्र का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाग उपभोग है। उपभोग से अभिप्राय वस्तु की उपयोगिता को मानव आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु नष्ट करने से है। अर्थशास्त्र के इस प्रभाग में मनुष्यों की आवश्यकताओं, उनके कारण, उनके प्रकारों तथा उनकी तृप्ति से होने वाली सन्तुष्टि व उनके नियमों (जैसे उपयोगिता हास नियम, सम-सीमान्त उपयोगिता का नियम, माँग का नियम, उपभोक्ता की बचत आदि का अध्ययन किया जाता है। मार्शल (Marshall) ने उपभोग को अर्थशास्त्र का 'आदि और अन्त' कहा है।

7.4.3- विनिमय (Exchange)

अर्थशास्त्र में विनिमय का अर्थ है कम आवश्यक वस्तुओं को अधिक आवश्यक वस्तुओं में बदलना। अर्थशास्त्र के इस प्रभाग के अंतर्गत वस्तु विनिमय, उसकी कठिनाइयाँ, मुद्रा का जन्म, उसका विकास, बैंक तथा साख व्यवस्था, आन्तरिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धान्तों, समस्याओं तथा बाजार की विभिन्न अवस्थाओं में वस्तु के मूल्य निर्धारण सम्बन्धी सिद्धान्तों का अध्ययन किया जाता है।

7.4.4- वितरण (Distribution)

उत्पादन में भाग लेने वाले साधनों के बीच होने वाले धन के बंटवारे को वितरण कहते हैं। अर्थशास्त्र के इस प्रभाग में इस बात का अध्ययन किया जाता है कि संयुक्त उत्पादन के वितरण का सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त क्या है तथा उत्पादन में शामिल सभी साधनों का पारिश्रमिक किस आधार पर निर्धारित किया जाना चाहिए।

7.4.5- राजस्व अथवा लोकवित्त (Public Finance)

राजस्व, अर्थशास्त्र का नवीनतम प्रभाग है। राजस्व प्रभाग के अंतर्गत सरकार की आय तथा व्यय तथा उसके पारस्परिक समन्वय का अध्ययन किया जाता है। अर्थशास्त्र के इस प्रभाग के अन्तर्गत हम सार्वजनिक व्यय, सार्वजनिक आय, सार्वजनिक ऋण, वित्तीय प्रबन्ध, आर्थिक स्थायित्व व राजकोषीय नीति का अध्ययन करते हैं।

7.4.6- अर्थशास्त्र के प्रभागों में पारस्परिक सम्बन्ध (Interrelationship among division of Economics)

1 उपभोग तथा उत्पादन

(अ) उत्पादन उपभोग पर आश्रित है- यदि किसी चीज का उपभोग नहीं होगा तो बाजार में उसकी माँग भी नहीं होगी। उत्पादन की मात्रा तथा स्वभाव भी उपभोग पर निर्भर करते हैं। जिस वस्तु की जितनी माँग होगी उतना ही उसका उत्पादन होगा। रुचि, फैशन, रीति-रिवाज आदि में परिवर्तन होने पर उत्पादन के स्वभाव में भी परिवर्तन होगा।

(ब) उपभोग भी उत्पादन पर आश्रित है- उत्पादन के बिना उपभोग की कल्पना करना भी सम्भव नहीं है। किसी वस्तु का उपभोग उतना ही होगा जितना उसका उत्पादन हुआ है। उत्पादन ही उपभोग का स्वभाव निश्चित करता है। किसी देश में जिस वस्तु का उत्पादन होता है उसी वस्तु का उपभोग होता है।

2. उपभोग और विनिमय

(अ) विनिमय उपभोग पर आश्रित है- (i) उपभोग के कारण ही वस्तुओं का विनिमय होता है। (ii) उपभोग ही वस्तु के बाजार के क्षेत्र को प्रभावित करता है।

(ब) उपभोग भी विनिमय पर आश्रित है- (i) बिना विनिमय के उपभोग सम्भव नहीं है। (ii) विनिमय उपभोग के स्वभाव को बदलने में सहायक होता है। (iii) विनिमय उपभोग के क्षेत्र को भी विस्तृत करता है।

3. उपभोग तथा वितरण

(अ) वितरण उपभोग पर आश्रित है- (i) उपभोग के अस्तित्व का मूल कारण वितरण होता है। (ii) वितरण के अनेक सिद्धान्तों तथा समस्याओं को सुलझाने में उपभोग के नियमों का ज्ञान सहायक है।

(ब) उपभोग भी वितरण पर आश्रित है- (i) वितरण के द्वारा ही हमें अपने उपभोग की वस्तुएं प्राप्त होती हैं। (ii) वितरण की मात्रा व स्वभाव पर ही उपभोग की मात्रा व स्वभाव निर्भर करता है। चूंकि उपभोग वितरण को तथा वितरण उपभोग को प्रभावित करता है। अतः दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है।

4. उपभोग तथा राजस्व

(अ) उपभोग राजस्व पर आश्रित है- (i) उपभोग राज्य की आय तथा व्यय को बहुत प्रभावित करता है। यदि उपभोग कम हो जाएगा तो सरकार की आय कम होगी तथा सार्वजनिक कार्यों पर सरकार कम व्यय करेगी। (ii) राजस्व के नियमों तथा सिद्धान्तों के समझने में उपभोग के नियम सहायक होते हैं।

(ब) उपभोग भी राजस्व पर आश्रित है- (i) राजस्व उपभोग की मात्रा व स्वभाव को प्रभावित करता है। (ii) सरकार की कर नीति व व्यय-नीति व्यक्तिगत व सामूहिक उपभोग को प्रभावित करती है। यदि सरकार अपनी आय का अधिकांश भाग सामाजिक कल्याण कार्यों पर व्यय करती है तो उपभोग में वृद्धि होगी और यदि सरकार इसके विपरीत कार्य करती है तो उपभोग में कमी आ जाएगी।

5. उत्पादन तथा विनिमय

(अ) उत्पादन विनिमय पर आश्रित है- (i) उत्पादन का वर्तमान स्वरूप विनिमय प्रणाली पर ही बहुत कुछ निर्भर करता है। (ii) विनिमय, उत्पादन में सहायक होता है।

(ब) विनिमय भी उत्पादन पर आश्रित है- (i) उत्पादन के कारण ही विनिमय का अस्तित्व है। (ii) उत्पादन की मात्रा व प्रकृति पर ही विनिमय की प्रकृति निर्भर करती है।

6. उत्पादन और वितरण

(अ) वितरण उत्पादन पर आश्रित है- (i) उत्पादन के कारण ही वितरण सम्भव हुआ है। (ii) उत्पादन ही वितरण की मात्रा को निश्चित करता है।

(ब) उत्पादन भी वितरण पर आश्रित है- (i) वितरण उत्पादन की मात्रा को प्रभावित करता है। (ii) वितरण का स्वभाव उत्पादन के स्वभाव को भी प्रभावित करता है।

7. उत्पादन तथा राजस्व

(अ) राजस्व उत्पादन पर आश्रित रहता है- उत्पादन ही सरकार की आय और व्यय-प्रणाली को प्रभावित करता है।

(ब) उत्पादन भी राजस्व पर आश्रित रहता है- उत्पादन का स्वभाव, मात्रा तथा प्रगति राजकोषीय नीतियों पर निर्भर करते हैं।

8. विनिमय तथा वितरण

(अ) विनिमय से ही वितरण सम्भव है- विनिमय के द्वारा प्राप्त धन को ही उत्पादकों द्वारा उत्पत्ति के विभिन्न साधनों को उनके पारिश्रमिक के रूप में बाँटा जाता है। यदि वस्तुओं का विनिमय नहीं होगा तो वितरण भी नहीं हो सकेगा।

(ब) वितरण भी विनिमय को प्रभावित करता है- वितरण के समान तथा न्यायसंगत होने के कारण विनिमय की जाने वाली वस्तुओं का स्वभाव बदल जाता है।

7. विनिमय तथा राजस्व

(अ) विनिमय का राजस्व पर प्रभाव - विनिमय राजस्व को काफी प्रभावित करता है क्योंकि विनिमय का सार्वजनिक आय पर सीधा प्रभाव पड़ता है।

(ब) राजस्व का विनिमय पर प्रभाव-राजस्व भी विनिमय की मात्रा को प्रभावित करता है क्योंकि विनिमय के साधनों- बैंकिंग व्यवस्था, मुद्रा-संचालन, मूल्य नियन्त्रण आदि की व्यवस्था राज्य को ही करनी पड़ती है और सरकार की कर नीति भी विनिमय की मात्रा को घटाती-बढ़ाती है।

10. वितरण तथा राजस्व

(अ) राजवित्त पर वितरण का प्रभाव – (i) वितरण राज्य की कर-नीति को प्रभावित करता है। (ii) सरकार की व्यय-नीति भी वितरण पर निर्भर होती है।

(ब) वितरण पर राजस्व का प्रभाव - वितरण पर भी राजस्व का बहुत प्रभाव पड़ता है क्योंकि कर-नीति तथा व्यय-नीति भी वितरण को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार वितरण तथा राजस्व एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। अतः दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है।

7.5 अर्थशास्त्र का अन्य विषयों से संबंध (Relation of Economics with other Disciplines)

अर्थशास्त्र में समाज में रहने वाले मनुष्य की क्रियाओं का अध्ययन होता है। अर्थशास्त्र के अतिरिक्त अनेक ऐसे विज्ञान हैं, जिनके अध्ययन का विषय भी मनुष्य है। अतः ये सभी विज्ञान एक दूसरे से परस्पर सम्बन्धित हैं।

7.5.1 अर्थशास्त्र एवं समाज शास्त्र (Economics and Sociology)

समाजशास्त्र में हम मनुष्य के समस्त सामाजिक व्यवहारों और समस्याओं का अध्ययन करते हैं परन्तु अर्थशास्त्र में हम मानव-जीवन के आर्थिक पहलू का अध्ययन करते हैं।

1. समाजशास्त्र के अध्ययन में अर्थशास्त्र का ज्ञान सहायक है (Knowledge of Economics is helpful in the study of Sociology) - समाजशास्त्र के नियम सभी सामाजिक विज्ञानों के नियमों पर आधारित होते हैं। आर्थिक क्रियाएं मनुष्य की सामाजिक क्रियाओं को अत्यधिक प्रभावित करती हैं। मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं के अध्ययन के बिना उसकी सामाजिक क्रियाओं का अध्ययन नहीं किया जा सकता।

2. अर्थशास्त्र के अध्ययन में समाजशास्त्र का ज्ञान आवश्यक है (Knowledge of Sociology is helpful in the study of Economics) - वास्तव में मनुष्य के सामाजिक सम्बन्ध व उसकी सामाजिक मान्यताओं का उसकी आर्थिक क्रियाओं पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। सामाजिक समस्याएं देश के आर्थिक विकास में बाधक सिद्ध होती हैं। कोई भी आर्थिक योजना तभी सफल हो सकती है जबकि उसे समाज का पूर्ण समर्थन प्राप्त होता हो।

7.5.2 अर्थशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र (Economics and Political Science)

अर्थशास्त्र और राजनीतिशास्त्र दोनों ही सामाजिक विज्ञान हैं और दोनों का अध्ययन-विषय (Subject of Study) मनुष्य है। मात्र इतना अन्तर है कि अर्थशास्त्र में मनुष्य के आर्थिक पहलू का अध्ययन किया जाता है जबकि राजनीति शास्त्र में मनुष्य के राजनीतिक पहलू का अध्ययन किया जाता है।

1. राजनीति शास्त्र का अर्थशास्त्र पर प्रभाव (Impact of Political Science on Economics)

(i) किसी देश की राजनीतिक अवस्था का उसके आर्थिक संगठन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यदि देश में शान्ति, सुरक्षा और सुव्यवस्था है तब राज्य शक्तिशाली न्यायपूर्ण और कल्याणकारी है तथा उसे आर्थिक योजनाओं के कार्यान्वयन में जन-सहयोग प्राप्त होता है तो वह देश आर्थिक दृष्टि से विकसित होगा। इसके विपरीत दशाओं में देश आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा होगा।

(ii) राज्य के स्वरूप का उनकी आर्थिक क्रियाओं पर गहरा प्रभाव पड़ता है। साम्यवादी और समाजवादी अर्थव्यवस्था में उद्योग और व्यापार पर राज्य का पूर्ण नियन्त्रण होता है तथा उद्योगों के विकास में संरक्षण नीति का प्रयोग किया जाता है। इसके विपरीत पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन, उपभोग व रोजगार की स्वतन्त्रता होती है।

2. अर्थशास्त्र का राजनीति शास्त्र पर प्रभाव (Impact of Economics on Political Science)

(i) किसी देश की आर्थिक स्थिति वहाँ के समाज व शासन-व्यवस्था को प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए

(1) आर्थिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं में राज्य-व्यवस्था भी मूल रूप से भिन्न रही है।

(2) आर्थिक समस्याओं को ध्यान में रखकर ही राजकोषीय नीति निर्धारित की जाती है।

(3) आर्थिक दशाओं के अनुरूप ही विदेशी सरकारों व अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से आर्थिक व राजनीतिक समझौते किए जाते हैं।

(ii) किसी देश की आर्थिक दशाएं ही राजनीतिक संघर्षों का आधार होती हैं। चीन की क्रान्ति का मूल कारण वहाँ की आर्थिक दशाएं ही थीं।

(iii) साम्यवाद, पूँजीवाद, समाजवाद आदि सभी अर्थशास्त्र व राजनीतिशास्त्र दोनों के अध्ययन-विषय (Subject of Study) हैं।

7.5.3 अर्थशास्त्र एवं नीति शास्त्र (Economics and Ethics)

अर्थशास्त्र एवं नीति शास्त्र दोनों का अध्ययन-विषय (Subject of Study) मानव-व्यवहार है। अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र दोनों ही सामाजिक विज्ञान हैं और दोनों में ही मानव-व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। अन्तर केवल इतना है कि अर्थशास्त्र में मनुष्य के केवल आर्थिक पहलू का अध्ययन किया जाता है।

1. नीतिशास्त्र आर्थिक क्रियाओं के नैतिक पक्ष का विश्लेषण करता है। नीतिशास्त्र एक आदर्श शास्त्र है, जिसमें हम मानव-व्यवहार के आदर्शात्मक पहलू का अध्ययन करते हैं। यह इस बात का ज्ञान कराता है कि हमें क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। इसके अतिरिक्त अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र दोनों का ही सम्बन्ध 'मानवीय कल्याण में वृद्धि' से है। इसलिए अर्थशास्त्री नीतिशास्त्र की सहायता से ही अपनी आर्थिक नीति निर्धारित करते हैं।

2. अर्थशास्त्र एक नीति प्रधान विज्ञान है। यह उद्देश्यों के प्रति तटस्थ नहीं रह सकता। इसलिए कहा जाता है कि 'अर्थशास्त्र नीतिशास्त्र का साथी और व्यवहार का दास है। (Economics is a handmaid of Ethics and servant of practice.)'

3. व्यक्ति की आर्थिक स्थिति का प्रभाव उसके नैतिक स्तर पर भी पड़ता है। व्यवहार में मनुष्य की आय, उसे प्राप्त करने तथा उसके व्यय करने का ढंग उस मानव के चरित्र व आचार-विचार पर बहुत गहरा प्रभाव डालता है।

7.5.4 अर्थशास्त्र एवं न्यायशास्त्र (Economics and Jurisprudence)

अर्थशास्त्र एवं न्यायशास्त्र दोनों विषयों का अध्ययन-विषय (Subject of Study) समान है। अर्थशास्त्र और न्यायशास्त्र दोनों का अध्ययन-विषय सामाजिक मनुष्य तथा उसका आचरण है। अर्थशास्त्र एवं न्यायशास्त्र दोनों में अन्तर केवल इतना है कि अर्थशास्त्र मनुष्य के केवल आर्थिक पहलू का अध्ययन करता है जबकि न्यायशास्त्र मानव-व्यवस्था के केवल कानूनी पहलू का अध्ययन करता है।

1. देश की न्याय-व्यवस्था उसकी आर्थिक प्रणाली को प्रभावित करती है। उचित न्याय-व्यवस्था से देश के आर्थिक विकास को प्रोत्साहन मिलता है, श्रमिक वर्ग का शोषण नहीं हो पाता और प्रत्येक व्यक्ति अपनी आय का समुचित उपभोग कर सकता है। इसके विपरीत, देश में न्याय-व्यवस्था के बिगड़े रहने पर देश के आर्थिक विकास की गति भी अवरुद्ध हो जाती है।

2. देश की आर्थिक स्थिति उसकी न्याय-व्यवस्था को भी प्रभावित करती है। देश की आर्थिक परिस्थितियों के अनुरूप ही नए-नए कानूनों का निर्माण होता है। उदाहरण के लिए- मूल्य बढ़ने पर ही मूल्य नियन्त्रण सम्बन्धी कानून बनाये जाते हैं।

अतः अर्थशास्त्र तथा न्यायशास्त्र में घनिष्ठ सम्बन्ध है।

7.5.5 अर्थशास्त्र एवं इतिहास (Economics and History)

अर्थशास्त्र एवं इतिहास दोनों ही शास्त्रों का अध्ययन-विषय (Subject of Study) मानव है। अन्तर केवल इतना है कि अर्थशास्त्र में मनुष्य की केवल आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है और इतिहास में अतीत में मानव-क्रियाओं का समन्वित स्वरूप है।

1. अर्थशास्त्र का ज्ञान इतिहास के अध्ययन में सहायक है (Knowledge of Economics is helpful in the study of History) - अर्थशास्त्र के ज्ञान से हमें इतिहास की घटनाओं को समझने में बहुत सहायता मिलती है। वास्तव में, आर्थिक घटनाओं को समझे बिना हम ऐतिहासिक घटनाओं को नहीं समझ सकते हैं क्योंकि प्रत्येक ऐतिहासिक घटना के पीछे कोई ना कोई आर्थिक घटना होती है और जब तक इन आर्थिक घटनाओं की पूर्ण जानकारी हमें नहीं होगी, हम ऐतिहासिक घटनाओं को भी ठीक प्रकार से नहीं समझ सकते हैं।

2. इतिहास का ज्ञान अर्थशास्त्र के अध्ययन में सहायक है (History of Economics is helpful in the study of Knowledge)-

(i) पिछली आर्थिक योजनाओं व आर्थिक सम्बन्धों का ज्ञान भविष्य की आर्थिक योजनाओं के निर्माण में सहायक होता है।

(ii) आर्थिक इतिहास का ज्ञान ही आर्थिक नियमों के निर्माण, विवेचन एवं संशोधन में सहायक होता है।

(iii) आर्थिक विचारों का इतिहास हमें इस बात का ज्ञान कराता है कि वर्तमान में आर्थिक सिद्धान्तों का विकास किस प्रकार हुआ है। इस प्रकार का ज्ञान हमें आर्थिक सिद्धान्तों को अच्छी तरह से समझ विकसित करने में सहायक होता है।

अर्थशास्त्र और इतिहास के सम्बन्धों की घनिष्ठता को बताते हुये एक विद्वान ने कहा है-

“Economics without History has no root, History without Economics has no fruit.”

7.5.6 अर्थशास्त्र एवं मनोविज्ञान (Economics and Psychology)

अर्थशास्त्र एवं मनोविज्ञान दोनों का अध्ययन-विषय (Subject of Study) समान है। अर्थशास्त्र एवं मनोविज्ञान में अन्तर केवल इतना ही है कि अर्थशास्त्र में मानवीय आवश्यकताओं तथा इनकी पूर्ति के लिए मनुष्य द्वारा किए गए प्रयत्नों का अध्ययन किया जाता है जबकि मनोविज्ञान में मनुष्य की मानसिक भावनाओं एवं प्रतिक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।

1. मनोविज्ञान का अर्थशास्त्र पर प्रभाव (Impact of Psychology on Economics) –

(i) अर्थशास्त्र में अधिकांश आर्थिक नियमों के निर्माण का आधार मनोवैज्ञानिक है। इच्छा, उपयोगिता, सन्तोष, त्याग आदि मानसिक विचार हैं और मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय हैं। अर्थशास्त्र के अनेक आधारभूत नियम इन्हीं मनोवैज्ञानिक भावनाओं पर आधारित हैं; जैसे- उपयोगिता हास नियम, सम-सीमान्त उपयोगिता नियम, माँग का नियम, उपभोक्ता की बचत आदि।

(ii) प्रत्येक मानसिक अवस्था मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं को प्रभावित करती है। कार्य करने की दशाएं, स्वस्थ वातावरण, कार्य में रुचि आदि सभी मानसिक अवस्थाएं हैं जोकि मनुष्य की कार्यक्षमता में वृद्धि करती है। प्रतिकूल परिस्थितियों में कार्य करने वाले श्रमिकों की कार्यक्षमता भी गिर जाती है।

2. अर्थशास्त्र का मनोविज्ञान पर प्रभाव (Impact of Economics on Psychology) – मनुष्य की आर्थिक क्रियाएं उसके मानसिक विचारों को भी प्रभावित करती हैं। सुखी व समृद्ध समाज में संगीत व कला के प्रति रुचि पाई जाती है। सामान्यतया धनी व्यक्ति ही सुखी, साहसी एवं आशावादी होते हैं जबकि निर्धन व्यक्ति हीन भावना के शिकार होते हैं।

अतः स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र और मनोविज्ञान में घनिष्ठ सम्बन्ध है।

7.5.7 अर्थशास्त्र एवं भूगोल (Economics and Geography)

अर्थशास्त्र एवं भूगोल दोनों विषयों का अध्ययन-विषय (Subject of Study) समान है। भूगोल का अध्ययन विषय है 'मनुष्य और प्राकृतिक वातावरण' जबकि अर्थशास्त्र का विषय है 'मनुष्य और आर्थिक क्रियाएं'।

1. मनुष्य को आर्थिक क्रियाएं भौगोलिक परिस्थितियों से प्रभावित होती हैं क्योंकि किसी देश की जलवायु, वनस्पति, धरातल, प्राकृतिक दशाओं आदि का वहाँ के लोगों के आचार-विचार, खान-पान, वेशभूषा, कार्य-कुशलता तथा उद्योग-धन्धों पर बहुत प्रभाव पड़ता है। किसी देश का आर्थिक विकास मुख्य रूप से वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों पर ही निर्भर करता है। वास्तव में मनुष्य अपने भौगोलिक पर्यावरण का दास है।

2. भूगोल भी अर्थशास्त्र से बहुत अधिक प्रभावित होता है। किसी भी देश के आर्थिक विकास की गति वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों को काफी प्रभावित करती है। अतः अर्थशास्त्र और भूगोल में घनिष्ठ सम्बन्ध है।

7.5.8 अर्थशास्त्र एवं गणित (Economics and Mathematics)

आधुनिक अर्थशास्त्री आर्थिक समस्याओं को सुलझाने में गणित का उपयोग काफी मात्रा में करते हैं। सांख्यिकीय रीतियाँ अर्थशास्त्र के सभी नियमों की रचना में काफी सहायक होती हैं। आर्थिक विकास के मॉडल

बीजगणितीय सूत्रों पर आधारित हैं। आर्थिक नियोजन रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध कराने में तथा आर्थिक समस्याओं के विश्लेषण में आँकड़े व सांख्यिकीय रीतियाँ अत्यधिक उपयोगी हैं। आर्थिक नियमों की रेखाचित्रों व दण्डचित्रों की सहायता से व्याख्या की जा सकती है। आज गणित व सांख्यिकी के बिना अर्थशास्त्र महत्वहीन है।

7.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. वस्तुओं में तुष्टिगुण का सृजन ही (उत्पादन / उपभोग) कहलाता है।
 2. राजनीति शास्त्र में मनुष्य के (आर्थिक / राजनीतिक) पहलू का अध्ययन किया जाता है।
- निम्न कथनों में सत्य / असत्य चुनिए -
1. अर्थशास्त्र में कम आवश्यक वस्तुओं को अधिक आवश्यक वस्तुओं में बदलना ही विनिमय कहलाता है।
(सत्य / असत्य)
 2. अर्थशास्त्र को सात प्रभागों में विभाजित किया जाता है।
(सत्य / असत्य)
 3. मनोविज्ञान में मनुष्य की मानसिक भावनाओं एवं प्रतिक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।
(सत्य / असत्य)

7.7 सारांश (Summary)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप यह भलीभांति समझ चुके होंगे कि उत्पादन, उपभोग, विनिमय, वितरण और राजस्व अर्थशास्त्र के मुख्य प्रभाग हैं जिसके अंतर्गत हम विभिन्न प्रकार के सिद्धांतों का अध्ययन करते हैं। अर्थशास्त्र के पाँचों प्रभागों में पारस्परिक सम्बन्ध है और प्रत्येक प्रभाग एक दूसरे से अंतर्संबंधित हैं। अर्थशास्त्र, समाज शास्त्र, राजनीतिशास्त्र, नीति शास्त्र, न्यायशास्त्र, इतिहास मनोविज्ञान, भूगोल और गणित सभी विषयों से सम्बंधित है।

7.8 शब्दावली (Glossary)

- उत्पादन (Production) - वस्तुओं में तुष्टिगुण का सृजन ही उत्पादन कहलाता है।
- उपभोग (Consumption) - उपभोग से अभिप्राय वस्तु की उपयागिता को मानव आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु नष्ट करने से है।
- विनिमय (Exchange) - अर्थशास्त्र में कम आवश्यक वस्तुओं को अधिक आवश्यक वस्तुओं में बदलना ही विनिमय कहलाता है।
- वितरण (Distribution) - उत्पादन में भाग लेने वाले साधनों के बीच होने वाले धन के बंटवारे को वितरण कहते हैं।
- राजस्व अथवा लोकवित्त (Public Finance) - राजस्व के अंतर्गत सरकार की आय तथा व्यय तथा उसके पारस्परिक समन्वय का अध्ययन किया जाता है।

- राजनीति शास्त्र (Political Science) - राजनीति शास्त्र में मनुष्य के राजनीतिक पहलू का अध्ययन किया जाता है।
- नीतिशास्त्र (Ethics) - नीतिशास्त्र एक आदर्श शास्त्र है, जिसमें हम मानवव्यवहार के आदर्शात्मक पहलू - का अध्ययन करते हैं।
- न्यायशास्त्र (Jurisprudence) - न्यायशास्त्र मानवव्यवस्था के कानूनी पहलू का अध्ययन किया जाता है।
- मनोविज्ञान (Psychology) - मनोविज्ञान में मनुष्य की मानसिक भावनाओं एवं प्रतिक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।

7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. उत्पादन 2. राजनीतिक

निम्न कथनों में सत्य / असत्य चुनिए –

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य

7.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Reference/Bibliography)

- आहूजा, एच.एल. (2008) उच्चतर आर्थिक विश्लेषण, एस चान्द एण्ड कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली।
- मिश्रा, एस.के. और पुरी, वी.के. (2007) व्यष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- झिंगन, एम.एल. (2007) व्यष्टि अर्थशास्त्र, वृन्दा पब्लिकेशन्स प्रा.लि., मयूर विहार, नई दिल्ली।
- लाल, एस. एन. (1777) व्यष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।
- सिन्हा, वी. सी. (1777) व्यष्टि अर्थशास्त्र, अध्ययन पब्लिशिंग, नई दिल्ली।

7.11 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

- Dwivedi, D.N. (2008) Micro Economics, 7th edition, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi.
- Mishra, S.K. and Puri V.K. (2003) Modern Micro-Economics Theory, Himalaya Publishing House, New Delhi.
- Sethi, T. T. (2006) Principles of Economics, Lakshmi Narayan Agrawal, Agra.
- Samuelson, P.A. and W.O. Nordhaus (1778) Economics, 16th Edition, Tata McGraw Hill, New Delhi.
- Stonier and Hague (2011) A Text Book of Economics, Oxford Publications, New Delhi.

7.12 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. अर्थशास्त्र में कितने प्रभाग हैं? उनके पारस्परिक सम्बन्धों की व्याख्या कीजिए।
2. 'अर्थशास्त्र के विभिन्न प्रभाग एक-दूसरे पर आश्रित हैं।' समझाइए।
3. अर्थशास्त्र का अन्य विषयों से सम्बन्ध बताइए।

इकाई 8 : लोक प्रशासन का अन्य विषयों से अंतर्संबंध एवं अध्ययन के दृष्टिकोण

इकाई की संरचना**8.0 प्रस्तावना****8.1 उद्देश्य****8.2 लोक प्रशासन एवं राजनीति विज्ञान****8.3 लोक प्रशासन एवं समाजशास्त्र****8.4 लोक प्रशासन एवं अर्थशास्त्र****8.5 लोक प्रशासन एवं विधिशास्त्र****8.6 लोक प्रशासन एवं इतिहास****8.7 लोक प्रशासन एवं मनोविज्ञान****8.8 लोक प्रशासन एवं नीतिशास्त्र****8.9 सारांश****8.10 शब्दावली****8.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर****8.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची****8.13 सहायक/उपयोगी सहायक पाठ्य सामग्री****8.14 निबंधात्मक प्रश्न**

8.0 प्रस्तावना

व्यापक अर्थ में ज्ञान का स्वरूप एकीकृत होता है। यदि उसे विभिन्न शाखाओं में विभाजित किया जाता है तो ऐसा इसलिए कि उससे अध्ययन की सुगमता प्राप्त हो जाती है। कोई भी प्रशासनिक व्यवस्था एक विशेष राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिवेश में कार्य करती है। अतः प्रशासनिक व्यवस्था की संरचना एवं उसकी भूमिका को सही रूप में समझने के लिए उस राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिवेश को समझना आवश्यक है, जिसमें वह कार्य करती है। इस हेतु संबंधित विषयों का ज्ञान आवश्यक है। दूसरे शब्दों में किसी सामाजिक व्यवस्था में लोक प्रशासन की भूमिका को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि लोक प्रशासन का अन्य सामाजिक विज्ञानों से क्या सम्बन्ध है?

प्रस्तुत इकाई में दी गयी पाठ्य सामग्री को पढ़कर आप भली-भाँति यह स्पष्ट कर सकेंगे कि लोक प्रशासन का विषय अन्य सामाजिक विज्ञानों से किस प्रकार सम्बन्धित है।

8.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

1. यह समझ सकेंगे कि लोक प्रशासन किस प्रकार अन्य सामाजिक विज्ञानों से संबंधित है।
2. यह स्पष्ट कर सकेंगे कि लोक प्रशासन किस प्रकार अपने राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, कानूनी, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक एवं नैतिक परिवेशों से प्रभावित होता है और उन्हें भी प्रभावित करता है।
3. ज्ञान के एकीकृत स्वरूप पर प्रकाश डाल सकेंगे।

8.2 लोक प्रशासन एवं राजनीति विज्ञान

लोक प्रशासन शायद ही किसी अन्य सामाजिक विज्ञान से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है, जितना कि राजनीति विज्ञान से। राजनीति विज्ञान राज्य, सरकार तथा उन समस्त संस्थाओं का अध्ययन करता है, जिसके माध्यम से समाज के सदस्य अपने अधिकारों का प्रयोग करते हैं। यह व्यक्ति एवं राज्य के सम्बन्धों पर प्रकाश डालता है। प्राचीन काल से लेकर उन्नीसवीं सदी के लगभग आठवें दशक तक लोक प्रशासन, राजनीति विज्ञान का ही एक भाग माना जाता था। 1886 से संयुक्त राज्य अमेरिका में वुड्रो विल्सन ने इसे राजनीति विज्ञान से पृथक् करने का आह्वान किया। अपने लेख 'द स्टडी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' में विल्सन ने लिखा कि 'प्रशासन राजनीति के विषय क्षेत्र के बाहर है। प्रशासकीय समस्याएँ राजनीतिक समस्याएँ नहीं होती। यद्यपि राजनीति, प्रशासन के कार्यों का स्वरूप निर्धारित करती है, तथापि उसको यह अधिकार नहीं दिया जाना चाहिए कि वह प्रशासकीय पक्षों के बारे में हेर-फेर कर सके।' एक अन्य लेखक फ्रेंक गुडनाउ ने राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन के पृथक्करण का समर्थन करते हुए तर्क दिया कि 'राजनीति राज्य-इच्छा को प्रतिपादित करती है, जबकि प्रशासन इस इच्छा या नीतियों के क्रियान्वयन से सम्बन्धित है।' उपर्युक्त मत संयुक्त राज्य अमेरिका की तत्कालीन प्रशासनिक व्यवस्था में सुधारों से प्रेरित थे, जो भ्रष्टाचार एवं अक्षमता से ग्रसित था। इसका उद्देश्य उस 'इनामी पद्धति' की बुराइयों को दूर करना था, जिसके अनुसार सत्ता में आने वाला राजनैतिक दल प्रशासन चलाने के लिए अपने पूर्ववर्ती द्वारा नियुक्त अधिकारियों के स्थान पर अपने चुने अधिकारियों को नियुक्त करता था। लेकिन कालान्तर में यह महसूस किया जाने लगा कि लोक प्रशासन की राजनीति विज्ञान से पृथक्ता इस विषय के विकास को अवरुद्ध कर रही है। परिणामस्वरूप, समकालीन विद्वान लोक प्रशासन एवं राजनीति विज्ञान के एकीकरण का पुनः समर्थन करने लगे हैं।

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि किसी भी देश की राजनीतिक व्यवस्था उसकी प्रशासकीय व्यवस्था से जुड़ी होती है। वास्तव में प्रशासकीय व्यवस्था का सृजन ही राजनीतिक व्यवस्था के माध्यम से होता है। ये दोनों एक-दूसरे को इस सीमा तक प्रभावित करते हैं कि कभी-कभी इनकी पृथक् भूमिका निर्धारित करना कठिन होता है। डिमॉक ने सही कहा है कि 'लोक प्रशासन तथा राजनीति एक-दूसरे से इतने घनिष्ठ हैं कि इन दोनों के मध्य कोई विभाजन रेखा नहीं खींची जा सकती। राजनीतिज्ञ जब एक विभाग की अध्यक्षता करता है तो वह एक प्रशासक के रूप में कार्य करता है और जब वह सरकार में अपने दल की तस्वीर को सुधारने की कोशिश करता है, तो वह एक कुशल राजनीतिज्ञ के रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह करता है।'

सैद्धान्तिक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि प्रशासन का कार्य वहाँ आरम्भ होता है, जहाँ राजनीतिज्ञ का कार्य समाप्त होता है। अर्थात् राजनीतिज्ञ पहले नीतियों का निर्धारण करता है तथा उसके बाद उन नीतियों को क्रियान्वित करने का दायित्व प्रशासक का होता है। लेकिन व्यावहारिक स्थिति तो यह है कि नीतियों के निर्धारण में भी प्रशासक वर्ग महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मंत्री जन प्रतिनिधि होते हैं, अपने विभाग के विशेषज्ञ नहीं। वे आते-जाते रहते हैं, स्थायी रूप से नहीं रहते। ऐसी स्थिति में उन्हें विशेषज्ञ प्रशासकों के सलाह पर निर्भर रहना पड़ता है। वरिष्ठ प्रशासक मंत्रियों को आवश्यक आंकड़े, जानकारी तथा सलाह देकर नीति-निर्माण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

वास्तव में अगर देखा जाय तो राजनीति की सफलता प्रशासकीय कार्यकुशलता पर और प्रशासकीय सफलता स्थायी राजनीति तथा स्वरूप पथ-प्रदर्शन पर आधारित है। दूसरे शब्दों में, राजनीति के बिना प्रशासन तथा प्रशासन के बिना राजनीति अपूर्ण है। विभिन्न देशों की राजनीतिक व्यवस्थाएँ भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं जो उनके

प्रशासन की प्रकृति और स्वरूप को प्रभावित करती है। ऐसी स्थिति में राजनीतिक व्यवस्था को समझे बिना प्रशासनिक व्यवस्था को समझना मुश्किल है। उदाहरणस्वरूप, एक लोकतांत्रिक शासन-व्यवस्था में प्रशासनिक कर्मचारियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने राजनीतिक स्वामी के आदेशों का पालन करें। ऐसी स्थिति में मैक्स वेबर द्वारा प्रतिपादित 'नौकरशाही की तटस्थता' की अवधारणा सही नहीं रहती है। इसी प्रकार साम्यवादी देशों या विकासशील देशों में लोक प्रशासन एक विशेष प्रकार की भूमिका निभाता है। अतः संबंधित देशों में लोक प्रशासन की भूमिका को समझने के लिए उन देशों की राजनीतिक व्यवस्था को समझना होगा।

राजनीति विज्ञान तथा लोक प्रशासन दोनों में अध्ययन के कुछ सामान्य क्षेत्र पाये जाते हैं, जैसे-तुलनात्मक संविधान, स्थानीय शासन, लोक नीति इत्यादि। इसके अतिरिक्त दोनों विषयों के शोधकर्ताओं की पद्धतियों एवं तकनीकों में भी बहुत कुछ समानता देखने को मिलती है।

इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि लोक प्रशासन का राजनीति विज्ञान से निकट सम्बन्ध है। सैद्धान्तिक रूप से राजनीति एवं प्रशासन में भले ही भिन्नता हो, लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से इन्हें पृथक् करना मुश्किल है। लेसली लिपसन ने ठीक ही कहा है कि "सरकार के कार्यों के मध्य पूर्ण विभाजन की कोई रेखा खींचना असम्भव है। सरकार निरन्तर गति से चलने वाली एक प्रक्रिया है। व्यवस्थापन उसकी एक मंजिल है और प्रशासन दूसरी। दोनों एक-दूसरे से मिली हुई हैं और कुछ बिन्दुओं पर उनमें अन्तर कर पाना मुश्किल है।" वास्तव में राजनीति एवं प्रशासन एक-दूसरे के पूरक हैं और उन्हें एक ही सिक्के का दो पहलू माना जा सकता है।

8.3 लोक प्रशासन एवं समाजशास्त्र

समाजशास्त्र सामाजिक संरचनाओं, प्रक्रियाओं, रीति-रिवाजों, परम्पराओं इत्यादि का क्रमबद्ध अध्ययन करता है। एक सामाजिक प्राणी के रूप में यह व्यक्ति के समस्त क्रियाओं से सम्बन्धित है। लोक प्रशासन भी समाज की एक प्रक्रिया है। जहाँ एक तरफ सामाजिक परिवेश लोक प्रशासन की संरचना एवं भूमिका को प्रभावित करता है, वहीं दूसरी तरफ लोक प्रशासन भी कई बार सामाजिक परिवेश को प्रभावित करता है। विशेषकर उन परम्परागत समाजों में जो वर्गीय, जातिगत एवं धार्मिक प्रतिबद्धताओं से ग्रसित है और जहाँ पर्याप्त सामाजिक आर्थिक विषमताएँ विद्यमान हैं। लोक प्रशासन का अध्ययन बिना सामाजिक परिवेश को दृष्टिगत किये किया जाना सम्भव नहीं है। रिग्स एवं प्रेस्थस जैसे विद्वानों ने इसी उद्देश्य से लोक प्रशासन के अध्ययन में 'पारिस्थिकीय दृष्टिकोण' विकसित किया है।

प्रत्येक समाज कुछ विशेष लक्ष्यों, मूल्यों एवं विश्वासों से सम्बन्धित होता है। समाज का एक अंग होने के नाते लोक प्रशासन भी उन्हीं लक्ष्यों, मूल्यों एवं विश्वासों से सम्बन्धित होता है। इस प्रकार इनमें पारस्परिक सम्बद्धता होती है। समाजशास्त्र का सम्बन्ध विभिन्न प्रकार के समूहों के व्यवहारों एवं उन तरीकों के अध्ययन से है, जिनसे कि समूह मनुष्य के कार्यों एवं मूल्य प्रवृत्तियों को प्रभावित करते हैं। प्रशासन एक सहकारी प्रयास है, जिसमें बहुत सारे लोग किन्हीं लक्ष्यों की प्राप्ति में संलग्न होते हैं। प्रशासक वर्ग स्वयं अपने आप में एक समूह है जिसे "नौकरशाही" कहा जाता है और जिसकी एक विशिष्ट पहचान होती है। यह समूह अपने सामाजिक वातावरण को प्रभावित करता है और स्वयं इससे प्रभावित भी होता है। ऐसी स्थिति में प्रशासक वर्ग के लिए विभिन्न सामाजिक समूहों, उनके व्यवहारों एवं सामाजिक जीवन को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों की जानकारी आवश्यक है, जोकि उन्हें समाजशास्त्र ही उपलब्ध कराता है।

प्रशासन की समस्याओं को समझने के लिए केवल व्यक्ति को समझना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु उस वातावरण को भी समझना आवश्यक है, जिसके अंतर्गत वह निवास करता है। उदाहरणस्वरूप- अपराधों को रोकना एक प्रमुख

प्रशासनिक समस्या है, लेकिन ऐसी समस्या का जड़ से उन्मूलन तब तक संभव नहीं है, जब तक कि उन सामाजिक आर्थिक कारणों का पता नहीं लगा लिया जाता, जिसके कारण बड़े पैमाने पर समाज में अपराध की प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। यहाँ पर समाजशास्त्र लोक प्रशासन की मदद करता है। बहुत से व्यक्ति मजबूरी के कारण अपराध करते हैं और उनमें सुधारने की प्रवृत्ति होती है। अतः ऐसे व्यक्तियों के प्रति एक मानवीय दृष्टिकोण अपनाये जाने की जरूरत होती है। समाजशास्त्र प्रशासकों में इस तरह के मानवीय दृष्टिकोण विकसित करने में सहायता प्रदान करता है। इसी से प्रेरित होकर जेल व्यवस्था में कई प्रकार के सुधार किये गये हैं और अपराधियों को समाजोपयोगी बनाने हेतु अनेक प्रकार की योजनाएँ चलाई जाती हैं।

आधुनिक लोक कल्याणकारी राज्यों के अंतर्गत लोक प्रशासन का कार्य केवल कानून एवं व्यवस्था को बनाये रखने या कर वसूलने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि व्यापक सामाजिक हित में विभिन्न प्रकार की कल्याणकारी योजनाओं को लागू करने से भी सम्बन्धित है। किसी योजना का सफल कार्यान्वयन इस बात पर निर्भर करता है कि प्रशासक उस योजना के निहितार्थ सामाजिक मूल्यों एवं उद्देश्यों के प्रति कितनी आस्था या प्रतिबद्धता रखते हैं। लोक प्रशासन में 'प्रतिबद्ध नौकरशाही' की अवधारणा का विकास इसी सन्दर्भ में हुआ है। यहाँ समाजशास्त्र किसी नीतिगत फैसले के सामाजिक निहितार्थ को समझने में लोक प्रशासन की मदद करता है।

लोक प्रशासन की परंपरागत अवधारणा में मानव व्यवहार को स्थिर मानकर प्रशासन की संरचनाओं को अधिक महत्व दिया गया था। लेकिन समकालीन सिद्धान्तवादी मानव व्यवहार को गतिशील मानते हुए यह जानने में उत्सुकता रखते हैं कि किसी विशेष परिस्थिति में प्रशासक द्वारा कोई विशेष निर्णय क्यों लिया गया? इस तरह के शोध हेतु प्रशासकों की सामाजिक पृष्ठभूमि का ज्ञान आवश्यक होता है, जिसे प्राप्त करने के लिए समाजशास्त्र द्वारा विकसित साधनों का प्रयोग किया जा सकता है। विशेषकर आधुनिक काल में लोक प्रशासन में ऐसे शोध की प्रवृत्ति बढ़ी है, जिसमें बड़े पैमाने पर समाजशास्त्र द्वारा विकसित प्रतिमानों का प्रयोग किया जा रहा है।

मैक्स बेवर जैसे समाजशास्त्री द्वारा प्रस्तुत 'नौकरशाही का सिद्धान्त' लोक प्रशासन का एक चर्चित सिद्धान्त है, जिसने कई विद्वानों को प्रभावित किया है। इसके अतिरिक्त पदस्थिति, वर्ग, सत्ता इत्यादि पर किये गये समाजशास्त्र के कुछ हाल के शोधकार्यों ने लोक प्रशासन के अध्ययन को समृद्ध करने में सहायता दी है। इस प्रकार, लोक प्रशासन एवं समाजशास्त्र एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से संबंधित हैं।

8.4 लोक प्रशासन एवं अर्थशास्त्र

लोक प्रशासन एवं अर्थशास्त्र की निकटता प्राचीनकाल से ही देखने को मिलती है। कौटिल्य का ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' न केवल प्रशासन की कला पर एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है बल्कि अर्थशास्त्र का भी सन्दर्भ-ग्रन्थ है। कई मामलों में यह ग्रन्थ लोक प्रशासन एवं अर्थशास्त्र के निकट सम्बन्धों को दर्शाता है।

लोक-कल्याणकारी राज्य की अवधारणा ने लोक प्रशासन एवं अर्थशास्त्र की घनिष्ठता को और भी बढ़ा दिया है। आज के सन्दर्भ में प्रशासक के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसे आर्थिक समस्याओं के बारे में पर्याप्त समझदारी है। वस्तुतः प्रत्येक प्रशासकीय नीति का मूल्यांकन उसके आर्थिक परिणामों के आधार पर ही किया जाता है। यही कारण है कि विभिन्न दबाव समूह अपने-अपने आर्थिक हितों के संरक्षण के लिए प्रशासन को प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं। स्पष्टतः आर्थिक समस्याओं से अवगत न होने की स्थिति में प्रशासक अपने उत्तरदायित्वों का सही तरीके से निर्वाह नहीं कर सकते।

नवीन आर्थिक विचार प्रशासन के संगठन और उसकी रीतियों को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करते रहे हैं। व्यावसायिक क्षेत्र में राज्य के प्रवेश के फलस्वरूप नये प्रकार के प्रशासकीय संगठन, सार्वजनिक निगम का उदय

हुआ है। आज प्रशासकों के नियंत्रण में बीमा कम्पनियों के प्रबन्ध बैंकिंग, कृषि से सम्बन्धित समस्याओं का निपटारा आदि है। इस प्रकार आर्थिक मामलों में सरकारी क्षेत्र की भूमिका निरन्तर बढ़ती रही है, जिसने लोक प्रशासन में अर्थशास्त्र के ज्ञान की महत्ता को बढ़ा दिया है। यही कारण है कि हमारे देश में 'भारतीय आर्थिक सेवा' का अलग से गठन किया गया है। इस प्रकार अर्थशास्त्र तथा लोक प्रशासन में घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि लोक प्रशासन अर्थशास्त्र को संगठन प्रदान करता है तो अर्थशास्त्र, प्रशासन को संगठन के लिए धन के स्रोत प्रदान करता है। इन दोनों की घनिष्ठता निम्नलिखित रूप से स्पष्ट की जा सकती है-

1. एक आर्थिक प्रश्न भी है और यह लोक प्रशासन का विषय भी है।
 2. बजट का सम्बन्ध लोक प्रशासन तथा अर्थशास्त्र दोनों से ही है।
 3. उद्योगों का राष्ट्रीयकरण केवल एक आर्थिक प्रश्न ही नहीं है, यह लोक प्रशासन का गम्भीर विषय भी है।
 3. उत्पादन के साधनों में परिवर्तन के साथ समाज में परिवर्तन होता है और जिसके फलस्वरूप हमारी प्रशासकीय व्यवस्था भी बदल जाती है।
 4. राष्ट्र की आर्थिक व्यवस्था प्रशासन की कार्यकुशलता पर अबलम्बित है।
 5. नियोजन अर्थशास्त्र तथा लोक प्रशासन दोनों से सम्बन्धित है।
 6. अर्थशास्त्र का 'सांख्यिकी विभाग' लोक प्रशासन के संगठन का महत्वपूर्ण विभाग है।
 8. सामान्य नीतियों के निर्धारण पर आर्थिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है।
 9. सरकारी तथा सार्वजनिक निगम, उद्योग-धन्धों की व्यवस्था, श्रमिक समस्या, मुद्रा, अधिकोषण आदि का सम्बन्ध लोक प्रशासन तथा अर्थशास्त्र दोनों से है।
- इस प्रकार स्पष्ट है कि लोक प्रशासन का अर्थशास्त्र के साथ निकट सम्बन्ध है।

8.5 लोक प्रशासन एवं विधिशास्त्र

विधि या कानून सत्ता द्वारा आरोपित आचार-विचार के वे नियम हैं, जिसका पालन करना अनिवार्य होता है और जिसका उल्लंघन करने पर व्यक्ति दंड का भागी होता है। नियमों को लागू करने का कार्य प्रशासन का होता है। अतः लोक प्रशासन एवं विधिशास्त्र एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं।

लोक प्रशासन का संचालन देश की विधियों द्वारा निर्धारित सीमाओं के अंतर्गत होता है। प्रशासक कोई ऐसा कार्य नहीं कर सकता जो विधि के प्रतिकूल हो, भले ही अन्य आधारों पर वह विवेकपूर्ण क्यों न प्रतीत होता हो। यथार्थ में लोक प्रशासन को विधि के दाहिनी ओर रहना होता है। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ है कि वह न केवल ऐसे कार्य करे जिनसे विधियों का उल्लंघन न हो, अपितु ऐसे कार्य करे जिनके लिए कानून अनुमति प्रदान करता हो। लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन में इसी आधार पर अन्तर किया जाता है कि निजी प्रशासन वैधानिक सत्ता की मर्यादा को उस रूप में स्वीकार नहीं करता है जिस रूप में लोक प्रशासन करता है। यद्यपि कानून प्रशासन को पर्याप्त 'स्वविवेकपूर्ण शक्तियाँ' भी प्रदान करता है, परन्तु स्वविवेक का प्रयोग भी स्वेच्छाचारी तरीके से नहीं किया जा सकता।

अधिकांश विधियों में सार्वजनिक नीतियों की अभिव्यक्ति होती है, जिसे क्रियान्वित करना प्रशासन का मुख्य दायित्व है। विल्सन के शब्दों में "लोक प्रशासन सार्वजनिक विधि के व्यवस्थित तथा विस्तृत कार्यान्वयन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।" इस निकट सम्बन्ध के कारण ही कई देशों में लोक प्रशासन को मुख्यतः सार्वजनिक विधि की एक शाखा के रूप में ही मान्यता प्राप्त है। यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि प्रशासन की भूमिका केवल

विधियों के क्रियान्वयन तक ही सीमित नहीं है, बल्कि विधियों के निर्माण से भी इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। अधिकांश विधेयकों की उत्पत्ति प्रशासकीय विभागों में ही होती है।

प्रशासन के उत्तरदायित्व को वहन करने के क्षेत्र में विधि एक बहुत बड़ा साधन है। प्रशासन के अनाधिकृत कार्यों तथा वैधानिक सत्ता के उल्लंघन को न्यायालय विधियों के अनुसार ठीक कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त विधि के आधार पर प्रशासकों को नागरिकों के अधिकारों का अतिक्रमण करने से रोका जा सकता है। एक बड़ी सीमा तक विधि की मौलिक धारणाओं की रचना को प्रभावित करती है। वस्तुतः इसी आधार पर हम उन विधियों के औचित्य की व्याख्या कर सकते हैं, जिनके द्वारा समाज के कमजोर वर्गों के लोगों को शासन द्वारा संरक्षण प्रदान किया जाता है।

प्रशासन के विरुद्ध जाँच करने वाले अधिकारी 'ओम्बुड्समैन' (भारतीय रूप लोकपाल एवं लोकायुक्त) का अध्ययन लोक प्रशासन के अंतर्गत जन-शिकायतों को दूर करने वाली संस्था के रूप में किया जाता है। इस प्रकार की संस्थाओं का अध्ययन विधिशास्त्र तथा लोक प्रशासन के बीच बढ़ते हुए सम्बन्धों को प्रदर्शित करता है। इसके अतिरिक्त, प्रत्यायोजित विधायन, प्रशासनिक न्यायाधिकरण का गठन, कार्य निष्पादन जैसे कुछ विषयों का अध्ययन लोक प्रशासन तथा विधिशास्त्र दोनों विषयों में किया जाता है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि लोक प्रशासन का विधिशास्त्र से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है।

8.6 लोक प्रशासन एवं इतिहास

इतिहास सामाजिक विज्ञान की वह शाखा है जो हमें भूतकाल की जानकारी उपलब्ध कराता है। लोक प्रशासन के अध्ययन हेतु अपेक्षित सामग्री हमें इतिहास से प्रचूर मात्रा में उपलब्ध होता है। वास्तव में ऐतिहासिक सन्दर्भ की अनुपस्थिति में किसी भी देश की प्रशासकीय प्रणाली का अध्ययन समुचित रूप से नहीं किया जा सकता। सच तो यह है कि विभिन्न प्रशासकीय संस्थाओं की उत्पत्ति और विकास को केवल इतिहास की सहायता से ही समझा जा सकता है।

इतिहास मानव अनुभवों की विशाल खान है। हमारी प्राचीन प्रशासनिक समस्याएँ क्या थीं और विशेष परिस्थितियों में उनका समाधान किस प्रकार हुआ? यह सब इतिहास से हमें ज्ञात हो सकता है। इतिहास में हम लोक प्रशासन के लिए उदाहरण एवं चेतावनी दोनों ही प्राप्त करते हैं। प्रशासन की भावी रूपरेखा तैयार करने में इतिहास हमारी बहुत बड़ी सहायता करता है। लोक प्रशासन अन्य प्राकृतिक विज्ञानों की भाँति प्रयोगात्मक नहीं है। इतिहास में प्रशासन सम्बन्धी जो अनुभव हैं वे ही हमारे लिए प्रयोग की सामग्री हैं। लोक प्रशासन के सम्बन्ध में कौन-कौन से विचार कब और कैसी परिस्थितियों में उत्पन्न होते रहे हैं, किस प्रकार उसका खण्डन अथवा समर्थन होता रहा है, यह सब हमें इतिहास से मिल सकता है।

लोक प्रशासन के अध्ययन की परम्परागत पद्धतियों में ऐतिहासिक पद्धति काफी लोकप्रिय रही है। इस सम्बन्ध में एल०डी० व्हाइट की दो पुस्तकें 'द फेडरलिस्ट्स' तथा 'जेफ़रसनियन्स' काफी चर्चित रही हैं। इन पुस्तकों में अमेरिकी गणतन्त्र के प्रथम चालीस वर्षों के संघ प्रशासन का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। ये पुस्तकें उस समय की प्रशासकीय व्यवस्था को समझने के लिए महत्वपूर्ण विषय सामग्री प्रदान करती हैं। इसके अतिरिक्त एस० बी० क्राइन्स की 'एन इंटोडक्शन टू द एडमिनिस्ट्रेटिव हिस्ट्री ऑफ़ में डिवल इंग्लैण्ड' मुखर्जी की 'लोकल गवर्नमेंट इन एन्सिएंट इण्डिया' जदुनाथ सरकार द्वारा रचित 'मुगल एडमिनिस्ट्रेशन' बी० जी० सप्रे की 'ग्रोथ ऑफ़ इन्डियन एडमिनिस्ट्रेशन' इत्यादि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार का प्रशासनिक इतिहास का अध्ययन समकालीन लोक प्रशासन की पृष्ठभूमि को समझने में हमारी मदद करता है। आधुनिक इतिहासकारों द्वारा प्रचलित प्रशासकीय व्यवस्थाओं पर विशेष ध्यान देने की प्रवृत्ति लोक प्रशासन के विषय के लिए एक शुभ संकेत है, क्योंकि इससे अत्यन्त मूल्यवान सामग्री प्राप्त होगी। अतः यह कहा जा सकता है कि लोक प्रशासन इतिहास से भी घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं।

8.7 लोक प्रशासन एवं मनोविज्ञान

मनोविज्ञान समाज में मानवीय आचरण का अध्ययन है और लोक प्रशासन मानवीय प्रक्रियाओं का। अब से पहले प्रशासन में मनोविज्ञान के महत्व को स्वीकार नहीं किया जाता था, परन्तु अर्थशास्त्र की भाँति आज मनुष्य की प्रत्येक क्रिया में मनोवैज्ञानिक तत्व को खोजने की चेष्टा की जाती है। लोक प्रशासन में मनोविज्ञान का महत्व दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है। विशेषकर सामाजिक एवं औद्योगिक मनोविज्ञान का महत्व आज सभी लोग स्वीकार करते हैं। सभी लोक कर्मचारियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने राजनीतिक स्वामी(जनता) के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाये रखेंगे और अच्छे सम्बन्धों को विकसित करने के लिए मनोविज्ञान की जानकारी आवश्यक है। मानव की प्रकृति परिवर्तनशील है। कई बार परिस्थितिवश अथवा किसी भावावेश में आकर व्यक्ति अपने व्यवहार को बदल देता है। ऐसी स्थिति में एक कुशल प्रशासक के लिए यह आवश्यक है कि वह जनमनोविज्ञान से परिचित हो। जनमत को समझने में मनोविज्ञान से काफी सहायता मिलती है। बहुत से अपराधों का विश्लेषण इसी आधार पर किया जाता है। इसके अतिरिक्त लोक सेवाओं में भर्ती के समय मनोवैज्ञानिकों द्वारा विकसित बुद्धि परिक्षणों का अधिकाधिक मात्रा में प्रयोग होने लगा है। लोक सेवाओं के क्षेत्र में उत्प्रेरणाओं तथा मनोबल की समस्याएँ यथार्थ में मनोवैज्ञानिक समस्याएँ हैं, जिन्हें मनोविज्ञान की मदद से ही समझा जा सकता है तथा उनका निराकरण किया जा सकता है।

8.8 लोक प्रशासन एवं नीतिशास्त्र

नीतिशास्त्र मानव आचरण एवं व्यवहार के सम्बन्ध में उचित, अनुचित का ज्ञान कराता है। लोक प्रशासन का उद्देश्य ऐसे अनुकूल एवं स्वस्थ वातावरण का निर्माण करना है, जिसमें नैतिकता संभव हो सके। अतः ये दोनों विषय एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं।

प्रशासन में नैतिकता का अपना एक विशिष्ट स्थान है। जिस प्रकार हम नैतिकता के अभाव में स्वस्थ राजनीति की कल्पना नहीं कर सकते, उसी प्रकार इसके अभाव में कुशल एवं उत्तरदायी प्रशासन की कल्पना करना व्यर्थ है। नैतिक वातावरण की उत्पत्ति प्रशासन का लक्ष्य है। नैतिकता प्रशासन को वह मापदण्ड प्रदान करती है, जिसकी सहायता से प्रशासक-वर्ग के कार्यों का मूल्यांकन किया जा सकता है। यद्यपि परम्परागत रूप से 'मितव्ययिता' एवं 'कार्यकुशलता' को प्रशासन का प्रमुख लक्ष्य माना जाता रहा है, किन्तु वास्तविकता यह है कि नैतिकताविहीन प्रशासन न तो 'मितव्ययी' हो सकता है न ही कार्यकुशल। ऐसे प्रशासन से हम न तो प्रगति की अपेक्षा कर सकते हैं, नहीं जीवन में मूल्यवान वस्तुओं की।

विज्ञान और प्रविधि स्वयं किसी भी सामाजिक समस्या का समाधान प्रस्तुत नहीं कर सकती। चाहे वे जातिगत या साम्प्रदायिक विद्वेष एवं संघर्ष के रूप में हो या छुआछूत, सती प्रथा, बाल विवाह, नारी उत्पीड़न जैसी सामाजिक बुराईयों के रूप में। हमें इन समस्याओं के समाधान के लिए ऐसी सामाजिक नैतिकता की आवश्यकता है जो मनुष्य में मानवीय गुणों को बढ़ावा दे। यथार्थ में लोकतंत्र का अस्तित्व ही उच्च नैतिक गुणों को विकसित किये बिना सम्भव नहीं है। यदि मनुष्यों के बीच बन्धुत्व की भावना को जान बूझकर विकसित नहीं किया गया तो प्रविधि का

विकास अन्ततोगत्वा विनाश एवं अराजकता को ही जन्म देगा। इसलिए हमारी आज की पृष्ठभूमि में उच्च नैतिक गुणों से सम्पन्न व्यक्तियों की जितनी अधिक आवश्यकता है, उतनी पहले कभी नहीं थी। वस्तुतः आज के युग में प्रशासन की बागडोर ऐसे लोगों के हाथ में सौंपे जाने पर ही समाज एवं राष्ट्र का कल्याण हो सकता है।

लोक प्रशासकों में जो गुण सबसे अधिक अपेक्षित है वह है ईमानदारी। परन्तु आज हमारे देश के प्रशासकों में इस गुण का सर्वथा अभाव है। आम लोगों में यह धारणा बन गयी है कि बिना रिश्त के कोई भी प्रशासनिक कार्य सम्पन्न नहीं होता। वास्तव में सार्वजनिक जीवन में नैतिक मूल्यों का हास इसका एक प्रमुख कारण है। विभिन्न विकास एवं कल्याणकारी योजनाओं के लिए आवंटित धनराशि का एक बहुत बड़ा हिस्सा प्रशासनिक अधिकारियों एवं राजनीतिज्ञों द्वारा हड़प लिया जाता है। ऐसी स्थिति में क्या हम अपेक्षित प्रगति की कल्पना कर सकते हैं? वास्तव में देश की प्रगति को सम्भव बनाने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि देश के प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार का अन्त हो। नीतिशास्त्र का अध्ययन तथा उसके नियमों का कार्यान्वयन हमें वांछित लक्ष्य की ओर आगे बढ़ने की प्रेरणा दे सकता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. प्राचीन काल से लेकर उन्नीसवीं सदी के लगभग आठवें दशक तक लोक प्रशासन राजनीति विज्ञान का ही एक भाग माना जाता था। सत्य/असत्य
2. ने लोक प्रशासन को राजनीति विज्ञान से पृथक करने का आह्वान किया।
3. सामाजिक परिवेश लोक प्रशासन की संरचना को प्रभावित नहीं करता है। सत्य/असत्य
3. प्रशासक वर्ग अपने आप में एक समूह है जिसे कहा जाता है।
4. आज के प्रशासक के लिए आर्थिक समस्याओं की पर्याप्त जानकारी आवश्यक है। सत्य/असत्य
5. लोक प्रशासन इतिहास से सम्बन्धित नहीं है। सत्य/असत्य
6. लोक सेवा के क्षेत्र में उत्प्रेरणाओं तथा मनोबल की समस्याएँ यथार्थ में समस्याएँ हैं।
8. परम्परागत रूप से मितव्ययिता एवं को प्रशासन का मुख्य लक्ष्य माना जाता रहा है।

8.9 सारांश

विभिन्न सामाजिक घटनाएँ एक-दूसरे से सम्बद्ध होती हैं। अतः किसी भी सामाजिक घटना का विश्लेषण उसके विभिन्न आयामों को समझे बिना नहीं किया जा सकता। ज्ञान एक समन्वित इकाई है, लेकिन इसके विभिन्न पहलुओं के विस्तृत अध्ययन की आवश्यकता ने विशिष्टीकरण को प्रेरित किया। यद्यपि विशिष्टीकरण की वृद्धि से शोध को बढ़ावा मिला, लेकिन इससे सामाजिक यथार्थ के प्रति एकीकृत दृष्टिकोण की आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो पाई है। अतः विभिन्न विषयों के अध्ययन में 'अन्तः अनुशासनात्मक दृष्टिकोण' अपनाया आवश्यक हो गया है। लोक प्रशासन का अन्य सामाजिक विज्ञानों- राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, विधिशास्त्र, इतिहास, मनोविज्ञान तथा नीतिशास्त्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसका अभ्युदय राजनीति विज्ञान से हुआ है। कुछ सताब्दी पूर्व इसे राजनीति विज्ञान से अलग किया गया, लेकिन एक स्वतंत्र विषय के रूप में बनाए रखने में कठिनाई हो रही है। यह महसूस किया जा रहा है कि राजनीति विज्ञान से ली गयी संकल्पनाओं से लोक प्रशासन को सुदृढ़ किया जाना चाहिए। सैद्धान्तिक दृष्टि से राजनीति एवं प्रशासन भले ही अलग-अलग हों, लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से इनमें भिन्नता करना मुश्किल है। इसी प्रकार समाजशास्त्र से भी इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है, क्योंकि बिना सामाजिक परिवेश को समझे प्रशासन की प्रकृति एवं भूमिका को समझना मुश्किल है। मैक्स बेवर जैसे समाजशास्त्री के कार्यों

ने लोक प्रशासन के सिद्धान्तों और व्यवहारों को प्रभावित किया है। आधुनिक काल में प्रशासन को सामाजिक परिवर्तन का एक प्रमुख संवाहक माना जाता है।

इसी प्रकार नियोजित आर्थिक विकास की आवश्यकताओं ने अर्थशास्त्र के साथ भी लोक प्रशासन के सम्बन्धों को मजबूत बनाया है। नीतियों को प्रभावी रूप से क्रियान्वित करने के लिए आधुनिक प्रशासकों को उसके आर्थिक पहलुओं की जानकारी आवश्यक है।

अर्द्ध-विकसित एवं विकासशील देशों में प्रशासन का केन्द्र-बिन्दु निर्धनता का उन्मूलन करना है। संसाधनों को संघटित करने सम्बन्धी सभी मामलों (कराधान, निर्यात, आयात आदि) का प्रशासन पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। प्रशासनिक संस्थाओं के वर्तमान स्वरूप को सही रूप में समझने के लिए उसके अतीत को जानना आवश्यक है। इस दृष्टि से इतिहास का ज्ञान लोक प्रशासन में लाभदायक है। विधिशास्त्र के साथ भी लोक प्रशासन का अटूट सम्बन्ध है, क्योंकि प्रशासन को सार्वजनिक विधि के व्यवस्थित निष्पादन का यंत्र समझा जाता है। इसके अतिरिक्त आधुनिक काल में एक कुशल प्रशासक के लिए यह आवश्यक है कि 'जन मनोविज्ञान' से परिचित हो। इस दृष्टि से मनोविज्ञान से भी लोक प्रशासन की निकटता बढ़ी है। अंत में बढ़ते हुए प्रशासनिक भ्रष्टाचार तथा लालफीताशाही की प्रवृत्तियों के कारण लोक प्रशासन में नैतिक मूल्यों की प्रतिस्थापना पर बहुत अधिक बल दिया जा रहा है। इस दृष्टि से नीतिशास्त्र के साथ भी इसके सम्बन्धों में प्रगाढ़ता आई है।

8.10 शब्दावली

- इनामी पद्धति अमेरिका में पायी जाने वाली इस व्यवस्था को पद पुरस्कार व्यवस्था के नाम से भी जाना जाता है। यह एक प्रशासनिक बुराई थी जिसके अंतर्गत प्रत्येक चुनाव के बाद नया प्रशासनिक अध्यक्ष अपनी रुचि के अनुसार प्रशासनिक पदों पर अपने दल के लोगों की नियुक्ति करता था।
- विकासशील देश-ऐसा देश जो अर्द्ध विकसित अवस्था से विकास की ओर अग्रसर है।
- प्रतिबद्ध नौकरशाही -कुछ निश्चित उद्देश्यों एवं विचारधाराओं के प्रति समर्पित प्रशासनिक कर्मचारियों का वर्ग या प्रशासनिक व्यवस्था।
- मनोबल -व्यक्तिगत अथवा सामूहिक आधार पर मानसिक या नैतिक विकास।
- ओम्बुड्समैन संसद या ऐसी ही किसी संस्था द्वारा नियुक्त अधिकारी जो कार्यपालिका के नियंत्रण- से मुक्त हो और जो सरकारी विभागों द्वारा नागरिकों के साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार की शिकायतों की जाँच करे तथा शिकायतों का उचित समाधान सुझाये।

8.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य, 2. वुडरो विल्सन, 3. असत्य, 3. नौकरशाही, 4. सत्य, 5. असत्य, 6. मनोवैज्ञानिक, 8. कार्यकुशलता

8.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शरण, परमात्मा एवं चतुर्वेदी, दिनेश चन्द्र, (1984), लोक प्रशासन, मीनाक्षी प्रकाशन मेरठ।
2. सिंह, आर0 एन0, (1968), लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार, रतन प्रकाशन मंदिर आगरा।

8.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. डिमॉक, एम0 इ0 एवं डिमॉक जी0 ए0 (1964) पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, ऑक्सफोर्ड एण्ड आई.बी.एच.पब्लिक कम्पनी, नई दिल्ली।
2. शर्मा, एम0 पी0, (1950), पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस, किताब महल इलाहाबाद।

8.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. लोक प्रशासन का राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्र तथा अर्थशास्त्र से क्या सम्बन्ध है? विवेचना कीजिए।
2. लोक प्रशासन का विधिशास्त्र, इतिहास, मनोविज्ञान एवं नीतिशास्त्र से सम्बन्धों पर प्रकाश डालिए

इकाई 9: इतिहास लेखन में आदर्शवाद, प्रत्यक्षवाद और मार्क्सवादी दृष्टिकोण

9.1 प्रस्तावना**9.2 उद्देश्य****9.3 आदर्शवाद की परिभाषा**

9.3.1 'हैण्ड बुक ऑफ़ वर्ड हिस्ट्री' के अनुसार आदर्शवाद की परिभाषा

9.3.2 आर. जी. कॉलिंगवुड द्वारा आदर्शवाद की परिभाषा

9.3.3 आदर्शवादियों की दृष्टि में मानव-जीवन का उद्देश्य

9.3.4 भारत में आदर्शवादी विचारधारा का विकास

9.3.5 पाश्चात्य जगत में आदर्शवादी विचारधारा का विकास

9.4 इमानुअल कांट**9.5 जॉर्ज विल्हेम फ्रेडरिक हेगेल****9.6 वास्तविक आदर्शवाद**

9.6.1 व्यक्तिवादी आदर्शवाद –

9.7 आधुनिक वैज्ञानिकों के विचारों में आदर्शवाद**9.8 आदर्शवाद के अवसान के कारण****9.9 अनुभवाश्रित ज्ञान की महत्ता**

9.9.1 प्रत्यक्षवादी विचारधारा का प्रारंभिक विकास

9.9.2 इतिहास दर्शन की निश्चयात्मक अभिगम

9.10 कॉम्टे द्वारा प्रत्यक्षवाद के सिद्धांत का विकास**9.11 प्रमुख प्रत्यक्षवादी इतिहासकार**

9.11.1 नेबूर से पूर्व के इतिहास-लेखन के दोष

9.11.2 बार्टहोल्ड नेबूर (1665-1831)

9.12 इतिहासकार लियोपोल्ड वान रैंके**9.13 प्रत्यक्षवाद का आकलन****9.14 कार्ल मार्क्स****9.15 इतिहास के चरण****9.16 मार्क्सवादी इतिहास लेखन की समस्याएँ****9.17 मार्क्सवाद का इतिहास लेखन पर प्रभाव****9.18 मार्क्सवाद की महत्वता के कारण****9.19 पूर्ण इतिहास****9.20 सारांश****9.21 पारिभाषिक शब्दावली****9.22 अभ्यास प्रश्न****9.23 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर****9.23 संदर्भ ग्रंथ सूची**

9.24 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

दर्शन के क्षेत्र में आदर्शवाद उन आध्यात्मिक दर्शनों का समूह है जिनमें कि इस विचार पर बल दिया जाता है कि वास्तविकता, जिसको कि मनुष्य जान सकता है, वह मूलतः उसके मस्तिष्क की उपज होती है। भौतिकवाद के विपरीत आदर्शवाद इस बात पर बल देता है कि भौतिक घटनाओं के पीछे मुख्यतः मानव-चेतना उत्तरदायी होती है।

आदर्शवाद से हमारा प्रथम परिचय भारतीय वैदिक, चीन के नव-कन्फ्यूशियसवादी व बौद्ध दार्शनिक तथा नव-अफ़लातूनी यूनानी दार्शनिक कराते हैं। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में आदर्शवादी विचारधारा के प्रथम दर्शन होते हैं। चौथी शताब्दी में महायान बौद्ध संप्रदाय के अंतर्गत 'योगाचार' में केवल मस्तिष्क में विकसित आदर्शवाद को व्यक्तिगत अनुभव की तुलना में वरीयता दी गयी।

पाश्चात्य अद्वैतवादी आदर्शवादी पदार्थ को नहीं, अपितु चेतना को सभी जीवों का आधार मानते हैं। अनेक्सागोरस का यह विश्वास था कि मस्तिष्क ने ही सभी वस्तुओं की रचना की है। प्लेटो ने अपने दर्शन में पवित्रता तथा न्याय आदि को मूर्त रूप में देखा था। प्लेटो के दर्शन से प्रभावित नव-अफ़लातूनीवाद आदर्शवाद की एक प्रमुख शाखा है। इसके अनुसार समस्त जीवों का निर्गम एक परम तत्व से हुआ है और प्रत्येक मनुष्य का परम लक्ष्य उस परम तत्व में लीन हो जाना है।

इमैनुअल कांट का मत है कि मानव-मस्तिष्क मानवीय अनुभव की संरचना तैयार करता है और विवेक नैतिकता का श्रोत है। कांट का मत – 'नैतिक शुद्धता का सिद्धांत' अथवा 'कर्तव्य के लिए कर्तव्य का सिद्धांत' कहा जाता है। कांट के विचार में मानव- प्रकृति में प्रमुख अंश नैतिक भावना का है। अनेकत्ववादी आदर्शवाद का प्रवर्तक गौटफ्राइड लेबनीज़ था।

हेगेल की द्वंद्वात्मक प्रगति और पद्धति अधूरी तथा दोष-पूर्ण थी। उसने मानसिक तत्वों, अर्थात् बुद्धि एवं भावना को ऐतिहासिक प्रक्रिया में आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया। कीर्कीगार्ड ने हेगेल के उस दावे की आलोचना की है जिसमें कि उसने वास्तविकता को पूर्णतया समझने की प्रणाली की खोज करने की बात की है।

20 वीं शताब्दी के प्रारंभ में क्वांटम फ़िज़िक्स तथा आइन्स्टीन के 'सापेक्षता का सिद्धांत' में आदर्शवादी विचारधारा का प्रभाव देखा जा सकता है। 19 वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही आदर्शवादी विचारधारा का अवसान होने लगा था।

आदर्शवाद के पतन के कारणों में जहाँ डार्विनवादी पदार्थवाद, व्यवहारवाद तथा जातीय नियतिवाद का विकास को गिना जा सकता है, वहीं खुद आदर्शवाद की अपनी अव्यावहारिक और बचकानी परिकल्पनाएं अपने पतन के लिए जिम्मेदार थीं। नेबूर तथा रैके जैसे प्रत्यक्षवादियों ने आदर्शवाद के अवसान में निर्णायक भूमिका निभाई थी। उन्नीसवीं शताब्दी, आविष्कारों तथा औद्योगिक विकास का युग था, साम्राज्य-विस्तार का युग था, भौतिक समृद्धि का युग था। इस युग में आदर्शवाद की बात बेमानी हो गयी थी। किन्तु आदर्शवादी विचारधारा का कभी जड़ से उन्मूलन नहीं हुआ। हमको टॉलस्टॉय के साहित्य में तथा गाँधी जी के व्यक्तित्व और कृतित्व में आदर्शवाद की विजय का उद्घोष सुनाई पड़ता है।

प्रत्यक्षवाद वह अवधारणा है जिसमें ज्ञान और विचार, निगमन की वैज्ञानिक प्रणाली पर निर्भर करते हैं। प्रत्यक्षवाद के अनुसार – 'मनुष्य का ज्ञान उसके अनुभव तक सीमित है।' प्राचीन दर्शन में प्रत्यक्षवादी विचारधारा की झलक देखी जा सकती है। कुतर्की दार्शनिक प्रोटागोरस, अतिवादी दार्शनिक सेक्सटस एम्पायरिकस, यूनानी .

इतिहासकार थ्यूसीडाइडीस, यूनानी इतिहासकार पोलिबियस, दार्शनिक अरस्तू, चीनी इतिहास लेखन 16वीं शताब्दी में पाइरे बेल्ले नामरूपवादी विलियम ओकहैम तथा 17वीं शताब्दी के जर्मन विचारक जॉर्ज लिक्टेनबर्ग ने भी प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण अपनाया था।

फ्रांसीसी दार्शनिक अगस्ते कॉम्टे ने 'प्राक्सीयोलोजी अनुशासन' (मानव-क्रिया का निगमनात्मक अध्ययन) की स्थापना तथा प्रत्यक्षवाद के सिद्धांत का विकास किया। उसने विज्ञान पर आधारित एक नए सामाजिक सिद्धांत की आवश्यकता पर बल दिया। कॉम्टे यह मानता है कि – विश्व-विषयक ज्ञान का स्रोत, अवलोकन है। कॉम्टे आध्यात्मवाद को एक आधारहीन अटकलबाजी समझता है। कॉम्टे ने इस बात पर बल दिया है कि इन्द्रिय-ज्ञान से परे कुछ भी वास्तविक नहीं है।

वर्तमान में मानव जीवन का कोई भी भाग विज्ञान के प्रभाव से अछूता नहीं है क्योंकि यह काल विज्ञान के युग के नाम से जाना जाता है। इस समय के समाज में जो भ्रांतियां विद्यमान थीं, उन्हें भी अस्तित्वहीन और निर्मूल सिद्ध करने में विज्ञान का विशिष्ट योगदान है। पुनर्जागरण ने यूरोप में नवीन चेतना की जागृति में महत्वपूर्ण योगदान दिया। कापरनिकस और गैलिलियो जैसे वैज्ञानिकों ने विज्ञान को जो ठोस आधार प्रदान किया, उस पर भावी पीढ़ी के वैज्ञानिकों ने अपने ठोस प्रयासों के माध्यम से भव्य भवनों का निर्माण किया तथा चिंतन की गति को नवीन दिशा प्रदान की। वैज्ञानिकों का प्रमुख उद्देश्य समाज, धर्म एवं प्रकृति में विद्यमान मिथकों को दूर करना है। इसी श्रृंखला में वैज्ञानिकों एवं समाज वैज्ञानिकों ने अपनी आलोचना और विश्लेषण का मुख्य विषय दर्शन और इतिहास को बनाया। परिणामस्वरूप विद्वानों द्वारा इन विषयों को वैज्ञानिकता एवं तार्किकता के मजबूत आधार मिले। इन्हीं में से एक विद्वान कार्ल मार्क्स थे।

9.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- आदर्शवाद के मूलभूत सिद्धांतों तथा अवधारणाओं से परिचित हो सकेंगे।
- जॉर्ज बर्कले, फ्रेडरिक हेगेल तथा इमानुअल कांट के आदर्शवादी विचारों से अवगत हो सकेंगे।
- लेबनीज़, बर्कले, शेलिंग, ब्रांड ब्लॉशार्ड, थॉमस हिल ग्रीन, जोसिया रोयस, बेनेदोतो क्रोसे, बोर्डन पार्कर बोने, लार्ड ऐक्टन, गिवोनी जेन्टील आदि आदर्शवादी विचारकों के विचारों को जान सकेंगे।
- आदर्शवाद के अवसान की परिस्थितियों तथा उसके कारणों को जान सकेंगे।
- प्रत्यक्षवाद के मूलभूत सिद्धांतों तथा अवधारणाओं से परिचित हो सकेंगे।
- अगस्ते कॉम्टे द्वारा प्रत्यक्षवाद की स्थापना उसके समाज-दर्शन तथा इतिहास-दर्शन का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- इतिहास-लेखन में प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण के विकास में नेबूर तथा रैंके के योगदान से परिचित हो सकेंगे।
- प्रत्यक्षवाद के गुण-दोषों तथा वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उसकी उपयोगिता के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- मार्क्सवाद और मार्क्सवादी इतिहास दर्शन से परिचित हो सकेंगे।
- मार्क्सवादी इतिहास लेखन की समस्याएँ से परिचित हो सकेंगे।
- मार्क्सवाद का इतिहास लेखन पर प्रभाव से परिचित हो सकेंगे।

9.3 आदर्शवाद की परिभाषा

9.3.1 'हैंडबुक ऑफ़ वर्ड हिस्ट्री' के अनुसार आदर्शवाद की परिभाषा

'हैंडबुक ऑफ़ वर्ड हिस्ट्री' के अनुसार – विचार की कोई भी प्रणाली जिसमें कि भाव, मस्तिष्क, तर्क, चिंतन अथवा अभिप्राय का ज्ञान के आधार पर अवलोकन किया जाए, या उनके आधार वास्तविकता को समझा जाए, उसे हम आदर्शवादी प्रणाली कह सकते हैं।

9.3.2 आर. जी. कॉलिंगवुड द्वारा आदर्शवाद की परिभाषा

आदर्शवादी अवस्थिति के सबसे मौलिक तथा परिष्कृत व्याख्याता आर. जी. कॉलिंगवुड के अनुसार – 'समस्त इतिहास, विचारों का इतिहास है और इतिहासकार का कार्य है कि वह अतीत में विभिन्न वैयक्तिक अभिप्रायों तथा विचारों को अपने मस्तिष्क में फिर से प्रदर्शित करे। इस कार्य के लिए इतिहासकार को विज्ञान के अंतर्गत अस्वीकृत प्रणालियों - तदनुभूति तथा अंतर्दृष्टि की आवश्यकता होती है। आदर्शवाद उस दार्शनिक मत को कहते हैं जिसमें कि वास्तविकता मस्तिष्क पर आश्रित होती है और मस्तिष्क से स्वतंत्र उसका अस्तित्व नहीं होता। इसको हम दूसरे शब्दों में इस प्रकार भी परिभाषित कर सकते हैं – मस्तिष्क अथवा मस्तिष्कों में उपजे विचार, वास्तविकता की मूल प्रकृति का सार होते हैं।

9.3.3 आदर्शवादियों की दृष्टि में मानव-जीवन का उद्देश्य

अतिवादी आदर्शवाद में मानव-मस्तिष्क से इतर, विश्व के अस्तित्व को ही नकार दिया जाता है जब कि आदर्शवाद के सीमित संस्करण में किसी भी पदार्थ में देखे जाने वाले गुण-अवगुण मस्तिष्क में उनकी बनाई गयी छवि से स्वतंत्र नहीं होते। ईश्वरवादी आदर्शवाद में यथार्थ ईश्वर के मस्तिष्क तक सीमित होता है।

आदर्शवादियों के अनुसार मनुष्य-जीवन का अंतिम उद्देश्य आत्मा-परमात्मा के चरम स्वरूप को जानना है। इसी को आत्मानुभूति, आदर्श व्यक्तित्व की प्राप्ति, परम आनंद की प्राप्ति तथा ईश्वर की प्राप्ति कहा जा सकता है। आत्मा-परमात्मा के चरम स्वरूप को जानने के लिए मनुष्य को चार सोपानों से गुजरना पड़ता है –

1. अपने प्राकृतिक 'स्व' का विकास करना।
2. अपने सामाजिक 'स्व' का विकास करना।
3. अपने मानसिक 'स्व' का विकास करना।
4. आध्यात्मिक 'स्व' का विकास करना।

आदर्शवादी सिद्धांतों को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं – आत्मपरक आदर्शवाद तथा वस्तुनिष्ठ आदर्शवाद। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से देखा जाए तो आदर्शवाद यह दर्शाता है कि किस प्रकार मानवीय विचार (विशेषकर आस्था तथा मूल्य) समाज का रूप निर्धारित करते हैं।

9.3.4 भारत में आदर्शवादी विचारधारा का विकास

आदर्शवाद से हमारा प्रथम परिचय भारतीय वैदिक व बौद्ध दार्शनिक दार्शनिक कराते हैं। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में आदर्शवादी विचारधारा के प्रथम दर्शन होते हैं। चौथी शताब्दी में महायान बौद्ध संप्रदाय के अंतर्गत 'योगाचार' में केवल मस्तिष्क में विकसित आदर्शवाद को व्यक्तिगत अनुभव की तुलना में वरीयता दी गयी। ब्रिहदाणन्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य द्वारा प्रतिपादित आदर्शवाद में हम आदर्शवाद के प्राचीनतम स्वरूप के दर्शन कर सकते हैं।

इसके अनुसार घटित वास्तविकता का सार एकीय चेतना में दृष्टिगोचर होता है। बौद्धों के आदर्शवाद में आध्यात्म को कम और ज्ञान-मीमांसा को अधिक महत्त्व दिया जाता है।

आध्यात्मिक आदर्शवादी, बौद्ध दार्शनिक वसुबन्धु की दृष्टि में विश्व-विषयक हमारा ज्ञान, हमारे अपने अनुभवातीत विश्व-विषयक ज्ञान तथा अवधारणाओं तक ही सीमित है। अद्वैत वेदांत में आदि शंकराचार्य ने आध्यात्मिक आदर्शवाद का विकास किया इस दर्शन में चेतना को ही सार्वभौमिक सत्य स्वीकार किया गया है और शेष सबको माया बताया गया है) 'ब्रह्म सत्यम जगन् मिथ्या: जीवो ब्रह्मत्वं न अपरः' – ब्रह्म ही एक मात्र सत्य है तथा यह अनेकत्व वाला जगत् एक भ्रम है (आत्मा, परमात्मा से भिन्न नहीं है, काश्मीर के शैव चिन्तक अभिनव गुप्त 9) 64-824 ईसवी को भी आदर्शवाद कहा जाता है।

9.3.5 पाश्चात्य जगत् में आदर्शवादी विचारधारा का विकास

पाश्चात्य अद्वैतवादी आदर्शवादी पदार्थ को नहीं, अपितु चेतना को सभी जीवों का आधार मानते हैं। अनेक्सागोरस (380 ईसा पूर्व) का यह विश्वास था कि मस्तिष्क ने ही सभी वस्तुओं की रचना की है। तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व के दार्शनिक प्लेटो ने अपने दर्शन में पवित्रता तथा न्याय आदि को मूर्त रूप में देखा था। प्लेटो के दर्शन से प्रभावित नव-अफ़लातूनीवाद आदर्शवाद की एक प्रमुख शाखा है। इसके अनुसार समस्त जीवों का निर्गम एक परम तत्त्व से हुआ है और प्रत्येक मनुष्य का परम लक्ष्य उस परम तत्त्व में लीन हो जाना है। इस दर्शन के अनुसार मनुष्य परम सुख तथा पूर्णत्व प्राप्त करने में सक्षम है। हेर्मेन लोत्ज़े तथा प्रोटेस्टेंट ब्रह्मविज्ञानियों ने आदर्शवाद की इस शाखा में अपनी आस्था व्यक्त की। 'न्यू थॉट मूवमेंट', 'यूनिटी चर्च' तथा ईसाई विज्ञान के ब्रह्मविज्ञान पर भी इस आदर्शवाद का प्रभाव देखा जा सकता है।

9.4 इमानुअल कांट

इमैनुअल कांट (1724–1804) को आधुनिक दर्शन का जनक माना जाता है। उनका प्रमुख सिद्धांत अनुभवातीत आदर्शवाद (Transcendental Idealism) है, जिसके अनुसार ज्ञान मानवीय अनुभव और मस्तिष्क की संरचना तक सीमित है। कांट ने देकार्त के संशयवाद और बर्कले के आत्मपरक आदर्शवाद से भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत किया तथा तर्कवाद (Rationalism) और अनुभववाद (Empiricism) का समन्वय किया। राजनीतिक रूप से उन्होंने स्थायी शांति (Perpetual Peace), वैश्विक लोकतंत्र और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग की वकालत की।

उनका प्रसिद्ध सिद्धांत है नैतिक शुद्धता का सिद्धांत (Principle of Moral Purity) या कर्तव्य के लिए कर्तव्य (Duty for Duty's Sake), जिसे कठोरतावाद (Rigourism) कहा जाता है। उन्होंने अपने ग्रंथों जैसे Thoughts upon the True Estimation of Living Forces और General Natural History and Theory of Heaven में देकार्त, लेबनीज़ और न्यूटन के विचारों का समन्वय किया।

कांट का मत था कि नैतिक आदेश (Categorical Imperative) निरपेक्ष है। 'तुम्हें करना चाहिए' नैतिक कर्तव्य है और 'तुम कर सकते हो' नैतिक स्वाधीनता (Moral Freedom)। उनके अनुसार मानव-प्रकृति का मूल आधार नैतिकता है।

साथ ही, लेबनीज़ का अनेकत्ववादी आदर्शवाद (Pluralistic Idealism / Panpsychism) यह मानता है कि अनेक मस्तिष्क मिलकर दृश्य जगत् के अस्तित्व को संभव बनाते हैं।

9.5 जॉर्ज विल्हेम फ्रेडरिक हेगेल

हेगेल (1770–1831) जर्मन आदर्शवादी दार्शनिक थे, जिन्होंने द्वंद्वात्मक आदर्शवाद (Dialectical Idealism) और ऐतिहासिक सिद्धांत का प्रतिपादन किया। उनके अनुसार इतिहास एक निरंतर द्वंद्वात्मक संघर्ष (Dialectical Struggle) है, जहाँ हर धारणा (Thesis) के सामने प्रतिधारणा (Antithesis) आती है और अंततः संश्लेषण (Synthesis) की ओर अग्रसर होती है। उनकी प्रमुख कृतियों में Phenomenology of Spirit, Science of Logic, Philosophy of History और Philosophy of Right सम्मिलित हैं। हेगेल का विचार था कि इतिहास केवल घटनाओं का संकलन नहीं, बल्कि उनमें निहित कार्य-कारण संबंध (Causality) की खोज है, और यह संपूर्ण मानवता की स्वतंत्रता-प्राप्ति की यात्रा का वृत्तान्त है।

हेगेल ने सामाजिक प्रगति की विधि (Method of Social Progress) को भी द्वंद्वात्मक प्रक्रिया बताया। उनके अनुसार संसार स्थिर नहीं बल्कि प्रगतिशील है और विचारों का संघर्ष (वाद-प्रतिवाद-संश्लेषण) ही समाज को आगे बढ़ाता है। इस प्रक्रिया की परिणति राष्ट्रीय-राज्य (Nation-State) के रूप में होती है, जिसे वे नैतिक बुद्धि (Moral Reason) की सर्वोच्च परिणति मानते थे। अपने ग्रंथ Philosophy of Right में उन्होंने बल दिया कि व्यक्ति को राष्ट्र और राज्य के हितों के लिए अपने व्यक्तिगत स्वार्थ का त्याग करना चाहिए।

हेगेल के दर्शन में ईश्वर (God/Absolute Spirit) का भी केंद्रीय स्थान है। वे मानते थे कि वास्तविकता समय के साथ विकसित होती है और मनुष्य अपने विवेक का प्रयोग करके इस तार्किक संरचना को समझ सकता है। हेगेल का अप्रतिबंध आदर्शवाद (Absolute Idealism) प्लेटो, कांट और लेबनीज़ की परंपरा का विकास है, जो यह मानता है कि वास्तविकता पूर्णतः बोधगम्य है। उनका द्वंद्वात्मक आदर्शवाद बर्कले के आत्मपरक आदर्शवाद और कांट के अनुभवातीत आदर्शवाद से भिन्न है।

हालाँकि, उनके दृष्टिकोण की आलोचना भी हुई। कीर्कीगार्ड (Kierkegaard) ने इसे अव्यावहारिक बताया क्योंकि वास्तविकता और मनुष्य दोनों ही अपूर्ण हैं। रैंके ने आरोप लगाया कि हेगेल ने इतिहास में मानव-क्रिया की भूमिका को उपेक्षित किया। शोपेनहावर ने उनके विचारों का विरोध करते हुए कहा कि अबौद्धिक ही वास्तविक है। वहीं कार्ल मार्क्स ने उनके द्वंद्वात्मक आदर्शवाद को आधार बनाकर द्वंद्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialism) का विकास किया। इस प्रकार, हेगेल का आदर्शवादी ऐतिहासिक सिद्धांत दर्शन और इतिहास दोनों को गहराई से प्रभावित करता है। हेगेल के परवर्ती आदर्शवादी विचार में शेलिंग (1775–1854) ने अंतर्ज्ञान और कला को सर्वोच्च मानते हुए संसार को तर्कसंगत व कलात्मक रचना बताया। ज्ञान-मीमांसक आदर्शवाद में ब्रांड ब्लान्शार्ड प्रमुख हैं। वस्तुनिष्ठ आदर्शवाद अनुभव और मस्तिष्क का सम्मिश्रण है, जिसके समर्थक ग्रीन, रोयस, क्रोसे और पाइर्स थे।

ब्रिटिश आदर्शवादी विचारक, इतिहासकार, लार्ड ऐक्टन इतिहासकारों को सलाह देते हुए कहता है –

‘नैतिक विज्ञान में पूर्वाग्रह बेईमानी है। एक इतिहासकार को अपनी जीवन-पद्धति के लिए अहम मूल्यों के प्रलोभनों-प्रभावों के विरुद्ध लड़ना होगा। उसे अपने देश, अपने वर्ग, अपने चर्च, अपने विद्यालय, अपने दल, प्रतिभावानों की सत्ता, मित्रों की व्याकुलता, इन सबके प्रलोभनों-प्रभावों के विरुद्ध लड़ना होगा। और इन प्रलोभनों-प्रभावों में जो भी उसके लिए सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण होंगे, वही उसके लिए सबसे अधिक खतरनाक होंगे। जो भी इतिहासकार इन प्रलोभनों-प्रभावों से खुद को मुक्त नहीं करता वह उस ज्यूरी-सदस्य के समान होता है जो कि अपनी पसंद-नापसंद के आधार पर अपना वोट डालता है।’

किसी वस्तु अथवा किसी व्यक्ति पर न्याय करते समय (अथवा अपनी राय बनाते समय) नीति का स्थान - सिद्धांत, राजनीति और राष्ट्रीयता से पहले आता है। किसी भी वस्तु, किसी भी व्यक्ति अथवा किसी भी घटना पर अपना निर्णय देते समय धार्मिक, दार्शनिक, राजनीतिक मापदंड के शास्त्रसम्मत आधार के अनुसार नहीं करो, बल्कि उत्कृष्टता, ईमानदारी और अंतःकरण के आदेश के अनुसार उसका निर्णय करो। अंतःकरण को व्यवस्था तथा सफलता, इन दोनों से ऊपर रखो।

9.6 वास्तविक आदर्शवाद

वास्तविक आदर्शवाद का विकास गिवोनी जेन्टील ने किया था। वास्तविक आदर्शवाद में वास्तविकता को चिंतन की सतत प्रक्रिया बताया गया है। इसमें प्रत्येक मानव-कर्म को मानव-विचार के रूप में वर्गीकृत किया गया है क्योंकि मनुष्य का कोई भी कार्य उसके होने से पहले उसके बारे में किए गए विचार करने के परिणामस्वरूप होता है। गिवोनी जेन्टील का यह मानना है कि विचार की अवधारणा का ही वास्तविक अस्तित्व होता है और इसको चिंतन की क्रिया से परिभाषित किया जा सकता है। गिवोनी जेन्टील फ्रासीवाद का प्रबल समर्थक था। उसे फ्रासीवाद का दार्शनिक कहा जाता है। इस दर्शन में व्यक्ति का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है, वह केवल समाज का एक अभिन्न अंग है। एक फ्रासीवादी राज्य में सभी नागरिक अपने नेता के प्रति समर्पित होते हैं।

9.6.1 व्यक्तिवादी आदर्शवाद

बोर्डेन पार्कर बोने ने व्यक्तिवादी आदर्शवाद को लोकप्रियता दिलाई थी। इस विचारधारा में व्यक्तियों की स्वायत्त वास्तविकता ही एकमात्र वास्तविकता है और इसे आत्म-चेतना में समझा जा सकता है।

9.7 आधुनिक वैज्ञानिकों के विचारों में आदर्शवाद

20 वीं शताब्दी के प्रारंभ में भौतिकशास्त्र के वैज्ञानिकों के चिंतन में आदर्शवाद का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। कार्ल पीयर्सन ने 'दि ग्रामर ऑफ साइंस' (1900) में इस पर प्रकाश डाला है। क्वांटम फिजिक्स तथा आइन्स्टीन के 'सापेक्षता का सिद्धांत' में आदर्शवादी विचारधारा का प्रभाव देखा जा सकता है। ब्रिटिश एस्ट्रोफिजिसिस्ट आर्थर एडिंगटन 'दि नेचर ऑफ थे फिजिकल वर्ल्ड' में कहता है – 'विश्व की सामग्री, मस्तिष्क की सामग्री है।' सर जेम्स जींस के अनुसार – 'मस्तिष्क को हम पदार्थों के जगत में सहसा प्रवेश करने वाला घुसपैठिया नहीं मान सकते। हमको तो इसे पदार्थ-जगत के सर्जक तथा नियंत्रक के रूप में स्वीकार करना चाहिए.'

9.8 आदर्शवाद के अवसान के कारण

अपने आलेख 'दि डिक्लाइन ऑफ आइडियलिज्म' में रिबेका बाईनुइन कहती है – “आदर्श, आदर्शवादी और आदर्शवाद” ये सभी अवास्तविकता की रंगत से से भरे हुए हैं। रेबेका बाईनुइन आदर्शवाद के पतन के कारणों में जहाँ डार्विनवादी पदार्थवाद, व्यवहारवाद तथा जातीय नियतिवाद की गणना करती है वहीं वह खुद आदर्शवाद की अपनी अव्यावहारिक और बचकानी परिकल्पनाओं को उसके पतन के लिए जिम्मेदार ठहराती है। प्रत्यक्षवादियों ने आदर्शवाद के अवसान में निर्णायक भूमिका निभाई। नेबूर तथा रैंके ने वैचारिक निष्कर्षों को अस्वीकार किया और इतिहास-लेखन में तथ्यों की महत्ता को स्थापित किया। उन्नीसवीं शताब्दी, आविष्कारों तथा औद्योगिक विकास का युग था, साम्राज्य-विस्तार का युग था, भौतिक समृद्धि का युग था। इस युग में ऋषि-मुनियों वाला आत्मा का परमात्मा से मिलन का प्रवचन निरर्थक हो गया था। इस युग में कांट को एक हठी और सनकी समझा

जा रहा था। हेगेल के आदर्शवाद पर चारों ओर से, विशेषकर, कार्ल मार्क्स की ओर से प्रहार हो रहे थे। इस घोर यथार्थवादी युग में आदर्शवाद की बात अब बेमानी हो चुकी थी।

किन्तु आदर्शवादी विचारधारा का कभी जड़ से उन्मूलन नहीं हुआ। हमको टॉलस्टॉय के साहित्य में आदर्शवादी भावना परिलक्षित होती है। 20 वीं शताब्दी में गाँधी जी के व्यक्तित्व और कृतित्व में हमको आदर्शवाद की विजय का उद्घोष सुनाई पड़ता है। आदर्शवाद उस अमर ज्योति के समान है जो मद्धम तो पड़ सकती है किन्तु कभी बुझती नहीं है।

9.9 अनुभवाश्रित ज्ञान की महत्ता

9.9.1 प्रत्यक्षवादी विचारधारा का प्रारंभिक विकास

आधुनिक इतिहास लेखन के अंतर्गत बुद्धिवाद, रूमानीवाद तथा प्रत्यक्षवाद का विकास हुआ। बुद्धिवाद के दार्शनिक चिंतन और रूमानीवाद की कल्पना की ऊंची उड़ान को इतिहास-लेखन के क्षेत्र में प्रायः अस्वीकार कर दिया गया और प्रत्यक्षवाद, इतिहास-लेखन का प्रमुख स्वर बन गया। प्रत्यक्षवाद के अनुसार – ‘मनुष्य का ज्ञान उसके अनुभव तक सीमित है।’

प्रत्यक्षवाद वह अवधारणा है जिसमें ज्ञान और विचार, निगमन की वैज्ञानिक प्रणाली पर निर्भर करते हैं। प्रत्यक्षवादी अपने निष्कर्षों में आत्मपरक दृष्टिकोण को नहीं अपनाता और अपने निर्णय के ऊपर भावुकता के बादल भी नहीं छाने देता। हर्बर्ट फ्रीगल के अनुसार – प्रत्यक्षवाद, पाश्चात्य दर्शन की वह विचारधारा है जिसमें किसी वस्तु, व्यक्ति, घटना आदि का ज्ञान प्राप्त करने के श्रोत के रूप में आध्यात्मिक चिंतन अथवा अनुमान को नकारा जाता है और केवल अनुभव-जन्य ज्ञान को स्वीकार किया जाता है।

प्राचीन दर्शन में प्रत्यक्षवादी विचारधारा की झलक देखी जा सकती है। 4 वीं शताब्दी ईसा पूर्व के कुतर्की दार्शनिक प्रोटागोरस के विचारों में एक सीमा तक इस आधुनिक प्रत्यक्षवादी विचारधारा के तत्व मिलते हैं। अतिवादी दार्शनिक सेक्सटस एम्पायरिकस को भी प्रत्यक्षवाद के अग्रदूत रूप में देखा जा सकता है। 16 वीं शताब्दी में पाइरे बेले ने प्रत्यक्षवादी विचारधारा को पुनर्जीवित किया था। मध्यकालीन नामरूपवादी ओकहैम के विलियम के विचारों में भी प्रत्यक्षवादी विचारधारा से साम्य देखा जा सकता है। 18 वीं शताब्दी के जर्मन विचारक जॉर्ज लिक्टेनबर्ग ने आध्यात्म-विरोधी प्रत्यक्षवाद की स्थापना की थी। 18 वीं शताब्दी में फ्रांसीसी ज्ञानोदय में, विवेक के महत्त्व पर बहुत बल दिया गया था और 18 वीं शताब्दी के ब्रिटिश अनुभववादियों – ह्यूम तथा बिशप जॉर्ज बर्कले, ने ज्ञान में अनुभव की महत्ता को दर्शाया था।

9.9.2 इतिहास दर्शन की निश्चयात्मक अभिगम

यूनानी इतिहासकार थ्यूसीडाइडीस (345-395 ईसा पूर्व) घटनाओं की तह तक जाकर तथ्यों को एकत्र करता था और वह तथ्यों को इतिहास की रीढ़ की हड्डी मानता था। यूनानी इतिहासकार पोलिबियस ने सत्य को इतिहास की आँख माना था, वह कहता था कि यदि इतिहास में से सत्य निकाल लिया जाए तो वह अंधा हो जाएगा। चीनी इतिहास लेखन में भी तथ्यों की यथार्थता पर विशेष बल दिया गया है। उन्नीसवीं शताब्दी में इतिहास लेखन के लिए प्रामाणिक तथ्यों की आवश्यकता पर ग्रैण्ड ग्राउण्ड ने लिखा था – ‘मुझे तथ्य चाहिए और जीवन में हमको केवल तथ्यों की आवश्यकता है।’

9.10 कॉम्टे द्वारा प्रत्यक्षवाद के सिद्धांत का विकास

ऑगस्टे कॉम्टे (1798–1857) फ्रांसीसी दार्शनिक थे जिन्हें **प्रत्यक्षवाद (Positivism)** का प्रवर्तक और आधुनिक समाजशास्त्र का संस्थापक माना जाता है। उनका विश्वास था कि ज्ञान का स्रोत केवल **अवलोकन (Observation)** है और विज्ञान का उद्देश्य भविष्यवाणी करना है। कॉम्टे का प्रत्यक्षवाद केवल वही ज्ञान स्वीकार करता है जिसे **इन्द्रिय-अनुभव (Empirical Knowledge)** से सिद्ध किया जा सके। उन्होंने *Course of Positive Philosophy* और *System of Positive Polity* में ज्ञान की **तीन अवस्थाएँ** बताईं—दैविक, अमूर्त और वैज्ञानिक। तीसरे चरण में मानव प्राकृतिक नियमों को समझकर जगत की व्याख्या करता है। इतिहास की व्याख्या भी उन्होंने इसी दृष्टिकोण से की। उनके अनुसार जैसे-जैसे धार्मिक और अमूर्त विश्वास क्षीण होंगे, मानव वैज्ञानिक चिंतन को अपनाएगा। उनका मानना था कि **ब्रह्मांड प्राकृतिक नियमों से संचालित है** जिन्हें केवल वैज्ञानिक पद्धति से ही समझा जा सकता है।

उनके प्रत्यक्षवाद की आलोचना **तार्किक प्रत्यक्षवादियों** और **मैक्स वेबर** ने की। वेबर का कहना था कि विज्ञान जीवन का नैतिक मार्गदर्शन नहीं दे सकता और राजनीति-दर्शन का अध्ययन केवल अनुभव से संभव नहीं है। आलोचकों ने इसे नैतिकता-विहीन मुक्त-व्यापार सिद्धांत का पोषक माना। कॉम्टे का प्रभाव बाद के विचारकों पर गहरा रहा। **हर्बर्ट स्पेंसर** ने सामाजिक विकासवाद में उनका अनुसरण किया। **हैरियेट मार्तिन्यू** तथा **एमिल दुर्खीम** ने उनके विचारों से प्रेरित होकर समाजशास्त्र में **वैज्ञानिकता, वस्तुनिष्ठता और अनुभवजन्य शोध** की परंपरा स्थापित की।

9.11 प्रमुख प्रत्यक्षवादी इतिहासकार

9.11.1 नेबूर से पूर्व के इतिहास-लेखन के दोष

मध्यकाल तक इतिहास को एक स्वतन्त्र विषय के रूप में मान्यता नहीं मिली थी। इतिहास को साहित्य अथवा दर्शन की एक शाखा ही माना जाता था। सत्रहवीं शताब्दी की वैज्ञानिक क्रान्ति ने इतिहास में आलोचनात्मक दृष्टिकोण का समावेश किया गया किन्तु इतिहास लेखन में अभी भी मुख्य रूप से तीन दोष विद्यमान थे -

1. समय के अनुरूप परिवर्तन के प्रति अनभिज्ञता
अठारहवीं शताब्दी तक इतिहासकारों को यह समझ नहीं थी कि समय के साथ हर युग की विशिष्टताएं बदल जाती हैं। वोल्तेयर तथा गिबन के मध्यकालीन इतिहास विषयक आकलन में इस समझ की कमी स्पष्ट दिखाई देती है।
2. प्राथमिक स्रोतों की अनुपलब्धता तथा मान्य प्रणालीगत सिद्धान्तों की अनुपस्थिति
ज्ञानोदय काल में आमतौर पर प्राथमिक स्रोत, शासकों, ड्यूकों और चर्च के आधीन होते थे इस कारण इतिहासकार इतिहास लेखन के लिए प्रायः उपलब्ध सहायक ग्रंथों से ही प्राप्त सामग्री पर निर्भर करते थे। प्राथमिक स्रोतों की उपलब्धता की स्थिति में भी इतिहासकार मान्य प्रणालीगत सिद्धान्तों की अनुपस्थिति के कारण उनका समुचित उपयोग करने में असमर्थ होते थे।
3. इतिहास के अध्ययन में संगठन एवं वर्गीकरण की कमी

सामान्यतः राजसत्ता के अपनी पसन्द के विद्वानों को ही इतिहास लेखन का दायित्व सौंपा जाता था. प्रमुख शैक्षिक संस्थाओं में इतिहास को एक स्वतन्त्र विषय के रूप में मान्यता नहीं मिली थी.

9.11.2 बार्टहोल्ड नेबूर (1665-1831)

नेबूर ने इतिहास को गौण विषय से एक स्वतन्त्र विषय के रूप में स्थापित करने में सफलता प्राप्त की थी. उसकी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ़ रोम' (1811-9) से आधुनिक ऐतिहासिक प्रणाली का जन्म माना जाता है. नेबूर ने प्राचीन रोम की राजनीतिक, विधि-सम्मत और आर्थिक संस्थाओं से सम्बद्ध प्राथमिक स्रोतों का गहन अध्ययन किया और फिर उनका आलोचनात्मक परीक्षण करने के बाद ही उसने 'हिस्ट्री ऑफ़ रोम' की रचना की. नेबूर इतिहासकार से यह अपेक्षा करता है कि वह ईश्वर के समक्ष सर उठाकर यह कह सके कि – 'उसने न तो जानबूझकर असत्य का आश्रय लिया है और न ही तथ्यों की गहन खोज किए बिना उन्हें प्रस्तुत किया है.' ग्रीटे, वेट्ज़, डिल्थी तथा मोमसेन ने नेबूर को सभी परवर्ती इतिहासकारों का मार्गदर्शक माना है.

9.12 इतिहासकार लियोपोल्ड वान रैंके

रैंके का इतिहास-दर्शन और इतिहास-लेखन की परंपरा

लियोपोल्ड वान रैंके (1795–1886) को आधुनिक वस्तुनिष्ठ इतिहास-लेखन का संस्थापक और आलोचनात्मक इतिहास-विज्ञान का प्रवर्तक माना जाता है। गॉटिनजेन विश्वविद्यालय की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए उसने इतिहास को मूल्यों से मुक्त करके तथ्यों पर आधारित करने का कार्य किया। रैंके ने अपनी पहली कृति हिस्ट्री ऑफ़ दि लैटिन एंड ट्यूटोनिक पीपुल्स (1393–1413) से ही अभिलेखीय शोध की पद्धति को अपनाया और संस्मरण, दैनंदिनी, पत्र, सरकारी दस्तावेज़, कूटनीतिक विवरण और प्रत्यक्षदर्शी वृत्तांत जैसे प्राथमिक स्रोतों को महत्व दिया। उसने अपने जीवन में लगभग 40,000 दस्तावेज़ संकलित किए और 23,000 ग्रंथों का निजी पुस्तकालय तैयार किया। रैंके का विश्वास था कि इतिहासकार का कार्य भूतकाल का आकलन या भविष्य की दिशा तय करना नहीं है, बल्कि केवल यह प्रस्तुत करना है कि "वास्तव में क्या घटित हुआ।" इसी कारण उसे आलोचनात्मक स्रोत-समीक्षा की परंपरा और अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक दृष्टिकोण को इतिहास में स्थान दिलाने का श्रेय दिया जाता है।

रैंके ने इतिहास-लेखन में तटस्थता को महत्व दिया और हिस्ट्री ऑफ़ दि पोप्स (16वीं–17वीं शताब्दी) जैसी कृतियों में रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट दोनों के प्रति संतुलित दृष्टिकोण रखा। हालांकि वह धार्मिक व्यक्ति था और ईश्वर प्रदत्त विधान में विश्वास करता था, फिर भी उसने तथ्यों को तटस्थता के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया। उसने हिस्टोरिक-पॉलिटिज़-ज़ीट्शरिफ़्ट पत्रिका की स्थापना कर इतिहास को वैज्ञानिक आधार देने की चेष्टा की और यूरोप की महाशक्तियों के अलग-अलग इतिहास लिखे, जैसे दि ओटोमन एंड द स्पैनिश एम्पायर, हिस्ट्री ऑफ़ फ्रांस, हिस्ट्री ऑफ़ इंग्लैंड और दि जर्मन पावर्स एंड द प्रिन्सेज़ लीग। अपने जीवन के अंतिम वर्षों में उसने यूनिवर्सल हिस्ट्री की रचना की, जिसमें उसने व्यक्ति से समष्टि की ओर बढ़ते हुए सार्वभौमिक इतिहास की अवधारणा प्रस्तुत की। उसके अनुसार प्रत्येक युग ईश्वर के समीप है और प्रत्येक कालखंड को उसके अपने संदर्भ में ही समझा जाना चाहिए।

रैंके का इतिहास-दर्शन तथ्यों की प्रामाणिकता और स्रोतों की विश्वसनीयता पर आधारित था। यूनानी और चीनी इतिहास-परंपराओं की भांति उसने भी सत्य को इतिहास की रीढ़ माना और अनुमान या दार्शनिक व्याख्याओं को

अस्वीकार किया। उसका मानना था कि इतिहासकार को केवल तथ्यों को उसी रूप में प्रस्तुत करना चाहिए जैसे वे वास्तव में थे, न कि आधुनिक मूल्यों या आदर्शों की कसौटी पर कसना चाहिए। रैंके ने हीगेल के इतिहास-दर्शन की आलोचना करते हुए कहा कि मानव-क्रिया की उपेक्षा कर केवल विचारधारा पर आधारित इतिहास प्रामाणिक नहीं हो सकता। उसने राजनीतिक शक्ति और महान व्यक्तित्वों की भूमिका को महत्व दिया, यद्यपि उस पर आरोप लगा कि उसने सामाजिक-आर्थिक शक्तियों की उपेक्षा की। फिर भी हिस्ट्री ऑफ इंग्लैंड में उसने सांस्कृतिक इतिहास को भी स्थान दिया। फ्रांसीसी क्रांति की उसने आलोचना की और प्रशा में सुदृढ़ राजतंत्र को उपयुक्त माना, जिससे उसकी राजनीतिक अनुदारता प्रकट होती है।

इतिहासकार के रूप में रैंके ने अभिलेखीय शोध और आलोचनात्मक अध्ययन की एक नई परंपरा स्थापित की, जिससे आधुनिक इतिहासकारों की एक पूरी पीढ़ी प्रभावित हुई। थियोडोर मामसेन, जॉन गुस्टाव ड्रायसेय और हेनरिक वान ट्रीट्स्के जैसे विद्वानों ने उसकी तकनीक को अपनाया। उसकी अध्ययन-गोष्ठी प्रणाली ने इतिहास के छात्रों को स्रोतों के आलोचनात्मक परीक्षण की वैज्ञानिक विधि सिखाई। यद्यपि उसने पूर्ण तटस्थता का दावा किया, परंतु उसकी रचनाओं में उसकी व्यक्तिगत पसंद-नापसंद झलकती है। फिर भी यह निर्विवाद है कि उसने आत्मपरकता के स्थान पर वस्तुनिष्ठता, पूर्वाग्रहों के स्थान पर संतुलन और कल्पना के स्थान पर तथ्य को महत्व देकर इतिहास को एक स्वतंत्र वैज्ञानिक अनुशासन के रूप में स्थापित किया। यही कारण है कि उसे "इतिहास का विज्ञान" का सूत्रधार कहा जाता है और उसका कथन "जैसा वास्तव में हुआ था" आधुनिक इतिहास-विज्ञान की आधारशिला बन गया।

9.13 प्रत्यक्षवाद का आकलन

प्रत्यक्षवाद का विश्वास है कि अवलोकन करने वाला वस्तुनिष्ठ अनुमान तथा निष्कर्ष तक तभी पहुंच सकता है जब कि वह स्वयं वस्तुनिष्ठ हो और अपनी भावनाओं के वशीभूत न हो। हालांकि मानवीय व्यवहार स्वाभाविक रूप से भावनात्मक प्रतिक्रियाओं से परिपूर्ण होता है। यद्यपि प्रत्यक्षवाद में अन्वेषकों को मानवीय भावनाओं को परे रखने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है किन्तु अध्ययन तथा अन्वेषण के दौरान ऐसा न होने देने की कोई ज़िम्मेदारी नहीं ले सकता। किंचित विद्वान प्रत्यक्षवाद की इसलिए आलोचना करते हैं कि यह विश्वास करता है कि हर वस्तु को मापा जा सकता है और उसकी गणना की जा सकती है, ऐसे जैसे कि प्रत्येक वस्तु अटल हो।

प्रत्यक्षवादी वही मानते हैं, जो वह देखते हैं और ऐसी घटनाओं की अनदेखी करते हैं जिनकी कि कभी व्याख्या ही न की जा सके। उनका यह विश्वास उस पार्श्वीय चिंतन का उन्मूलन कर देता है जो कि अप्रत्यक्ष रूप से समस्याओं के समाधान खोजने की रचनात्मक प्रक्रिया है। प्रत्यक्षवादी इतिहासकारों की दृष्टि में मानव-मस्तिष्क तथा प्रकृति में कोई मूलभूत अंतर नहीं है और ऐतिहासिक प्रक्रिया एवं प्राकृतिक प्रक्रिया भी एक ही समान होती है। प्रत्यक्षवादी इतिहासकारों ने आनुभविक विज्ञान की प्रणाली को अपनाया था, उन्होंने परानुभूति तथा आत्मानुभूति को अवैज्ञानिक मानकर अस्वीकार किया कॉलिंगवुड के शब्दों में – 'यह सवाल कि – 'तथ्य वैसे ही हैं जैसा कि उनके बारे में कहा जा रहा है', प्रत्यक्षवादी के लिए कभी भी महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं रहा है क्योंकि वह कभी भी अपनी आँखों के सामने तथ्यों पुनरुत्पन्न कर सकता है।'

प्रत्यक्षवाद में ऐतिहासिक ज्ञान का वस्तुनिष्ठ होना आवश्यक माना गया और इतिहासकार को यह अनुमति नहीं दी गयी कि वह तथ्यों पर अपना निर्णय दे सके। प्रत्यक्षवादी इतिहासकारों ने प्रचुर मात्रा में सूक्ष्म से

सूक्ष्म तथ्यों को एकत्र किया किन्तु उन्होंने यदा-कदा ही सामान्यीकरण के नियमों का प्रतिपादन किया। उनकी प्रणाली ने उन्हें राजनीतिक इतिहास तक ही सीमित कर दिया क्योंकि उनमें इतिहास की अन्य शाखाओं को समझ पाने की और उनसे सम्बंधित तथ्यों को एकत्र करने की क्षमता ही नहीं थी। कॉलिंगवुड के शब्दों में – ‘प्रत्यक्षवाद की विरासत है – एक तरफ सूक्ष्म समस्याओं के निदान के ऊपर महारत और दूसरी तरफ बड़ी समस्याओं का निराकरण न कर पाने की दुर्बलता.’

9.14 कार्ल मार्क्स (1818-1883)

कार्ल मार्क्स (1818-1883) ने इतिहास की व्याख्या के लिए सामान्य विधान और व्यापक प्रतिमान प्रस्तुत किए जिन्हें ऐतिहासिक भौतिकवाद कहा जाता है। उनका जन्म जर्मनी के ट्रायर नगर में हुआ और उन्होंने कानून, दर्शन और इतिहास का अध्ययन किया। तत्कालीन राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था के प्रखर आलोचक होने के कारण उन्हें मातृभूमि छोड़नी पड़ी और उन्होंने फ्रांस, बेल्जियम तथा अंततः इंग्लैंड में शरण ली। 1853 में वे फर्स्ट इंटरनेशनल के संस्थापकों में रहे और विश्व समाजवादी आंदोलन के प्रमुख नेता बने। उनके जीवन में जेनी वॉन वेस्टफालेन से विवाह और फ्रेडरिक एंगेल्स से मित्रता, दोनों निर्णायक घटनाएँ थीं।

मार्क्स और एंगेल्स ने मिलकर द होली फैमिली (1844) तथा द जर्मन आइडियोलॉजी (1846) लिखीं जिनमें भौतिकवादी इतिहास दृष्टि का प्रारंभिक प्रतिपादन हुआ। 1848 का कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो उनके विचारों का व्यवस्थित घोषणापत्र बना। क्रिटिक ऑफ पॉलिटिकल इकॉनॉमी (1859) में उन्होंने उत्पादन संबंधों की भूमिका पर बल दिया और उनकी सबसे महत्वपूर्ण कृति दास कैपिटल (1867-93) वैज्ञानिक समाजवाद का मूल ग्रंथ बनी। एंगेल्स के शब्दों में, जिस प्रकार डार्विन ने प्रकृति का नियम खोजा उसी प्रकार मार्क्स ने मानव इतिहास के विकास का नियम प्रस्तुत किया। मार्क्स और एंगेल्स द्वारा विकसित जीवन और इतिहास संबंधी दृष्टिकोण, जिसने मार्क्सवाद को एक एकीकृत, बाध्यकारी और गतिमान सिद्धान्त का रूप दे दिया, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का दर्शन है। मार्क्स हीगल का सबसे महत्वपूर्ण अनुयायी भी था और विरोधी भी अनुयायी इसलिए कि उसने द्वन्द्वात्मक पद्धति को स्वीकार किया और विरोधी इसलिए कि उसने विज्ञानवाद को भौतिकवाद से विस्थापित किया। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद मानव जीवन की परिवर्तनशील भौतिक दशाओं में ऐतिहासिक प्रक्रिया के सारात्व की खोज करता है। युवा हीगलवादियों के समूह को निकटता से अनुभव करते हुए मार्क्स, हीगल की चिंतन प्रणाली की ओर आकृष्ट हुए। इस चिंतन प्रणाली द्वारा आंतरिक नियमितताओं, इसकी पूर्णता तथा विश्व दृष्टि के आधार पर यथार्थ की व्याख्या करने के प्रयास ने विशेषकर उन्हें आकर्षित किया। किंतु द्वन्द्वात्मकता की रचनात्मक रूप से आमूल परिवर्तनवादी पद्धति ने उन्हें सर्वाधिक प्रभावित किया। द्वन्द्वात्मकता से हीगल और मार्क्स का आशय यह था कि सब कुछ गतिशीलता और विकास की स्थिति में है और सभी परिवर्तन परस्पर विरोधी तत्वों के संघर्ष और टकराव से जन्म लेते हैं। इससे ज्ञात होता है कि इतिहास और वस्तुतः सभी यथार्थ कालप्रवाह उन घटनाओं के एकल तथा सार्थक प्रकटीकरण के माध्यम से, जो अनिवार्य तार्किक एवं निर्धारक प्रकृति के होते हैं, विकास की प्रक्रिया को दर्शाते हैं और प्रत्येक घटना सशक्त एवं पर्याप्त कारण से सही क्रम में घटती है न कि संयोगवश। इस प्रकार इतिहास जिस रूप में सामने आया है उससे भिन्न नहीं हो सकता था।

मार्क्स के निधन पर एंगेल्स ने कहा कि "मानवता अपने समय के महानतम मस्तिष्क से वंचित हो गई।" उनके जीवन और कृतियों ने इतिहास की व्याख्या को नई दिशा दी। मार्क्स ने यह प्रतिपादित किया कि भौतिक जीवन की स्थितियाँ और उत्पादन की शक्तियाँ ही समाज की राजनीतिक, धार्मिक और बौद्धिक संरचना निर्धारित करती हैं।

इस प्रकार उन्होंने इतिहास को वर्ग-संघर्ष की प्रक्रिया के रूप में देखा और आधुनिक सामाजिक विज्ञानों को एक नया, वैज्ञानिक आधार प्रदान किया।

9.15 इतिहास के चरण

मार्क्स का तर्क था कि इतिहास विभिन्न चरणों—एशियाटिक, प्राचीन, सामंती और आधुनिक बर्जुआ—से होकर गुजरता है और प्रत्येक चरण धन उत्पादन की प्रचलित परिस्थितियों पर आधारित होता है। दासत्व आधारित अर्थव्यवस्था में उत्पादन दासों से, सामंती काल में भूमि से और पूंजीवादी काल में फैक्ट्रियों व उत्पादन साधनों से होता है। प्रत्येक चरण अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप विचारधारा और अधिसंरचना निर्मित करता है। इस ऐतिहासिक गत्यात्मकता के केंद्र में वर्ग संघर्ष (Class Struggle) है, जो उत्पादन संबंधों से उपजे विरोधी हितों का परिणाम है। मार्क्स और एंगेल्स ने कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो में कहा कि “अब तक अस्तित्व में रहे सभी समाजों का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है”। निजी सम्पत्ति के उदय के साथ समाज शोषक और शोषित में बंटा रहा है—दास-स्वामी बनाम दास, सामंत बनाम कृषिदास, तथा आधुनिक युग में पूंजीपति वर्ग बनाम सर्वहारा। मार्क्स के अनुसार राज्य (State) कोई तटस्थ संस्था नहीं, बल्कि शोषक वर्ग के हितों की रक्षा का साधन है। आधुनिक राज्य बर्जुआ वर्ग का एक उपकरण है, जो सर्वहारा के विद्रोह को नियंत्रित करता है।

मार्क्स ने पूंजीवाद की शोषणकारी प्रकृति को अधिशेष मूल्य के सिद्धांत (Theory of Surplus Value) से स्पष्ट किया। श्रम ही सम्पत्ति का वास्तविक स्रोत है, किंतु पूंजीपति उत्पादन साधनों पर स्वामित्व के कारण श्रमिक के श्रम से उत्पन्न अधिशेष मूल्य को हड़प लेते हैं। यही श्रम-पूंजी विरोध का मूल है। इस विरोध का समाधान सामाजिक क्रांति (Social Revolution) है, जो तब होती है जब नई उत्पादक शक्तियाँ पुरानी वर्ग-संबंधी संरचनाओं से टकराती हैं। मार्क्स के अनुसार पूंजीवाद के अंततः पतन और सर्वहारा क्रांति के बाद वर्गविहीन समाज (Classless Society) की स्थापना होगी, जहाँ निजी सम्पत्ति का उन्मूलन होगा और राज्य का लोप हो जाएगा। इस अभिनव समाज में प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार योगदान करेगा और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति पाएगा।

9.16 मार्क्सवादी इतिहास लेखन की समस्याएँ

मार्क्सवादी इतिहास लेखन की मूल चुनौती अतीत और वर्तमान की एकता को समझने में है। मार्क्स ने कहा था कि “दार्शनिकों ने अब तक केवल संसार की व्याख्या की है, प्रश्न इसे बदलने का है।” इसी आधार पर मार्क्सवादी दृष्टिकोण यह मानता है कि इतिहास की व्याख्या केवल घटनाओं के पुनरावलोकन तक सीमित नहीं रह सकती, बल्कि उसे समाज परिवर्तन की दिशा में मार्गदर्शन भी करना चाहिए। किंतु समस्या यह है कि अक्सर इतिहासकार इस दृष्टिकोण को धर्मशास्त्रीय ढाँचे में बाँधकर प्रस्तुत करते हैं—जैसे आदिम साम्यवाद से दासप्रथा, सामंतवाद, पूंजीवाद और फिर समाजवाद तक एक अनिवार्य क्रम। यह सरलीकरण इतिहास की जटिलताओं को अनदेखा कर देता है और पुनः अनुसंधान की गुंजाइश को सीमित करता है।

दूसरी समस्या यह है कि मार्क्सवादी इतिहासलेखन को प्रायः नियतिवाद (determinism) के रूप में प्रस्तुत किया गया है। पाठ्य-पुस्तकों में इसे इस प्रकार समझाया जाता है कि उत्पादन शक्तियाँ सामाजिक संबंधों को तय करती हैं और वही अधिरचना (superstructure) का निर्माण करती हैं। इससे यह धारणा बनती है कि समाज का विकास एक यांत्रिक प्रक्रिया है। किंतु वास्तविकता में चेतना, राजनीति और संस्कृति की भूमिका को भी समान रूप से

महत्त्व देना आवश्यक है। वर्ग-संघर्ष की अवधारणा भी कई बार संरचना और उत्पादन पद्धति की लम्बी बहसों में धुंधली पड़ जाती है, जबकि मार्क्स ने स्वयं कैपिटल को क्रांति के आह्वान के साथ समाप्त किया। इससे स्पष्ट है कि इतिहास को केवल संरचनात्मक विश्लेषण तक सीमित करना मार्क्सवाद की मूल सक्रियता को कमजोर कर देता है।

तीसरी बड़ी समस्या समाजवाद और उपनिवेशवाद की व्याख्या में देखी जाती है। पूँजीवाद के उद्भव में उपनिवेशीय पूँजी की भूमिका को मार्क्स ने स्पष्ट किया, किंतु आगे चलकर लेनिन और अन्य मार्क्सवादियों ने साम्राज्यवाद को केवल वित्तीय पूँजी की प्रतिस्पर्धा तक सीमित कर दिया। इससे उपनिवेशों की वास्तविक भूमिका और विविध आयाम अनदेखे रह गए। इसी प्रकार समाजवादी समाजों के इतिहास का कोई व्यवस्थित सैद्धांतिक प्रारूप मार्क्सवाद के भीतर नहीं मिल पाता। 1916 के बाद बने समाजवादी समाजों का इतिहास, उनकी सफलताओं और सीमाओं का विश्लेषण मार्क्सवादी लेखन में अपेक्षित गहराई से नहीं हुआ। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मार्क्सवादी इतिहास लेखन की समस्याएँ मुख्यतः उसके नियतिवादी दृष्टिकोण, समाजवाद की अनुपस्थित व्याख्या और उपनिवेशवाद के सरलीकरण में निहित हैं।

9.17 मार्क्सवाद (ऐतिहासिक भौतिकवाद) का इतिहास लेखन पर प्रभाव

मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद ने इतिहास लेखन को गहराई से प्रभावित किया। यद्यपि आलोचक जैसे ट्रीस्के और ए.जे.पी. टेलर मानते थे कि मार्क्स पहले से निष्कर्ष तय करके चलते थे और उनका दृष्टिकोण अनैतिहासिक था, फिर भी यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि मार्क्सवादी पद्धति ने इतिहास की व्याख्या को नई दिशा दी। आर्थर मार्विक जैसे विचारकों ने सही कहा कि कभी-कभी मार्क्सवाद ने घटनाओं को केवल दृष्टान्तों के रूप में उपयोग किया, किंतु उसका प्रभाव ऐतिहासिक विश्लेषण की पद्धति में निर्णायक रहा। मार्क्स का विश्वास था कि सामाजिक विकास के विधानों का प्रतिपादन संभव है और उत्पादन संबंध ही ऐतिहासिक प्रगति की कुंजी हैं। यद्यपि उनकी कई भविष्यवाणियाँ—जैसे सर्वहारा का निर्धनतम होना या क्रांति केवल विकसित पूँजीवादी देशों में होना—तथ्यों से पुष्ट नहीं हो सकीं, परंतु उनका सिद्धांत इतिहासलेखन के लिए उपयोगी ढाँचा साबित हुआ।

मार्क्सवादियों ने रैंकवादी तथ्यों के केवल संकलन पर आधारित इतिहास को संशोधित किया। उन्होंने बताया कि इतिहास केवल घटनाओं का क्रम नहीं बल्कि उनके अंतर्संबंधों का विश्लेषण है। लेनिन ने इसे वैज्ञानिक चिंतन में महान उपलब्धि बताया क्योंकि इसने यह स्पष्ट किया कि उत्पादक शक्तियों के विकास से सामाजिक जीवन एक प्रणाली से दूसरी प्रणाली की ओर बढ़ता है। नवजागरण और प्रथम विश्वयुद्ध के बीच मार्क्स और एंगेल्स ने प्रगति का आधार उत्पादन पद्धति को माना। उनके दो मूलभूत योगदान—उत्पादन पद्धति की खोज और वर्ग विश्लेषण—इतिहास लेखन की दिशा बदलने वाले रहे। अधिशेष मूल्य का सिद्धांत भी ऐतिहासिक विश्लेषण का उपकरण बना, जिसने सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तनों को समझने में मदद की।

इतिहासलेखन पर मार्क्सवाद का प्रभाव केवल विधागत नहीं, बल्कि प्रेरक और मुक्तकारी भी रहा। आर्थर मार्विक के अनुसार, इतिहास की समस्याओं से जूझने में मार्क्सवाद ने नई राहें खोलीं। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध की अधिकांश महत्वपूर्ण ऐतिहासिक कृतियों पर इसका प्रभाव देखा जा सकता है। भौतिकवादी मीमांसा ने कारणमूलक व्याख्या को सरल बनाया। फ्रांसीसी क्रांति या अमेरिकी संविधान जैसे प्रसंगों को शाश्वत सत्य की बजाय उनके आर्थिक-सामाजिक संदर्भों में समझना इसी दृष्टिकोण की देन है। डेविड मैकलेल्लान ने भी माना कि तीव्र सामाजिक संघर्षों के दौर में मार्क्सवादी व्याख्या सर्वाधिक प्रभावी होती है।

अतः कहा जा सकता है कि यद्यपि मार्क्स की कुछ भविष्यवाणियाँ असत्य सिद्ध हुईं, फिर भी ऐतिहासिक भौतिकवाद ने इतिहासलेखन को वैज्ञानिकता, वर्ग-विश्लेषण और कारणात्मकता की नई दिशा दी। इसने इतिहास को केवल घटनाओं का लेखा-जोखा न मानकर सामाजिक-आर्थिक संघर्षों की गतिशील प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत किया, जो आज भी इतिहासकारों के लिए एक प्रेरक और आलोचनात्मक उपकरण है।

9.18 मार्क्सवाद की महत्वता के कारण

मार्क्स और एंगेल्स ने इतिहास अध्ययन को नई दिशा दी। सबसे पहले, उन्होंने इतिहास को समाज के अध्ययन (Study of Society) के रूप में स्थापित किया। थीसिस ऑन फायरबाख में मार्क्स ने कहा कि मानवीय मूल्य सामाजिक संबंधों की समष्टि हैं। इस दृष्टि से इतिहास केवल घटनाओं का निरूपण न रहकर मानव-समाज की सक्रिय प्रक्रिया बन गया।

दूसरे, मार्क्सवाद ने आर्थिक और सामाजिक इतिहास (Economic & Social History) को केंद्र में रखा। हीगल और रैंकवादी इतिहासकार जहाँ राजनीतिक सत्ता पर केंद्रित थे, वहीं ऐतिहासिक भौतिकवाद ने आर्थिक शक्तियों और जनजीवन को महत्व दिया। 20वीं शताब्दी में इंग्लैण्ड, फ्रांस और अमेरिका में आर्थिक एवं सामाजिक इतिहास संस्थागत रूप से विकसित हुआ।

तीसरे, मार्क्सवाद ने सामान्य जन (Common People) की भूमिका पर बल दिया। द होली फैमिली में जनसाधारण की अग्रणी भूमिका को रेखांकित किया गया, जिसने आगे चलकर सबॉल्टर्न स्टडीज (Subaltern Studies) जैसे अध्ययनों को जन्म दिया।

9.19 पूर्ण इतिहास

यह विचार व्यक्त करते हुए कि भौतिक उत्पादन की पद्धतियाँ मानव जीवन के अन्य पक्षों को प्रभावित करती हैं मार्क्सवाद ने एक संघटक सिद्धान्त प्रदान किया है और अब इसे तथाकथित रूप से “पूर्ण इतिहास” का प्रतीक माना जाता है। पूर्ण या समग्र इतिहास का अर्थ एक ऐसा इतिहास है जो कला, विचारों, राजनीति और अर्थशास्त्र के मध्य अंतर्सम्बन्ध पर बल देता है।

9.20 सारांश

दर्शन के क्षेत्र में आदर्शवाद उन आध्यात्मिक दर्शनों का समूह है जिनमें कि इस विचार पर बल दिया जाता है कि वास्तविकता, जिसको कि मनुष्य जान सकता है, वह मूलतः उसके मस्तिष्क की उपज होती है। भौतिकवाद के विपरीत आदर्शवाद इस बात पर बल देता है कि भौतिक घटनाओं के पीछे मुख्यतः मानव-चेतना उत्तरदायी होती है। आदर्शवाद से हमारा प्रथम परिचय भारतीय वैदिक, चीन के नवकन्फ्यूशियसवादी- व बौद्ध दार्शनिक तथा नव-अफ़लातूनी यूनानी दार्शनिक कराते हैं।

पाश्चात्य अद्वैतवादी आदर्शवादी पदार्थ को नहीं, अपितु चेतना को सभी जीवों का आधार मानते हैं। प्लेटो ने अपने दर्शन में पवित्रता तथा न्याय आदि को मूर्त रूप में देखा था। 18 वीं शताब्दी में यूरोप में जॉर्ज बर्कले ने भौतिकवाद के विरुद्ध संशयवादी तर्क प्रस्तुत कर आदर्शवाद का पुनरुत्थान किया। 19 वीं शताब्दी में जी. जॉर्ज विल्हेम फ्रेडरिक हेगेल, एफ. डब्लू जे. शेलिंग, आर्थर शौपेनआवर जैसे आदर्शवादियों ने दार्शनिक क्षेत्र में अपना प्रभुत्व स्थापित किया।

20 वीं शताब्दी के प्रारंभ में भौतिकशास्त्र के वैज्ञानिकों के चिंतन में आदर्शवाद का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। क्वांटम फ़िज़िक्स तथा आइन्स्टीन के 'सापेक्षता का सिद्धांत' में आदर्शवादी विचारधारा का प्रभाव देखा जा सकता है। 19 वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही आदर्शवादी विचारधारा का अवसान होने लगा था। आदर्शवाद के पतन के कारणों में जहाँ डार्विनवादी पदार्थवाद, व्यवहारवाद तथा जातीय नियतिवाद का विकास को गिना जा सकता है वहीं खुद आदर्शवाद की अपनी अव्यावहारिक और बचकानी परिकल्पनाएं अपने पतन के लिए जिम्मेदार थीं। नेबूर तथा रैके जैसे प्रत्यक्षवादियों ने आदर्शवाद के अवसान में निर्णायक भूमिका निभाई थी। उन्नीसवीं शताब्दी, आविष्कारों तथा औद्योगिक विकास का युग था, साम्राज्य-विस्तार का युग था, भौतिक समृद्धि का युग था। इस युग में आदर्शवाद की बात बेमानी हो गयी थी। किन्तु आदर्शवादी विचारधारा का कभी जड़ से उन्मूलन नहीं हुआ। हमको टॉलस्टॉय के साहित्य में तथा गाँधी जी के व्यक्तित्व और कृतित्व में आदर्शवाद की विजय का उद्घोष सुनाई पड़ता है।

प्रत्यक्षवाद वह अवधारणा है जिसमें ज्ञान और विचार, निगमन की वैज्ञानिक प्रणाली पर निर्भर करते हैं। प्रत्यक्षवाद के अनुसार – 'मनुष्य का ज्ञान उसके अनुभव तक सीमित है।' प्राचीन दर्शन में प्रत्यक्षवादी विचारधारा की झलक देखी जा सकती है। नव-प्रत्यक्षवादियों अथवा तार्किक प्रत्यक्षवादियों – मैक्स वेबर, विएना सर्किल, टी. डी. वैल्डन, मोरिट्ज़ श्लिक, लुडविग वित्जेस्ताइन तथा ए. जे. एयर आदि ने कॉमंटे की प्रत्यक्षवादी व्याख्या को अस्वीकार कर दिया। उत्तर-व्यवहारवादियों ने भी प्रत्यक्षवाद के माध्यम से राजनीति-विज्ञान की व्याख्या किया जाना असंभव बताया है। कॉमंटे के आलोचक उसे 'मुक्त-व्यापार सिद्धांत' का पोषक मानते हैं इसमें नैतिकता का कोई स्थान नहीं होता है। कॉमंटे का प्रत्यक्षवाद नितांत अव्यावहारिक नहीं है। जे. एस. मिल, रिचर्ड कॉग्रैव, अन्स्ट मैक तथा रिचर्ड अवेनारियंस तथा हर्बर्ट स्पेंसर के विचारों पर कॉमंटे के चिंतन का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

मार्क्स ने इतिहास के प्रारूप को आर्थिक परिवर्तनों में आविष्कृत किया। मार्क्स के चिन्तन की भले ही विद्वानों ने आलोचना की है परन्तु इसे पूरी तरह निरर्थक और आधार रहित नहीं कहा जा सकता। यद्यपि यह सत्य है कि इतिहास दर्शन के क्षेत्र में मार्क्स की कोई महत्वपूर्ण देन नहीं है, परन्तु इतिहास की आर्थिक व्याख्या इसके द्वारा प्रस्तुत एक नवीन विषय है। उसने पूंजीवाद के अवशेषों पर साम्यवाद के पौधों को लहराते देखा। मार्क्स ने अपने सिद्धान्तों को दृढ़ता से अतीत पर आधारित किया परन्तु वर्तमान में वर्गहीन समाज के उद्देश्यों की पूर्ति की कठिनाइयों ने उन्हें भविष्य के विषय में सोचने के लिए बाध्य कर दिया। वर्गहीन समाज के संघर्ष का अभिप्राय सुखद भविष्य का निर्माण करना है। मार्क्स के अनुसार, भावी विश्व का समाज वर्गहीन होगा जिसमें शासक की आवश्यकता नहीं होगी। शोषण, दमन और अत्याचार से मुक्त वर्गहीन समाज की परिकल्पना आज भी एक आकर्षक सिद्धान्त है।

एक ओर यथार्थवाद और प्रत्यक्षवाद का अपना महत्त्व है तो दूसरी ओर आदर्शवाद का अपना महत्त्व है किन्तु मानव-कल्याण इन दोनों के समन्वय और पारस्परिक सामंजस्य में है जिसको कि हम आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद कहते हैं। इस आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद के दर्शन हमको विचारकों, साहित्यकारों तथा इतिहासकारों में पहले भी हुए हैं, अब भी होते हैं और आगे भी होते रहेंगे।

9.21 पारिभाषिक शब्दावली

नव-अफ़लातूनीवाद – यूनानी दार्शनिक प्लेटो के दर्शन को पुनर्स्थापित करने वाले दार्शनिकों का मत

फ़्रासीवाद – अधिनायक-तंत्र का समर्थन करने वाला मत

नव-कन्फ़्यूशियसवाद – चीन के प्रसिद्ध दार्शनिक कन्फ़्यूशियस के दर्शन को पुनर्स्थापित करने वाला मत

कोर्स ऑफ़ पॉज़िटिव फ़िलोसोफी – प्रत्यक्षवादी दर्शन का मार्ग

सिस्टम ऑफ़ पॉज़िटिव पोलिटी – प्रत्यक्षवादी राज्य-तंत्र की व्यवस्था

सार्वभौमिक इतिहास – जातीय, धार्मिक तथा राष्ट्रीय, संकीर्णताओं से ऊपर उठकर लिखा जाने वाला वैश्विक इतिहास

व्यष्टि से समष्टि - व्यक्तिगतता से विश्व-व्यापकता

9.22 अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए

1. भारतीय दर्शन में आदर्शवादी विचारधारा.
2. इमानुअल कांट का नैतिक शुद्धता का सिद्धांत
3. लार्ड ऐक्टन की आदर्शवादी विचारधारा

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 3.1.3.4
2. देखिए 3.1.3.2
3. देखिए 3.1.6.3
4. निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-
5. प्रत्यक्षवादी विचारधारा का प्रारंभिक विकास
 1. कॉम्टे का इतिहास-दर्शन
 2. इतिहासकार के रूप में रैंके का आकलन

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 3.2.3.1 प्रत्यक्षवादी विचारधारा का प्रारंभिक विकास
2. देखिए 3.2.3.3 कॉम्टे द्वारा इतिहास की व्याख्या
3. देखिए 3.2.5.5 इतिहासकार के रूप में रैंके का आकलन

9.23 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कालिंगवुड, आर0 जी0 - दि आइडिया ऑफ़ हिस्ट्री, लन्दन, 1968
2. गूच, जी0 पी0 - दि हिस्ट्री एण्ड दि हिस्टोरियन्स ऑफ़ दि नाइन्टीन्थ सेन्चुरी, लन्दन, 1913
3. श्रीधरन, ई0 - ए टैक्स्ट बुक ऑफ़ हिस्टोरियोग्राफी, नई दिल्ली, 2013
4. कार, ई0 एच0 (अनुवादक: चक्रधर, अशोक) - 'इतिहास क्या है', नई दिल्ली, 1993
5. थापर, रोमिला (सम्पादक) - 'इतिहास की पुनर्व्याख्या' नई दिल्ली, 1991
6. बुद्धप्रकाश - 'इतिहास दर्शन' इलाहाबाद, 1952
7. वर्मा, लालबहादुर - 'इतिहास के बारे में', इलाहाबाद, 2000
8. शर्मा, रामविलास - 'इतिहास दर्शन', नई दिल्ली, 1994
9. टोश, जॉन - 'दि पर्सूट ऑफ़ हिस्ट्री: एम्स, मेथड्स एंड न्यू डायरेक्शंस इन दि स्टडी ऑफ़ मॉडर्न हिस्ट्री' हालो, 1999

10. रॉय एम, टोलेफसन – ‘आईडियलिज्म’ (‘हैण्डबुक ऑफ़ वर्ड हिस्ट्री: कन्सेप्ट्स एंड इश्यूज़, संपादक: ड्यूनर, जोसफ, न्यूयॉर्क, 1956)
11. लाल, के. बी. – ‘पाश्चात्य दर्शन, वाराणसी, 1990,
12. ल्यूसे ए. ए. तथा जेसप टी. ई. (संपादक) – ‘दि वर्क्स ऑफ़ जॉर्ज बर्कले’, लन्दन, 1946
13. कॉलिंगवुड आर. जी. – ‘दि मैप ऑफ़ नॉलिज’, ऑक्सफ़ोर्ड, 1923
14. हेगेल, जी. डब्लू, एफ़ – साइंस ऑफ़ लॉजिक’ (अंग्रेजी अनुवाद – जॉर्ज दी जियोवैनी), कैंब्रिज, 208
15. कांट इमानुअल – ‘क्रिटिक ऑफ़ प्योर रीज़न’ (अंग्रेजी अनुवाद – पॉल ग्युलेर तथा एलेन डब्लू वुड), कैंब्रिज, 1998
16. सिंह, परमानन्द – ‘इतिहास दर्शन’ , दिल्ली, 2013
17. चौबे, झारखंड – ‘इतिहास दर्शन’, वाराणसी, 2014

9.24 निबंधात्मक प्रश्न

1. अगस्ते कॉम्टे की प्रत्यक्षवादी अवधारणा का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए.
2. इतिहास की अवधारणा के सम्बन्ध में कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
3. वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त पर प्रकाश डालिए।
4. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का आशय स्पष्ट कीजिए।
5. इतिहास लेखन पर मार्क्सवाद के प्रभाव को स्पष्ट कीजिए।
6. मार्क्सवादी इतिहास लेखन की समस्याओं का वर्णन कीजिए।

इकाई- 10 सामाजिक शोध और सामाजिक अनुसन्धान के प्रकार

इकाई की संरचना

- 10.0 अध्ययन के उद्देश्य
- 10.1 प्रस्तावना
- 10.2 सामाजिक शोध का अर्थ
- 10.3 सामाजिक शोध का उद्देश्य
- 10.4 सामाजिक शोध के चरण
- 10.5 सामाजिक शोध का अध्ययन क्षेत्र एवं सार्थकता
- 10.6 अन्वेषणात्मक सामाजिक अनुसन्धान
- 10.7 वर्णनात्मक सामाजिक अनुसन्धान
- 10.8 परीक्षणात्मक सामाजिक अनुसन्धान
- 10.9 विशुद्ध सामाजिक अनुसन्धान
- 10.10 व्यवहारिक सामाजिक अनुसन्धान
- 10.11 क्रियात्मक सामाजिक अनुसन्धान
- 10.12 मूल्यांकनात्मक सामाजिक अनुसन्धान
- 10.13 सारांश
- 10.14 शब्दावली
- 10.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 10.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 10.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 10.18 निबंधात्मक प्रश्न

10.0 प्रस्तावना

सामाजिक यथार्थ को समझने के लिए समाजशास्त्रीय ज्ञान नितान्त आवश्यक है। समाजशास्त्रीय ज्ञान सामाजिक शोधों से जन्म लेता है तथा निरन्तर चलने वाली शोध प्रक्रियाओं से समृद्ध होता जाता है। सामाजिक संरचनाओं एवं पद्धतियों के अध्ययन के लिए सामाजिक शोध की वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया जाता है। इसमें मनुष्यों के द्वारा, मनुष्यों का अध्ययन किया जाता है, अतः विशेष सावधानी अपेक्षित होती है। इस सन्दर्भ में बार्न्स का उल्लेख करना समीचीन प्रतीत होता है। वह कहता है कि, "सामाजिक शोध का विशिष्ट गुण अनिवार्यतः उस गतिविधि में पाया जाता है, जिसमें मनुष्यों द्वारा स्वयं मनुष्यों का अध्ययन किया जाता है, और इस तरह की गतिविधि के साथ जुड़े नैतिक प्रश्नों का उन्हें सामना करना पड़ता है। ये नैतिक प्रश्न सामाजिक विज्ञानों में अन्तर्निहित, सर्वगत और अपरिहार्य हैं।"

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य आपको सामाजिक शोध/अनुसन्धान के अर्थ, उसके क्षेत्र एवं सार्थकता तथा उद्देश्यों से अवगत कराना है। सामाजिक शोध विविध चरणों से गुजरता है। दूसरे शब्दों में, शोध कार्य को पूर्ण करने के लिए क्रमशः विविध चरणों को पार करना होता है। प्रस्तुत इकाई में सामाजिक शोध के विविध चरणों से भी आपको परिचित कराया जायेगा ताकि आप यह समझ सकें कि वास्तव में सामाजिक शोध क्या होता है और कैसे किया

जाता है। आपकी रुचि सामाजिक शोध में बढ़े और आप एक अच्छे अनुसंधानकर्ता बने इसी आशा के साथ इस इकाई को सरलतम रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

10.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त के उपरान्त आप-

1. सामाजिक शोध के आशय को समझ पायेंगे।
2. शोध के उद्देश्यों, क्षेत्र एवं सार्थकता पर अपनी समझ को बढ़ा पायेंगे।
3. शोध प्रक्रिया के चरणों के संबंध में जान पायेंगे।

10.2 सामाजिक शोध का अर्थ

सामाजिक शोध के अर्थ को समझने के पूर्व हमें शोध के अर्थ को समझना आवश्यक है। मनुष्य स्वभावतः एक जिज्ञाशील प्राणी है। अपनी जिज्ञाशील प्रकृति के कारण वह समाज वह प्रकृति में घटित विभिन्न घटनाओं के सम्बन्ध में विविध प्रश्नों को खड़ा करता है। और स्वयं उन प्रश्नों के उत्तर ढूँढने का प्रयत्न भी करता है। और इसी के साथ प्रारम्भ होती है। सामाजिक अनुसंधान के वैज्ञानिक प्रक्रिया, वस्तुतः अनुसन्धान का उद्देश्य वैज्ञानिक प्रक्रियाओं के प्रयोग द्वारा प्रश्नों के उत्तरों की खोज करना है। स्पष्ट है कि, किसी क्षेत्र विशेष में नवीन ज्ञान की खोज या पुराने ज्ञान का पुनः परीक्षण अथवा दूसरे तरीके से विश्लेषण कर नवीन तथ्यों का उद्घाटन करना शोध कहलाता है। यह एक निरन्तर प्रक्रिया है, जिसमें तार्किकता, योजनाबद्धता एवं क्रमबद्धता पायी जाती है। जब यह शोध सामाजिक क्षेत्र में होता है तो उसे सामाजिक शोध कहा जाता है।

प्राकृतिक एवं जीव विज्ञानों की तरह सामाजिक शोध भी वैज्ञानिक होता है क्योंकि इसमें वैज्ञानिक विधियों की सहायता से निष्कर्षों पर पहुँचा जाता है। वैज्ञानिक विधियों से यहाँ आशय मात्र यह है कि किसी भी सामाजिक शोध को पूर्ण करने के लिए एक तर्कसंगत शोध प्रक्रिया से गुजरना होता है। शोध में वैज्ञानिकता का जहाँ तक प्रश्न है, इस पर भी विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। रीड का मानना है कि, "शोध हमेशा वह नहीं होता जिसे आप 'वैज्ञानिक' कह सकें। शोध कभी-कभी उपयोगी जानकारी एकत्र करने तक सीमित हो सकता है। बहुधा ऐसी जानकारी किसी कार्य विशेष का नियोजन करने और महत्वपूर्ण निर्णयों को लेने हेतु बहुत महत्वपूर्ण होती है। इस प्रकार के शोध कार्य में एकत्र की गयी सामग्री तदन्तर सिद्धान्त निर्माण की ओर ले जा सकती है।"

सामाजिक शोध को और भी स्पष्ट करने के लिए हम कुछ विद्वानों की परिभाषाओं का उल्लेख कर सकते हैं। पी.वी. यंग के अनुसार, "हम सामाजिक अनुसंधान को एक वैज्ञानिक कार्य के रूप में परिभाषित कर सकते हैं, जिसका उद्देश्य तार्किक एवं क्रमबद्ध पद्धतियों के द्वारा नवीन तथ्यों की खोज या पुराने तथ्यों को, और उनके अनुक्रमों, अन्तर्सम्बन्धों, कारणों एवं उनको संचालित करने वाले प्राकृतिक नियमों को खोजना है।"

सी.ए. मोजर ने सामाजिक शोध को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, "सामाजिक घटनाओं एवं समस्याओं के सम्बन्ध में नये ज्ञान की प्राप्ति हेतु व्यवस्थित अन्वेषण को हम सामाजिक शोध कहते हैं।" वास्तव में देखा जाये तो, 'सामाजिक यथार्थता की अन्तर्सम्बन्धित प्रक्रियाओं की व्यवस्थित जाँच तथा विश्लेषण सामाजिक शोध है' (पी.वी. यंग)

स्पष्ट है कि विद्वानों ने सामाजिक शोध को अपनी-अपनी तरह से परिभाषित किया है। उन सभी की परिभाषाओं के आधार पर निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि सामाजिक शोध सामाजिक जीवन के विविध पक्षों का तार्किक एवं व्यवस्थित अध्ययन है, जिसमें कार्य-कारण सम्बन्धों के आधार पर व्याख्या की जाती है। सामाजिक शोध की

प्रासंगिकता तभी है जब किसी निश्चित सैद्धान्तिक एवं अवधारणात्मक संदर्भ संरचना के अन्तर्गत उसे सम्पादित किया जाये। सामाजिक अनुसन्धानकर्ता किसी अध्ययन समस्या से सम्बन्धित दो आधारभूत शोध प्रश्नों को उठाता है- (i) क्या हो रहा है? और (ii) क्यों हो रहा है? अध्ययन समस्या का 'क्या हो रहा है?' प्रश्न का यदि कोई उत्तर खोजता है और उसे देता है तो उसका शोध कार्य विवरणात्मक शोध की श्रेणी में आता है। 'क्यों हो रहा है?' का उत्तर देने के लिए उसे कारणात्मक सम्बन्धों की खोज करनी पड़ती है। इस प्रकार का शोध कार्य व्याख्यात्मक शोध कार्य होता है जो कि सिद्धान्त में परिणत होता है। यह सामाजिक घटनाओं के कारणों पर प्रकाश डालता है तथा विविध परिवर्तों के मध्य सम्बन्ध स्पष्ट करता है।

10.3 सामाजिक शोध का उद्देश्य

सामाजिक शोध का प्राथमिक उद्देश्य चाहे वह तात्कालिक हो या दूरस्थ सामाजिक जीवन को समझना और उस पर अधिक नियंत्रण पाना है। इसका तात्पर्य यह नहीं समझा जाना चाहिए कि सामाजिक शोधकर्ता या समाजशास्त्री कोई समाजसुधारक, नैतिकता का प्रचार-प्रसार करने वाला या तात्कालिक सामाजिक नियोजनकर्ता होता है। बहुसंख्यक लोग समाजशास्त्रियों से जो अपेक्षा रखते हैं, वह वास्तव में समाजशास्त्र के विषय क्षेत्र के बाहर की होती है। इस सन्दर्भ में पी.वी. यंग (1960) ने उचित ही लिखा है कि 'सामाजिक शोधकर्ता न तो व्यावहारिक समस्याओं और न तात्कालिक सामाजिक नियोजन, उपचारात्मक उपाय, या सामाजिक सुधार से संबंधित होता है। वह प्रशासकीय परिवर्तनों और प्रशासकीय प्रक्रियाओं के परिष्करण से संबंधित नहीं होता। वह अपने को जीवन और कार्य, कुशलता और कल्याण के पूर्व स्थापित मापदण्डों द्वारा निर्देशित नहीं करता है और सामाजिक घटनाओं को सुधार की दृष्टि से इन मापदण्डों के परिप्रेक्ष्य में मापता भी नहीं है। सामाजिक शोधकर्ता की मुख्य रुचि सामाजिक प्रक्रियाओं की खोज और विवेचन, व्यवहार के प्रतिमानों, विशिष्ट सामाजिक घटनाओं और सामान्यतः सामाजिक समूहों में लागू होने वाली समानताओं एवं असमानताओं में होती है।

सामाजिक शोध के कुछ अन्य उद्देश्य हैं, पुरातन तथ्यों का सत्यापन करना, नवीन तथ्यों को उद्घाटित करना परिवर्तों-अर्थात् विभिन्न चरों के बीच कार्य-कारण सम्बन्ध ज्ञात करना, ज्ञान का विस्तार करना, सामान्यीकरण करना तथा प्राप्त ज्ञान के आधार पर सिद्धान्त का निर्माण करना है। सामाजिक शोध से प्राप्त सूचनाएँ सामाजिक नीति निर्माण अथवा जीवन के गुणवत्ता में सुधार अथवा सामाजिक समस्याओं के समाधान में सहायक हो सकती हैं। व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाय तो इसे उपयोगितावादी कहा जा सकता है।

गुडे तथा हाट (1952) ने सामाजिक अनुसन्धान को दो भागों- सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक में रखते हुए इसके उद्देश्यों को अलग-अलग स्पष्ट किया है। उनका कहना है कि सैद्धान्तिक सामाजिक अनुसन्धान का मुख्य उद्देश्य नवीन तथ्यों को ज्ञात करना, सिद्धान्त की जाँच करना, अवधारणात्मक स्पष्टीकरण में सहायक होना तथा उपलब्ध सिद्धान्तों को एकीकृत करना है। व्यावहारिक अनुसन्धान का उद्देश्य व्यावहारिक समस्याओं के कारणों को ज्ञात करना और उनके समाधानों का पता लगाना नीतिनिर्धारण हेतु आवश्यक सुधार प्रदान करना होता है।

10.4 सामाजिक शोध के चरण

सामाजिक शोध की प्रकृति वैज्ञानिक होती है। वैज्ञानिक प्रकृति से तात्पर्य यह है कि इसमें समस्या विशेष का अध्ययन एक व्यवस्थित पद्धति के अनुसार किया जाता है। अध्ययन के निष्कर्ष पर इस प्रकार पहुँचा जाता है कि उसके वैषयिकता के स्थान पर वस्तुनिष्ठता होती है। शोध की सम्पूर्ण प्रक्रिया विविध सोपानों से गुजरती है। इन्हें सामाजिक शोध के चरण भी कहा जाता है। एक चरण से दूसरे चरण में प्रवेश करते हुए अध्ययन को आगे बढ़ाया

जाता है। सामाजिक शोध में कितने चरण होते हैं, इसमें विद्वानों में एकमत नहीं है। इसी तरह, शोध में चरणों का नामकरण भी विद्वानों ने अलग-अलग तरह से किया है। शोध के बीच के कुछ चरण आगे-पीछे हो सकते हैं, उससे शोध की वैज्ञानिकता पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता है। हम यहाँ पहले कुछ विद्वानों द्वारा बताये शोध के चरणों का उल्लेख करेंगे, तत्पश्चात् सामाजिक शोध के महत्वपूर्ण चरणों की संक्षिप्त विवेचना करेंगे।

स्लूटर (1926) ने सामाजिक शोध के पन्द्रह चरणों का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार हैं-

1. शोध विषय का चुनाव।
2. शोध समस्या को समझने के लिए क्षेत्र सर्वेक्षण।
3. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची का निर्माण।
4. समस्या को परिभाषित या निर्मित करना।
5. समस्या के तत्वों का विभेदीकरण और रूपरेखा निर्माण।
6. आँकड़ों या प्रमाणों से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सम्बन्धों के आधार पर समस्या के तत्वों का वर्गीकरण।
7. समस्या के तत्वों के आधार पर आँकड़ों या प्रमाणों का निर्धारण।
8. वांछित आँकड़ों या प्रमाणों की उपलब्धता का अनुमान लगाना।
9. समस्या के समाधान की जाँच करना।
10. आँकड़ों तथा सूचनाओं का संकलन।
11. आँकड़ों को विश्लेषण के लिए व्यवस्थित एवं नियमित करना।
12. आँकड़ों एवं प्रमाणों का विश्लेषण एवं विवेचना।
13. प्रस्तुतीकरण के लिए आँकड़ों को व्यवस्थित करना।
14. उद्धरणों, सन्दर्भों एवं पाद टिप्पणियों का चयन एवं प्रयोग।
15. शोध प्रस्तुतीकरण के स्वरूप और शैली को विकसित करना।

इग्नू (इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय) की पाठ्यपुस्तक (MSO 002 शोध पद्धतियाँ और विधियाँ, 2006, पृ. 32) में सामाजिक शोध के चरणों को निम्नवत् प्रस्तुत किया गया है।

- शोध समस्या को परिभाषित करना।
- शोध विषय पर प्रकाशित सामग्री की समीक्षा करना।
- अध्ययन के व्यापक दायरे और इकाई को तय करना।
- प्राकल्पना का सूत्रीकरण और परिवर्तियों को बताना।
- शोध विधियों और तकनीकों का चयन।
- शोध का मानकीकरण
- मार्गदर्शी अध्ययन/सांख्यिकीय व अन्य विधियों का प्रयोग
- शोध सामग्री इकट्ठा करना।
- सामग्री का विश्लेषण करना
- व्याख्या करना और रिपोर्ट लिखना

राम आहूजा (2003) ने मात्र छः चरणों का उल्लेख किया है, जो कि निम्नवत् हैं-

1. अध्ययन समस्या का निर्धारण।
2. शोध प्रारूप तय करना।
3. निदर्शन की योजना बनाना (सम्भाव्यता या असम्भाव्यता अथवा दोनों)
4. आँकड़ा संकलन
5. आँकड़ा विश्लेषण (सम्पादन, संकेतन, प्रक्रियाकरण एवं सारणीयन)।
6. प्रतिवेदन तैयार करना।

सी. आर. कोठारी (2005:12) ने शोध प्रक्रिया के ग्यारह चरणों का उल्लेख किया है, जो निम्नवत् हैं-

1. शोध समस्या का निर्माण।
2. गहन साहित्य सर्वेक्षण
3. उपकल्पना का निर्माण
4. शोध प्रारूप निर्माण
5. निदर्शन प्रारूप निर्धारण
6. आँकड़ा संकलन
7. प्रोजेक्ट का सम्पादन
8. आँकड़ों का विश्लेषण
9. उपकल्पनाओं का परीक्षण।
10. सामान्यीकरण और विवेचन, और
11. रिपोर्ट तैयार करना या परिणामों का प्रस्तुतीकरण यानि निष्कर्षों का औपचारिक लेखन।

शोध के उपरोक्त विविध चरणों को हम निम्नांकित रूप से सीमित कर सामाजिक शोध क्रमशः कर सकते हैं-

प्रथम चरण- शोध प्रक्रिया में सबसे पहला चरण समस्या का चुनाव या शोध विषय का निर्धारण होता है। यदि आपको किसी विषय पर शोध करना है तो स्वाभाविक है कि सर्वप्रथम आप यह तय करेंगे कि किस विषय पर कार्य किया जाये। विषय का निर्धारण करना तथा उसके सैद्धान्तिक एवं अवधारणात्मक पक्ष को स्पष्ट करना शोध का प्रथम चरण होता है। शोध विषय का चयन सरल कार्य नहीं होता है, इसलिए ऐसे विषय को चुना जाना चाहिए जो आपके समय और साधन की सीमा के अन्तर्गत हो तथा विषय न केवल आपकी रुचि का हो अपितु समसामयिक हो। इस तरह आपके द्वारा चयनित एक सामान्य विषय वैज्ञानिक खोज के लिए आपके द्वारा विशिष्ट शोध समस्या के रूप में निर्मित कर दिया जाता है। शोध विषय के निर्धारण और उसके प्रतिपादन की दो अवस्थाएँ होती हैं- प्रथमतः तो शोध समस्या को गहन एवं व्यापक रूप से समझना तथा द्वितीय उसे विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से प्रकारान्तर में अर्थपूर्ण शब्दों में प्रस्तुत करना।

अक्सर शोध छात्रों द्वारा यह प्रश्न किया जाता है कि किस विषय पर शोध करें। इसी तरह अक्सर शोध छात्रों से यह प्रश्न किया जाता है कि आपने चयनित विषय क्यों लिया। दोनों ही स्थितियों से यह स्पष्ट है कि शोध के विषय या अध्ययन समस्या का चुनाव महत्वपूर्ण चरण है, जिसका स्पष्टीकरण जरूरी है, लेकिन अक्सर ऐसा होता नहीं है। अनेकों शोध छात्र अपने शोध विषय के चयन का स्पष्टीकरण समुचित तरीके से नहीं दे पाते हैं। विद्वानों ने अपने शोध विषय के चयन के तर्कों पर काफी कुछ लिखा है। हम यहाँ उनके तर्कों को प्रस्तुत नहीं करेंगे अपितु मात्र बनार्ड (1994) के उस सुझाव का उल्लेख करना चाहेंगे जिसमें उसने शोधकर्ताओं को यह सुझाव दिया है कि वे स्वयं से निम्नांकित प्रश्न पूछें-

- (i) क्या आपको अपने शोध का विषय रूचिकर लगता है?

- (ii) क्या आपके शोध विषय का वैज्ञानिक अध्ययन सम्भव है?
- (iii) क्या आपके पास शोध कार्य को सम्पादित करने के लिए पर्याप्त संसाधन है?
- (iv) क्या शोध प्रश्नों को पूछने अथवा शोध की कुछ विधियों एवं तकनीकों के प्रयोग से आपके समक्ष किसी प्रकार की नीतिगत अथवा नैतिक समस्या तो नहीं आयेगी?
- (v) क्या आपके शोध का विषय सैद्धान्तिक रूप से महत्वपूर्ण और रोचक है?

निश्चित रूप से उपरोक्त प्रश्नों पर तार्किक तरीके से विचार करने पर उत्तम शोध समस्या का चयन सम्भव हो सकेगा।

द्वितीय चरण- यह तय हो जाने के पश्चात् कि किस विषय पर शोध कार्य किया जायेगा, विषय से सम्बन्धित साहित्यों (अन्य शोध कार्यों) का सर्वेक्षण (अध्ययन) किया जाता है। इससे तात्पर्य यह है कि चयनित विषय से सम्बन्धित समस्त लिखित या अलिखित, प्रकाशित या अप्रकाशित सामग्री का गहन अध्ययन किया जाता है, ताकि चयनित विषय के सभी पक्षों की जानकारी प्राप्त हो सके। चयनित विषय से सम्बन्धित सैद्धान्तिक एवं अवधारणात्मक साहित्य तथा आनुभविक साहित्य का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है। इस पर ही शोध की समस्या का वैज्ञानिक एवं तार्किक प्रस्तुतीकरण निर्भर करता है। कभी-कभी यह प्रश्न उठता है कि सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण शोध की समस्या के चयन के पूर्व होना चाहिए कि पश्चात्। ऐसा कहा जाता है कि, 'शोध समस्या को विद्यमान साहित्य के प्रारम्भिक अध्ययन से पूर्व ही चुन लेना बेहतर रहता है।' (इगु 2006 : पृ. 33) यहाँ यह भी प्रश्न उठ सकता है कि बिना विषय के बारे में कुछ पढ़े कोई कैसे अध्ययन समस्या का निर्धारण कर सकता है? विशेषकर तब जब आप यह अपेक्षा रखते हैं कि शोधकर्ता शोध के प्रथम चरण में ही अध्ययन की समस्या को निर्धारित निर्मित, एवं परिभाषित करे तथा उसके शोध प्रश्नों एवं उद्देश्यों को अभिव्यक्त करे। समस्या का चयन एवं उसका निर्धारण शोधकर्ता के व्यापक ज्ञान के आधार पर हो सकता है। तत्पश्चात् उसे उक्त विषय से सम्बन्धित सैद्धान्तिक एवं अवधारणात्मक तथा विविध विद्वानों द्वारा किये गये आनुभविक अध्ययनों से सम्बन्धित सामग्री का अध्ययन करना चाहिए। ऐसा करने से उसे यह स्पष्ट हो जाता है कि सम्बन्धित विषय पर किन-किन दृष्टियों से, किन-किन विद्वानों ने विचार किया है और विविध अध्ययनों के उद्देश्य, उपकल्पनाएं, कार्यविधिकी क्या-क्या रही है। साथ ही साथ विविध विद्वानों के क्या निष्कर्ष रहे हैं। इतना ही नहीं उन विद्वानों द्वारा झेली गयी समस्याओं या उसके द्वारा भविष्य के अध्ययन किये जाने वाले सुझाये विषयों की भी जानकारी प्राप्त हो जाती है। ये समस्त ज्ञान एवं जानकारीयाँ किसी भी शोधकर्ता के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होती हैं।

तृतीय चरण- सम्बन्धित समस्त सामग्रियों के अध्ययनों के उपरान्त शोधकर्ता अपने शोध के उद्देश्यों को स्पष्ट अभिव्यक्त करता है कि उसके शोध के वास्तविक उद्देश्य क्या-क्या हैं। शोध के स्पष्ट उद्देश्यों का होना किसी भी शोध की सफलता एवं गुणवत्तापूर्ण प्रस्तुतीकरण के लिए आवश्यक है। उद्देश्यों की स्पष्टता अनिवार्य है। उद्देश्यों के आधार पर ही आगे कि प्रक्रिया निर्भर करती है, जैसे कि तथ्य संकलन की प्रविधि का चयन और उस प्रविधि द्वारा उद्देश्यों के ही अनुरूप तथ्यों के संकलन की रणनीति या प्रश्नों का निर्धारण। यह कहना उचित ही है कि, 'जब तक आपके पास शोध के उद्देश्यों का स्पष्ट अनुमान न होगा, शोध नहीं होगा और एकत्रित सामग्री में वांछित सुसंगति नहीं आएगी क्योंकि यह सम्भव है कि आपने विषय को देखा हो जिस स्थिति में हर परिप्रेक्ष्य भिन्न मुद्दों से जुड़ा होता है। उदाहरण के लिए, विकास पर समाजशास्त्रीय अध्ययन में अनेक शोध प्रश्न हो सकते हैं, जैसे विकास में महिलाओं की भूमिका, विकास में जाति एवं नातेदारी की भूमिका अथवा पारिवारिक एवं सामुदायिक जीवन पर विकास के समाजिक परिणाम।' (इगु 2006 : 33-34) है।

चतुर्थ चरण- शोध के उद्देश्यों के निर्धारण के पश्चात् अध्ययन की उपकल्पनाओं या प्राक्कल्पनाओं को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने की जरूरत है। यह उल्लेखनीय है कि सभी प्रकार के शोध कार्यों में उपकल्पनाएँ निर्मित नहीं की

जाती हैं, विशेषकर ऐसे शोध कार्यों में जिसमें विषय से सम्बन्धित पूर्व जानकारीयाँ सप्रमाण उपलब्ध नहीं होती हैं। अतः यदि हमारा शोध कार्य अन्वेषणात्मक है तो हमें वहाँ उपकल्पनाओं के स्थान पर शोध प्रश्नों को रखना चाहिए। इस दृष्टि से यदि देखा जाये तो स्पष्ट होता है कि उपकल्पनाओं का निर्माण हमेशा ही शोध प्रक्रिया का एक चरण नहीं होता है उसके स्थान पर शोध प्रश्नों का निर्माण उस चरण के अन्तर्गत आता है।

उपकल्पना या प्राक्कल्पना से तात्पर्य क्या हैं? और इसकी शोध में क्या आवश्यकता है? इत्यादि प्रश्नों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। लुण्डबर्ग (1951) के अनुसार, "उपकल्पना एक सम्भावित सामान्यीकरण होता है, जिसकी वैद्यता की जाँच की जानी होती है। अपने प्रारम्भिक स्तरों पर उपकल्पना कोई भी अटकलपच्चू, अनुमान, काल्पनिक विचार या सहज ज्ञान या और कुछ हो सकता है जो क्रिया या अन्वेषण का आधार बनता है।" गुड तथा स्केट्स (1954) के अनुसार, "एक उपकल्पना बुद्धिमत्तापूर्ण कल्पना या निष्कर्ष होती है जो अवलोकित तथ्यों या दशाओं को विश्लेषित करने के लिए निर्मित और अस्थायी रूप से अपनायी जाती है।" गुडे तथा हॉट (1952;56) के शब्दों में कहा जाये तो, "यह (उपकल्पना) एक मान्यता है जिसकी वैद्यता निर्धारित करने के लिए उसकी जाँच की जा सकती है।"

सरल एवं स्पष्ट शब्दों में कहा जाये तो, उपकल्पना शोध विषय के अन्तर्गत आने वाले विविध उद्देश्यों से सम्बन्धित एक काम चलाऊ अनुमान या निष्कर्ष है, जिसकी सत्यता की परीक्षा प्राप्त तथ्यों के आधार पर की जाती है। विषय से सम्बन्धित साहित्यों के अध्ययन के पश्चात् जब उत्तरदाता अपने अध्ययन विषय को पूर्णतः जान जाता है तो उसके मन में कुछ सम्भावित निष्कर्ष आने लगते हैं और वह अनुमान लगाता है कि अध्ययन में विविध मुद्दों के सन्दर्भ में प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण के उपरान्त इस इस प्रकार के निष्कर्ष आएंगे। ये सम्भावित निष्कर्ष ही उपकल्पनाएँ होती हैं। वास्तविक तथ्यों के विश्लेषण के उपरान्त कभी-कभी ये गलत साबित होती हैं और कभी-कभी सही। उपकल्पनाओं का सत्य प्रमाणिक होना या असत्य सिद्ध हो जाना विशेष महत्व का नहीं होता है। इसलिए शोधकर्ता को अपनी उपकल्पनाओं के प्रति लगाव या मिथ्या झुकाव नहीं होना चाहिए अर्थात् उसे कभी भी ऐसा प्रयास नहीं करना चाहिए जिससे कि उसकी उपकल्पना सत्य प्रमाणित हो जाये। जो कुछ भी प्राथमिक तथ्यों से निष्कर्ष प्राप्त हों उसे ही हर हालात में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। वैज्ञानिकता के लिए वस्तुनिष्ठता प्रथम शर्त है इसे ध्यान में रखते हुए ही शोधकर्ता को शोध कार्य सम्पादित करना चाहिए। उपकल्पना शोधकर्ता को विषय से भटकने से बचाती है। इस तरह एक उपकल्पना का इस्तेमाल दृष्टिहीन खोज से रक्षा करता है (यंग 1960; 99)। उपकल्पना या प्राक्कल्पना स्पष्ट एवं सटीक होनी चाहिए। वह ऐसी होनी चाहिए जिसका प्राप्त तथ्यों से निर्धारित अवधि में अनुभवजन्य परीक्षण सम्भव हो। यह हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि एक उपकल्पना और एक सामान्य कथन में अन्तर होता है। इस रूप में यदि देखा जाय तो कहा जा सकता है कि उपकल्पना में दो परिवर्तों में से किसी एक के निष्कर्षों को सम्भावित तथ्य में रूप में प्रस्तुत किया जाता है। उपकल्पना परिवर्तों के बीच सम्बन्धों के स्वरूप को अभिव्यक्त करती है। सकारात्मक, नकारात्मक और शून्य, ये तीन सम्बन्ध परिवर्तों के मध्य माने जाते हैं। उपकल्पना परिवर्त्या के सम्बन्धों को उद्धाटित करती है। उपकल्पना जो कि फलदायी अन्वेषण का अस्थायी केन्द्रीय विचार होती है (यंग 1960;96), के निर्माण के चार स्रोतों का गुडे तथा हाट (1952; 63-67) ने उल्लेख किया है-

- (i) सामान्य संस्कृति
- (ii) वैज्ञानिक सिद्धान्त
- (iii) सादृश्य (Anology)

- (iv) व्यक्तिगत अनुभव। इन्हीं चार स्रोतों से उपकल्पनाओं का उद्गम होता है। उपकल्पनाओं के बिना शोध अनिर्दिष्ट (unfocused), एक दैव आनुभविक भटकाव होता है। उपकल्पना शोध में जितनी सहायक है, उतनी ही हानिकारक भी हो सकती है। इसलिए अपनी उपकल्पना पर जरूरत से ज्यादा विश्वास रखना या उसके प्रति पूर्वाग्रह रखना, उसे प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाना कदापि उचित नहीं है। ऐसा यदि शोधकर्ता करता है, तो उसके शोध में वैषयिकता समा जायेगी और वैज्ञानिकता का अन्त हो जायेगा।

पंचम चरण- समग्र एवं निदर्शन निर्धारण शोध कार्य का पाँचवा चरण होता है। समग्र का तात्पर्य उन सबसे है, जिन पर शोध आधारित है या जिन पर शोध किया जा रहा है। उदाहरण के लिए यदि हम किसी विश्वविद्यालय के छात्रों से सम्बन्धित किसी पक्ष पर शोध कार्य करने जा रहे हैं, तो उस विश्वविद्यालय के समस्त छात्र अध्ययन का समग्र होंगे। इसी तरह यदि हम सामाजिक-आर्थिक विकासों का ग्रामीण महिलाओं पर प्रभाव का अध्ययन कर रहे हैं, तो चयनित ग्राम या ग्रामों की समस्त महिलाएँ अध्ययन समग्र होंगी। चूँकि किसी भी शोध कार्य में समय और साधनों की सीमा होती है और बहुत बड़े और लम्बी अवधि के शोध कार्य में सामाजिक तथ्यों के कभी-कभी नष्ट होने का भय भी रहता है, इसलिए सामान्यतः छोटे स्तर (माइक्रो) के शोध कार्य को वरीयता दी जाती है। इस तथाकथित छोटे या लघु अध्ययन में भी सभी इकाईयों का अध्ययन सम्भव नहीं हो पाता है, इसलिए कुछ प्रतिनिधित्वपूर्ण इकाईयों का चयन वैज्ञानिक आधार पर कर लिया जाता है। इसी चुनी हुई इकाईयों को निदर्शन कहते हैं। सम्पूर्ण अध्ययन इन्हीं निदर्शित इकाईयों से प्राप्त तथ्यों पर आधारित होता है, जो सम्पूर्ण समग्र पर लागू होता है। यंग (1960; 302) के शब्दों में कहा जाये तो कह सकते हैं कि, "एक सांख्यिकीय निदर्शन उस सम्पूर्ण समूह अथवा योग का एक अतिलघु चित्र या 'क्रास सेक्शन' है, जिससे निदर्शन लिया गया है।" समग्र का निर्धारण ही यह तय कर देता है कि आनुभविक अध्ययन किन पर होगा। इसी स्तर पर न केवल अध्ययन इकाईयों का निर्धारण होता है, अपितु भौगोलिक क्षेत्र का भी निर्धारण होता है। और भी सरलतम रूप में कहा जाये तो इस स्तर में यह तय हो जाता है कि अध्ययन कहाँ (क्षेत्र) और किन पर (समग्र) होगा, साथ ही कितनों (निदर्शन) पर होगा। उल्लेखनीय है कि अक्सर निदर्शन की आवश्यकता पड़ ही जाती है। ऐसी स्थिति में नमूने के तौर पर कुछ इकाईयों का चयन कर उनका अध्ययन कर लिया जाता है। ऐसे 'नमूने' हम दैनिक जीवन में भी प्रायः प्रयोग में लाते हैं। उदाहरण के लिए चावल खरीदने के लिए पूरे बोरे के चावलों को उलट-पलट कर नहीं देखा जाता है, अपितु कुछ ही चावल के दानों के आधार पर सम्पूर्ण बोरे के चावलों की गुणवत्ता को परख लिया जाता है। इसी तरह भगोने या कुकर में चावल पका है कि नहीं को ज्ञात करने के लिए कुकर के कुछ ही चावलों को उंगलियों मसलकर चावल के पकने या न पकने का निष्कर्ष निकाल लिया जाता है। इस तरह यह स्पष्ट है कि ये जो 'कुछ ही चावल' सम्पूर्ण चावल का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, यानि जिनके आधार पर हम उसकी गुणवत्ता या पकने का निष्कर्ष निकाल रहे हैं, निदर्शन (सैम्पल) ही है। गुडे और हाट (1952; 209) का कहना है कि, "एक निदर्शन, जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, किसी विशाल सम्पूर्ण का लघु प्रतिनिधि है।" निदर्शन की मोटे तौर पर दो पद्धतियाँ मानी जाती हैं- एक को सम्भावनात्मक निदर्शन कहते हैं, और दूसरी को असम्भावनात्मक या सम्भावना-रहित निदर्शन। इन दोनों पद्धतियों के अन्तर्गत निदर्शन के अनेकों प्रकार प्रचलन में हैं। निदर्शन की जिस किसी भी पद्धति अथवा प्रकार का चयन किया जाये, उसमें विशेष सावधानी अपेक्षित होती है, ताकि उचित निदर्शन प्राप्त हो सके। कभी-कभी निदर्शन की जरूरत नहीं पड़ती है। इसका मुख्य कारण समग्र का छोटा होना हो सकता है, या अन्य कारण भी हो सकते हैं जैसे सम्बन्धित समग्र या इकाई का आँकड़ा अनुपलब्ध हो, उसके बारे में कुछ पता न हो इत्यादि। ऐसी परिस्थिति में सम्पूर्ण समग्र का अध्ययन किया जाता है। ऐसा ही जनगणना कार्य में भी किया जाता है, इसीलिये इस

विधि को 'जनगणना' या 'संगणना' विधि कहा जाता है, और इसमें समस्त इकाईयों का अध्ययन किया जाता है। इस तरह यह स्पष्ट है कि, सामाजिक शोध में हमेशा निदर्शन लिया ही जायेगा यह जरूरी नहीं होता है, कभी-कभी बिना निदर्शन प्राप्त किये ही 'संगणना विधि' द्वारा भी अध्ययन इकाईयों से प्राथमिक तथ्य संकलित कर लिये जाते हैं।

छठा चरण- प्राथमिक तथ्य संकलन का वास्तविक कार्य तब प्रारम्भ होता है, जब हम तथ्य संकलन की तकनीक/उपकरण, विधि इत्यादि निर्धारित कर लेते हैं। उपयुक्त और यथेष्ट तथ्य संकलन तभी संभव है जब हम अपने शोध की आवश्यकता, उत्तरदाताओं की विशेषता तथा उपयुक्त तकनीक एवं प्रविधियों, उपकरणों/मापकों इत्यादि का चयन करें। प्राथमिक तथ्य संकलन उत्तरदाताओं से सर्वेक्षण के आधार पर और प्रयोगात्मक पद्धति से हो सकता है। प्राथमिक तथ्य संकलन की अनेकों तकनीकें/उपकरण प्रचलन में हैं, जिनके प्रयोग द्वारा उत्तरदाताओं से सूचनाएँ एवं तथ्य प्राप्त किये जाते हैं। ये उपकरण या तकनीकें मौखिक अथवा लिखित हो सकती हैं, और इनके प्रयोग किये जाने के तरीके अलग-अलग होते हैं। शोध की गुणवत्ता इन्हीं तकनीकों तथा इन तकनीकों के उचित तरीके से प्रयोग किये जाने पर निर्भर करती है। उपकरणों या तकनीकों की अपनी-अपनी विशेषताएँ एवं सीमाएँ होती हैं। शोधकर्ता शोध विषय की प्रकृति, उद्देश्यों, संसाधनों की उपलब्धता (धन और समय) तथा अन्य विचारणीय पक्षों पर व्यापक रूप से सोच-समझकर इनमें से किसी एक तकनीक (तथ्य एकत्र करने का तरीका) का सामान्यतः प्रयोग करता है। कुछ प्रमुख उपकरण या तकनीकें इस प्रकार हैं- प्रश्नावली, साक्षात्कार, साक्षात्कार अनुसूची, साक्षात्कार-मार्गदर्शिका (इंटरव्यू गाइड) इत्यादि। विधि से तात्पर्य सामग्री विश्लेषण के साधनों से है। प्रायः तकनीक/उपकरण और विधियों को परिभाषित करने में भ्रामक स्थिति बनी रहती है। स्पष्टता के लिये यहाँ उल्लेखनीय है कि विधि उपकरणों या तकनीकों से अलग किन्तु अन्तर्सम्बद्ध वह तरीका है जिसके द्वारा हम एकत्रित सामग्री की व्याख्या करने के लिये सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्यों का प्रयोग करते हैं। शोध कार्य में प्रक्रियात्मक नियमों के साथ विभिन्न तकनीकों के सम्मिलन से शोध की विधि बनती है। इसके अन्तर्गत अवलोकन, केस-स्टडी, जीवन-वृत्त इत्यादि शोध की विधियाँ उल्लेखनीय हैं।

सप्तम चरण- प्राथमिक तथ्य संकलन शोध का अगला चरण होता है। शोध के लिये प्राथमिक तथ्य संकलन हेतु जब उपकरणों एवं प्रविधियों का निर्धारण हो जाता है, और उन उपकरणों एवं तकनीकों का अध्ययन के उद्देश्यों के अनुरूप निर्माण हो जाता है, तो उसके पश्चात् क्षेत्र में जाकर वास्तविक तथ्य संकलन का अति महत्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ होता है। कभी-कभी उपकरणों या तकनीकों की उपयुक्तता जाँचने के लिये और उसके द्वारा तथ्य संकलन का कार्य प्रारम्भ करने के पहले पूर्व-अध्ययन (पायलट स्टडी) द्वारा उनका पूर्व परीक्षण किया जाता है। यदि कोई प्रश्न अनुपयुक्त पाया जाता है या कोई प्रश्न संलग्न करना होता है या और कुछ संशोधन की आवश्यकता पड़ती है तो उपकरण में आवश्यक संशोधन कर मुख्य तथ्य संकलन का कार्य प्रारम्भ कर दिया जाता है। सामान्यतः समाजशास्त्रीय शोध में प्राथमिक तथ्य संकलन को अति सरल एवं सामान्य कार्य मानने की भूल की जाती है। वास्तविकता यह है कि यह एक अत्यन्त दुरुह एवं महत्वपूर्ण कार्य होता है, तथा शोधकर्ता की पर्याप्त कुशलता ही वांछित तथ्यों को प्राप्त करने में सफल हो सकती है। शोधकर्ता को यह प्रयास करना चाहिए कि उसका कार्य व्यवस्थित तरीके से निश्चित समयावधि में पूर्ण हो जाये। उल्लेखनीय है कि कभी-कभी उत्तरदाताओं से सम्पर्क करने की विकट समस्या उत्पन्न होती है और अक्सर उत्तरदाता सहयोग करने को तैयार भी नहीं होते हैं। ऐसी परिस्थिति में पर्याप्त सुझ-बुझ तथा परिपक्वता की आवश्यकता पड़ती है। उत्तरदाताओं को विषय की गंभीरता को तथा उनके सहयोग के महत्व को समझाने की जरूरत पड़ती है। उत्तरदाताओं से झूठे वादे नहीं करने चाहिए, और न उन्हें किसी प्रकार का प्रलोभन देना चाहिए। उत्तरदाताओं की सहूलियत के अनुसार ही उनसे सम्पर्क करने की नीति

को अपनाना उचित होता है। यथासंभव घनिष्ठता बढ़ाने के लिये (संदेह दूर करने एवं सहयोग प्राप्त करने के लिये) प्रयास करना चाहिए। तथ्य संकलन अनौपचारिक माहौल में बेहतर होता है। कोशिश यह करनी चाहिए कि उस स्थान विशेष के किसी ऐसे प्रभावशाली, लोकप्रिय, समाजसेवी व्यक्ति का सहयोग प्राप्त हो जाये जिसकी सहायता से उत्तरदाताओं से न केवल सम्पर्क आसानी से हो जाता है। अपितु उनसे वांछित सूचनाएँ भी सही-सही प्राप्त हो जाती हैं। यदि तथ्य संकलन का कार्य अवलोकन द्वारा या साक्षात्कार-अनुसूची, साक्षात्कार इत्यादि द्वारा हो रहा हो, तब तो क्षेत्र विशेष में जाने तथा उत्तरदाताओं से आमने-सामने की स्थिति में प्राथमिक सूचनाओं को प्राप्त करने की जरूरत पड़ती है। अन्यथा यदि प्रश्नावली का प्रयोग होना है, तो शोधकर्ता को सामान्यतः क्षेत्र में जाने की जरूरत नहीं पड़ती है। प्रश्नावली को डाक द्वारा और आजकल तो ई-मेल के द्वारा इस अनुरोध के साथ उत्तरदाताओं को प्रेषित कर दिया जाता है कि वे यथाशीघ्र (या निर्धारित समयाविधि में) पूर्ण रूप से भरकर उसे वापस शोधकर्ता को भेज दें।

यदि शोध कार्य में कई क्षेत्र-अन्वेषक कार्यरत हों, तो वैसी स्थिति में उनको समुचित प्रशिक्षण तथा तथ्य संकलन के दौरान उनकी पर्याप्त निगरानी की आवश्यकता पड़ती है। प्रायः अन्वेषक प्राथमिक तथ्यों की महत्ता को समझ नहीं पाते हैं, इसलिये वे वास्तविक तथ्यों को प्राप्त करने में विशेष प्रयास और रुचि नहीं लेते हैं। अक्सर तो वे मनगढ़न्त अनुसूची को भर भी देते हैं। इससे सम्पूर्ण शोधकार्य की गुणवत्ता प्रभावित न हो जाये, इसके लिये विशेष सावधानी तथा रणनीति आवश्यक है ताकि सभी अन्वेषक पूर्ण निष्ठा एवं ईमानदारी के साथ प्राथमिक तथ्यों का संकलन करें। तथ्य संकलन के दौरान आवश्यक उपकरणों जैसे टेपरिकॉर्डर, वॉयस रिकॉर्डर, कैमरा, विडियो कैमरा इत्यादि का भी प्रयोग किया जा सकता है। इनके प्रयोग के पूर्व उत्तरदाता की सहमति जरूरी है। प्राथमिक तथ्यों को संकलित करने के साथ ही साथ एकत्रित सूचनाओं की जाँच एवं आवश्यक सम्पादन भी करते जाना चाहिए। भूलवश छूटे हुए प्रश्नों, अपूर्ण उत्तरों इत्यादि को यथासमय ठिक करवा लेना चाहिए। कोई नयी महत्वपूर्ण सूचना मिले तो उसे अवश्य नोट कर लेना चाहिए।

तथ्यों का दूसरा स्रोत है द्वितीयक स्रोत, द्वितीयक स्रोत तथ्य संकलन के वे स्रोत होते हैं, जिनका विश्लेषण एवं निर्वचन दूसरे के द्वारा हो चुका होता है। अध्ययन की समस्या के निर्धारण के समय से ही द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त तथ्यों का प्रयोग प्रारम्भ हो जाता है और रिपोर्ट लेखन के समय तक स्थान-स्थान पर इनका प्रयोग होता रहता है।

अष्टम चरण- आठवाँ चरण वर्गीकरण, सारणीयन एवं विश्लेषण अथवा रिपोर्ट लेखन का होता है। विविध उपकरणों या तकनीकों एवं प्रविधियों के माध्यम से एकत्रित समस्त गुणात्मक सामग्री को गणनात्मक रूप देने के लिये विविध वर्गों में रखा जाता है, आवश्यकतानुसार सम्पादित किया जाता है, तत्पश्चात् सारिणी में गणनात्मक स्वरूप (प्रतिशत सहित) देकर विश्लेषित किया जाता है। कुछ वर्षों पूर्व तक सम्पूर्ण एकत्रित सामग्री को अपने हाथों से बड़ी-बड़ी कागज की शीटों पर कोडिंग करके उतारा जाता था तथा स्वयं शोधकर्ता एक-एक केस/अनुसूची से सम्बन्धित तथ्य की गणना करते हुए सारणी बनाता था। आज कम्प्यूटर का शोध कार्य में व्यापक रूप से प्रचलन हो गया है। समाजवैज्ञानिक शोधों में कम्प्यूटर के विशेष सॉफ्टवेयर उपलब्ध हैं, जिनकी सहायता से सभी प्रकार की सारणियाँ (सरल एवं जटिल) शीघ्रातिशीघ्र बनायी जाती हैं।

एस.पी.एस.एस. (स्टैटिस्टिकल पैकेज फॉर सोशल साइंसेज) एक ऐसा ही प्रोग्राम है, जिसका प्रचलन तेजी से बढ़ा है। समाज वैज्ञानिक शोधों में एस.पी.एस.एस. द्वारा सारणियाँ बनायी जा रही हैं। विविध परिवर्त्यों में सह-सम्बन्ध तथा सांख्यिकीय परीक्षण इसके द्वारा अत्यन्त सरल हो गया है।

सारणियों के निर्मित हो जाने के पश्चात् उनका तार्किक विश्लेषण किया जाता है। तथ्यों में कार्य-कारण सम्बन्ध तथा सह-सम्बन्ध देखे जाते हैं। इसी चरण में उपकल्पनाओं की सत्यता की परीक्षा भी की जाती है। सैद्धान्तिक एवं

अवधारणात्मक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए समस्त शोध सामग्री को व्यवस्थित एवं तार्किक तरीके से विविध अध्यायों में रखकर विश्लेषित करते हुए शोध रिपोर्ट तैयार की जाती है। अध्ययन के अन्त में परिशिष्ट के अन्तर्गत सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची तथा प्राथमिक तथ्य संकलन की प्रयुक्त की गयी तकनीक (अनुसूची या प्रश्नावली या स्केल इत्यादि) को संलग्न किया जाता है। सम्पूर्ण रिपोर्ट/प्रतिवेदन में स्थान-स्थान पर विषय की आवश्यकता के अनुसार फोटोग्राफ, डाइग्राम, ग्राफ, नक्शे, स्केल इत्यादि रखे जाते हैं।

उपरोक्त रिपोर्ट लेखन के सन्दर्भ में ही उल्लेखनीय है कि, शोध रिपोर्ट या प्रतिवेदन का जो कुछ भी उद्देश्य हो, उसे यथासंभव स्पष्ट होना चाहिए (मेटा स्पेन्सर, 1979; 47)। सेलिट्ज तथा अन्य (1959;443) का कहना है कि, रिपोर्ट में शोधकर्ता को निम्नांकित बातें स्पष्ट करनी चाहिए-

1. समस्या की व्याख्या करें जिसे अध्ययनकर्ता सुलझाने की कोशिश कर रहा है।
2. शोध प्रक्रिया की विवेचना करें, जैसे निदर्शन कैसे लिया गया और तथ्यों के कौन से स्रोत प्रयोग किये गये हैं।
3. परिणामों की व्याख्या करें।
4. निष्कर्षों को सुझाएँ जो कि परिणामों पर आधारित हों। साथ ही ऐसे किसी भी प्रश्न का उल्लेख करें जो अनुत्तरित रह गया हो और जो उसी क्षेत्र में और अधिक शोध की मांग कर रहा हो।

गेराल्ड आर. लेस्ली तथा अन्य (1994;35) का कहना है कि, "समाजशास्त्रीय शोधों में विश्लेषण और व्याख्या अक्सर सांख्यिकीय नहीं होती। इसमें साहित्य और तार्किकता की आवश्यकता होती है। यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान अति क्लिष्ट सांख्यिकीय पद्धति का भी प्रयोग करने लगे हैं। प्रत्येक समाजशास्त्री समस्या के सर्वाधिक उपयुक्त तरीकों जो सर्वाधिक ज्ञान एवं समझ पैदा करने वाला होता है, के अनुरूप शोध और तथ्य संकलन तथा विश्लेषण को अपनाता है। उपागमों का प्रकार केवल अन्य समाजशास्त्रियों के शोध को स्वीकार करने तथा यह विश्वास करने के लिये कि यह क्षेत्र में योगदान देगा कि इच्छा के कारण सीमित होता है।"

अन्त में यह कहा जा सकता है कि, यद्यपि सभी शोधकर्ता समाजशास्त्रीय पद्धति के इन्हीं चरणों से गुजरते हैं तथापि कई चरणों को दूसरी तरीके से प्रयोग करते हैं। गेराल्ड आर. लेस्ली (1994;38) तथा अन्य का कहना है कि, "यह विविधता समाजशास्त्र को मजबूती प्रदान करती है और अपने द्वारा अध्ययन की जाने वाली समस्याओं के विस्तार को बढ़ाती है।"

10.5 सामाजिक शोध का अध्ययन क्षेत्र एवं सार्थकता

समाजशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। स्वाभाविक है कि सामाजिक शोध का क्षेत्र भी अत्यन्त व्यापक होता है। सामाजिक शोध के विस्तृत क्षेत्र को कार्ल पियर्सन (1937;16) के इस कथन से आसानी से समझा जा सकता है कि, "सामाजिक शोध का क्षेत्र वस्तुतः असीमित है, और शोध की सामग्री अन्तहीन। सामाजिक घटनाओं का प्रत्येक समूह सामाजिक जीवन का प्रत्येक पहलू, पूर्व और वर्तमान विकास का प्रत्येक चरण सामाजिक वैज्ञानिक के लिये सामग्री है।" पी.वी. यंग (1977;34-98) ने सामाजिक शोध के क्षेत्र की व्यापक विवेचना करते हुए विविध विद्वानों के अध्ययनों यथा कूले, मीड, थॉमस, नैनकी, पार्क, बर्गेस, लिंड्स, सी. राइट मिल्स, एंजेल, कोमोरोस्की, मर्डाल, स्टॉफर, मर्डोक, मर्टन, गोर्डन, आलपोर्ट, ब्लूमर, बेल्स, मैज का विवरण प्रस्तुत किया है।

एक समाजशास्त्री सामाजिक जीवन की किसी विशिष्ट अथवा सामान्य घटना को शोध हेतु चयन कर सकता है। सामाजिक शोध के अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत मानव समाज व मानव जीवन के सभी पक्ष आते हैं। समाजशास्त्र की

विविध विशेषीकृत शाखाओं यथा- ग्रामीण समाजशास्त्र, नगरीय समाजशास्त्र, औद्योगिक समाजशास्त्र, वृद्धावस्था का समाजशास्त्र, युवाओं का समाजशास्त्र, चिकित्सा का समाजशास्त्र, विचलन का समाजशास्त्र, सामाजिक आन्दोलन, सामाजिक बहिष्करण, सामाजिक परिवर्तन, विकास का समाजशास्त्र, जेंडर स्टडीज, कानून का समाजशास्त्र, दलित अध्ययन, शिक्षा का समाजशास्त्र, परिवार एवं विवाह का समाजशास्त्र इत्यादि-इत्यादि से सामाजिक शोध का व्यापक क्षेत्र स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है।

सामाजिक शोध के उपरोक्त विस्तृत क्षेत्र के परिप्रेक्ष्य में यह कहना कदापि गलत न होगा कि एक विस्तृत सामाजिक क्षेत्र के सम्बन्ध में वैज्ञानिक ज्ञान प्रदान करके सामाजिक शोध अज्ञानता का विनाश करता है। जब हम वृद्धों की समस्याओं, मजदूरों के शोषण और उनकी शोचनीय कार्यदशाओं, बाल मजदूरी, महिला कामगारों की समस्याओं, भिक्षावृत्ति, वेश्यावृत्ति, बेकारी इत्यादि पर सामाजिक शोध करते हैं, तो उसके प्राप्त परिणामों से न केवल समाज कल्याण के क्षेत्र में सहायता प्राप्त होती है अपितु सामाजिक नीतियों के निर्माण के लिये भी आधार उपलब्ध होता है। विविध सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित शोध कार्य कानून निर्माण की दिशा में भी योगदान करते हैं। सामाजिक शोध से सैद्धान्तिक एवं अवधारणात्मक समझ विकसित होती है, कार्य-कारण सम्बन्ध ज्ञात होते हैं और अन्ततः विषय की उन्नति होती है। सामाजिक शोध न केवल सामाजिक नियन्त्रण में सहायक होता है, अपितु सामाजिक शोध सामाजिक-आर्थिक प्रगति में भी सहायक होता है। सूचना क्रान्ति के इस युग में भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया ने समाजशास्त्रीय शोध के क्षेत्र को बढ़ा दिया है। पुराने विचार और सिद्धान्त अप्रासंगिक होते जा रहे हैं। नवीन परिस्थितियों ने जटिल सामाजिक यथार्थ को नये सिद्धान्तों एवं विचारों से समझने के लिये बाध्य कर दिया है। सामाजिक शोध के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक महत्व का ही परिणाम है कि आज नीति निर्माता, कानूनविद्, पत्रकारिता जगत, प्रशासक, समाज सुधारक, स्वैच्छिक संगठन, बौद्धिक वर्ग के लोग इससे विशेष अपेक्षा रखते हैं।

10.6 अन्वेषणात्मक सामाजिक अनुसन्धान (Exploratory Social Research)

जब किसी समस्या के सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक पक्ष की पर्याप्त जानकारी नहीं होती तथा अनुसन्धानकर्ता का उद्देश्य किसी विशेष सामाजिक घटना के लिये उत्तरदायी कारणों को खोज निकालना होता है। तब अध्ययन के लिये जिस अनुसन्धान का सम्बन्ध प्राथमिक अनुसन्धान से है। जिसके अन्तर्गत समस्या के विषय में प्राथमिक जानकारी प्राप्त करके भावी अध्ययन की आधार शिला तैयार की जाती है। इस प्रकार के शोध का सहारा तब लिया जाता है, जब विषय से सम्बन्धित कोई सूचना अथवा साहित्य उपलब्ध न हो और विषय के सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक पक्ष के सम्बन्ध में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करना हो, जिससे कि उपकल्पना का निर्माण किया जा सके।

इस प्रकार के शोध के लिये अनुसन्धानकर्ता को निम्न चरणों को अपनाना आवश्यक होता है- साहित्य का सर्वेक्षण, अनुभव सर्वेक्षण, सूचनादाताओं का चयन तथा उपयुक्त प्रश्न पूछना।

अन्वेषणात्मक अनुसन्धान का महत्व यह है कि-

1. अनुसन्धान समस्या के महत्व पर प्रकाश डालना तथा सम्बन्धित विषय पर अनुसन्धानकर्ताओं के ध्यान को आकर्षित करना।
2. पूर्व निर्धारित परिकल्पनाओं का तात्कालिक दशाओं में परीक्षण करना।
3. विभिन्न अनुसन्धान पद्धतियों की उपयुक्तता की सम्भावना को स्पष्ट करना।
4. किसी विषय समस्या के व्यापक और गहन अध्ययन के लिये एक व्यवहारिक आधारशिला तैयार करना।

10.7 वर्णनात्मक अनुसन्धान (Descriptive Research)

वर्णनात्मक अनुसन्धान का उद्देश्य किसी अध्ययन विषयक के बारे में यथार्थ तथा तथ्य एकत्रित करके उन्हें एक विवरण के रूप में प्रस्तुत करना होता है। सामाजिक जीवन के अध्ययन से सम्बन्धित अनेक विषय इस तरह के होते हैं जिनका अतीत में कोई गहन अध्ययन प्राप्त नहीं होता ऐसी दशा में यह आवश्यक होता है कि अध्ययन से सम्बन्धित समूह समुदाय अथवा विषय के बारे में अधिक से अधिक सूचनायें एकत्रित करके उन्हें जनसामान्य के समक्ष प्रस्तुत की जाये ऐसे अध्ययनों के लिये जो अनुसन्धान किया जाता है। उसे वर्णनात्मक अनुसन्धान कहते हैं। इस प्रकार के अनुसन्धान में किसी पूर्व निर्धारित सामाजिक घटना, सामाजिक परिस्थिति अथवा सामाजिक संरचना का विस्तृत विवरण देना होता है। अनुसन्धान हेतु चयनित सामाजिक घटना या सामाजिक समस्या के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित तथ्यों को एकत्रित करके उनका तार्किक विश्लेषण किया जाता है, एवं निष्कर्ष निकाले जाते हैं। तथ्यों को एकत्रित करने के लिये, प्रश्नावली, साक्षात्कार अथवा अवलोकन आदि किसी भी प्रविधि का प्रयोग किया जा सकता है। ऐसे अनुसन्धान को स्पष्ट करने के लिये जनगणना उपक्रम का उदाहरण लिया जा सकता। जनगणना में भारत के विभिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न विशेषताओं से युक्त समूहों का संख्यात्मक तथा, आंशिक तौर पर, गुणात्मक विवरण दिया जाता है।

वर्णनात्मक अनुसन्धान के चरण हैं-

1. अध्ययन विषय का चुनाव
2. अनुसन्धान के उद्देश्यों का निर्धारण
3. तथ्य संकलन की प्रविधियों का निर्धारण
4. निदर्शन का चुनाव
5. तथ्यों का संकलन
6. तथ्यों का विश्लेषण
7. प्रतिवेदन को प्रस्तुत करना

10.8 परीक्षात्मक अनुसन्धान (Experimental Research)

समाजशास्त्रीय अनुसन्धान की वैज्ञानिकता के विरुद्ध यह आरोप लगाया जाता है कि इसमें प्रयोगीकरण का अभाव होने का कारण इसे वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता है। जिस प्रकार प्राकृतिक विज्ञानों में अध्ययन विषय को नियन्त्रित करके घटनाओं का अध्ययन किया जाता है, उसी प्रकार नियन्त्रित परिस्थितियों में सामाजिक घटनाओं का निरीक्षण एवं परीक्षण परीक्षात्मक अनुसन्धान कहलाता है।

इस प्रकार के अनुसन्धान द्वारा यह जानने का प्रयास किया जाता है कि किसी नवीन परिस्थिति अथवा परिवर्तन का समाज के विभिन्न समूहों, संस्थाओं अथवा संरचनाओं पर क्या एवं कितना प्रभाव पड़ा है। इसके लिये सामाजिक समस्या या घटना के उत्तरदायी कुछ चरों (Attributes) को नियन्त्रित करके, शेष चरों के प्रभाव को नवीन परिस्थितियों में देखा जाता है, और कार्य कारण सम्बन्धों की व्याख्या की जाती है।

परीक्षात्मक अनुसन्धान के तीन प्रकार हैं-

1. पश्चात परीक्षण (After only experiment) पश्चात परीक्षण वह प्रविधि है जिसके अन्तर्गत पहले स्तर पर लगभग समान विशेषता वाले दो समूहों का चयन कर लिया जाता है। जिनमें से एक समूह को नियन्त्रित समूह (controlled group) कहा जाता है; क्योंकि उसमें कोई परिवर्तन नहीं लाया जाता है।

दूसरा समूह परीक्षणात्मक समूह (experimental group) होता है; इसमें चर के प्रभाव में परिवर्तन करने का प्रयास किया जाता है। कुछ समय पश्चात परीक्षण दोनों समूहों का अध्ययन किया जाता है। यदि परीक्षणात्मक समूह में नियन्त्रित समूह की तुलना में अधिक परिवर्तन आता है, तो इसका अर्थ यह माना जाता है कि इस परिवर्तन का कारण वह चर है जिसे.....चर है जिसे परीक्षणात्मक समूह में लागू किया गया था। उदाहरणस्वरूप, दो समान समूहों या गाँवों को लिया गया-जो कुपोषण की समस्या से ग्रस्त हैं। इनमें से एक समूह, में जिसे परीक्षणात्मक समूह माना गया है, कुपोषण के विरुद्ध प्रचार-प्रसार किया जाता है एवं जागरूकता पैदा की जाती है। एक निश्चित अवधि के पश्चात् परीक्षणात्मक समूह की तुलना नियन्त्रित समूह से की जाती है जिसे ज्यों का त्यों रहने दिया गया। यदि परीक्षणात्मक समूह में कुपोषण को लेकर नियन्त्रित समूह की तुलना में काफी अन्तर पाया जाता है तो इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रचार-प्रसार एवं जागरूकता से कुपोषण को कम किया जा सकता है।

2. **पूर्व पश्चात् परीक्षण (Before-after experiment)-** इस विधि के अर्न्तगत अध्ययन के लिए केवल एक ही समूह का चयन किया जाता है। ऐसे अनुसंधान के लिए चयनित समूह का दो विभिन्न अवधियों में अध्ययन करके पूर्व और पश्चात के अन्तर को देखा जाता है। इसी अन्तर को परीक्षण अथवा उपचार का परिणाम मान लिया जाता है।
3. **कार्यान्तर तथ्य परीक्षण (Ex-post facto experiment)-** यह वह विधि है जिसमें हम विभिन्न आधारों पर प्राचीन अभिलेखों के विभिन्न पक्षों की तुलना करके एक उपयोगी निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं। ऐसे अनुसंधान के लिए चयनित समूह का दो विभिन्न अवधियों में अध्ययन करके पूर्व और पश्चात के अन्तर को देखा जाता है। इस विधि का प्रयोग भूतकाल में घटी अथवा ऐतिहासिक घटना का अध्ययन करने के लिये किया जाता है। भूतकाल में घटी हुई घटना को दुबारा दोहराया नहीं जा सकता है। ऐसी स्थिति में उत्तरदायी कारणों को जानने के लिये इस विधि का प्रयोग किया जाता है। इस विधि द्वारा अध्ययन हेतु दो ऐसे समूहों को चुना जाता है जिनमें से एक समूह ऐसा है जिसमें कोई ऐतिहासिक घटना घटित हो चुकी है एवं दूसरा ऐसा समूह ऐसा है जिसमें वैसी कोई घटना घटित नहीं हुई है।

10.9 विशुद्ध अनुसंधान (Pure Research)

सामाजिक अनुसंधान का उद्देश्य जब किसी समस्या का समाधान ढूँढना नहीं होता है बल्कि सामाजिक घटनाओं के बीच पाये जाने वाले कार्य कारण के सम्बन्धों समझकर विषय से सम्बन्धित वर्तमान ज्ञान में वृद्धि करना होता है तब इसे हम विशुद्ध अनुसंधान कहते हैं। विशुद्ध सामाजिक अनुसंधान का कार्य, नवीन ज्ञान की प्राप्ति कर, ज्ञान के भण्डार में वृद्धि करना है। साथ ही, पूर्व के अनुसंधानों से प्राप्त ज्ञान, पूर्व में बनाये गये सिद्धान्तों एवं नियमों को परिवर्तित परिस्थितियों में पुनः परीक्षण करके परिमार्जन, परिष्करण एवं परिवर्द्धन करना है। इस प्रकार विशुद्ध सामाजिक अनुसंधान के उद्देश्यों को निम्नांकित रूप से व्यक्त किया जा सकता है।

विशुद्ध सामाजिक अनुसंधान के उद्देश्य हैं-

1. नवीन ज्ञान की प्राप्ति का परीक्षण
2. नवीन अवधारणाओं का प्रति-पादन
3. उपलब्ध अनुसंधान विधियों का जाँच

4. कार्यकारण सम्बन्ध बताना

5. पूर्व ज्ञान की पुनः परीक्षण

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि विशुद्ध सामाजिक अनुसंधान विज्ञान की प्रगति एवं विकास में अत्यन्त उपयोगी है।

10.10 व्यावहारिक अनुसंधान (Applied Research)

एक अनुसंधान कर्ता जब स्वीकृत सिद्धान्तों के आधार पर किसी समस्या का इस दृष्टिकोण से अध्ययन करता है कि वह एक व्यवहारिक समाधान खो सके ऐसे अनुसंधान को हम व्यवहारिक अनुसंधान कहते हैं। विशुद्ध सामाजिक अनुसंधान का उद्देश्य सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में नवीन ज्ञान प्राप्त करना ही नहीं है, वरन् सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों जैसे जनसंख्या, धर्म, शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक एवं धार्मिक समस्याओं का वैज्ञानिक अध्ययन करना एवं इनके कार्य-कारण सम्बन्धों की तर्कसंगत व्याख्या करना भी है। अतः, व्यावहारिक अनुसंधान का सम्बन्ध हमारे व्यावहारिक जीवन से है। इस संदर्भ में श्रीमती यंग ने लिखा है, "ज्ञान की खोज का एक निश्चित सम्बन्ध लोगों की प्राथमिक आवश्यकताओं व कल्याण से होता है। वैज्ञानिकों की यह मान्यता है कि समस्त ज्ञान सारभूत रूप से इस अर्थ में उपयोगी है कि वह सिद्धान्तों के निर्माण में या एक कला को व्यवहार में लाने में सहायक होता है। सिद्धान्त तथा व्यवहार आगे चलकर प्रायः एक दूसरे से मिल जाते हैं।"

10.11 क्रियात्मक शोध (Action Research)

क्रियात्मक अनुसंधान के सम्बन्ध में गुड एव हाट ने लिखा है- "क्रियात्मक अनुसंधान उस योजनाबद्ध कार्यक्रम का भाग है जिसका लक्ष्य विद्यमान अवस्थाओं को परिवर्तित करना होता है, चाहे वे गन्दी बस्ती की अवस्थाएँ हो या प्रजातीय तनाव पूर्वाग्रह व पक्षपात हो या किसी संगठन की प्रभावशीलता हो।" स्पष्ट है कि क्रियात्मक अनुसंधान से प्राप्त जानकारीयों एवं निष्कर्षों का उपयोग मौजूदा स्थितियों में परिवर्तन लाने वाली किसी भावी योजना में किया जाता है। वास्तव में, व्यावहारिक अनुसंधान व क्रियात्मक अनुसंधान कुछ अर्थों में एक-दूसरे से समानता रखते हैं; क्योंकि दोनों में ही सामाजिक घटनाओं अथवा समस्याओं का सूक्ष्म अध्ययन करने के पश्चात् ऐसे निष्कर्ष प्रस्तुत किये जाते हैं जो व्यावहारिक एवं क्रियात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं। उदाहरणस्वरूप, देश की शिक्षा व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन व सुधार लाने के लिये 1964 में डॉ. डी. एस. कोठारी की अध्यक्षता में कोठारी आयोग की नियुक्ति की गई थी। उन्होंने देश की शिक्षा व्यवस्था के प्रत्येक पक्ष से सम्बन्धित ठोस प्रमाणों एवं तथ्यों को एकत्रित कर आवश्यक सुधार एवं परिवर्तन लाने के सम्बन्ध में सुझाव प्रस्तुत किये। आयोग ने शिक्षा से जुड़े देश-विदेश के सभी वर्गों के व्यक्तियों से लिखित एवं मौखिक विचारों एवं सुझावों, माँगों को अध्ययन में शामिल किया; साथ ही मौजूदा शिक्षा प्रणाली में उपस्थित दशाओं का विश्लेषण कर, भावी शिक्षा प्रणाली की संरचना तथा क्रियान्वयन हेतु व्यावहारिक सुझाव भी प्रस्तुत किये। उन सुझावों में से कई सुझाव भावी योजनाओं में सम्मिलित भी किये गये। तात्पर्य यह है, इस आयोग की रिपोर्ट भी क्रियान्वयन शोध का उदाहरण प्रस्तुत करती है।

10.12 मूल्यांकनात्मक अनुसंधान (Evaluative Research)

आज सभी देश नियोजित परिवर्तन की दिशा में विकास कार्यक्रमों को प्रोत्साहन दे रहे हैं। लाखों, करोड़ों रुपये, अनेक विकास कार्यक्रमों, जैसे स्वास्थ्य सुधार, गरीबी उन्मूलन, आवास-विकास सम्बन्धी योजनाओं, परिवार नियोजन, मद्य निषेध, रोजगार योजनाओं एवं समन्वित ग्रामीण विकास आदि पर व्यय किये जा रहे हैं। तथापि, इन

कार्यक्रमों एवं योजनाओं का लाभ वास्तव में लोगों को मिल भी रहा है या नहीं, यह जानना ही मूल्यांकनात्मक अनुसंधान का उद्देश्य है। मूल्यांकनात्मक अनुसंधान द्वारा इन कार्यक्रमों के लक्ष्यों एवं उपलब्धियों का मूल्यांकन किया जाता है कि लक्ष्य एवं उपलब्धियों में कितना अन्तर रहा; और अन्तर के कारण क्या रहे। जिससे कि भविष्य में बनाये जाने वाले कार्यक्रमों और योजनाओं में इस अन्तर को कम किया जा सके अर्थात् योजनाओं को और अधिक प्रभावशाली बनाया जा सके। अनेक सरकारी, अर्द्ध-सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा समय-समय पर ऐसे मूल्यांकन करवाये जाते हैं कि उनके द्वारा चलाये गये कार्यक्रमों की सफलता कितनी रही? असफलता के कारण क्या रहे आदि। उदाहरणस्वरूप, सामुदायिक विकास कार्यक्रम के मूल्यांकन के लिये भारत सरकार ने 'कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन' की स्थापना की है।

1. **गणनात्मक अनुसंधान (Quantitative Research)**- सामाजिक जीवन में बहुत सी घटनाएँ और तथ्य इस तरह के होते हैं जिनका प्रत्यक्ष रूप से अवलोकन करके उनकी गणना की जा सकती है। शाब्दिक रूप से Quantity अथवा परिमाण का अर्थ है मात्रा। इस प्रकार के अनुसंधान में गणनात्मक मापन एवं सांख्यिकीय विश्लेषण को अपनाया जाता है। तथ्यों के विश्लेषण में विभिन्न प्रकार की सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया जाता है जिससे अध्ययन में परिदर्शिता की मात्रा बढ़ जाती है। उदाहरणस्वरूप, छोटे वेतन आयोग के लागू हो जाने से विभिन्न वर्गों के वेतन में बढ़ोतरी का प्रतिशत क्या रहा? इस प्रकार के अनुसंधान में निर्देशन एवं अनुसंधान प्ररचना पर विशेष बल दिया जाता है।
2. **गुणात्मक अनुसंधान (Qualitative Research)**- सामाजिक घटनाओं के अध्ययन के लिए अनेक ऐसी पद्धतियों का भी उपयोग किया जाता है जो गुणात्मक विशेषताओं जैसे लोगों की मनोवृत्तियों तथा मानव व्यवहारों पर विभिन्न संस्थाओं और विष्वसों के प्रभाव को स्पष्ट कर सकें। जब अनुसंधान का उद्देश्य व्यक्तियों के गुणों का विश्लेषण करना हो, तो गुणात्मक अनुसंधान को अपनाया जाता है।
3. **तुलनात्मक अनुसंधान (Comparative Research)**- इस प्रकार के अनुसंधान में विभिन्न इकाइयों एवं समूहों के बीच पायी जाने वाली समानताओं एवं विभिन्नताओं का अध्ययन किया जाता है। भारतीय समाज एवं जापानी समाज का तुलनात्मक अध्ययन, भारत की ग्रामीण महिलाओं तथा इंग्लैण्ड अथवा अमरीका की ग्रामीण महिलाओं की तुलना किया जाना। अथवा, विभिन्न महानगरों में महिला अपराधियों का तुलनात्मक अध्ययन, आदि।

अभ्यास प्रश्न-

1. क्या सामाजिक शोध वैज्ञानिक होता है?
2. यह किसने कहा कि “हम सामाजिक अनुसंधान को एक वैज्ञानिक कार्य के रूप में परिभाषित कर सकते हैं?”
3. सामाजिक अनुसंधान के सैद्धान्तिक और व्यवहारिक पक्ष का वर्णन किसने किया?
4. क्या सामाजिक शोध की प्रकृति वैज्ञानिक होती है?
5. किसने सामाजिक शोध के 15 चरणों का वर्णन किया है?
6. शोध कार्य में एस.पी.एस.एस. (स्टैटिस्टिकल पैकेज फॉर सोशल साइंसेज) की क्या भूमिका है?

10.13 सारांश

उपरोक्त समस्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि सामाजिक जीवन के विविध पक्षों का वैज्ञानिक अध्ययन सामाजिक शोध है, जिसके सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक उद्देश्य होते हैं। शोध की सम्पूर्ण प्रक्रिया विविध चरणों से गुजरती हुई पूर्ण होती है। वस्तुनिष्ठता से युक्त सामाजिक शोध से न केवल विषय की समझ विकसित होती है, अपितु नवीन ज्ञान की प्राप्ति के साथ-साथ यह सामाजिक नियन्त्रण, समाज कल्याण, सामाजिक-आर्थिक प्रगति, नीति-निर्माण इत्यादि में भी सहायक होता है। आपको इस इकाई से जो ज्ञान प्राप्त हुआ है उसकी सहायता से आस-पास की किसी एक लघु शोध समस्या का चयन करना है तथा शोध के बताये गये चरणों का अनुसरण करते हुए लघु रिपोर्ट प्रस्तुत करनी है।

10.14 शब्दावली

- **शोध-** किसी क्षेत्र विशेष में नवीन ज्ञान की खोज या पुराने ज्ञान का पुनः परीक्षण अथवा दूसरे तरीके से विश्लेषण कर नवीन तथ्यों का उद्घाटन करना शोध कहलाता है।
- **सामाजिक शोध-** सामाजिक घटनाओं एवं समस्याओं के सम्बन्ध में नये ज्ञान की प्राप्ति हेतु व्यवस्थित अन्वेषण को हम सामाजिक शोध कहते हैं।
- **वर्णात्मक अनुसंधान-** वर्णात्मक सामाजिक अनुसंधान में घटना के सम्बन्ध में प्रमाणिक तथ्य एकत्रित करके उनका क्रमबद्ध एवं तार्किक वर्णन करना है।
- **परीक्षणात्मक अनुसंधान-** ऐसा अनुसंधान जिसमें नियंत्रित दशाओं के अन्तर्गत मानवीय सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है।
- **अन्वेषणात्मक अनुसंधान-** किसी घटना के सम्बन्ध में प्रारम्भिक जानकारी प्राप्त करने हेतु किया गया अनुसंधान, जिससे कि मुख्य अनुसंधान की रूपरेखा एवं उपकल्पना का निर्माण किया जा सके।
- **क्रियात्मक अनुसंधान-** समाज की मौजूदा दशाओं को परिवर्तित करने के उद्देश्य से किया गया अनुसंधान, चाहे गन्दी बस्ती हो या प्रजातीय तनाव।

10.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. हां, 2. पी0वी0 यंग, 3. गुडे एवं हाट, 4. हां, 5. स्टूलर, 6. सारिणियां बनायी जाती हैं,

10.16 सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

1. यंग, पी.वी., 'साइंटिफिक सोशल सर्वेस एंड रिसर्च', इंडियन रिप्रिंट्स, फोर्थ प्रिंटिंग, प्रिन्टिस हॉल ऑफ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 1977
2. मोज़र, सी.ए., 'सर्वे मेथड्स इन सोशल इन्वेस्टिगेशन', न्यूयॉर्क: दी मैकमिलन कंपनी, 1961.
3. गुडे एंड हाट, 'मेथड्स ऑफ सोशल रिसर्च', मैकग्रा-हिल बुक कंपनी, न्यूयॉर्क, 1952.
4. सारनताकोस, एस., 'सोशल रिसर्च', मैकमिलन: लंदन, 1998.
5. यंग पी.वी., साइन्टेफिक सोशल सर्वे एण्ड रिसर्च।
6. सी.ए. मोज़र, सर्वे मैथड्स इन सोशल इन्वेस्टीगेशन।
7. लुण्डवर्ग, जी.ए. सोशल रिसर्च।

-
8. गुड एण्ड हाट, मैथड्स ऑफ सोशल रिसर्च।
 9. के.डी. बैली, मैथड्स ऑफ सोशल रिसर्च।
 10. आहूजा, राम, रिसर्च मैथड्स।
-

10.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शोध पद्धतियां और विधियां (MSO 002) इग्नू अध्ययन सामग्री।
 2. आहूजा, राम, रिसर्च मैथड्स।
-

10.18 निबंधात्मक प्रश्न

1. सामाजिक शोध किसे कहते हैं? सामाजिक शोध के अध्ययन क्षेत्र एवं सार्थकता पर प्रकाश डालिये।
2. सामाजिक शोध के चरणों का उल्लेख कीजिये।
3. सामाजिक अनुसंधान के विभिन्न प्रकारों की चर्चा उदाहरण सहित कीजिये।
4. विशुद्ध एवं व्यावहारिक सामाजिक अनुसंधान की विशेषताओं को समझाइये।
5. अन्वेषणात्मक और वर्णनात्मक सामाजिक अनुसंधानों को उदाहरण सहित समझाइये।

इकाई- 11 शोध प्रारूप, उपकल्पनाएं एवं अवलोकन का विस्तृत अध्ययन

इकाई की रूपरेखा

- 11.0 प्रस्तावना
- 11.1 उद्देश्य
- 11.2 शोध प्रारूप का अर्थ एवं परिभाषाएँ
- 11.3 शोध प्रारूप का उद्देश्य
- 11.4 शोध प्रारूप के घटक अंग
- 11.5 शोध प्रारूप का महत्व
- 11.6 शोध प्रारूप बनाम तथ्य संकलन की पद्धति
- 11.7 शोध प्रारूप के प्रकार
- 11.8 उपकल्पना का अर्थ एवं परिभाषाएँ
- 11.9 उपकल्पना की विशेषताएँ
- 11.10 उपकल्पना के प्रकार
- 11.11 उपकल्पना निर्माण के स्रोत
- 11.12 उपकल्पना का महत्व
- 11.13 उपकल्पना की सीमाएँ
- 11.14 अवलोकन का अर्थ एवं अवलोकन की परिभाषाएं
- 11.15 अवलोकन के प्रकार
- 11.16 अवलोकन के प्रकार एवं उनके विशेषतायें गुण दोष
- 11.17 अवलोकन पद्धति की उपयोगिता एवं सीमाएं
- 11.18 निष्कर्ष
- 11.19 शब्दावली
- 11.20 अभ्यास प्रश्न
- 11.21 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.0 प्रस्तावना

सामाजिक शोध के सफल एवं उचित क्रियान्वयन के लिए सटीक एवं स्पष्ट शोध प्रारूप का होना आवश्यक है। शोध प्रारूप से तात्पर्य सम्पूर्ण शोध योजना के निर्धारण से है। शोध के वास्तविक क्रियान्वयन के पूर्व ही यह तय कर लिया जाता है कि विविध विषयों पर किस तरह से चरणबद्ध ढंग से कार्य करते हुए अन्तिम स्तर (निष्कर्ष) तक पहुँचा जायेगा। शोध की स्पष्ट रूपरेखा पर ही यह निर्भर करता है कि शोधकर्ता इधर-उधर अनावश्यक समय एवं संसाधन बरबाद नहीं करता है। उसे शोध की सीमा और कार्यक्षेत्र का ज्ञान रहता है और वह अपने शोध कार्य को निरन्तर समस्याओं का पूर्वानुमान लगाते हुए आगे बढ़ाता जाता है। प्रस्तुत इकाई में शोध प्रारूप के अर्थ, परिभाषाओं, उद्देश्यों, महत्व, घटक अंगों को बताते हुए संक्षेप में इसके विविध प्रकारों को विश्लेषित किया गया है।

11.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपके लिए यह सम्भव होगा कि-

- सामाजिक अनुसंधान में शोध प्रारूप के अर्थ एवं महत्व को बताना।
- शोध प्रारूप के उद्देश्यों एवं घटक अंगों को स्पष्ट करना, तथा
- शोध प्रारूप के विविध प्रकारों का वर्णन करना।

11.2 शोध प्रारूप का अर्थ एवं परिभाषाएँ

प्रस्तावित सामाजिक शोध की विस्तृत कार्य योजना अथवा शोधकार्य प्रारम्भ करने के पूर्व सम्पूर्ण शोध प्रक्रियाओं की एक स्पष्ट संरचना 'शोध प्रारूप' या 'शोध अभिकल्प' के रूप में जानी जाती है। शोध प्रारूप के सम्बन्ध में यह स्पष्ट होना चाहिए कि यह शोध का कोई चरण नहीं है क्योंकि शोध के जो निर्धारित या मान्य चरण हैं, उन सभी पर वास्तविक कार्य प्रारम्भ होने के पूर्व ही विस्तृत विचार होता है और तत्पश्चात् प्रत्येक चरण से सम्बन्धित विषय पर रणनीति तैयार की जाती है। जब सम्पूर्ण कार्य योजना विस्तृत रूप से संरचित हो जाती है तब वास्तविक शोध कार्य प्रारम्भ होता है।

एफ.एन. करलिंगर (1953: 264) के अनुसार, "शोध प्रारूप अनुसंधान के लिए कल्पित एक योजना, एक संरचना तथा एक प्रणाली है, जिसका एकमात्र प्रयोजन शोध सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करना तथा प्रसरणों का नियंत्रण करना होता है।"

पी.वी. यंग (1966: 9.11) के अनुसार, "क्या, कहाँ, कब, कितना, किस तरीके से इत्यादि के सम्बन्ध में निर्णय लेने के लिए किया गया विचार अध्ययन की योजना या अध्ययन प्रारूप का निर्माण करता है।"

आर.एल. एक्कोफ (1943:4) के अनुसार, "निर्णय लिये जाने वाली परिस्थिति उत्पन्न होने के पूर्व ही निर्णय लेने की प्रक्रिया को प्रारूप कहते हैं।"

विविध वेबसाइटों पर भी शोध प्रारूप की परिभाषाएँ दी गयी हैं। उनमें से कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार हैं- "शोध प्रारूप को शोध की संरचना के रूप में विचार किया जा सकता है- यह 'गोंद' होता है जो किसी शोध कार्य के सभी तत्वों को बाँधे रखता है।" (www.socialresearchmethods.net/kb/design.php)

"शोध उद्देश्यों के उत्तर देने के लिए शोध की योजना है; विशिष्ट समस्या के समाधान की संरचना या खाका है।" (www.decisionanalyst.com/glossary)

"ऐसी योजना जो शोध प्रश्नों को परिभाषित करे, परीक्षण की जाने वाली उपकल्पनाओं और अध्ययन किये जाने वाले परिवर्तों की संख्या और प्रकार स्पष्ट करें। यह वैज्ञानिक जाँच के सुविकसित सिद्धान्तों का प्रयोग करके परिवर्तों में सम्बन्धों का आँकलन करती है।" (www.globalhivmeinfo.org/Digital Library)

"क्या तथ्य इकट्ठा करना है, किनसे, कैसे और कब तक इकट्ठा करना है और प्राप्त तथ्यों को कैसे विश्लेषित करना है कि योजना शोध प्रारूप है।" (www.ojp.usdoj.gov/BJA/evaluation/glossary)

स्पष्ट है कि शोध प्रारूप प्रस्तावित शोध की ऐसी रूपरेखा होती है, जिसे वास्तविक शोध कार्य को प्रारम्भ करने के पूर्व व्यापक रूप से सोच-समझ के पश्चात् तैयार किया जाता है। शोध की प्रस्तावित रूपरेखा का निर्धारण अनेकों बिन्दुओं पर विचारोपरान्त किया जाता है। इसे सरलतम रूप में पी.वी. यंग (1966) ने शोध सम्बन्धित विविध प्रश्नों के द्वारा इस तरह स्पष्ट किया है-

- अध्ययन किससे सम्बन्धित है और आँकड़ों का प्रकार जिनकी आवश्यकता है?

- अध्ययन क्यों किया जा रहा है?
- वांछित आँकड़े कहाँ से मिलेंगे?
- कहाँ या किस क्षेत्र में अध्ययन किया जायेगा?
- कब या कितना समय अध्ययन में सम्मिलित होगा?
- कितनी सामग्री या कितने केसों की आवश्यकता होगी?
- चुनावों के किन आधारों का प्रयोग होगा?
- आँकड़ा संकलन की कौन सी प्रविधि का चुनाव किया जायेगा?

इस तरह, निर्णय लेने में जिन विविध प्रश्नों पर विचार किया जाता है जैसे क्या, कहाँ, कब, कितना, किस साधन से अध्ययन की योजना निर्धारित करते हैं। (पी.वी. यंग 1966: 9.11)

न्यूयार्क यूनिवर्सिटी की फैकल्टी क्लास वेबसाइट (वॉट इज सोशल रिसर्च, चैप्टर 1 : 9-8) में शोध प्रारूप और शोध प्रारूप बनाम पद्धति विषय पर विधिवत विचार व्यक्त किया गया है। उसे हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं। उसके अनुसार शोध प्रारूप को भवन निर्माण से सम्बन्धित एक उदाहरण के द्वारा आसानी से समझा जा सकता है। भवन निर्माण करते समय सामग्री का आर्डर देने या प्रोजेक्ट पूर्ण होने की तिथि निर्धारित करने का कोई औचित्य नहीं है, जब तक कि हमें यह न मालूम हो कि किस प्रकार का भवन निर्मित होना है। पहला निर्णय यह करना है कि क्या हमें अति ऊँचे कार्यालयी भवन की, या मशीनों के निर्माण के लिए एक फैक्टरी की, एक स्कूल, एक आवासीय भवन या एक बहुखण्डीय भवन की आवश्यकता है। जब तक यह नहीं तय हो जाता हम एक योजना का खाका तैयार नहीं कर सकते, कार्य योजना तैयार नहीं कर सकते या सामग्री का आर्डर नहीं दे सकते हैं। इसी तरह से, सामाजिक अनुसन्धान को प्रारूप या अभिकल्प की आवश्यकता होती है या तथ्य संकलन के पूर्व या विश्लेषण शुरू करने के पूर्व एक संरचना की आवश्यकता होती है। एक शोध प्रारूप मात्र एक कार्य योजना (वर्क प्लान) नहीं है। यह प्रोजेक्ट को पूर्ण करने के लिए क्या करना है कि कार्य योजना का विस्तृत विवरण है। शोध प्रारूप का प्रकार्य यह सुनिश्चित करना है कि प्राप्त साक्ष्य हमें प्रारम्भिक प्रश्नों के यथासम्भव सुस्पष्ट उत्तर देने में सक्षम बनाये। कार्य योजना बनाने के पूर्व या सामग्री आर्डर करने के पूर्व भवन निर्माता या वास्तुविद् को प्रथमतः यह निर्धारित करना जरूरी है कि किस प्रकार के भवन की जरूरत है, इसका उपयोग क्या होगा और उसमें रहने वाले लोगों की क्या आवश्यकताएँ हैं। कार्य योजना इससे निकलती है। इसी तरह से, सामाजिक अनुसन्धान में निदर्शन, तथ्य संकलन की पद्धति (उदाहरण के लिए प्रश्नावली, अवलोकन, दस्तावेज विश्लेषण) प्रश्नों के प्रारूप के मुद्दे सभी इस विषय के कि 'मुझे कौन से साक्ष्य इकट्ठे करने हैं', के सहायक / पूरक होते हैं।

गेराल्ड आर. लेस्ली (1993: 24-25) का कहना है कि, "शोध प्रारूप ब्लू प्रिन्ट है, जो परिवर्तनों को पहचानता और तथ्यों को एकत्र करने तथा उनका विवरण देने के लिए की जाने वाली कार्य प्रणालियों को अभिव्यक्त करता है।"

सौमेन्द्र पटनायक (2005: 31) ने लिखा है कि, "शोध प्रारूप एक प्रकार की रूपरेखा है, जिसे आपको शोध के वास्तविक क्रियान्वयन से पहले तैयार करना है। योजनाबद्ध रूप से तैयार एक खाका होता है जो उस रीति को बतलाता है जिसमें आपने अपने शोध की कार्य योजना तैयार की है। आपके पास अपने शोध कार्य पर दो पहलुओं से विचार करने का विकल्प है, नामतः अनुभवजन्य पहलू और विश्लेषणपरक पहलू। ये दोनों ही पहलू एक साथ आपके मस्तिष्क में रहते हैं, जबकि व्यवहार में आपको अपना शोध कार्य दो चरणों में नियोजित करना है: एक सामग्री संग्रहण का चरण और दूसरा उस सामग्री के विश्लेषण का चरण। आपकी मनोगत सैद्धान्तिक उन्मुखता और अवधारणात्मक प्रतिदर्शिताएँ आपको इस शोध सामग्री के स्वरूप को निर्धारित करने में मदद करती हैं जो

आपको एकत्र करनी है और कुछ हद तक यह समझने में भी कि आपको उन्हें कैसे एकत्र करना है। तदोपरान्त, अपनी सामग्री का विश्लेषण करते समय फिर से आमतौर पर समाजिक यथार्थ सम्बन्धी सैद्धान्तिक और अवधारणात्मक समझ के सहारे आपको अपने शोध परिणामों को स्पष्ट करने में और प्रस्तुत करने के वास्ते शोध सामग्री को वर्गीकृत करने में और विन्यास विशेष को पहचानने में दिशानिर्देशन मिलता है।"

यंग (1966 :111) का कहना है कि, "जब एक सामान्य वैज्ञानिक मॉडल को विविध कार्यविधियों में परिणत किया जाता है तो शोध प्रारूप की उत्पत्ति होती है। शोध प्रारूप उपलब्ध समय, कर्म शक्ति एवं धन, तथ्यों की उपलब्धता उस सीमा तक जहाँ तक यह वांछित या सम्भव हो उन लोगों एवं सामाजिक संगठनों पर थोपना जो तथ्य उपलब्ध करायेंगे, के अनुरूप होना चाहिए।"

ई.ए. सचमैन (1943 :243) का कहना है कि, "एकल या 'सही' प्रारूप जैसा कुछ नहीं है..... शोध प्रारूप सामाजिक शोध में आने वाले बहुत से व्यावहारिक विचारों के कारण आदेशित समझौते का प्रतिनिधित्व करता है.. (साथ ही) अलग-अलग कार्यकर्ता अलग-अलग प्रारूप अपनी पद्धतिशास्त्रीय एवं सैद्धान्तिक प्रतिस्थापनाओं के पक्ष में लेकर आते हैं... एक शोध प्रारूप विचलन का अनुसरण किए बिना कोई उच्च विशिष्ट योजना नहीं है, अपितु सही दिशा में रखने के लिए मार्गदर्शक स्तम्भों की श्रेणी है।" दूसरे शब्दों में, एक शोध प्रारूप काम चलाऊ होता है। अध्ययन जैसे-जैसे प्रगति करता है, नये पक्ष, नई दशाएं और तथ्यों में नयी सम्बन्धित कड़ियाँ प्रकाश में आती हैं, और परिस्थितियों की माँग के अनुसार यह आवश्यक होता है कि योजना परिवर्तित कर दी जाये। योजना का लचीला होना जरूरी होता है। लचीलेपन का अभाव सम्पूर्ण अध्ययन की उपयोगिता को समाप्त कर सकता है। (उद्धृत पी.वी. यंग 1966 : 111)

11.3 शोध प्रारूप के उद्देश्य

मैनहार्ड (1966 : 112) के अनुसार शोध प्रारूप के निम्नांकित पाँच उद्देश्य होते हैं-

- (i) अपनी उपकल्पना का समर्थन करने और वैकल्पिक उपकल्पनाओं का खण्डन करने हेतु पर्याप्त साक्ष्य इकट्ठा करना।
- (ii) एक ऐसा शोध करना जिसे शोध की विषयवस्तु और शोध कार्यविधि की दृष्टि से दोहराया जा सके।
- (iii) परिवर्तों के मध्य सहसम्बन्धों को इस तरह से जाँचने में सक्षम होना जिससे सहसम्बन्ध ज्ञात हो सके।
- (iv) एक पूर्ण विकसित शोध परियोजना की भावी योजनाओं को चलाने के लिए एक मार्गदर्शी अध्ययन की आवश्यकता को दिखाना।
- (v) शोध सामग्रियों के चयन की उचित तकनीकों के चुनाव द्वारा समय और साधनों के अपव्यय को रोकने में सक्षम होना।

एक अन्य विद्वान ने शोध प्रारूप के निम्नांकित उद्देश्यों का उल्लेख किया है-

1. शोध विषय को परिभाषित, स्पष्ट एवं व्याख्या करना।
2. दूसरों को शोध क्षेत्र स्पष्ट करना।
3. शोध की सीमा एवं परिधि प्रदान करना।
4. शोध के सम्पूर्ण परिदृश्य को प्रदान करना।
5. तरीकों और परिणामों को बतलाना।
6. समय और संसाधनों की सुनिश्चितता।

11.4 शोध प्रारूप के घटक अंग

शोध प्रारूप के उद्देश्यों से यह स्पष्ट है कि, यह शोध की वह युक्तिपूर्ण योजना होती है, जिसके अन्तर्गत विविध परस्पर सम्बन्धित अंग होते हैं, जिनके द्वारा शोध सफलतापूर्वक संपादित होता है। पी.वी. यंग (1966 :11) ने शोध प्रारूप के अन्तर्गत निम्नांकित घटक अंगों का उल्लेख किया है जो अन्तर्सम्बन्धित होते हैं तथा परस्पर बहिष्कृत नहीं होते हैं-

- (i) प्राप्त किये जाने वाले सूचनाओं के स्रोत,
- (ii) अध्ययन की प्रकृति,
- (iii) अध्ययन के उद्देश्य,
- (iv) अध्ययन का सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ,
- (v) अध्ययन द्वारा समाहित भौगोलिक क्षेत्र,
- (vi) लगने वाले समय के काल का निर्धारण,
- (vii) अध्ययन के आयाम,
- (viii) आँकड़ा संकलन का आधार,
- (ix) आँकड़ा संकलन हेतु प्रयोग की जाने वाली प्रविधियाँ

उपरोक्त शोध प्रारूप के अन्तर्सम्बन्धित और परस्पर समावेशित अंगों की संक्षिप्त विवेचना यहाँ आवश्यक प्रतीत होती है।

(i) सूचना के स्रोत: कोई भी शोध कार्य सूचना के अनेकों स्रोत पर निर्भर करता है। मोटे तौर पर सूचना के इन स्रोतों को हम दो भागों में रख सकते हैं। (i) प्राथमिक स्रोत और (ii) द्वितीयक स्रोत। प्राथमिक स्रोत वे हैं जिनका शोधकर्ता पहली बार स्वयं प्रयोग कर रहा है, यानि शोधकर्ता ने अपने अध्ययन क्षेत्र में जा कर जिस तकनीक या उपकरण अथवा विधि का प्रयोग कर मौलिक तथ्य प्राप्त किया है, वह प्राथमिक तथ्य कहलाता है। वही दूसरों के द्वारा जो सूचना प्रकाशित या अप्रकाशित अथवा अन्य तरीकों से सर्व उपलब्ध हो, और जिसका उपयोग शोधकर्ता कर रहा हो वह द्वितीयक सूचना का स्रोत होता है। उल्लेखनीय है कि बहुधा द्वितीयक सूचना का स्रोत एक समय में किसी शोधकर्ता का प्राथमिक सूचना स्रोत होता है। अर्थपूर्ण तथ्यों की खोज में लगे समाजशास्त्री उस प्रत्येक सूचना के स्रोत का उपयोग करने में हिचकिचाहट महसूस नहीं करते हैं जिनसे भी शोध कार्य में जरा भी प्रमाण या सहायता मिलने की सम्भावना होती है। सूचना के इन स्रोत को विधिक विद्वानों ने अलग-अलग प्रकारों में रखकर विश्लेषित किया है।

बैगले (1938 : 202) ने सूचना के दो प्रमुख स्रोत का उल्लेख किया है- (a) प्राथमिक स्रोत और (b) द्वितीयक स्रोत।

पी.वी. यंग (1966 : 115) का कहना है कि सामान्यतः सूचना के स्रोत दो होते हैं- (i) प्रलेखीय और (ii) क्षेत्रीय स्रोत। सूचना के प्रलेखीय (डॉक्यूमेन्टरी) स्रोत वे होते हैं, जो कि प्रकाशित और अप्रकाशित प्रलेखों, रिपोर्टों, सांख्यिकी, पांडुलिपियों, पत्रों, डायरियों इत्यादि में निहित होते हैं। दूसरी तरफ, क्षेत्रीय स्रोत के अन्तर्गत वे जीवित लोग सम्मिलित होते हैं, जिन्हें उस विषय का पर्याप्त ज्ञान होता है या जिनका सामाजिक दशाओं और परिवर्तनों के लम्बे समय तक का घनिष्ठ सम्पर्क होता है। ये लोग न केवल वर्तमान घटनाओं को विश्लेषित करने की स्थिति में होते हैं अपितु सामाजिक प्रक्रियाओं की अवलोकनीय प्रवृत्तियों और सार्थक मील का पत्थर को बताने की स्थिति

में भी होते हैं। (वी.एम. पाल्मर, (1928 : 46) लुण्डबर्ग (1941 : 92) ने सूचनाओं के दो स्रोत का उल्लेख किया है-

1. ऐतिहासिक स्रोत, और
2. क्षेत्रीय स्रोत।

ऐतिहासिक स्रोत के अन्तर्गत प्रलेख, विविध कागजातों एवं शिलालेखों, भूगर्भीय स्तरों, उत्खनन से प्राप्त वस्तुओं को सम्मिलित करते हुए लुण्डबर्ग (1941:92) का कहना है कि, "ऐतिहासिक स्रोत उन अभिलेखों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो भूतकाल की घटनाएँ अपने पीछे छोड़ गई हैं, जिनकों की उन साधनों द्वारा सुरक्षित रखा गया है जो मनुष्य से परे हैं।" उदाहरण के लिये हम उल्लेख कर सकते हैं उन विविध स्थानों का जहाँ पुरातात्विक उत्खनन के पश्चात तत्कालीन समाज की विविध सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं, या विविध पुरातात्विक संग्रहालयों में सुरक्षित रखे दस्तावेजों (सरकारी) एवं गैर सरकारी) का जिनका आज भी शोधकर्ता अपने शोध कार्यों में व्यापक रूप से प्रयोग करते हैं। क्षेत्रीय स्रोत के अन्तर्गत लुण्डबर्ग ने जीवित मनुष्यों से प्राप्त विशिष्ट सूचनाओं तथा क्रियाशील व्यवहारों के प्रत्यक्ष अवलोकन को सम्मिलित किया है। उपरोक्त समस्त विवरण स्पष्ट करता है कि सूचनाओं के कई स्रोत होते हैं, इन समस्त स्रोत को विद्वानों ने अपनी-अपनी तरह से विश्लेषित किया है। जो कुछ भी हो सूचनाओं के स्रोत जिन्हें प्रयोग में लाया जाता है, शोध प्रारूप का अंग होते हैं।

(ii) **अध्ययन की प्रकृति:** पी.वी. यंग (1966 : 11) का कहना है कि, "अध्ययन की विशिष्ट प्रकृति का निर्धारण शुरू में और ठीक-ठीक कर लेना चाहिए, विशेषकर जब सीमित समय और कर्मशक्ति गलत शुरुआत को रोक रहे हों। शोध केस की प्रकृति पर ही अपने को केन्द्रित करते हुए उन्होंने मटिल्डा वाइट रिले (1953 : 3-31) की पुस्तक में विविध विद्वानों के अध्ययनों के उल्लेख का उदाहरण देते हुए उन्होंने इस विषय को स्पष्ट किया है। क्या यह अध्ययन एक व्यक्ति से सम्बन्धित है (जैसा शाँ की 'दी जैक रोलर' में है) कई लोगों से सम्बन्धित है (विलियम वाइट की पुस्तक 'स्ट्रीट कॉर्नर सोसायटी' के विश्लेषण में डॉक, माइक और डैनी) या क्या अध्ययन किसी छोटे समूह पर संकेन्द्रित है (जैसा कि पॉल हैरि एवं अन्य के अध्ययन 'स्माल ग्रुप' या बहुत अधिक केसों पर संकेन्द्रित है, जैसा कि यौन व्यवहार सम्बन्धित किन्से का अध्ययन। इस अनुभव के साथ की प्रत्येक शोध अध्ययन जटिल होता है, उसकी विशिष्ट प्रकृति का यथाशीघ्र निर्धारण कर लेना चाहिए।

(iii) **शोध अध्ययन का उद्देश्य:** अध्ययन के उद्देश्यों का निर्धारण शोध प्रारूप का महत्वपूर्ण अंग है। अध्ययन की प्रकृति और प्राप्त किये जाने वाले लक्ष्यों के अनुसार उद्देश्य भिन्न-भिन्न होते हैं। कुछ शोध अध्ययनों का उद्देश्य विवरणात्मक तथ्य, या व्याख्यात्मक तथ्य या तथ्य जिनसे सैद्धान्तिक रचना की व्युत्पत्ति हो, या तथ्य जो प्रशासकीय परिवर्तन या तुलना को बढ़ावा दें, को इकट्ठा करना होता है। (पी.वी. यंग, (1966 : 11) अध्ययन का जो भी उद्देश्य हो अपने शोध की प्रकृति के अनुरूप शोध कार्य की तैयारी आवश्यक है। शोध उद्देश्य के अनुरूप उपकल्पना का निर्माण और उसके परीक्षण की तैयारी या शोध प्रश्नों का निर्माण किया जाता है।

(iv) **सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थिति:** क्षेत्रीय अध्ययनों में उत्तरदाताओं की सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थिति को जानना आवश्यक होता है। हम सभी जानते हैं कि स्थानीय आदर्श भिन्न-भिन्न होते हैं। इनमें इतनी ज्यादा भिन्नता संभव है जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। व्यवहार प्रतिरूपों को समझने के लिये स्थानीय आदर्शों को जानना जरूरी है। पी.वी. यंग (1966 : 14) ने इस सन्दर्भ में उचित ही लिखा है कि "एक व्यक्ति का निवास स्थान (प्राकृतिक वास) उसके जीवन के एक भाग से इतना घनिष्ठ होता है कि उसकी उपेक्षा करने का मतलब शून्य में अध्ययन करना है।" उनका यह भी सुझाव महत्वपूर्ण है कि, "प्रत्येक सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्र

का अध्ययन उसके प्राकृतिक और भौगोलिक पक्ष के सन्दर्भ में भी किया जाना चाहिए।" (पी.वी. यंग, (1966 : 15)A

(v) **सामाजिक-कालिक सन्दर्भ:** यह निर्विवाद सत्य है कि किसी व्यक्ति पर, समुदाय पर, समाज पर ऐतिहासिक काल विशेष का प्रभाव व्यापक रूप से पड़ता है। किसी देश के कुछ निश्चित ऐतिहासिक काल को ही यहाँ सामाजिक-कालिक सन्दर्भ शब्द से सम्बोधित किया जा रहा है। कई बार भारतीय अध्ययनों में औपनिवेशिक काल के प्रभावों का उल्लेख इसी का उदाहरण माना जा सकता है। अण्डमान-निकोबार द्वीप समूहों में बन्दी उपनिवेश काल या भारतवर्ष में वैदिक काल, मुगल काल इत्यादि कुछ विशिष्ट ऐतिहासिक कालों का समाज पर प्रभाव से हम सभी परिचित हैं। इसलिये व्यक्ति को उसके सामाजिक-कालिक सन्दर्भ यानि समय और स्थान के ऐतिहासिक विन्यास में देखा जाना चाहिए। (पी.वी. यंग, (1966 : 15)

(vi) **अध्ययन के आयाम और निदर्शन कार्यविधि:** सामाजिक शोध में अक्सर यह सम्भव नहीं होता है कि सम्पूर्ण समग्र से प्राथमिक तथ्य संकलन का कार्य किया जाये। ऐसी परिस्थिति में समग्र की कुछ इकाईयों का वैज्ञानिक आधार पर चयन कर लिया जाता है और तथ्य संकलन की उपयुक्त विधि के द्वारा उनसे प्राथमिक तथ्य इकट्ठे कर लिये जाते हैं। ये कुछ चुनी हुई इकाईयाँ ही निदर्शन कहलाती हैं। अच्छे निदर्शन को सम्पूर्ण समग्र का प्रतिनिधित्व करना चाहिए ताकि प्राप्त सूचनाएँ विश्वसनीय हों तथा सम्पूर्ण समग्र का प्रतिनिधित्व कर सकें (यद्यपि निदर्शन के कुछ प्रकारों में इसकी कुछ कम संभावना होती है)।

इकाईयों का चयन निष्पक्ष रूप से पूर्वाग्रह रहित होकर करना चाहिए। सम्पूर्ण समूह जिसमें से निदर्शन लिया जाता है 'पापुलेशन', 'युनिवर्स' (समग्र) या 'सप्लाई' के नाम से जाना जाता है। (पी.वी. यंग 1966 : 324)

निदर्शन के कई प्रकार होते हैं। मोटे तौर पर निदर्शन को दो प्रकारों- संभावनात्मक और असंभावनात्मक में रखा जाता है। जब समग्र की प्रत्येक इकाई के चुने जाने की समान संभावना हो तो उसे संभावनात्मक निदर्शन कहते हैं और यदि ऐसी समान संभावना न हो तो उसे असंभावनात्मक निदर्शन कहते हैं।

संभावनात्मक और असंभावनात्मक निदर्शन के अन्तर्गत आने वाले विविध प्रकारों को निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है-

निदर्शन

- **संभावनात्मक निदर्शन**
 - (क) दैव निदर्शन
 - (ख) क्रमबद्ध दैव निदर्शन
 - (ग) स्तरित दैव निदर्शन
 - (घ) समूह दैव निदर्शन
- **असंभावनात्मक निदर्शन**
 - (क) सुविधानुसार निदर्शन (या देखा और साक्षात्कार लिया निदर्शन)
 - (ख) सोद्देश्यपूर्ण निदर्शन (नियत मात्रा)
 - (ग) कोटा निदर्शन
 - (घ) स्नोबॉल निदर्शन
 - (ङ) स्वनिर्णय निदर्शन

निदर्शन, इसके प्रकार, निदर्शन आकार, गुण एवं सीमाओं पर विस्तृत चर्चा अन्यत्र अध्याय में की गई है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि शोध प्रारूप को बनाते समय निदर्शन तथा उसके आकार पर उपलब्ध समय और साधनों की

सीमाओं के अन्तर्गत व्यापक सोच-विचार किया जाता है। अध्ययन के उद्देश्यों के अनुसार तथा समग्र की संख्या तथा विशेषताओं के अनुसार निदर्शन का प्रकार तथा आकार अलग-अलग होता है। उत्तम एवं विश्वसनीय परिणाम प्राप्त करने के लिये यथेष्ट एवं उत्तम निदर्शन का होना जरूरी होता है।

सामाजिक शोध कार्यों में सबसे जटिल प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि निदर्शन का आकार क्या होगा? कितने लोगों को उत्तरदाताओं के रूप में चयनित किया जायेगा? सम्पूर्ण समग्र का अध्ययन अक्सर समय और साधनों की सीमाओं के चलते संभव नहीं होता है। समुचित निदर्शन के निर्धारण की समस्या एक जटिल समस्या है। यद्यपि कई विद्वानों ने इस सन्दर्भ में अपने-अपने सुझावों को दिया है तथा सांख्यिकीविदों ने तो इसका सूत्र भी बना रखा है, परंतु इसके बावजूद भी समस्या किसी न किसी रूप में बनी ही रहती है। पी.वी. यंग (1966 : 16) यह मानती हैं कि, "एक परिपक्व शोधकर्ता द्वारा भी इस प्रश्न के उत्तर को देना कठिन है कि कितने केसों की जरूरत है।"

पी.वी. यंग (1966 : 16) ने अपनी पुस्तक में सांख्यिकीविद् मार्ग्रेट हगूड (1943) द्वारा सुझाये निदर्शन के आधारों का उल्लेख किया है। हगूड (1943 : 262) ने निदर्शन चयन के निम्नांकित सुझाव दिये हैं-

"(1) निदर्शन को समग्र का प्रतिनिधित्व करना चाहिए, (अर्थात् उसे पूर्वाग्रह रहित होना चाहिए), (2) विश्वसनीय परिणाम प्राप्त करने के लिये निदर्शन पर्याप्त आकार का होना चाहिए, (अर्थात् दोष की विशिष्ट सीमा तक जैसे मापा जाये), (3) निदर्शन इस तरह से संरचित किया जाये कि कुशल हो (अर्थात् वैकल्पिक प्रारूप की तुलना में)।"

(vii) तथ्य संकलन के लिए प्रयुक्त तकनीक: शोध प्रारूप का एक महत्वपूर्ण अंग तथ्य संकलन की तकनीक है। शोध कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व ही इस महत्वपूर्ण विषय पर शोध की प्रकृति और उत्तरदाताओं की विशेषताओं के परिप्रेक्ष्य में व्यापक सोच-विचार के पश्चात् यह निर्णय लिया जाता है कि प्राथमिक तथ्य संकलन का कार्य किस प्रविधि के द्वारा किया जायेगा। उल्लेखनीय है कि तथ्य संकलन की विविध प्रविधियाँ हैं- जैसे अवलोकन, साक्षात्कार, प्रश्नावली, अनुसूची, वैयक्तिक अध्ययन (केस स्टडी) इत्यादि। इन सभी प्रविधियों की अपनी-अपनी विशेषताएँ तथा सीमाएँ हैं। तथ्य संकलन की सही तकनीक का प्रयोग शोध की गुणवत्ता, विश्वसनीयता तथा वैज्ञानिकता निर्धारित करता है। उल्लेखनीय है कि इन प्रविधियों का प्रयोग प्रत्येक समाज एवं उत्तरदाताओं पर नहीं किया जा सकता है।

11.5 शोध प्रारूप का महत्व

उपरोक्त विस्तृत व्याख्या से शोध प्रारूप के महत्व का स्पष्ट अनुमान हो जाता है। ब्लैक और चैम्पीयन (1965:65-66) के शब्दों में कहा जाये तो-

- (i) शोध प्रारूप से शोध कार्य को चलाने के लिये, एक रूप रेखा तैयार हो जाती है।
- (ii) शोध प्रारूप से शोध की सीमा और कार्य क्षेत्र परिभाषित होता है।
- (iii) शोध प्रारूप से शोधकर्ता को शोध को आगे बढ़ाने वाली प्रक्रिया में आने वाली समस्याओं का पूर्वानुमान लगाने का अवसर प्राप्त होता है।

11.6 शोध प्रारूप बनाम तथ्य संकलन की पद्धति

शोध प्रारूप और तथ्य संकलन की पद्धतियों के सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि शोध प्रारूप आँकड़े या तथ्य इकट्ठे किये जाने वाली पद्धति से अलग होता है। "यह देखना असामान्य नहीं है कि शोध प्रारूप को तथ्य संकलन के तरीके के रूप में देखा जाता है बजाये इसके कि जाँच की तार्किक संरचना के।" (एन.वाई.यू. 208 : 1 : 9)

शोध प्रारूप और तथ्य संकलन की पद्धति में समानता का भ्रम होने का कारण कुछ विशेष प्रारूपों को किसी विशेष तथ्य संकलन की पद्धति से जोड़कर देखना है। उदाहरण के लिये वैयक्तिक अध्ययनों को सहभागी अवलोकन और क्रॉस सेक्शनल सर्वे को प्रश्नावलियों से समीकृत किया जाता है। वास्तविकता यह है कि किसी भी प्रारूप के लिये तथ्य किसी भी तथ्य संकलन की पद्धति से इकट्ठा किया जा सकता है। विश्वसनीय तथ्य महत्वपूर्ण होते हैं न कि उन्हें इकट्ठा करने का तरीका। तथ्य कैसे इकट्ठा किया गया, यह प्रारूप की तार्किकता के लिये अप्रासंगिक/असम्बद्ध है।

न्यूयार्क युनिवर्सिटी की फैकल्टी क्लास वेबसाइट (पृ- 8) में 'शोध प्रारूप क्या है' अध्याय के अन्तर्गत शोध प्रारूप और तथ्य संकलन की पद्धतियों में सम्बन्ध को इस तरह दर्शाया गया-

शोध प्रारूप और विशिष्ट तथ्य संकलन की पद्धतियों के मध्य सम्बन्ध

प्रारूप का प्रकार →	प्रयोगात्मक	केस स्टडी	अनुदैर्घ्य प्रारूप (Longitudinal)	क्रॉस-सेक्शनल प्रारूप
तथ्य संकलन की पद्धति ↓	प्रश्नावली साक्षात्कार अवलोकन दस्तावेजों का विश्लेषण अप्रत्यक्ष पद्धतियाँ	प्रश्नावली साक्षात्कार अवलोकन दस्तावेजों का विश्लेषण अप्रत्यक्ष पद्धतियाँ	प्रश्नावली साक्षात्कार अवलोकन दस्तावेजों का विश्लेषण अप्रत्यक्ष पद्धतियाँ	प्रश्नावली साक्षात्कार अवलोकन दस्तावेजों का विश्लेषण अप्रत्यक्ष पद्धतियाँ

इसी तरह से प्रारूपों को अक्सर गुणात्मक और गणनात्मक शोध पद्धतियों से जोड़ा जाता है। सामाजिक सर्वेक्षण और प्रयोगों को अक्सर गुणात्मक शोध के मुख्य उदाहरणों के रूप में देखा जाता है और उनका मूल्यांकन सांख्यिकीय, गुणात्मक शोध पद्धतियों और विश्लेषण की क्षमता और कमजोरियों के विरुद्ध किया जाता है। दूसरी तरफ वैयक्तिक अध्ययन को अक्सर गुणात्मक शोध के मुख्य उदाहरण के रूप में देखा जाता है- जोकि तथ्यों के विवेचनात्मक उपागम का प्रयोग करता है, 'चीजों' का अध्ययन उनके सन्दर्भ के अन्तर्गत करता है और लोग अपनी परिस्थितियों का जो वस्तुगत अर्थ लगाते हैं को विचार करता है। किसी विशिष्ट शोध प्रारूप को गुणात्मक या गणनात्मक पद्धति से जोड़ना भ्रान्तिपूर्ण या गलत है। वैयक्तिक अध्ययन प्रारूप की एक सम्मानित हस्ती यिन (1993) ने वैयक्तिक अध्ययन के लिये गुणात्मक/गणनात्मक विभेद की अप्रासंगिकता पर जोर दिया है। उनका कहना है कि वैयक्तिक अध्ययन पद्धति तथ्य संकलन के किसी विशिष्ट स्वरूप को अन्तर्निहित नहीं करती है। वह गुणात्मक या गणनात्मक कोई भी हो सकती है (1993 : 32)।

न्यूयार्क युनिवर्सिटी की फैकल्टी क्लास वेबसाइट (पृ- 11-9) में 'शोध प्रारूप क्या है' अध्याय के अन्तर्गत व्याख्या में संशयवादी उपागम को अपनाने की आवश्यकता का उल्लेख करते हुए लिखा गया है कि, "शोध प्रारूप की आवश्यकता शोध के संशयवादी उपागम के तने और इस दृष्टिकोण से कि वैज्ञानिक ज्ञान हमेशा अस्थायी होता है, से निकलती है। शोध प्रारूप का उद्देश्य शोध के बहु साक्ष्यों की अस्पष्टता को कम करना होता है।"

हम हमेशा कुछ साक्ष्यों को लगभग सभी सिद्धान्तों के साथ निरन्तर पा सकते हैं। जबकि हमें साक्ष्यों के प्रति संशयपूर्ण होना चाहिए, और बजाये उन साक्ष्यों को प्राप्त करना जो हमारे सिद्धान्त के साथ निरन्तर उपलब्ध हों। हमें ऐसे साक्ष्यों को प्राप्त करना चाहिए, जो सिद्धान्त के अकाट्य परीक्षण को प्रदान करते हों।

शोध प्रारूप निर्मित करते समय यह आवश्यक है कि हमें आवश्यक साक्ष्यों के प्रकारों को चिन्हित कर लेना चाहिए, जिससे कि शोध प्रश्नों का उत्तर विश्वासोत्पादक हो। इसका तात्पर्य यह है कि हमें मात्र उन साक्ष्यों को इकट्ठा नहीं करना चाहिए, जो किसी विशिष्ट सिद्धान्त या व्याख्या के साथ लगातार बने हुए हों। शोध इस प्रकार से संरचित किया जाना चाहिए कि उससे साक्ष्य वैकल्पिक प्रतिस्पर्धी व्याख्या दें और हमें यह चिन्हित करने में सक्षम बनाये कि कौन सी प्रतिस्पर्धी व्याख्या आनुभविक रूप से ज्यादा अकाट्य है। इसका यह भी तात्पर्य है कि हमें अपने प्रिय सिद्धान्त के समर्थन वाले साक्ष्यों को ही मात्र नहीं देखना चाहिए। हमें उन साक्ष्यों को भी देखना चाहिए, जिनमें यह क्षमता हो कि वे हमारी वरीयतापूर्ण व्याख्या को नकार सकें। (एन.वाई.यू., (208 : 15)

11.7 शोध प्रारूप के प्रकार

शोध प्रारूपों के कई प्रकार होते हैं। विविध विद्वानों ने शोध प्रारूपों के कुछ तो एक समान और कुछ अलग प्रकार के प्रकारों का उल्लेख किया है। उदाहरण के लिये सुसन कैरोल (208:1) ने शोध प्रारूप के आठ प्रकारों का उल्लेख किया है। ये हैं-

1. ऐतिहासिक शोध प्रारूप (Historical Research Design)
2. वैयक्तिक और क्षेत्र शोध प्रारूप (Case and Field Research Design)
3. विवरणात्मक या सर्वेक्षण शोध प्रारूप (Descriptive or Survey Research Design)
4. सह सम्बन्धात्मक या प्रत्याशित शोध प्रारूप (Correlational or Prospective Research Design)
5. कारणात्मक, तुलनात्मक या एक्स पोस्ट फैक्टो शोध प्रारूप (Causal Comparative or Ex-Post Facto Research Design)
6. विकासात्मक या समय श्रेणी शोध प्रारूप (Developmental or Time Series Research Design)
7. प्रयोगात्मक शोध प्रारूप (Experimental Research Design)
8. अर्द्ध प्रयोगात्मक शोध प्रारूप (Quasi Experimental Research Design)

न्यूयार्क युनिवर्सिटी की फैकल्टी क्लास वेबसाइट (208 : 8) में 'शोध प्रारूप क्या है' अध्याय के अन्तर्गत चार प्रकार के शोध प्रारूपों का उल्लेख किया गया है-

1. प्रयोगात्मक (Experimental)
2. वैयक्तिक अध्ययन (Case Study)
3. अनुदैर्घ्य प्रारूप (Longitudinal)
4. अनुप्रस्थ काट प्रारूप (Cross-Sectional Design)

कुछ विद्वानों ने अनेकों प्रकारों का उल्लेख किया है। जो कुछ भी हो मोटे तौर पर शोध प्रारूपों को चार महत्वपूर्ण प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है-

1. विवरणात्मक प्रारूप या वर्णनात्मक शोध प्रारूप।
2. व्याख्यात्मक प्रारूप
3. अन्वेषणात्मक प्रारूप, और
4. प्रयोगात्मक प्रारूप

किसी विशिष्ट प्रारूप का चयन शोध की प्रकृति पर मुख्यतः निर्भर करता है। कौन सी सूचना चाहिए, कितनी विश्वसनीय सूचना चाहिए, प्रारूप की उपयुक्तता क्या है, लागत कितनी आयेगी, इत्यादि कारकों पर भी प्रारूप चयन निर्भर करता है।

11.7.1 विवरणात्मक या वर्णनात्मक शोध प्रारूप

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इस प्रारूप में अध्ययन विषय के सम्बन्ध में प्राप्त सभी प्राथमिक तथ्यों का यथावत विवरण प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रारूप का मुख्य उद्देश्य अध्ययन की जा रही इकाई, संस्था, घटना, समुदाय या समाज इत्यादि से सम्बन्धित पक्षों का हूबहू वर्णन किया जाता है। यह प्रारूप वैसे तो अत्यन्त सरल लगता है किन्तु यह दृढ़ एवं अलचीला होता है इसमें विशेष सावधानी अपेक्षित होती है। इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए कि निदर्शन पर्याप्त एवं प्रतिनिधित्वपूर्ण हो। प्राथमिक तथ्य संकलन की प्रविधि सटीक हो तथा प्राथमिक तथ्य संकलन में किसी भी प्रकार से पूर्वाग्रह या मिथ्या झुकाव न आने पाये। अध्ययन समस्या के विषय में व्यापक तथ्यों को इकट्ठा किया जाता है, इसलिये ऐसी सतर्कता बरतनी चाहिए कि अनुपयोगी एवं अनावश्यक तथ्यों का संकलन न होने पाये। अध्ययन पूर्ण एवं यथार्थ हो और अध्ययन समस्या का वास्तविक चित्रण हो इसके लिये विश्वसनीय तथ्यों का होना नितान्त आवश्यक है।

वर्णनात्मक शोध का उद्देश्य मात्र अध्ययन समस्या का विवरण प्रस्तुत करना होता है। इसमें नवीन तथ्यों की खोज या कार्य-कारण व्याख्या पर जोर नहीं दिया जाता है। इस प्रारूप में किसी प्रकार करके प्रयोग भी नहीं किये जाते हैं। इसमें अधिकांशतः संभावित निदर्शन का ही प्रयोग किया जाता है। इसमें तथ्यों के विश्लेषण में क्लिष्ट सांख्यिकीय विधियों का भी प्रयोग सामान्यतः नहीं किया जाता है।

इसमें शोध विषय के बारे में शोधकर्ता को अपेक्षाकृत यथेष्ट जानकारी रहती है इसलिये वह शोध संचालन सम्बन्धी निर्णयों को पहले ही निर्धारित कर लेता है। वर्णनात्मक शोध प्रारूप के अलग से कोई चरण नहीं होते हैं। सामान्यतः सामाजिक अनुसंधान के जो चरण हैं, उन्हीं का इसमें पालन किया जाता है। सम्पूर्ण एकत्रित प्राथमिक सामग्री के आधार पर ही अध्ययन सम्बन्धित निष्कर्ष निकाले जाते हैं एवं आवश्यकतानुसार सामान्यीकरण प्रस्तुत किये जाने का प्रयास किया जाता है।

11.7.2 व्याख्यात्मक शोध प्रारूप

शोध समस्या की कारण सहित व्याख्या करने वाला प्रारूप व्याख्यात्मक शोध प्रारूप कहलाता है। व्याख्यात्मक शोध प्रारूप की प्रकृति प्राकृतिक विज्ञानों की प्रकृति के समान ही होती है, जिसमें किसी भी वस्तु, घटना या परिस्थिति का विश्लेषण ठोस कारणों के आधार पर किया जाता है। सामाजिक तथ्यों की कार्य-कारण व्याख्या यह प्रारूप करता है। इस प्रारूप में विविध उपकल्पनाओं का परीक्षण किया जाता है तथा परिवर्त्यों में सम्बन्ध और सहसम्बन्ध ढूँढने का प्रयास किया जाता है।

11.7.3 अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप

जब सामाजिक अनुसंधान का मुख्य उद्देश्य अध्ययन समस्या के सम्बन्ध में नवीन तथ्यों को उद्घाटित करना हो तो इस प्रारूप का प्रयोग किया जाता है। इसमें अध्ययन समस्या के वास्तविक कारकों एवं तथ्यों का पता नहीं होता है। अध्ययन के द्वारा उनका पता लगाया जाता है। चूँकि इसमें कुछ 'नया' खोजा जाता है इसलिये इसे अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप कहा जाता है। इस प्रारूप द्वारा सिद्धान्त का निर्माण होता है।

कभी-कभी अन्वेषणात्मक और व्याख्यात्मक शोध प्रारूप को एक ही मान लिया जाता है। कई विद्वानों ने तो व्याख्यात्मक शोध प्रारूप का उल्लेख तक नहीं किया है। सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो यह कहा जा सकता है कि जिस सामाजिक शोध में कार्य-कारण सम्बन्धों पर बल देने की कोशिश की जाती है, वह व्याख्यात्मक शोध प्रारूप के अन्तर्गत आता है, और जिसमें नवीन तथ्यों या कारणों द्वारा विषय को स्पष्ट किया जाता है, उसे अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप के अन्तर्गत रखते हैं। इसमें शोधकर्ता को अध्ययन विषय के बारे में सूचना नहीं रहती है। द्वितीयक स्रोतों के द्वारा भी वह उसके विषय में सीमित ज्ञान ही प्राप्त कर पाता है। अज्ञात तथ्यों की खोज करने के कारण या विषय के सम्बन्ध में अपूर्ण ज्ञान रखने के कारण इस प्रकार के शोध प्रारूप में सामान्यतः उपकल्पनाएँ निर्मित नहीं की जाती हैं। उपकल्पनाओं के स्थान पर शोध प्रश्नों का निर्माण किया जाता है और उन्हीं शोध प्रश्नों के उत्तरों की खोज द्वारा शोध कार्य सम्पन्न किया जाता है।

विलियम जिकमंड (1988 : 63) ने अन्वेषणात्मक शोध के तीन उद्देश्यों का वर्णन किया है:

1. परिस्थिति का निदान करना
2. विकल्पों को छाँटना तथा,
3. नये विचारों की खोज करना।

सरनताकोस (1988) के अनुसार संभाव्यता, सुपरिचितिकरण, नवीन विचार, समस्या के निरूपण तथा परिचालीकरण के कारण अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप को अपनाया जाता है।

वास्तव में जहोदा तथा अन्य (1949 : 33) ने ठीक ही कहा है कि, "अन्वेषणात्मक अनुसंधान अनुभव को प्राप्त करने के लिये आवश्यक है जो कि अधिक निश्चित खोज के लिये उपयुक्त उपकल्पना के निर्माण में सहायक हो।"

सामाजिक समस्या के अन्तर्निहित कारणों को खोजने के कारण इस प्रारूप में लचीलापन होना जरूरी है। इसमें तथ्यों की प्रकृति अधिकांशतः गुणात्मक होती है, इसलिये अधिक से अधिक तथ्यों एवं सूचनाओं को प्राप्त करने की कोशिश की जाती है। तथ्य संकलन की प्रविधि इसकी प्रकृति के अनुरूप ही होनी चाहिए। समय और साधन का भी ध्यान रखना चाहिए।

11.7.4 प्रयोगात्मक शोध प्रारूप

ऐसा शोध प्रारूप जिसमें अध्ययन समस्या के विश्लेषण हेतु किसी न किसी प्रकार का 'प्रयोग' समाहित हो, प्रयोगात्मक शोध प्रारूप कहलाता है। यह प्रारूप नियंत्रित स्थिति में जैसे कि प्रयोगशालाओं में ज्यादा उपयुक्त होता है। सामाजिक अध्ययनों में सामान्यतः प्रयोगशालाओं का प्रयोग नहीं होता है। उनमें नियंत्रित समूह और अनियंत्रित समूहों के आधार पर प्रयोग किये जाते हैं। इस प्रकार के प्रारूप का प्रयोग ग्रामीण समाजशास्त्र और विशेषकर कृषि सम्बन्धी अध्ययनों में ज्यादा होता है। वैसे औद्योगिक समाजशास्त्र में वेस्टर्न इलेक्ट्रिक कम्पनी के हाथोर्न वर्क्स में हुए प्रयोग काफी चर्चित रहे हैं। ग्रामीण प्रयोगात्मक अध्ययनों में प्रयोगों के आधार पर यह पता लगाया जाता है कि संचार माध्यमों का क्या प्रभाव पड़ रहा है, योजनाओं का लाभ लेने वालों और न लेने वालों की सामाजिक-आर्थिक प्रस्थिति में क्या अन्तर आया है, इत्यादि इत्यादि। इसी प्रकार के बहुत से विषयों/प्रभावों को इस प्रारूप के द्वारा स्पष्ट करने की कोशिश की जाती है। परिवर्त्यों के बीच कारणात्मक सम्बन्धों का परीक्षण इसके द्वारा प्रामाणिक तरीके से हो पाता है।

निष्कर्ष : उपरोक्त समस्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि शोध प्रारूप सामाजिक अनुसंधान की एक वृहत् योजना, एक संरचना तथा प्रणाली है जो शोध सम्बन्धी प्रश्नों का न केवल उत्तर देती है अपितु प्रसरणों का नियन्त्रण भी करती है। यह शोध के एक महत्वपूर्ण अंश की तार्किक एवं सुव्यवस्थित योजना तथा निर्देशन है। यह किसी जाँच

की संरचना होती है तथा यह तार्किक विषय होता है। सम्पूर्ण शोध प्रक्रिया में प्रश्नों के गठन से लेकर, निदर्शन प्रक्रिया, तथ्य संकलन की प्रविधियों के चयन तथा प्राथमिक तथ्यों के संकलन और तत्पश्चात् विश्लेषण में शोध प्रारूप की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। शोध प्रारूप का उद्देश्य शोध को स्पष्ट एवं निश्चित दिशा में निर्देशित करते हुए क्रियान्वित करना होता है। यह न केवल शोध प्रश्नों के सटीक उत्तर देता अपितु अध्ययन समस्या से सम्बन्धित आनुभविक प्रमाणों को वैज्ञानिक प्रविधियों के द्वारा उपलब्ध भी कराता है। शोध प्रारूप के अनेकों प्रकारों का विद्वानों ने उल्लेख किया है। चार प्रमुख प्रकारों यथा- विवरणात्मक या वर्णनात्मक, व्याख्यात्मक, अन्वेषणात्मक और प्रयोगात्मक का संक्षिप्त विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि विवरणात्मक शोध प्रारूप का मुख्य उद्देश्य अध्ययन विषय का पूर्ण एवं यथार्थ विवरण प्रस्तुत करना होता है। व्याख्यात्मक प्रारूप में कार्य-कारण सम्बन्ध पर बल दिया जाता है, वहीं अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप का मुख्य उद्देश्य किसी सामाजिक घटना/परिस्थिति के अन्तर्निहित कारणों को ढूँढना होता है। इसमें अध्ययन समस्या के अन्जान पक्षों को उद्घाटित किया जाता है। सिद्धान्त निर्माण में यह प्रारूप सहायक होता है सामान्यतः इस प्रकार के प्रारूप में उपकल्पना का निर्माण न करके शोध प्रश्नों को रखा जाता है। प्रयोगात्मक शोध प्रारूप में नियन्त्रित परिस्थिति में अवलोकन करते हुए मानवीय सम्बन्धों का क्रमबद्ध अध्ययन किया जाता है। इसमें विषय की आवश्यकतानुसार स्वतन्त्र और आश्रित चरों का परीक्षण भी किया जाता है। इसके लिए मानवीय हस्तक्षेप द्वारा प्रभाव स्थितियों को निर्मित किया जाता है। तत्पश्चात् आश्रित चरों पर इसके प्रभाव का अवलोकन किया जाता है। शोध प्रारूप की केन्द्रीय भूमिका तथ्यों से गलत कारणानात्मक निष्कर्षों को निकालने की सम्भावना को न्यूनतम करना होता है। इसके द्वारा यह सुनिश्चित होता है कि जो साक्ष्य इकट्ठे किये गये हैं वे प्रश्नों के उत्तर देने में या सिद्धान्तों के परीक्षण में यथासम्भव स्पष्ट होंगे।

11.8 उपकल्पना का अर्थ एवं परिभाषाएँ

किसी भी अनुसंधान और सर्वेक्षण के समस्या के चुनाव के बाद अनुसंधानकर्ता समस्या के बारे में कार्य-कारण सम्बन्धों का पूर्वानुमान लगा लेता है या पूर्व चिन्तन कर लेता है यह पूर्व चिन्तन या पूर्वानुमान ही प्राक्कल्पना, परिकल्पना या 'उपकल्पना' कहलाती जॉर्ज लुण्डबर्ग ने अपनी पुस्तक "Social Research" में उपकल्पना को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "उपकल्पना एक सामयिक तथा काम चलाऊ सामान्यीकरण अथवा निष्कर्ष है जिसकी सत्यता की परीक्षा करना शेष है। अपने बिल्कुल प्रारम्भिक चरणों में उपकल्पना कोई मनगढ़न्त अनुमान, कल्पनापूर्ण विचार अथवा सहजज्ञान, इत्यादि कुछ भी हो सकता है, जो क्रिया अथवा अनुसंधान का आधार बन जाता है।" एफ.एन. कर्लिगर का कहना है, "एक उपकल्पना दो या दो से अधिक परिवर्तों के बीच सम्बन्ध प्रदर्शित करने वाला एक अनुमानात्मक कथन है।" पी.वी. यंग के अनुसार, "एक कार्यवाहक उपकल्पना एक कार्यवाहक केन्द्रीय विचार है जो उपयोगी अध्ययन का आधार बन जाता है।" उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह सुगमतापूर्वक विश्लेषित किया जा सकता है कि उपकल्पना एक ऐसा कार्यकारी तर्क-वाक्य, कल्पनात्मक धारणा या पूर्वानुमान होता है जिसे अनुसंधानकर्ता अनुसंधान की प्रकृति के आधार पर पहले से निर्मित कर लेता है एवं अनुसंधान के दौरान उसकी वैधता की परीक्षा करता है। यह उपकल्पना सत्य एवं असत्य दोनों हो सकती है। यदि अनुसंधान में संकलित एवं विश्लेषित किए गए तथ्यों के आधार पर उपकल्पना प्रमाणित हो जाती है एवं इसी प्रकार की उपकल्पनाएँ अनेक बार, अनेक स्थानों पर अर्थात् समय व काल से परे प्रमाणित होती जाती हैं तो वे धीरे- धीरे एक सिद्धान्त के रूप में प्रतिस्थापित हो जाती हैं।

11.9 उपकल्पना की विशेषताएँ

गुडे एवं हॉट ने सामाजिक अनुसंधान में उपयोगी उपकल्पना की विशेषताओं की विवेचना की है, जो निम्नलिखित है :- स्पष्टता : उपकल्पनाओं का अवधारणात्मक रूप में स्पष्ट होना परमावश्यक है। उपकल्पना की स्पष्टता में, गुडे तथा हॉट के अनुसार, दो बातें सम्मिलित हैं एक तो यह कि उपकल्पना में निहित अवधारणाओं को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाए और दूसरी यह कि परिभाषाएँ ऐसी स्पष्ट भाषा में लिखी जाएँ कि अन्य लोग भी सामान्यतः उसका सही अर्थ समझ सकें। अनुभवाश्रित सन्दर्भ : इस विशेषता का तात्पर्य यह है कि वही उपकल्पना वैज्ञानिक अनुसंधान में प्रयुक्त की जा सकती है जिसमें कि आदर्शात्मक निर्णय का पुट नहीं है। इसका अर्थ यह है कि वैज्ञानिक को अपनी उपकल्पना में किसी आदर्श को प्रस्तुत करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। अपितु उसका सम्बन्ध ऐसे विचार या ऐसी अवधारणा से होना चाहिए जिसकी सत्यता की परीक्षा वास्तविक प्रयोग अथवा वास्तविक तथ्यों के आधार पर की जा सके। विशिष्टता : उपकल्पना अगर अत्यन्त सामान्य है तो उससे यथार्थ निष्कर्ष तक पहुँचना संभव नहीं होता है; क्योंकि किसी विषय के सभी पक्षों का वैज्ञानिक अध्ययन हम एक ही समय पर नहीं कर सकते, अतः यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि उपकल्पना अध्ययन-विषय के किसी विशेष पहलू से सम्बद्ध हो; अगर उसमें विशिष्टता का गुण नहीं हुआ तो उसकी सत्यता की जाँच करना भी कठिन हो जाता है, और जो उपकल्पना जाँच से परे है वह वैज्ञानिक के लिए निरर्थक भी है। उपलब्ध प्रविधियों से सम्बद्ध उपकल्पना का निर्माण इस बात को ध्यान में रखते हुए करना चाहिए कि उसकी सत्यता की जाँच उपलब्ध प्रविधियों द्वारा संभव हो। इसका तात्पर्य यह है कि उपकल्पना इस प्रकार की हो कि वह अनुसंधान का एक सामयिक आधार भी बन सकती है या नहीं, इसकी परीक्षा उपलब्ध प्रविधियों द्वारा की जा सके। सिद्धान्त समूह से सम्बद्ध : उपकल्पना अध्ययन विषय से सम्बद्ध किसी पूर्वस्थापित सिद्धान्त के क्रम में हो क्योंकि असम्बद्ध उपकल्पनाओं की परीक्षा विस्तृत सिद्धान्तों के सन्दर्भ में ही की जा सकती है।

11.10 उपकल्पना के प्रकार

एक अनुसंधानकर्ता के लिए इस बात की जानकारी भी आवश्यक है कि सामाजिक विज्ञानों में किन-किन प्रकारों की उपकल्पनाओं का प्रयोग किया जाता है। सामाजिक यथार्थ की जटिल एवं अमूर्त प्रकृति के कारण उपकल्पनाओं का कोई एक सर्वमान्य वर्गीकरण प्रस्तुत करना संभव नहीं है। अतः अनेक विद्वानों ने अपने-अपने मतानुसार उपकल्पनाओं को वर्गीकृत किया है। मैक गुडगन ने तीन प्रकार की उपकल्पनाएँ बताई हैं - सार्वभौमिक (Universal) इस वर्ग में वे उपकल्पनाएँ सम्मिलित की जाती हैं जिनका अध्ययन किया जाने वाला सम्बन्ध सभी चरों से सभी समय तथा सभी स्थानों पर रहता है। अस्तित्वात्मक (Existential): ऐसी उपकल्पना जो कम से कम एक मामले में चरों के अस्तित्व को उचित घोषित कर सके। हेज ने दो प्रकार की उपकल्पनाएँ बताई हैं : सरल उपकल्पना इसमें किन्हीं दो चरों में सहसम्बन्ध ज्ञात करते हैं। जटिल उपकल्पना इसमें एक से अधिक चर होते हैं तथा उनमें सहसम्बन्ध ज्ञात करने के लिये उच्च सांख्यिकीय प्रविधियों का प्रयोग करते हैं। वैज्ञानिक अनुसंधान में उपकल्पना को सिद्ध करना वैज्ञानिक का मुख्य कार्य है। वैज्ञानिक अस्तित्वात्मक उपकल्पना द्वारा अपनी अनुसंधानिक उपकल्पना को सिद्ध करने में अधिक सफल रह सकता है तथा वह किसी घटना के अस्तित्व को स्थापित करता है। तत्पश्चात् वह अध्ययन की जाने वाली घटना का सामान्यीकरण करना चाहता है। किसी विशिष्ट घटना का अस्तित्वात्मक उपकल्पना द्वारा अध्ययन अथवा निरीक्षण करना कठिन कार्य है। इसी कारण अति विशिष्ट उपकल्पना से सार्वभौमिक उपकल्पना बनाने में यह कठिनाई अनुभव करता है। वैज्ञानिक का मुख्य कार्य

यह स्थापित करना होता है कि किन विशेष दशाओं में कोई घटना उत्पन्न होती है जिससे वह आवश्यक दशाओं को पाकर सार्वभौमिक उपकल्पनाओं का निर्माण कर सके। अनुसंधानों में सार्वभौमिक कथनों की भी आवश्यकता होती है। सार्वभौमिक कथनों में पुर्वानुमान मूल्य अधिक होता है। अतएव इस प्रकार के कथन अनुसंधान में अधिक महत्वपूर्ण है। (क) सकारात्मक कथन इसमें उपकल्पना का कथन सकारात्मक रूप में करते हैं; जैसे वर्ग 'अ' की बुद्धिलब्धि वर्ग 'ब' से अधिक है। (ख) नकारात्मक कथन इस प्रकार की उपकल्पना में कथन नकारात्मक होता है; जैसे वर्ग 'अ' की बुद्धिलब्धि वर्ग 'ब' से अधिक नहीं है। इन दोनों प्रकार की उपकल्पनाओं को निर्देशित उपकल्पना कहते हैं। इनमें एक दोष यह होता है कि जब अनुसंधानकर्ता एक कथन सकारात्मक अथवा नकारात्मक रूप में कर देता है तो उसमें उनके स्वनिहित हो जाने की संभावना रहती है। शून्य उपकल्पना (Null Hypothesis): इसमें यह मानकर चलते हैं कि दो चर जिनमें सम्बन्ध ज्ञात करने जा रहे हैं उनमें कोई अन्तर नहीं है। नल (Null) जर्मन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ होता है "शून्य"। अतः इस उपकल्पना को शून्य उपकल्पना भी कहते हैं उदाहरणार्थ वर्ग 'अ' और वर्ग 'ब' की बुद्धिलब्धि में कोई अंतर नहीं है। शून्य उपकल्पना को नकारात्मक उपकल्पना इस अर्थ में मानते हैं कि इसमें यह मानकर चलते हैं कि दो चरों में कोई सम्बन्ध नहीं है अथवा दो समूहों में किसी विशेष चर के आधार का कोई अन्तर नहीं है। गुडे एवं हॉट ने "Methods in Social Research" में उपकल्पनाओं के तीन प्रकारों का उल्लेख किया है: आनुभविक एकरूपताओं सम्बन्धी (Related to Empirical Uniformities): समाज और संस्कृति में अनेक कहावतें, मुहावरें, लोकोक्तियाँ होती हैं जिनको उससे सम्बन्धित सभी लोग जानते हैं तथा सत्य मानते हैं। सामाजिक अनुसंधानकर्ता उन्हीं को उपकल्पना बनाकर अवलोकनों, आनुभविक तथ्यों तथा आँकड़ों को एकत्र करके उनकी जाँच करते हैं और निष्कर्ष के रूप में उन्हें प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार की उपकल्पनाएँ सामान्य ज्ञान पर आधारित कथनों का आनुभविक तथ्यों द्वारा परीक्षण करती हैं। आदर्श प्रारूपों सम्बन्धी (Related to Complex Ideal Types) : कुछ उपकल्पनाएँ जटिल आदर्श प्रारूपों से सम्बन्धित होती हैं। इन उपकल्पनाओं का उद्देश्य आनुभविक समरूपताओं के बीच तार्किक आधार पर निकाले गये सम्बन्धों का परीक्षण करना है। इन उपकल्पनाओं का उद्देश्य तथा कार्य उपकरणों तथा समस्याओं का निर्माण करना है। इसमें आगे जटिल क्षेत्रों में अनुसंधान करने के लिए सहायता मिलती है। आदर्श प्रारूप से सम्बन्धित उपकल्पनाओं की जाँच तथ्य एकत्र करके की जाती है; और तत्पश्चात् निष्कर्ष निकाले जाते हैं। उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय Page 34 Page 35

विश्लेषणात्मक चरों सम्बन्धी (Related to Analytical Variables): यह उपकल्पना चरों के तार्किक विश्लेषण के अतिरिक्त विभिन्न चरों में परस्पर क्या गुण सम्बन्ध हैं, उसका भी विशेष रूप से विश्लेषण करती है। विभिन्न चर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। इन प्रभावों का तार्किक आधार ढूँढ़ना इन उपकल्पनाओं का उद्देश्य है। विश्लेषणात्मक चरों से सम्बन्धित उपकल्पनाएँ अमूर्त प्रकृति की होती हैं। प्रयोगात्मक अनुसंधान में इन उपकल्पनाओं का विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है।

11.11 उपकल्पना निर्माण के स्रोत

सामान्यतः, सामाजिक विज्ञानों में उपकल्पनाओं के दो प्रमुख स्रोतों का उल्लेख किया गया है:- वैयक्तिक या निजी स्रोत- इसमें अनुसंधानकर्ता की अपनी स्वयं की अन्तर्दृष्टि, सूझ-बूझ, विचार, अनुभव कुछ भी हो सकता है। वह सामान्यतया अपनी प्रतिभा तथा अनुभवों के आधार पर उपकल्पना का निर्माण कर सकता है। बाह्य स्रोत - इसमें कोई भी साहित्य, कल्पना, कहानी, कविता, नाटक, उपन्यास आदि कुछ भी हो सकता है जो कि उपकल्पना का स्रोत होता है। गुडे एवं हॉट ने Methods in Social Research में उपकल्पना के चार स्रोतों का उल्लेख किया है

:- सामान्य संस्कृति : व्यक्तियों की गतिविधियों को समझने का सबसे अच्छा तरीका उनकी संस्कृति को समझना है। व्यक्तियों का व्यवहार एवं उनका सामान्य चिन्तन, एक सीमा तक उनकी अपनी संस्कृति के अनुरूप ही होता है। अतः अधिकांश उपकल्पनाओं का मूल स्रोत वह सामान्य संस्कृति होती है, जिसमें विशिष्ट विज्ञान का विकास होता है। सामान्य संस्कृति को तीन प्रमुख भागों में बाँटकर समझा जा सकता है :- (i) सांस्कृतिक पृष्ठभूमि (ii) सांस्कृतिक चिन्ह (iii) सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन। सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का तात्पर्य है कि जिस सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में हम रहते हैं उस संस्कृति की जो विशेषताएँ हैं वह उपकल्पना का स्रोत बन सकती है जैसे भारत व ब्रिटेन की पृथक-पृथक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि। सांस्कृतिक चिन्ह के अन्तर्गत लोक विश्वास, लोक कथाएँ उपकल्पना का स्रोत हो सकती हैं। सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों के कारण परिवर्तित सांस्कृतिक मूल्य भी उपकल्पना के स्रोत बन सकते हैं। वैज्ञानिक सिद्धान्त : वैज्ञानिक सिद्धान्त जो समय-समय पर वैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं, भी उपकल्पना के स्रोत हो सकते हैं। प्रत्येक विज्ञान में अनेकों सिद्धान्त होते हैं। इन सिद्धान्तों से हमें एक विषय के विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है। इस प्रकार इन सिद्धान्तों के अन्तर्गत सम्मिलित पक्षों के सम्बन्ध में प्राप्त ज्ञान भी उपकल्पनाओं का स्रोत माना जा सकता है। सादृश्यताएँ : जब कभी दो क्षेत्रों में कुछ समानताएँ या समरूपताएँ दिखाई देती हैं तो, सामान्यतया, इस आधार पर भी उपकल्पनाओं का निर्माण कर लिया जाता है; अर्थात्, ऐसी समरूपताएँ भी उपकल्पना के लिये स्रोत बन जाती हैं। कभी-कभी दो तथ्यों के मध्य समानता के कारण नई उपकल्पना का जन्म होता है, और इनकी प्रेरणा का कारण सादृश्यताएँ होती हैं। व्यक्तिगत अनुभव : व्यक्तिगत अनुभव भी उपकल्पना का महत्वपूर्ण स्रोत है। न्यूटन ने पेड़ से गिरने वाले सेब को देखकर गुरुत्वाकर्षण के महान सिद्धान्त की रचना की। इसी प्रकार, डार्विन को जीवन संघर्ष एवं उपयुक्त व्यक्ति की जीवन क्षमता का सिद्धान्त स्थापित करने में अपने व्यक्तिगत अनुभवों पर ही उपकल्पनाओं का निर्माण करना पड़ा था।

11.12 उपकल्पना का महत्व

अनुसंधान में उपकल्पना के महत्व को अनेक प्रकार से दर्शाया गया है। विद्वान इसकी तुलना ध्रुवतारे एवं कुतुबनुमा से करते हैं, तो कुछ विद्वान समुद्र में जहाजों को रास्ता दिखलाने वाले प्रकाश स्तम्भ से जो वैज्ञानिकों को भटकने से बचाते हैं। इसी के द्वारा अनुसंधानकर्ता सत्य और असत्य की पुष्टि करता है एवं विषय से सम्बन्धित वास्तविकता का पता लगाता है। उपकल्पना के महत्व की विवेचना हम इस प्रकार कर सकते हैं:- अध्ययन के उद्देश्य का निर्धारण : उपकल्पना हमारे अध्ययन के उद्देश्य को निर्धारित करती है। उपकल्पनाएँ हमें यह बताती हैं कि हमें किन तथ्यों का संकलन करना है और किनका नहीं, कौन से तथ्य हमारे उद्देश्य के अनुरूप और सार्थक हैं तथा कौन से निरर्थक। अध्ययन को उचित दिशा प्रदान करना : उपकल्पनाएँ अनुसंधानकर्ता का ध्यान अध्ययन-विषय के एक विशिष्ट पहलू पर केन्द्रित कर देती हैं और अनुसंधानकर्ता उसी के अनुसार एक निश्चित दिशा की ओर बढ़ता चला जाता है। उपकल्पना के आधार पर अनुसंधानकर्ता यह जानता है कि उसे क्या करना है और क्या नहीं करना है ? वास्तव में ठीक-ठीक उपकल्पना का निर्माण कर लेने से न केवल अध्ययन क्षेत्र का ही अपितु लक्ष्य का भी, स्पष्टीकरण हो जाता है और अनुसंधानकर्ता का प्रत्येक प्रयास उद्देश्यपूर्ण हो जाता है। अध्ययन क्षेत्र को सीमित करना : तथ्यों की दुनियां बहुत बड़ी है और किसी भी अनुसंधानकर्ता के लिये यह संभव नहीं है कि वह एक विषय से सम्बद्ध सभी पहलुओं का एक ही समय पर अध्ययन करे, अगर ऐसा किया गया तो अध्ययन विषय के सम्बन्ध में कोई भी विशिष्ट व यथार्थ ज्ञान हमें प्राप्त नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में उपकल्पना अध्ययन क्षेत्र को सीमित कर अध्ययन विषय के एक विशिष्ट पहलू पर अनुसंधानकर्ता का ध्यान आकर्षित करती रहती है। तथ्यों के संकलन में सहायक : उपकल्पना अनुसंधानकर्ता को समस्या से सम्बन्धित उपयुक्त तथ्यों को संकलित करने को

प्रेरित करती है। प्रारम्भ में ऐसा भी हो सकता है कि वैचारिक अस्पष्टता के कारण हम सभी तथ्यों को एकत्रित कर लेते हैं किन्तु बाद में उनमें से हमें कुछ विशिष्ट तथ्यों का ही चुनाव करना पड़ता है। इस कार्य में उपकल्पना सहायक होती है। निष्कर्ष निकालने में सहायक जो भी वैज्ञानिक अध्ययन उपकल्पना के निर्माण में प्रारम्भ होता है। उसमें अध्ययन के अन्त में निष्कर्ष निकालने में उपकल्पना बहुत अधिक सहायक सिद्ध होती है क्योंकि तथ्यों का संकलन, वर्गीकरण और सारणीयन उपकल्पना को ध्यान में रखकर किया जाता है। इसके बाद जब निष्कर्ष निकाले जाते हैं तो उसमें यह देखा जाता है कि उपकल्पना सत्य है अथवा असत्य। उपकल्पना में जिन तथ्यों का परस्पर गुण सम्बन्ध दिया होता है उन्हीं की सत्यता की जाँच करके अध्ययनकर्ता निष्कर्ष रूप में प्रस्तुत करता है। सिद्धान्त निर्माण में सहायक उपकल्पना तथ्यों व सिद्धान्तों के बीच की कड़ी है, क्योंकि जब उपकल्पना सत्य सिद्ध हो जाती है तथा स्थापित हो जाती है तो वह एक सिद्धान्त का भाग बन जाती है।

11.13 उपकल्पना की सीमाएँ

उपकल्पनाएँ सामाजिक अनुसंधान में मार्गदर्शन की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। फिर भी यदि इसका प्रयोग सावधानी से नहीं किया गया तो यह अध्ययन के लिए खतरा भी पैदा कर सकती है इसकी सीमाएँ निम्नलिखित हैं :- अनुसंधान की असावधानियाँ: अनुसंधानकर्ता उपकल्पना के निर्माण के समय स्वयं की भावनाओं, पूर्वाग्रहों तथा इच्छाओं पर नियन्त्रण नहीं कर पाता है, इस असावधानी के कारण उपकल्पना में पक्षपात आ जाता है जिसके फलस्वरूप दोषपूर्ण परिणाम निकलते हैं। उपकल्पना को अंतिम मार्गदर्शक मानना अध्ययनकर्ता उपकल्पना को अंतिम मार्गदर्शक मान बैठता है, और जैसी उपकल्पना होती है उसी को ध्यान में रखकर तथ्यों को एकत्र करता है। अध्ययन क्षेत्र में स्वयं के विवेक को बिल्कुल काम में नहीं लेता है। इससे अध्ययन वैज्ञानिक नहीं रह पाता है। अध्ययन में पक्षपात: कई बार अनुसंधानकर्ता अपनी किसी विशिष्ट रुचि और संवेग के कारण एक विशेष अध्ययन-विषय का चुनाव करता है और उसके प्रति पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाता है। तब उसके द्वारा किया जाने वाला अध्ययन अवैज्ञानिक हो जाता है। उपकल्पना आधारित तथ्य प्रारम्भ में अध्ययनकर्ता उपकल्पना के आधार पर ही तथ्यों का संकलन करता है। उसे चाहिये कि वह वास्तविक तथ्यों के आधार पर अपनी उपकल्पना में संशोधन एवं परिवर्तन कर ले ऐसा न करने पर संकलित तथ्य असंगत एवं व्यर्थ सिद्ध होते हैं। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि उपकल्पना अपने आप में अनुसंधान में महत्वपूर्ण कार्य करती है; लेकिन थोड़ी सी असावधानी से वह हानिकारक सिद्ध हो सकती है। यंग का कहना है कि अध्ययनकर्ता को तथ्यों को सिद्ध करने की ओर ध्यान नहीं देना चाहिये; उसे तो परिस्थिती को सीखने तथा समझने की ओर ध्यान रखना चाहिए; अतः, उसे उपकल्पना के प्रति तटस्थ रहना चाहिए।

11.14 अवलोकन का अर्थ एवं विशेषतायें

अवलोकन शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द 'Observation' का पर्यायवाची है। जिसका अर्थ 'देखना, प्रेक्षण, निरीक्षण, अर्थात् कार्य-कारण एवं पारस्परिक सम्बन्धों को जानने के लिये स्वाभाविक रूप से घटित होने वाली घटनाओं का सूक्ष्म निरीक्षण है। प्रो० गडे एवं हॉट के अनुसार विज्ञान निरीक्षण से प्रारम्भ होता है और फिर सत्यापन के लिए अन्तिम रूप से निरीक्षण पर ही लौटकर आता है। और वास्तव में कोई वैज्ञानिक किसी भी घटना को तब तक स्वीकार नहीं करता जब तक कि वह स्वयं उसका अपनी इन्द्रियों से निरीक्षण नहीं करता। सी.ए. मोजर ने अपनी पुस्तक 'सर्वे मैथड्स इन सोशल इनवेस्टीगेशन' में स्पष्ट किया है कि अवलोकन में कानों तथा वाणी की अपेक्षा नेत्रों के प्रयोग की स्वतन्त्रता पर बल दिया जाता है। अर्थात्, यह किसी घटना को उसके वास्तविक रूप

में देखने पर बल देता है। श्रीमती पी.वी.यंग ने अपनी कृति "सांइटिफिक सोशल सर्वेज एण्ड रिसर्च" में कहा है कि "अवलोकन को नेत्रों द्वारा सामूहिक व्यवहार एवं जटिल सामाजिक संस्थाओं के साथ-साथ सम्पूर्णता की रचना करने वाली पृथक इकाईयों के अध्ययन की विचारपूर्ण पद्धति के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।" अन्यत्र श्रीमती यंग लिखती है कि "अवलोकन स्वतः विकसित घटनाओं का उनके घटित होने के समय ही अपने नेत्रों द्वारा व्यवस्थित तथा जानबूझ कर किया गया अध्ययन है।" इन परिभाषाओं में निम्न बातों पर बल दिया गया है।

(1) अवलोकन का सम्बन्ध कृत्रिम घटनाओं एवं व्यवहारों से न हो कर, स्वाभाविक रूप से अथवा स्वतः विकसित होने वाली घटनाओं से है।

(2) अवलोकनकर्ता की उपस्थिति घटनाओं के घटित होने के समय ही आवश्यक है ताकि वह उन्हें उसी समय देख सके।

(3) अवलोकन को सोच समझकर या व्यवस्थित रूप में आयोजित किया जाता है। उपरोक्त परिभाषाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि एक निरीक्षण विधि प्राथमिक सामग्री (Primary data) के संग्रहण की प्रत्यक्ष विधि है। निरीक्षण का तात्पर्य उस प्रविधि से है जिसमें नेत्रों द्वारा नवीन अथवा प्राथमिक तथ्यों का विचारपूर्वक संकलन किया जाता है।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर हम अवलोकन की निम्न विशेषतायें स्पष्ट कर सकते हैं।

1. मानवीय इन्द्रियों का पूर्ण प्रयोग- यद्यपि अवलोकन में हम कानों एवं वाक् शक्ति का प्रयोग भी करते हैं, परन्तु इनका प्रयोग अपेक्षाकृत कम होता है। इसमें नेत्रों के प्रयोग पर अधिक बल दिया जाता है। अर्थात्, अवलोकनकर्ता जो भी देखता है- वही संकलित करता है।
2. उद्देश्यपूर्ण एवं सूक्ष्म अध्ययन - अवलोकन विधि सामान्य निरीक्षण से भिन्न होती है। हम हर समय ही कुछ न कुछ देखते रहते हैं; परन्तु वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इसे अवलोकन नहीं कहा जा सकता। वैज्ञानिक अवलोकन का एक निश्चित उद्देश्य होता है; और उसी उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुये समाज वैज्ञानिक सामाजिक घटनाओं का अवलोकन करते हैं।
3. प्रत्यक्ष अध्ययन - अवलोकन पद्धति की यह विशेषता है कि इसमें अनुसंधानकर्ता स्वयं ही अध्ययन क्षेत्र में जाकर अवलोकन करता है, और वांछित सूचनायें एकत्रित करता है।
4. कार्य-कारण सम्बन्धों का पता लगाना- सामान्य अवलोकन में अवलोकनकर्ता घटनाओं को केवल सतही तौर पर देखता है, जबकि वैज्ञानिक अवलोकन में घटनाओं के बीच विद्यमान कार्य-कारण सम्बन्धों को खोजा जाता है ताकि उनके आधार पर सिद्धान्तों का निर्माण किया जा सके।
5. निष्पक्षता - अवलोकन में क्योंकि अवलोकनकर्ता स्वयं अपनी आँखों से घटनाओं को घटते हुये देखता है, अतः उसके निष्कर्ष निष्पक्ष होते हैं।
6. सामूहिक व्यवहार का अध्ययन - सामाजिक अनुसंधान में जिस प्रकार से व्यक्तिगत व्यवहार का अध्ययन करने के लिये "वैयक्तिक अध्ययन पद्धति" को उत्तम माना जाता है, उसी प्रकार से सामूहिक व्यवहार का अध्ययन करने के लिये अवलोकन विधि को उत्तम माना जाता है।

निरीक्षण प्रविधि की विशेषताएँ: मानव इन्द्रियों का प्रयोग निरीक्षण प्रविधि में मानवीन ज्ञानिन्द्रियों का पूर्ण उपयोग होता है। यद्यपि हम इस प्रविधि में कान व नाक शक्ति का भी प्रयोग करते हैं। परन्तु अपेक्षाकृत इनका प्रयोग कम होता है। विशेषकर नेत्रों के प्रयोग को महत्वपूर्ण माना गया है। निरीक्षण कर्ता जो कुछ देखता है नहीं संकलित कर लेता है। निश्चित उद्देश्य और सूक्ष्मता पूर्वक अध्ययन निरीक्षण प्रविधि में निरीक्षण सदैव उद्देश्यपूर्ण और सूक्ष्म होता है। इस रूप में यह सामान्य निरीक्षण से भिन्न है। प्रत्येक मनुष्य सदैव कुछ न कुछ

देखता है परन्तु वैज्ञानिक ऋणि से इसे निरीक्षण नहीं कहा जा सकता है। निरीक्षण का विशेष उद्देश्य होता है। और इसिलिये वह सूक्ष्म और गहन भी होता है। प्रत्यक्षता के आधार पर निरीक्षण प्रविधि की प्रमुख विशेषता यह है कि इसका प्रत्यक्ष निरीक्षण किया जा सकता है अनुसंधान कर्ता स्वयं ही अनुसंधान केन्द्र में जाता है। और निरीक्षण आंकड़ों का संकलन करता है। और यही प्रत्यक्ष अध्ययन है।

कार्य कारण में संबंध का पता लगाना इस प्रविधि की अन्य विशेषता यह है कि यह कार्य कारण में संबंध का पता लगाती हैं। यद्यपि किसी भी प्रकार के गहन या उद्देश्यपूर्ण निरीक्षण को हम निरीक्षण कर सकते हैं। परन्तु वैज्ञानिक पद्धति के रूप में इसका उद्देश्य कार्य कारण संबंध का पता लगाना होता है। व्यवहारिक और सामूहिक व्यवहार का अध्ययन निरीक्षण प्रविधि की अन्तिम महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इस प्रविधि का प्रयोग सामूहिक व्यवहार के अध्ययन के लिए किया जाता है। वैयक्ति व्यवहार की जिस जिस प्रकार सबसे अच्छी प्रविधि वैयक्तिक अध्ययन है। उसी प्रकार सामूहिक व्यवहार की अध्ययन की सबसे उत्तम प्रविधि है।

अवलोकन की प्रक्रिया: अवलोकन सोच समझ कर की जाने वाली क्रमबद्ध प्रक्रिया है। अतः अवलोकन प्रारम्भ करने से पूर्व, अवलोकनकर्ता अवलोकन के प्रत्येक चरण को सुनिश्चित कर लेता है।

प्रारम्भिक आवश्यकतायें: अवलोकनकर्ता को सर्व प्रथम अवलोकन की रूपरेखा बनाने के लिये यह निश्चित करना पड़ता है कि (1) उसे किसका अवलोकन करना है? (2) तथ्यों का आलेखन कैसे करना है? (3) अवलोकन का कौनसा प्रकार उपयुक्त होगा? (3) अवलोकनकर्ता व अवलोकित के मध्य सम्बन्ध किस प्रकार स्थापित किया जाना है?

पूर्व जानकारी-प्राप्त करना: इस चरण में अवलोकनकर्ता निम्न जानकारी पूर्व में प्राप्त कर लेता है। (1) अध्ययन क्षेत्र की इकाईयों के सम्बन्ध में जानकारी। (2) अध्ययन समूह की सामान्य विशेषताओं की जानकारी; जैसे स्वभाव, व्यवसाय, रहन-सहन, इत्यादि। (3) अध्ययन क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति की जानकारी, घटना स्थलों का ज्ञान एवं मानचित्र, आदि।

विस्तृत अवलोकन रूपरेखा तैयार करना: रूपरेखा तैयार करने के लिये निम्न बातों को निश्चित करना होता है। (1) उपकल्पना के अनुसार अवलोकन हेतु तथ्यों का निर्धारण, (2) आवश्यकतानुसार नियंत्रण की विधियों एवं परिस्थितियों का निर्धारण, (3) सहयोगी कार्यकर्ताओं की भूमिका का निर्धारण। 4-3-3 अवलोकन यंत्र अवलोकन कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व, उपयुक्त अवलोकन यंत्रों का निर्माण करना आवश्यक होता है; जैसे (1) अवलोकन निर्देशिका या डायरी (2) अवलोकित तथ्यों के लेखन के लिये उचित आकार के अवलोकन कार्ड (3) अवलोकन-अनुसूची एवं चार्ट-सूचनाओं को व्यवस्थित रूप से संकलित करने के लिये इनका प्रयोग किया जाता है।

अन्य आवश्यकतायें: इसमें कैमरा, टेप रिकार्डर, मोबाइल आदि को शामिल किया जा सकता है। इनकी सहायता से भी सूचनायें संकलित की जाती हैं।

11.15 अवलोकन के प्रकार एवं उनकी विशेषतायें, गुण और दोष

अध्ययन की सुविधा हेतु निरीक्षण को कई भागों में बाटा जाता है। प्रमुख रूप से निरीक्षण का निम्नवत वर्गीकरण किया जा सकता है।

- 1 अनियन्त्रित निरीक्षण (Un-controlled observation)
- 2 नियन्त्रित निरीक्षण (Controlled observation)
- 3 सहभागी निरीक्षण (Participant observation)

3 असहभागी निरीक्षण (Non-participant-observation)

4 अर्द्धसहभागी निरीक्षण (Quasi-participant observation)

5 सामूहिक निरीक्षण (Mass observation)

- अनियन्त्रित अवलोकन
 - सहभागी अवलोकन
 - असहभागी
 - अर्द्ध-सहभागी
- नियन्त्रित अवलोकन
 - परिस्थिति पर नियंत्रण
 - अवलोकन कर्ता पर नियंत्रण
- सामूहिक अवलोकन

अनियन्त्रित अवलोकन (Uncontrolled Observation): अनियन्त्रित निरीक्षण ऐसे निरीक्षण को कहा जा सकता है जबकि उन लोगों पर किसी प्रकार का कोई नियंत्रण न रहे जिनका अनुसंधानकर्ता निरीक्षण कर रहा है। दूसरे शब्दों में जब प्राकृतिक पर्यावरण एवं अवस्था में किन्हीं क्रियाओं का निरीक्षण किया जाता है।

ही क्रियाएँ किसी भी बाह्य शक्ति द्वारा संचालित एवं प्रभावित नहीं की जाती हैं तो ऐसे निरीक्षण का अनियन्त्रित निरीक्षण कहा जाता है। इस प्रकार के अवलोकन में अवलोकन की जाने वाली घटना को बिना प्रभावित किये हुये, उसे उसके स्वाभाविक रूप में देखने का प्रयास किया जाता है। इसलिए गुड एवं हाट इसे साधारण अवलोकन (Simple observation) कहते हैं। जहोदा एवं कुक इसे 'असंरचित अवलोकन' (Unstructured observation) का नाम देते हैं। समाज विज्ञानों में इस अवलोकन को स्वतन्त्र अवलोकन (Open observation), अनौपचारिक अवलोकन (Informal observation) तथा अनिश्चित अवलोकन (Undirected observation) भी कहा जाता है। सामाजिक अनुसंधानों में अनियन्त्रित अवलोकन पद्धति ही सर्वाधिक प्रयुक्त होती है। जैसा कि गुड एवं हाट कहते हैं कि "मनुष्य के पास सामाजिक सम्बन्धों के बारे में उपलब्ध अधिकांश ज्ञान अनियन्त्रित (सहभागी अथवा असहभागी) अवलोकन से ही प्राप्त किया गया है।" इस प्रकार उपरोक्त विवेचन अनियन्त्रित अवलोकन की चार विशेषताओं को स्पष्ट करता है।

- (1) अवलोकनकर्ता पर किसी भी प्रकार का नियन्त्रण नहीं लगाया जाता है।
- (2) अध्ययन की जाने वाली घटना पर भी कोई नियन्त्रण नहीं लगाया जाता है।
- (3) घटना का स्वाभाविक परिस्थिति में अध्ययन किया जाता है।
- (3) यह अत्यन्त सरल एवं लोकप्रिय विधि है। अनियन्त्रित अवलोकन के तीन प्रकार होते हैं-

अनियन्त्रित अवलोकन की उपयोगिता- अब आपको स्पष्ट हो गया होगा कि अनियन्त्रित अवलोकन, घटनाओं का उनके स्वाभाविक रूप में अध्ययन करने की प्रविधि है। इसके महत्व को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है-

- (1) सामाजिक घटनाओं को बिना प्रभावित किये, उन्हें उनके स्वाभाविक रूप में देखा जाने एवं सूचनाएँ एकत्रित किया जाने को संभव बनाना।
- (2) अध्ययन में निष्पक्षता व वैषयिकता बनाये को संभव बनाना।
- (3) परिवर्तनशील व जटिल सामाजिक घटनाओं एवं व्यवहारों के अध्ययन को व्यावहारिक बनाना।

अनियन्त्रित अवलोकन के दोष-

- (1) अवलोकनकर्ता इस विश्वास से ग्रसित हो सकता है कि उसने जो कुछ अपनी आँखों से देखा है, वह सब सही है। परिणामस्वरूप, त्रुटियों, भ्रान्तियों आदि की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं।

(2) कभी-कभी अनावश्यक तथ्यों के संकलित हो जाने के कारण समय, धन व परिश्रम के अपव्यय होने की सम्भावना रहती है।

(3) घटनाओं को देखते समय अवलोकनकर्ता तथ्यों का लेखन नहीं कर पाता है। अतः, आवश्यक सूचनायें छूट भी सकती हैं।

(3) व्यक्तिगत पक्षपात आ जाने के कारण, वैज्ञानिकता खतरे में पड़ सकती है।

नियन्त्रित अवलोकन- अनियन्त्रित अवलोकन में पायी जाने वाली कमियों जैसे- विश्वसनीयता एवं तटस्थता का अभाव-ने ही नियन्त्रित अवलोकन का सूत्रपात किया है। नियन्त्रित अवलोकन में अवलोकनकर्ता पर तो नियन्त्रण होता ही है, साथ ही साथ अवलोकन की जाने वाली घटना अथवा परिस्थिति पर भी नियन्त्रण किया जाता है। अवलोकन सम्बन्धी पूर्व योजना तैयार की जाती है, जिसके अन्तर्गत निर्धारित प्रक्रिया एवं साधनों की सहायता से तथ्यों का संकलन किया जाता है। इस प्रकार के अवलोकन में निम्न दो प्रकार से नियन्त्रण लागू किया जाता है :

(1) सामाजिक घटना पर नियन्त्रण- इस प्रविधि में अवलोकित घटनाओं को नियन्त्रित किया जाता है जिस प्रकार प्राकृतिक विज्ञानों में प्रयोगशाला में परिस्थितियों को नियन्त्रित करके अध्ययन किया जाता है, उसी प्रकार समाज वैज्ञानिक भी सामाजिक घटनाओं अथवा परिस्थितियों को नियन्त्रित कर के, उनका अध्ययन करता है। तथापि, सामाजिक घटनाओं एवं मानवीय व्यवहारों को नियन्त्रित करना अत्यन्त कठिन कार्य होता है। इस प्रविधि का प्रयोग बालकों के व्यवहारों, श्रमिकों की कार्य-दशाओं, आदि, के अध्ययनों में प्रयुक्त किया जाता है। (2) अवलोकनकर्ता पर नियन्त्रण- इसमें घटना पर नियन्त्रण न रखकर, अवलोकनकर्ता पर नियन्त्रण लगाया जाता है। यह नियन्त्रण कुछ साधनों द्वारा संचालित किया जाता है। जैसे- अवलोकन की विस्तृत पूर्व योजना, अवलोकन अनुसूची, मानचित्रों, विस्तृत क्षेत्रीय नोट्स व डायरी, कैमरा, टेप रिकार्डर आदि प्रयुक्त किया जाना। नियन्त्रण के सम्बन्ध में गुडे एवं हाट का कहना है "सामाजिक अनुसंधान में अध्ययन-विषय पर नियन्त्रण रख सकना तुलनात्मक दृष्टि से कठिन होता है; अतः अवलोकनकर्ता पर नियन्त्रण अधिक व्यावहारिक एवं प्रभावी प्रतीत होता है।" स्पष्ट है कि नियन्त्रित अवलोकन सामाजिक अनुसंधान में वैज्ञानिकता, विश्वसनीयता एवं तटस्थता की दृष्टि से अनियन्त्रित अवलोकन की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है; और यही इसकी लोकप्रियता का आधार है।

नियन्त्रित एवं अनियन्त्रित अवलोकनों में अन्तर- उपरोक्त दोनों पद्धतियों में निम्न अन्तर स्पष्ट किये जा सकते हैं :

(1) नियन्त्रित अवलोकन में घटनाओं एवं परिस्थितियों को अध्ययन के दौरान कुछ समय तक नियन्त्रित रखना पड़ता है, जबकि अनियन्त्रित अवलोकन में घटनाओं के विभिन्न पक्षों को, आवश्यकतानुसार, उनके स्वाभाविक रूप में अवलोकित किया जाता है।

(2) नियन्त्रित अवलोकन का संचालन पूर्व योजना के अनुसार ही किया जाता है। अनियन्त्रित अवलोकन बिना पूर्व योजना किया जाता है।

(3) नियन्त्रित अवलोकन में अवलोकनकर्ता को अपने व्यवहार को पूर्व निर्धारित निर्देशों के अनुसार ही क्रियान्वित करना पड़ता है। अनियन्त्रित अवलोकन में इस प्रकार का कोई नियन्त्रण नहीं होता है।

(3) नियन्त्रित अवलोकन में अवलोकन हेतु कतिपय यन्त्रों-जैसे, अवलोकन निर्देशिका, अनुसूची, अवलोकन कार्ड, आदि का प्रयोग किया जाता है; जबकि अनियन्त्रित अवलोकन में यन्त्रों की आवश्यकता प्रायः नहीं पड़ती है।

(4) नियन्त्रित अवलोकन में अवलोकनकर्ता को पूर्व निर्धारित निर्देशों के अनुसार ही कार्य करना होता है। अतः अध्ययन निष्पक्ष, विश्वसनीय एवं वस्तु निष्ठ बना रहता है। अनियन्त्रित अवलोकन में घटनाओं को उनके स्वाभाविक रूप में ही देखा जाता है। अतः पक्षपात की सम्भावना रहती है।

(5) नियन्त्रित अवलोकन में अवलोकनकर्ता पर नियन्त्रण होने के कारण अध्ययन गहन एवं सूक्ष्म नहीं हो पाता है; जबकि अनियन्त्रित अवलोकन में अवलोकनकर्ता पर नियन्त्रण न होने के कारण अध्ययन स्वाभाविक, गहन एवं सूक्ष्म हो जाता है।

सहभागी अवलोकन (Participant Observation): सहभागी निरीक्षण की अवधारणा का प्रयोग सर्वप्रथम एण्डवर्ड लिण्डमैट ने अपनी पुस्तक वबपंस कपेवअमे में किया था इसके बाद ही सहभागी निरीक्षण एक महत्वपूर्ण प्रविधि के रूप में लोगों के सामने आया, इस प्रविधि को स्पष्ट करते हुए पी०एच०मान से लिखा है " सहभागी अवलोकन की तात्पर्य एक ऐसी दशा है जिसमें अवलोकनकर्ता अध्ययन किये जाने वाले समूह को अत्यधिक घनिष्ठ सदस्य बन जाता है। पूर्ण सहभागी अवलोकन से तात्पर्य उस अवलोकन से है जिसमें अवलोकनकर्ता अध्ययन किये जाने वाले समूह में जा कर रहने लगता है। उस समूह की सभी क्रियाओं में एक सदस्य की तरह भाग लेता है। समूह के सदस्य भी उसे स्वीकार कर लेते हैं, और उसे अपने समूह का सदस्य मान लेते हैं। अध्ययनकर्ता समूह के उत्सवों, संस्कारों एवं अन्य क्रियाकलापों में उसी तरह भाग लेता है जिस तरह अन्य सदस्य भाग लेते हैं। जॉन मैज ने अपनी पुस्तक "द टूल्स इन सोशल साइन्सेस" में लिखा है- "जब अवलोकनकर्ता के हृदय की धड़कनें समूह के अन्य व्यक्तियों की धड़कनों में मिल जाती हैं और वह बाहर से आया हुआ कोई अन्जान व्यक्ति नहीं रह जाता, तो इस प्रकार का अवलोकनकर्ता पूर्ण सहभागी अवलोकनकर्ता कहलाने का अधिकार प्राप्त कर लेता है।" सन् 1923 में, लिण्ड मैन ने अपनी पुस्तक "सोशल डिस्कवरी" में सर्व प्रथम सहभागी अवलोकन शब्द का प्रयोग किया था। लिण्ड मैन ने कहा है कि औपचारिक प्रश्नों पर आधारित साक्षात्कार-विधि द्वारा समस्या के तल में नहीं पहुँचा जा सकता। सामाजिक अन्तःक्रियाओं के पीछे छुपे हुये व्यक्तिपरक तथ्य असहभागिक अवलोकन के नेत्रों से प्रायः औझल हो जाते हैं। अतः, व्यक्तिपरक तथ्यों को समझने के लिये पूर्ण-सहभागी अवलोकन का प्रयोग आवश्यक है।

पूर्ण सहभागी अवलोकन को अधिक स्पष्ट करने के लिये, निम्न विद्वानों की परिभाषाओं पर दृष्टिपात करना उचित रहेगा : श्रीमती पी.वी. यांग "सामान्यतः अनियन्त्रित अवलोकन का प्रयोग करने वाला सहभागी अवलोकनकर्ता उस समूह के जीवन में ही रहता तथा भाग लेता है जिसका कि वह अध्ययन कर रहा है।" जार्ज ए. लुण्डबर्ग "अवलोकनकर्ता अवलोकित समूह से यथासम्भव पूर्ण तथा घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करता है, अर्थात् वह समुदाय में बस जाता है तथा उस समूह के दैनिक जीवन में भाग लेता है।" श्री जॉन हॉबर्ड जेल और उसमें रहने वाले कैदियों का अध्ययन करने के लिये अनेक वर्षों तक जेल में कैदियों के साथ ही रहे। श्री मैलिनोवस्की (मानव शास्त्री) ने पश्चिमी प्रशान्त महासागर के तट पर रहने वाली Agronaut जन-जाति का अध्ययन उनके साथ रह कर ही किया। फ्रेडलीपले ने श्रमिक परिवारों पर औद्योगिककरण के प्रभावों का अध्ययन करने के लिये सहभागी अवलोकन प्रविधि को ही अपनाया। पूर्ण-सहभागी अवलोकन के संदर्भ में चूँकि अध्ययनकर्ता को अध्ययन समूह में अपने आपको पूर्णतया सहभागी बना कर इस समूह की उन सभी क्रियाकलापों में यथासंभव उन्मुक्त रूप में भाग लेना होता है। तथापि यह भी आवश्यक होता है कि वह अपने उद्देश्य से विचलित न हो; अर्थात् अपने उद्देश्य के प्रति सदैव सजग रहे। अतः, यह प्रश्न विचारणीय हो जाता है कि अवलोकनकर्ता द्वारा समूह को अपने प्रति जागरूक किया जाना चाहिये अथवा नहीं? यानि, क्या अवलोकनकर्ता द्वारा समूह के लोगों को अपना परिचय एवं उद्देश्य स्पष्ट कर देना चाहिये? इस संदर्भ में विद्वानों में वैचारिक भिन्नता है। अमेरिकन समाजशास्त्रियों का मत है कि

अवलोकनकर्ता को अपना परिचय एवं मूल उद्देश्य स्पष्ट नहीं करना चाहिये। उसे चालाकी और सजगता से काम लेते हुये समूह की सभी क्रियाओं में भागीदार निभानी चाहिये और, साथ ही साथ, अपने प्रति समूह के विश्वास को भी बनाये रखना चाहिये। दूसरी ओर भारतीय समाज शास्त्रियों का मत है कि अवलोकनकर्ता को अपना परिचय व उद्देश्य अध्ययन समूह से छिपाना नहीं चाहिये; वरन् उनके मध्य अपना वास्तविक परिचय व उद्देश्य स्पष्ट कर देना चाहिये; अन्यथा समूह के सदस्यों को उस पर सन्देह हो सकता है। ऐसी स्थिति में, समूह के सदस्यों का व्यवहार स्वाभाविक न हो कर कृत्रिमतापूर्ण हो सकता है और यदि ऐसा हुआ तो अवलोकनकर्ता अपने उद्देश्य में असफल हो जायेगा। नैतिकता के दृष्टि से भी यह उचित है कि अवलोकनकर्ता को अपना परिचय व उद्देश्य अध्ययन समूह को स्पष्ट कर देना चाहिये। स्पष्ट है, सहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्ता की व्यवहार कुशलता, वाक् पटुता, चतुरता एवं सजगता ही उसे समूह में अपनी दोहरी भूमिका के निर्वहन में सहायक हो सकते हैं।

उपरोक्त विश्लेषण से पूर्ण सहभागी अवलोकन की निम्न विशेषतायें स्पष्ट हो जाती हैं:

1. अवलोकनकर्ता, अवलोकन की जाने वाली परिस्थितियों अथवा समूह में स्वयं भागीदारी करता है।
2. अवलोकनकर्ता अध्ययन समूह का पूर्ण रूपेण सदस्य बन जाता है ² और उनके सभी क्रिया कलापों में सक्रिय रूप से भाग लेता है।
3. सत्य की खोज के लिये सजगता, वाक् पटुता व चतुरता के साथ वास्तविक तथ्यों का संकलन करने का प्रयास करता है।

सहभागी अवलोकन के गुण

तथ्य संकलन की एक महत्वपूर्ण प्रविधि के रूप में पूर्ण सहभागी अवलोकन के निम्न गुणों को रेखांकित किया जा सकता है।

1. **गहन एवं सूक्ष्म अध्ययन:** अवलोकनकर्ता अध्ययन परिस्थिति अथवा समूह में स्वयं प्रत्यक्ष रूप से लम्बे समय तक भागीदारी निभाता है। अतः, उसे समूह की जितनी सूक्ष्म जानकारी प्राप्त हो जाती है, उतनी अन्य प्रविधियों से सम्भव नहीं है।
2. **स्वाभाविक व्यवहार का अध्ययन:** अवलोकनकर्ता समूह में इतना घुलमिल जाता है कि उसकी उपस्थिति समूह के व्यवहार को किसी भी तरह से प्रभावित नहीं करती है। अतः, उसे समूह के वास्तविक व्यवहार को नजदीकी से देखने व अध्ययन करने का अवसर मिलता है।
3. **अधिक विश्वसनीयता:** अवलोकनकर्ता सम्बन्धित समूह में रहकर स्वयं अपने नेत्रों से घटनाओं को स्वाभाविक तथा क्रमबद्ध रूप से घटते हुये देखता है। अतः, संकलित सूचनायें अधिक विश्वसनीय एवं भरोसा योग्य होती है।
4. **संग्रहित सूचनाओं का परीक्षण सम्भव:** अवलोकनकर्ता, व्यक्तिगत रूप में समूह की विभिन्न गतिविधियों में भाग लेता रहता है। अतः, शंका होने पर पुनः वैसी ही परिस्थिति में सूचनाओं की शुद्धता एवं विश्वसनीयता की जाँच सम्भव है।
5. **सरल अध्ययन:** सम्बन्धित समूह का सदस्य बन जाने के कारण अवलोकनकर्ता घटनाओं एवं परिस्थितियों का सरलता से अवलोकन कर सकता है। यही कारण है कि अनेक मानवशास्त्रियों एवं समाजशास्त्रियों ने छोटे समुदायों, जन जातियों एवं साँस्कृतिक समूहों के किसी भी पक्ष का अध्ययन करने में इस विधि का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है।

सहभागी अवलोकन के दोष / सीमायें

1. **पूर्ण सहभागिता सम्भव नहीं:** रेडिन एवं हरस्कोविट्स ने इस विधि को पूर्णतया अव्यवहारिक कहा है। उदाहरण के लिए, जनजातियों के साथ सहभागिता के दौरान उनके रीति-रिवाजों, आदतों, मनोवृत्तियों के अनुसार अवलोकनकर्ता का रहना सम्भव नहीं हो सकता है। एम.एम. बसु ने लिखा है- "एक क्षेत्रीय कार्यकर्ता कुछ व्यावहारिक कारणों से अध्ययन किये जाने वाले समुदाय के जीवन में कभी भी पूर्णतया भाग नहीं ले सकता है।"
2. **व्यक्तिगत प्रभाव:** अवलोकनकर्ता अध्ययन समूह में इतना घुलमिल जाता है कि कभी-कभी अवलोकनकर्ता के व्यवहार एवं स्वभाव का प्रभाव, समूह के व्यक्तियों के व्यवहार में भी परिवर्तन ला देता है। ऐसी स्थिति में, समूह के स्वाभाविक एवं वास्तविक व्यवहार का अवलोकन सम्भव नहीं हो पाता है।
3. **साधारण तथ्यों का छूट जाना:** कभी-कभी अवलोकनकर्ता अध्ययन समूह से सहभागिता के चलते कई महत्वपूर्ण तथ्यों को सामान्य समझ कर छोड़ देता है, जबकि वे तथ्य अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं।
4. **वस्तु-निष्ठता का अभाव:** अवलोकनकर्ता की समूह में अत्याधिक सहभागिता उसमें समूह के प्रति लगाव व आत्मीयता पैदा कर देती है। परिणामस्वरूप, वह समूह के अवगुणों को छिपा कर अच्छाइयों को ही चिन्हित करने लग जाता है, जिससे कि अध्ययन की वस्तुनिष्ठता में कमी आती है।
5. **अत्यधिक खर्चीली:** अवलोकनकर्ता को अध्ययन समूह से सहभागिता प्राप्त करने एवं उनका विश्वास जीतने में काफी समय के साथ-साथ अधिक धन भी व्यय करना पड़ता है।
6. **सीमित क्षेत्र का अध्ययन:** इस प्रविधि से बड़े समुदाय के सभी लोगों का अध्ययन सम्भव नहीं है। अतः, इस प्रविधि का प्रयोग लघु समुदाय में ही संभव है।
7. **भूमिका सामन्जस्य में कठिनाई:** अवलोकनकर्ता को दो भूमिकाओं का निर्वहन करना होता है एक भूमिका अवलोकनकर्ता की एवं दूसरी समूह के सदस्य की। दोनों भूमिकाओं के उचित निर्वहन से ही वह निष्पक्ष सूचनाएँ एकत्रित कर सकता है, अन्यथा 'भूमिका संघर्ष' अवलोकनकर्ता की मेहनत पर पानी फेर सकता है। मोजर ने लिखा है- "सहभागिक अवलोकन एक व्यक्ति प्रधान क्रिया है, अतः इसकी सफलता बहुत कुछ अवलोकनकर्ता के व्यक्तिगत गुणों पर निर्भर करती है।"

असहभागिक अवलोकन

यह विधि सहभागी अवलोकन के विपरीत है। इसमें निरीक्षणकर्ता समुदाय का सदस्य नहीं बनता और न ही उनकी क्रियाओं में भागीदार होता है, बल्कि दूर से ही निरीक्षण कर उसकी गहराई में जाने का प्रयत्न करता है। वह सामूहिक जीवन में स्वयं प्रवेश करने के बजाए उसके बाह्य पहलुओं का ही निरीक्षण करता है। इसमें अवलोकनकर्ता अध्ययन समूह के बीच उपस्थित रहते हुये भी, उनके क्रियाकलापों में भागीदारी नहीं निभाता है; वरन् तटस्थ तथा पृथक् रहते हुए वह एक मूक दर्शक की तरह घटनाओं को घटते हुए देखता है, सुनता है एवं उनका आलेखन करता है। जैसे किसी महाविद्यालय के वार्षिकोत्सव में अतिथियों के साथ बैठकर घटनाओं का निरीक्षण करना।

असहभागी अवलोकन की विशेषतायें:

1. **वस्तु परकता:** अवलोकनकर्ता अध्ययन समूह में घुलता मिलता नहीं है, वरन् एक मौन दर्शक के ही रूप में रह कर तथ्यों का संकलन करता है। अतः, उसके अध्ययन में वस्तु-निष्ठता बनी रहती है।

2. **कम खर्चीली:** सहभागी अवलोकन की तुलना में अपेक्षाकृत समय व धन कम खर्च होता है तथा भूमिका सामंजस्य की समस्या से भी मुक्ति मिल जाती है।
3. **विश्वसनीयता:** अवलोकनकर्ता अपरिचित के रूप में होता है। अतः अध्ययन समूह के सदस्य बिना हिचकिचाये स्वाभाविक रूप से व्यवहार करते हैं। अतः, तथ्यों की विश्वसनीयता बनी रहती है।

असहभागी अवलोकन के दोष:

1. पूर्ण असहभागिता सम्भव नहीं हो पाती है; अर्थात् अवलोकनकर्ता प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कहीं न कहीं घटनाओं से प्रभावित हो सकता है।
2. यदि अध्ययन समूह के सदस्यों को अवलोकनकर्ता पर सन्देह हो जाने की दशा में, उनके व्यवहार में कृत्रिमता आ सकती है।
3. अवलोकनकर्ता घटनाओं को केवल अपने दृष्टिकोण से ही देखता है जिससे मौलिकता संदेहपूर्ण हो सकती है।
4. अचानक घटित होने वाली घटनाओं का अध्ययन इस प्रविधि से सम्भव नहीं है।
5. इस प्रविधि से गहन अध्ययन सम्भव नहीं होता है।

सहभागी व असहभागी अवलोकन में अन्तर:

1. **अध्ययन की प्रकृति:** सहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्ता सामुदायिक जीवन की गहराई तक पहुँच कर समूह का गहन, आन्तरिक एवं सूक्ष्म अध्ययन कर सकता है। इसके विपरीत असहभागी अवलोकन से समूह के केवल बाहरी व्यवहार का अध्ययन सम्भव हो सकता है। गोपनीय सूचनायें प्राप्त नहीं की जा सकती हैं।
2. **सहभागिता का स्तर:** सहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्ता स्वयं अध्ययन समुदाय में जा कर रच बस जाता है एवं उसके क्रिया कलापों में सक्रियता से भाग लेता है। असहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्ता की स्थिति एक अपरिचित की रहती है, अर्थात् वह अध्ययन समूह से पृथक् व तटस्थ रह कर अध्ययन करता है।
3. **सूचनाओं की पुनर्परीक्षा:** सहभागी अवलोकन में सहभागिता के कारण अवलोकनकर्ता प्राप्त सूचनाओं की शुद्धता की जाँच कर सकता है, जबकि असहभागी अवलोकन में अवलोकित घटनाओं की पुनर्परीक्षा सम्भव नहीं हो पाती है।
4. **सामूहिक व्यवहार की प्रकृति:** सहभागी अवलोकन में घटनाओं का अवलोकन उनके सरल एवं स्वाभाविक रूप में सम्भव होता है। जबकि असहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्ता के एक अपरिचित व्यक्ति के रूप में होने के कारण लोग उसे शंका एवं संदेह की दृष्टि से देखते हैं, अतः स्वाभाविक मानवीय व्यवहार का अध्ययन सम्भव नहीं होता है।
5. **समय व धन:** सहभागी अवलोकन समय व धन दोनों की दृष्टि से खर्चीला है। इसकी तुलना में असहभागी अवलोकन में समय व धन तुलनात्मक रूप से कम खर्च होता है।

अर्द्धसहभागी अवलोकन

पूर्ण सहभागिता एवं पूर्ण असहभागिता दोनों ही स्थितियाँ व्यावहारिक दृष्टि से असम्भव होती हैं। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुये, गुडे एवं हॉट ने मध्यम मार्ग को अपनाने का सुझाव दिया है। अर्द्धसहभागी अवलोकन, सहभागी एवं असहभागी अवलोकन दोनों का समन्वय है। इस प्रकार के अवलोकन में अवलोकनकर्ता परिस्थिति,

आवश्यकता और घटनाओं की प्रकृति के अनुसार कभी अध्ययन समूह में सहभागिता निभाते हुए सूचनाएँ एकत्रित करता है, और कभी उससे पूर्णतया पृथक् रह कर एक मूक दर्शक के रूप में सूचनाएँ एकत्रित करता है।

सामूहिक अवलोकन

सामूहिक अवलोकन में अध्ययन की जाने वाली घटना के विभिन्न पक्षों का एकाधिक विषय-विशेषज्ञों द्वारा अवलोकन किया जाता है। अवलोकन का कार्य कई व्यक्तियों के माध्यम से किया जाता है, जिनमें कार्य को बाँट दिया जाता है, और उनके कार्यों का समन्वय एक केन्द्रीय संगठन द्वारा किया जाता है।

सामूहिक अवलोकन के गुण:

- यह अध्ययन की सहकारी एवं अन्तर- अनुशासकीय विधि है।
- इसमें अध्ययन विश्वसनीय एवं निष्पक्ष होता है।
- व्यक्तिगत पक्षपात की सम्भावना नहीं होती है।
- इसमें नियन्त्रित एवं अनियन्त्रित अवलोकन विधियों का मिश्रण होता है।
- इसमें व्यापक क्षेत्र का अध्ययन सम्भव है।
- गहन अध्ययन एवं पुनः परीक्षण सम्भव है।

सामूहिक अवलोकन की सीमाएँ

- एक से अधिक कुशल अवलोकन कर्त्ताओं को जुटा पाना कठिन कार्य है।
- विभिन्न अवलोकनकर्त्ताओं के कार्यों में परस्पर समन्वय व सन्तुलन बनाया जाना आसान नहीं है।
- वांछित मात्राओं में समय, धन एवं परिश्रम की व्यवस्था कर पाना आसान नहीं है।
- इस प्रविधि का प्रयोग प्रायः सरकारी संगठनों के द्वारा ही अधिक संभव है।

11.16 अवलोकन पद्धति की उपयोगिता एवं सीमायें

उपयोगिता:

- **सरलता:** यह विधि अपेक्षाकृत सरल है और इसके लिए अवलोकनकर्त्ता को कोई विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती है।
- **स्वाभाविक पद्धति:** मानव आदि काल से ही स्वाभावतः अवलोकन करता आया है।
- **वैषयिकता:** इस विधि में अवलोकनकर्त्ता घटनाओं को अपनी आँखों से देख कर उनका हूबहू विवरण प्रस्तुत करता है, जिससे वैषयिकता बनी रहती है।
- **विश्वसनीयता:** अध्ययन निष्पक्ष होने के कारण विश्वसनीयता बनी रहती है।
- **सत्यापन शीलता:** संकलित सूचनाओं पर संशय होने पर पुनः परीक्षण सम्भव होता है।
- **उपकल्पना का स्रोत:** अवलोकन के दौरान अवलोकनकर्त्ता द्वारा घटना के प्रत्यक्ष निरीक्षण के कारण घटनाओं के प्रति नवीन विचारों एवं उपकल्पनाओं की उत्पत्ति होती है।
- **सर्वाधिक प्रचलित पद्धति:** अपनी सरलता, सार्थकता एवं वस्तुनिष्ठता के कारण अवलोकन सर्वाधिक लोकप्रिय पद्धति है।

अवलोकन पद्धति की सीमायें

- **सभी घटनाओं का अध्ययन सम्भव नहीं:** कुछ घटनाओं का अध्ययन सम्भव नहीं हो पाता ⁸³, जैसे पति-पत्नी के व्यक्तिगत जीवन का अवलोकन, या वे घटनाएँ जिनके घटित होने का समय व स्थान निश्चित न हो।

- **व्यवहार में कृत्रिमता:** कभी-कभी अवलोकन के दौरान लोग अपने स्वाभाविक व्यवहार से हटकर नाटकीय व्यवहार करते हैं, जिससे सही निष्कर्ष नहीं निकल पाते हैं।
- **सीमित क्षेत्र:** समय, धन एवं परिश्रम की सीमितता के चलते यह विधि सीमित क्षेत्र का ही अध्ययन कर पाती है।
- **पक्षपात:** अवलोकित समूह के व्यवहार में कृत्रिमता एवं अवलोकनकर्ता के मिथ्या-झुकाव के कारण अध्ययन में पक्षपात आने की सम्भावना रहती है।

ज्ञानेन्द्रियों में दोष: कभी-कभी ज्ञानेन्द्रियाँ वास्तविक व्यवहार को समझने में समर्थ नहीं होती हैं, जिससे अध्ययन प्रभावित होता है।

11.17 शब्दावली

- **उपकल्पना :** किसी भी समस्या के बारे में कार्य-कारण संबंधों का पूर्वानुमान लगा लेना ही उपकल्पना कहलाती है। चर : यह एक संकेत है जिससे अनेकों अंश (Numeral) अथवा मान (Value) निर्धारित किए जा सकते हैं। सांस्कृतिक चिन्ह : किसी समाज या संस्कृति के लोक-ज्ञान के विभिन्न अंग जैसे लोककथाएँ सांस्कृतिक चिन्ह कहे जाते हैं। शून्य उपकल्पना : जब कभी दो चरों के मध्य कोई अंतर नहीं होता तो उसे शून्य उपकल्पना कहते हैं। सादृश्यताएँ : जब कभी दो वस्तुओं में समानता होती है तथा एक वस्तु पर पड़ने वाले प्रभाव के आधार पर दूसरी वस्तु पर भी उसी प्रभाव को जानने की कोशिश की जाती है तब उसे सादृश्यताएँ कहते हैं। यही सादृश्यताएँ उपकल्पना का स्रोत बन जाती हैं।
- **अवलोकन:** शोध में अध्ययन की वह विधि जिसमें अध्ययनकर्ता अपनी ज्ञानेन्द्रियों, विशेषकर नेत्रों से अवलोकन कर तथ्यों का संकलन करता है।
- **अर्द्ध सहभागी अवलोकन:** यह सहभागी एवं असहभागी अवलोकनों का मिश्रण है जिसमें अवलोकनकर्ता अध्ययन समूह की कुछ क्रियाओं में भाग लेता है और कुछ से अपने आपको पृथक रखता है।
- **सामूहिक अवलोकन:** घटना के विभिन्न पक्षों का अध्ययन सम्बन्धित विषय विशेषज्ञों द्वारा मिलकर किया जाता है।

11.18 अभ्यास प्रश्न

1. उपकल्पना को परिभाषित कीजिए तथा इसके विभिन्न स्रोतों की व्याख्या कीजिए।
2. एक उत्तम उपकल्पना की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. सामाजिक अनुसंधान में उपकल्पना का क्या महत्व है? इसके विभिन्न प्रकारों को समझाइए।
4. उपकल्पना की सीमाओं का विवेचन कीजिये।
5. अवलोकन विधि क्या है? इसकी प्रमुख विशेषताओं की चर्चा कीजिये।
6. अवलोकन के विभिन्न प्रकारों की समीक्षा कीजिये।
7. नियन्त्रित व अनियन्त्रित अवलोकन में अन्तर स्पष्ट कीजिये।
8. सहभागी एवं असहभागी अवलोकन के गुण-दोषों की तुलना कीजिये।
9. अवलोकन पद्धति की विश्वसनीयता एवं प्रमाणिकता को बनाये रखने में किन बातों का ध्यान अपेक्षित है।

11.19 संदर्भ ग्रंथ

1. एकोफ, आर.. एल. द डिजाइन ऑफ सोशल रिसर्च: शिकागो, 1943.
2. कोहन, एम. एण्ड नैगेल : एन इंट्रोडक्शन टू लॉजिक एण्ड साइन्टिफिक मैथड्स, न्यूयार्क, 1933.
3. गुडे, डब्ल्यू. जी. एण्ड हॉट, पी. के. मैथड्स इन सोशल रिसर्च : न्यूयार्क, 1942.
4. लुण्डबर्ग, जी.ए. सोशल रिसर्च, न्यूयार्क, 1932.
5. यंग, पी.वी. : साइन्टिफिक सोशल सर्वे एण्ड रिसर्च, न्यूयार्क, 1939.
6. गुडे एण्ड हॉट, 1942, मैथड्स इन सोशल रिसर्च, मैक ग्री हिल कम्पनी, इंक टोक्यो।
7. मोजर, सी.ए., सर्वे मैथड्स इन सोशल इनवेस्टीगेशन।
8. यंग, पी.वी., साइन्टिफिक सोशल सर्वे एण्ड रिसर्च।
9. जहोदा एण्ड कुक, रिसर्च मैथड्स इन सोशल रिलेशन्स। मॉन पी.एच., मैथड्स ऑफ सोशियोलोजिकल इन्क्वैरी।

इकाई-12 निदर्शन : प्रकृति एवं पद्धतियाँ

इकाई की रूपरेखा

- 12.0 प्रस्तावना
- 12.1 उद्देश्य
- 12.2 जनगणना एवं निदर्शन
- 12.3 निदर्शन का अर्थ
- 12.4 श्रेष्ठ निदर्शन के अनिवार्य लक्षण
- 12.5 निदर्शन का चयन
- 12.6 निदर्शन की उपयोगिता
- 12.7 निदर्शन की सीमाएँ
- 12.8 निदर्शन की समस्याएँ
- 12.9 निदर्शन के आकार एवं विश्वसनीयता का निर्धारण
- 12.10 निदर्शन की पद्धतियाँ
- 12.11 सम्भावित निदर्शन की पद्धति के रूप में दैव निदर्शन
- 12.12 असम्भावित निदर्शन
- 12.13 शब्दावली
- 12.14 अभ्यास प्रश्न
- 12.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

12.0 प्रस्तावना

समाजशास्त्रीय अनुसन्धान की विषय-वस्तु व्यक्ति, परिवार, समूह, संस्थाएँ एवं संगठन इत्यादि होते हैं। अनुसन्धान समस्या का निर्माण कर लेने के पश्चात् अनुसन्धानकर्ता समस्या से सम्बन्धित उपकल्पनाओं का निर्माण करता है तथा फिर सामग्री (आँकड़े) एकत्रित करने की उपयुक्त प्रविधि (तकनीक) का निर्माण करके सामग्री संकलित करने का कार्य प्रारम्भ करता है। सामग्री संकलित करने से पहले उसे यह निर्णय लेना पड़ता है कि अध्ययन की इकाई क्या होगी? वह कितनी इकाइयों अथवा सूचनादाताओं का अध्ययन हेतु चयन करेगा? इस सन्दर्भ में उसके सामने दो विकल्प हो सकते हैं- प्रथम, समग्र (Universe) की सम्पूर्ण इकाइयों का अध्ययन करना तथा द्वितीय, समग्र का प्रतिनिधित्व करने वाले एक भाग का अध्ययन करना। प्रथम विकल्प द्वारा किया जाने वाला अध्ययन संगणना या जनगणना (Census) अध्ययन कहलाता है, जबकि द्वितीय विकल्प द्वारा किया जाने वाला अध्ययन निदर्शन (Sampling) कहलाता है। समग्र अथवा सम्पूर्ण इकाइयों में से प्रतिनिधि इकाइयों के चयन की प्रक्रिया को निदर्शन पद्धति या तकनीक (Sampling technique) कहते हैं।

12.1 उद्देश्य

सामाजिक अनुसन्धान (अन्वेषण अथवा शोध) के सोपानों में निदर्शन का महत्वपूर्ण स्थान है। निदर्शन को प्रतिदर्श, प्रतिचयन या नमूना भी कहते हैं। यह किसी समग्र का वह लघु रूप होता है जो उसका प्रतिनिधित्व करता है। केवल 'कुछ' को देखकर 'समग्र' के बारे में अनुमान लगा लेने की प्रविधि निदर्शन कहलाती है। इस इकाई का उद्देश्य

अनुसन्धान के इस महत्वपूर्ण चरण से सम्बन्धित सम्पूर्ण जानकारी उपलब्ध कराना है। इसमें मुख्य रूप से जनगणना एवं निदर्शन में अन्तर, निदर्शन का अर्थ, एक श्रेष्ठ निदर्शन के अनिवार्य तत्त्व, निदर्शन का चयन, इसकी उपयोगिता एवं सीमाओं, निदर्शन की समस्याओं तथा निदर्शन के आकार एवं विश्वसनीयता के निर्धारण का स्पष्टीकरण किया गया है।

12.2 जनगणना एवं निदर्शन

जनगणना का अभिप्राय समग्र या सम्पूर्णता की सभी इकाइयों का अध्ययन करना है। इस समग्रता की इकाई एक समूह, समुदाय (गाँव अथवा नगर), तहसील, जिला, राज्य अथवा सम्पूर्ण राष्ट्र हो सकता है। प्रत्येक देश में अपने नागरिकों के बारे में विभिन्न प्रकार की सूचनाएँ प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है ताकि देश के विकास के लिए भावी योजनाएँ बनाई जा सकें तथा पिछले वर्षों में विविध क्षेत्रों में हुए परिवर्तनों का पता लगाया जा सके। 'जनगणना' शब्द का अभिप्राय ही 'जनता की गणना करना' है। 'जनगणना' अंग्रेजी के 'Census' शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। इस शब्द का उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द 'Censere' से मानी जाती है जिसका अर्थ 'अनुमान लगाना' (To assess) है। 'गणना' शब्द का अर्थ केवल 'गिनती करना' (अर्थात् संख्या का पता लगाना) ही नहीं है अपितु जनसंख्या का लिंग, आयु, व्यवसाय, जाति, धर्म, वैवाहिक स्तर इत्यादि अनेक विशेषताओं के आधार पर विवरण प्राप्त करना है। वैसे तो जनसंख्या का अध्ययन करने के लिए एक पृथक् सामाजिक विज्ञान भी है जिसे जनसंख्या विज्ञान या जनांकिकी (Demography) के नाम से जाना जाता है; फिर भी समाजशास्त्र में भी जनसंख्या की विशेषताओं में काफी रुचि स्पष्ट देखी जा सकती है। समाजशास्त्र में जनसंख्या सम्बन्धी अध्ययनों की एक विशिष्ट शाखा है जिसे सामाजिक जनांकिकी (Social Demography) के नाम से जाना जाता है।

जनगणना करना एक अत्यन्त खर्चीला और परिश्रम का कार्य होता है। विभिन्न देश इस जटिल कार्य को इसलिए करवाते हैं ताकि इससे प्राप्त आँकड़ों का प्रयोग परिवार नियोजन, पिछड़े वर्गों की सामाजिक-आर्थिक दशा में सुधार, शिक्षा के प्रसार, जन्म-मृत्यु दर के अनुमान तथा जनसंख्या के विभिन्न आयु वर्गों से सम्बन्धित सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु किया जा सके तथा इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाए जा सकें। भारत में जनगणना प्रत्येक दस वर्ष के पश्चात् सरकार द्वारा करवाई जाती है। भारत का जनगणना सर्वेक्षण विश्व में इस प्रकार का सबसे बड़ा सर्वेक्षण माना जाता है (हमसे अधिक जनसंख्या वाले देश चीन में नियमित रूप से जनगणना नहीं होती)। इसमें लाखों अन्वेषक तथा अत्यधिक संख्या में संगठनों के समावेश के अतिरिक्त भारत सरकार द्वारा बड़ी धनराशि व्यय की जाती है। अनेक विकसित देश भी अब पूर्ण जनगणना न कराकर जनसंख्या सम्बन्धी आँकड़ों के लिए निदर्शन सर्वेक्षण पर आश्रित हैं। निदर्शन सर्वेक्षण भी काफी सीमा पर सही पाए जाते हैं। भारत में सर्वप्रथम जनगणना 1862 ई० में करवाई गई थी। तब से प्रत्येक दस वर्ष बाद अर्थात् 1881, 1891, 1901, 1911, 1921, 1931, 1931, 1941, 1951, 1961, 1981, 1991 तथा 2001 ई० में जनगणनाएँ आयोजित की गई हैं। भारत में पिछली जनगणना 2001 ई० में हुई थी। 2011 ई० की जनगणना अभी से प्रारम्भ हो गई है। भारत जैसे विशाल देश में जनगणना की इकाई एक व्यक्ति न होकर परिवार को माना गया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि भारतीय समाज की मूल इकाई व्यक्ति न होकर परिवार है तथा साथ ही परिवार के बाहर व्यक्ति के बारे में सही जानकारी प्राप्त नहीं की जा सकती।

जनगणना से देश की जनसंख्या के सभी महत्वपूर्ण पहलुओं के बारे में सरकार, समाज वैज्ञानिकों, नीति निर्धारकों व समाज सुधारकों को विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। यह एक प्रकार से उस देश की जानकारी हेतु एक दर्पण के समान है। जनगणना का तीन क्षेत्रों में विशेष महत्व है - सामाजिक क्षेत्र, आर्थिक क्षेत्र तथा राजनीतिक क्षेत्र।

सामाजिक क्षेत्र में जनगणना से समाज के विभिन्न पक्षों (जैसे कुल जनसंख्या, लिंग अनुपात, आयु वितरण, वैवाहिक स्तर, ग्रामीण-नगरीय अनुपात, जन्म-दर, मृत्यु-दर, जनसंख्या में वृद्धि की दर, धार्मिक वितरण, शैक्षिक स्थिति, विभिन्न भाषायी समूहों इत्यादि) के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। इससे एक ओर तो विभिन्न समूहों की सामाजिक समस्याओं (जैसे निम्न जातियों का शिक्षा की दृष्टि से पिछड़ापन) के बारे में पता चलता है, जबकि दूसरी ओर सरकार द्वारा उठाए गए कदमों एवं विभिन्न नीतियों के परिणामस्वरूप हुए सुधार का मूल्यांकन भी हो जाता है। 1991 तथा 2001 ई० में हुई जनगणना से यह तथ्य हमारे सामने आया है कि भारत में स्त्री-पुरुष अनुपात कम होता जा रहा है। 1991 ई० में यह प्रति हजार पुरुष पर केवल 926 स्त्रियाँ तथा 2001 ई० में 933 था, जबकि 1901 ई० की जनगणना में यह संख्या 962 थी। निश्चित रूप से यह एक चिन्ता का विषय है तथा इस प्रकार की महत्वपूर्ण जानकारी भावी नीतियाँ बनाने में सहायक होती है।

आर्थिक क्षेत्र में जनगणना का अपना अलग महत्त्व है क्योंकि जनगणना से प्राप्त आँकड़ों का प्रयोग देश की आर्थिक प्रगति, खाद्य और नागरिक आपूर्ति, ऊर्जा, उद्योग, वाणिज्य, परिवहन, संचार, श्रम, आयोजन इत्यादि के लिए किया जाता है। जनगणना से ही हमें राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति आय, बेरोजगारी, शिक्षित बेरोजगारी, कृषि व औद्योगिक उत्पादन इत्यादि का पता चलता है। इन्हीं मूल आँकड़ों को सामने रखकर विकास कार्यक्रम बनाए जाते हैं। बिना आर्थिक नियोजन के विभिन्न वर्गों का सामाजिक-आर्थिक विकास सम्भव नहीं है।

राजनीतिक क्षेत्र में भी जनगणना द्वारा प्राप्त आँकड़ों का महत्वपूर्ण स्थान है। इनसे सरकार विभिन्न अल्पसंख्यकों की समस्याओं, अनुसूचित जातियों व जनजातियों के सामाजिक-आर्थिक विकास एवं विधायी संस्थाओं में उनके उचित प्रतिनिधित्व के बारे में निर्णय लेती है। निर्वाचन क्षेत्रों का निर्धारण तथा विधायी संस्थाओं में कुल स्थानों की संख्या का निर्धारण भी जनगणना द्वारा उपलब्ध जनसंख्यात्मक आँकड़ों के अनुरूप ही किया जाता है। प्रशासनिक दृष्टि से भी इसका अपना अलग महत्त्व है क्योंकि विभिन्न विकास योजनाओं का कार्यान्वयन तथा उपलब्ध सुविधाओं का वितरण उसी परिस्थिति में ठीक प्रकार से हो सकता है जबकि विभिन्न राज्यों, जिलों, तहसीलों, नगरों व गाँवों के बारे में मूल जनसंख्या सम्बन्धी आँकड़े हमारे पास हों।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि जनगणना का किसी भी देश के विकास में महत्वपूर्ण स्थान होता है। इससे सरकारी नीतियों की सफलता व असफलता का भी पता चलता है तथा साथ ही नियोजित सामाजिक परिवर्तन हेतु मार्गदर्शन प्राप्त होता है। इसीलिए विभिन्न देश जनगणना पर इतना अधिक धन व्यय करते हैं तथा यह सुनिश्चित करने का भी प्रयास करते हैं कि उपलब्ध सूचनाएँ, सामग्री तथा आँकड़े अधिक-से-अधिक विश्वसनीय हों।

सामान्यतः यदि सम्पूर्ण समग्र का अध्ययन करना सम्भव भी है, तो भी निदर्शन अध्ययनों को ही प्राथमिकता दी जाती है क्योंकि जब निदर्शन अध्ययन ही पर्याप्त हैं तो फिर समग्र का अध्ययन करने में समय एवं धन का दुरुपयोग क्यों किया जाए। निदर्शन सर्वेक्षण द्वारा प्राप्त परिणामों को समग्र (सम्पूर्ण जनसंख्या) पर लागू किया जा सकता है। परन्तु निदर्शन पर आधारित सर्वेक्षणों में एक बात का होना अनिवार्य है और वह है कि निदर्शन का चयन इस प्रकार से किया जाना चाहिए कि वह समग्र का प्रतिनिधित्व कर सके। यदि निदर्शन समग्र का प्रतिनिधि है तो समग्र का अध्ययन करना व्यर्थ में समय एवं धन का दुरुपयोग करना ही है। अतः सीमित समय, प्रयास तथा धन के निवेश द्वारा निदर्शन सर्वेक्षण बड़ी जनसंख्याओं के अध्ययन को सम्भव बनाता है। यही कारण है कि सामाजिक विज्ञानों तथा अन्य क्षेत्रों में यह अत्यधिक लोकप्रिय पद्धति है।

जनगणना अध्ययन की अपेक्षा निदर्शन सर्वेक्षणों या अध्ययनों को प्राथमिकता देने के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं-

- अनुसन्धान क्षेत्र की विशालता के कारण समग्र का अध्ययन करना सम्भव नहीं हो पाता। इसलिए निदर्शन के द्वारा समग्र का अध्ययन किया जाता है।
- यदि समग्र का अध्ययन करने का निर्णय ले लिया जाए तो इस कार्य के लिए अनेक अनुसन्धानकर्ताओं की आवश्यकता पड़ेगी। अच्छे अनुसन्धानकर्ताओं की कमी के कारण भी निदर्शन को प्राथमिकता दी जाती है।
- निदर्शन अध्ययनों में समय की बचत होती है।
- निदर्शन अध्ययनों में धन की बचत होती है।
- निदर्शन अध्ययन अधिक गहन हो सकते हैं।
- वास्तव में, समाजशास्त्रीय अनुसन्धानकर्ता सम्पूर्ण समाज, समुदाय या समग्र का अध्ययन नहीं कर सकता। अतः समग्र के कुछ भागों तथा इकाइयों का चुनाव करना अनिवार्य हो जाता है तथा वैज्ञानिक अनुसन्धान में इस कार्य को सम्भव बनाने वाला चरण निदर्शन कहलाता है। निदर्शन प्रविधियों के प्रयोग द्वारा अनुसन्धानकर्ता समग्र की कुछ इकाइयों अथवा ऐसे अंशों का चुनाव करके, जोकि समग्र का प्रतिनिधित्व करते हैं, अपना समय एवं धन ही नहीं बचा लेता अपितु कम प्रयास में ही सम्पूर्ण अध्ययन भी हो जाता है।

12.3 निदर्शन का अर्थ

निदर्शन समग्र का एक छोटा भाग या अंश है जोकि समग्र का प्रतिनिधित्व करता है तथा जिसमें समग्र की मौलिक विशेषताएँ पाई जाती हैं। दैनिक जीवन में हम निदर्शन का प्रयोग करते हैं, जबकि हम चावल, गेहूँ या कोई अन्य वस्तु खरीदने बाजार जाते हैं तो पहले इनका नमूना देखते हैं। उस नमूने से ही हम पूरी बोरी के चावल, गेहूँ या अन्य वस्तु के स्वरूप (Quality) का अनुमान लगा लेते हैं। यह नमूना ही प्रतिदर्श या निदर्शन कहलाता है। अतः निदर्शन वह तकनीक है जिसके द्वारा केवल समग्र के एक अंश का निरीक्षण करके सम्पूर्ण समग्र के बारे में जाना जा सकता है।

फेयरचाइल्ड (Fairchild) ने समाजशास्त्र के विश्वकोश में निदर्शन को इन शब्दों में परिभाषित किया है, "निदर्शन (सांख्यिकीय) वह प्रक्रिया अथवा पद्धति है जिसके द्वारा एक विशिष्ट समग्र में से निश्चित संख्या में व्यक्तियों, विषयों अथवा निरीक्षणों को निकाला जाता है।" उनके अनुसार एक निश्चित संख्या में व्यक्तियों, विषयों अथवा निरीक्षणों को एक समग्र विशेष में से निकालने की प्रक्रिया अथवा पद्धति अथवा अध्ययन हेतु एक समग्र समूह में से उसके एक भाग का चयन करना निदर्शन तकनीक (Sampling technique) कहलाती है।

गुड एवं हैट (Goode and Hatt) के अनुसार, "एक निदर्शन, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, किसी विस्तृत समूह का एक अपेक्षाकृत लघु प्रतिनिधि है।"

यंग (Young) के शब्दों में, "एक सांख्यिकीय निदर्शन उस सम्पूर्ण समूह या योग का अति लघु चित्र है जिसमें से कि निदर्शन लिया गया है।"

यांग (Yang) के अनुसार, "एक सांख्यिकीय निदर्शन सम्पूर्ण समूह का प्रतिनिधिक भाग है। यह समूह 'जनसंख्या', 'समग्र' अथवा 'पूर्ति स्रोत' के नाम से जाना जाता है।"

अतः स्पष्ट है कि निदर्शन किसी विशाल समूह, समग्र या योग का एक अंश है जोकि समग्र का प्रतिनिधि है अर्थात् अंश की भी वही विशेषताएँ हैं जोकि सम्पूर्ण समूह या समग्र की हैं। अध्ययन हेतु सम्पूर्ण इकाइयों में से कुछ प्रतिनिधि इकाइयों के चयन करने की तकनीक को निदर्शन तकनीक कहा जाता है। इस सन्दर्भ में बोगार्डस

(Bogardus) ने लिखा है कि, "निदर्शन तकनीक एक पूर्व-निर्धारित योजना के अनुसार इकाइयों के एक समूह में से एक निश्चित प्रतिशत का चयन करना है।"

निदर्शन तकनीक केवल वैज्ञानिक अनुसन्धान में ही नहीं, अपितु दैनिक जीवन में भी बहुधा प्रयोग में लाई जाती है। टिपेट (Tippet) ने लिखा है कि, "वृहत् समूह में से एक छोटा भाग लेने की प्रथा सामान्यतः भली प्रकार समझी एवं विस्तृत रूप में प्रयोग की जाती है। गृहस्वामिनी दुकान पर पनीर खरीदने से पहले उसका एक टुकड़ा एक नमूने के रूप में लेती है तथा एक रुई धुनने वाला व्यक्ति केवल रुई के एक टुकड़े को देखकर ही उस रुई की पूरी गाँठ को खरीद लेता है।" इसी भाँति, स्नेडेकोर एवं कोचरन (Snedecor and Cochran) ने लिखा है कि, "केवल कुछ पौंड कोयले की जाँच के आधार पर पूरी गाड़ी कोयला या तो स्वीकृत कर लिया जाता है या अस्वीकृत कर दिया जाता है। केवल एक बूँद रक्त की जाँच करके डॉक्टर किसी बीमार व्यक्ति के रक्त के बारे में अनुमान लगा लेता है। निदर्शन ऐसे साधन हैं जिनसे केवल कुछ इकाइयों का निरीक्षण करके विशाल इकाइयों का अनुमान लगाया जा सकता है।"

12.4 श्रेष्ठ निदर्शन के अनिवार्य लक्षण

सामग्री, आँकड़ों या तथ्यों का संकलन एवं निष्कर्ष काफी सीमा तक निदर्शन पर आधारित होता है। अतः एक श्रेष्ठ या अच्छा निदर्शन का होना अनुसन्धान के लिए अनिवार्य है। पी० वी० यंग (P. V. Young) का कहना है कि सावधानी से चयनित अपेक्षाकृत छोटा निदर्शन त्रुटिपूर्ण बड़े निदर्शनों से अधिक विश्वसनीय है। एक श्रेष्ठ निदर्शन की निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएँ हैं-

समग्र का प्रतिनिधित्व - एक श्रेष्ठ निदर्शन उसे कहा जाता है जोकि समग्र का सही प्रतिनिधित्व करता है। यदि अध्ययन क्षेत्र में पाई जाने वाली भिन्नताओं एवं समानताओं को सामने रखकर उपयुक्त तकनीक द्वारा निदर्शन किया जाता है तो वह अधिक प्रतिनिधित्व वाला हो सकता है। लुण्डबर्ग (Lundberg) के मतानुसार निदर्शन का प्रतिनिधित्वपूर्ण होना या न होना दो बातों पर निर्भर करता है- प्रथम, अध्ययन सामग्री में पाई जाने वाली समरूपता तथा द्वितीय, निदर्शन के चयन हेतु अपनाई गई पद्धति। यदि अध्ययन सामग्री में समरूपता का अभाव पाया जाता है तो सभी वर्गों या समूहों को ध्यान में रखकर निदर्शन करना अनिवार्य है। ऐसी परिस्थिति में निदर्शन की तकनीक भी उपयुक्त होनी चाहिए।

पर्याप्त आकार - निदर्शन का आकार कितना होना चाहिए यद्यपि इसके बारे में कोई विशेष नियम नहीं है, फिर भी समस्या एवं समग्र की प्रकृति के आधार पर इसका अनुपात निश्चित किया जाना चाहिए। यह न ही तो अत्यधिक कम होना चाहिए और न ही अत्यधिक ज्यादा। उदाहरणार्थ, यदि किसी कॉलेज के 4,000 छात्रों में से केवल 4 छात्रों का चयन कर लिया जाए तो यह आशा नहीं की जा सकती कि चयनित 4 छात्र सभी 4,000 छात्रों का प्रतिनिधित्व करने वाले ही होंगे। इसलिए आकार कम-से-कम इतना होना चाहिए कि वह सभी छात्रों का प्रतिनिधित्व करने वाला हो। यह आकार 4 से 8 प्रतिशत तक हो सकता है। पी० वी० यंग (P. V. Young) ने इस सन्दर्भ में कहा है कि, "निदर्शन का आकार उसके प्रतिनिधित्वता की आवश्यक गारण्टी नहीं है। सापेक्षिक रूप में उपयुक्त तरीके से चुना गया छोटा निदर्शन अनुपयुक्त तरीके से चुने गए बड़े निदर्शन की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय हो सकता है।"

निष्पक्षता - एक श्रेष्ठ निदर्शन का पक्षपातरहित होना अनिवार्य है ताकि यह सम्पूर्ण समग्र का सही प्रकार से प्रतिनिधित्व कर सके। अनुसन्धानकर्ता को निदर्शन करते समय अपनी सुविधा, रुचि या स्वेच्छा पर ध्यान नहीं देना चाहिए अपितु निष्पक्ष रूप से इकाइयों का चयन करना चाहिए। अनुसन्धानकर्ता का किसी भी प्रकार का पूर्वग्रह

निदर्शन की निष्पक्षता को प्रभावित कर सकता है। निष्पक्ष निदर्शन के चयन के लिए सम्भावित निदर्शन पद्धतियाँ अधिक उपयोगी होती हैं।

तर्क पर आधारित - निष्पक्ष एवं विश्वसनीय होने के साथ-साथ निदर्शन का तर्क पर आधारित होना अनिवार्य है। वास्तव में, तर्कहीन दृष्टि से किया गया निदर्शन न ही तो निष्पक्ष हो सकता है और न ही प्रतिनिधित्वपूर्ण। यदि अनुसन्धानकर्ता को अध्ययनरत जनसंख्या की विशेषताओं के बारे में जानकारी है तो उसे निदर्शन हेतु अपने इस ज्ञान का प्रयोग करना चाहिए। ऐसा न होने की स्थिति में वह उन लोगों की राय ले सकता है जिन्हें सम्बन्धित जनसंख्या की जानकारी है। निदर्शन की अनेक पद्धतियाँ (तकनीक) हैं तथा अनुसन्धान समस्या की प्रकृति के आधार पर सबसे उपयुक्त पद्धति का चुनाव करना अत्यन्त अनिवार्य है।

साधनों के अनुरूप - एक श्रेष्ठ निदर्शन का साधनों के अनुरूप होना भी अनिवार्य है। निदर्शन का चयन साधनों का ध्यान रखकर किया जाना चाहिए ताकि यह प्रतिनिधि होने के साथ-साथ सरलता से किया भी जा सके। यदि साधन सीमित हैं और निदर्शन बहुत बड़ा कर लिया जाता है तो निर्धारित समयावधि में अध्ययन ही सम्भव नहीं है। इसीलिए यह कहा जाता है कि एक उच्च स्तरीय निदर्शन सदैव व्यावहारिक अनुभवों एवं साधनों के अनुरूप होना चाहिए।

उद्देश्य के अनुकूल - एक श्रेष्ठ निदर्शन का अनुसन्धान के उद्देश्यों के अनुरूप होना भी अनिवार्य है। निदर्शन उसी जनसमूह से किया जाना चाहिए जिसका कि हम अध्ययन कर रहे हैं। उदाहरणार्थ, यदि हम इण्टरमीडिएट के छात्रों में टेलीविजन पर दिखाए जाने वाले धारावाहिकों के प्रभाव का अध्ययन करना चाहते हैं, तो हमें केवल उन्हीं छात्रों का चयन करना होगा जिनके पास टेलीविजन हैं तथा जो नियमित रूप से धारावाहिक देखते हैं। यदि हम इस बात का ध्यान नहीं रखेंगे तो निदर्शन में ऐसे छात्र भी चयनित हो जाएँगे जिनके पास न तो टेलीविजन है और न ही वे धारावाहिक देखते हैं अथवा टेलीविजन तो है परन्तु धारावाहिक देखना उन्हें पसन्द नहीं है।

12.5 निदर्शन का चयन

निदर्शन की कार्यप्रणाली यद्यपि एक सरल प्रक्रिया लगती है परन्तु व्यवहार में यह एक कठिन कार्य है। अनुसन्धान की समस्या का निरूपण तथा उपकल्पनाओं का निर्माण कर लेने के पश्चात् तथा उपकल्पनाओं से सम्बन्धित महत्वपूर्ण चरों को चुन लेने के पश्चात् अनुसन्धानकर्ता के सामने निदर्शन की समस्या आती है। इसके लिए पहले यह निश्चित कर लेना अनिवार्य है कि उसे किस जनसमूह या समग्र का अध्ययन करना है तथा समग्र के बारे में थोड़ी-बहुत प्रारम्भिक जानकारी होना अनिवार्य है। समग्र के निर्धारण के पश्चात् उसे यह निणय लेना पड़ता है कि अध्ययन कि इकाई क्या होगी। इकाई गाँव, नगर, सम्पूर्ण समूह, परिवार या अन्य कोई समिति अथवा व्यक्ति हो सकती है। इकाइयों का चुनाव स्पष्ट, निश्चित एवं विषय के अनुरूप किया जाना चाहिए। इकाइयाँ तय कर लेने के पश्चात् स्रोत सूची का होना अनिवार्य है जैसे कि मतदाता सूची, टेलीफोन डायरेक्ट्री, अध्यापक सूचियाँ या किसी अन्य प्रकार की सूची जिसमें से इकाइयों का चयन किया जा सके। इसके पश्चात् अनुसन्धानकर्ता को निदर्शन के आकार (अर्थात् यह समग्र का कितना अंश होना चाहिए) और निदर्शन तकनीक (अर्थात् किस पद्धति द्वारा इकाइयों का चयन किया जाना है) के बारे में निर्णय लेना पड़ता है। एक प्रतिनिधित्व निदर्शन के लिए आकार का पर्याप्त होना और चयन की उपयुक्त पद्धति का अपनाया जाना अनिवार्य है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि निदर्शन के चयन हेतु कुछ निर्धारित चरण हैं जिनमें से प्रमुख निम्न प्रकार हैं-

समग्र को निर्धारित करना - निदर्शन के चयन का प्रथम चरण उन सभी इकाइयों को निर्धारित करना है जो समग्र का निर्माण करती हैं। यदि अध्ययन किसी विशिष्ट समुदाय तक सीमित है तो समग्र का निर्धारण सरल है अर्थात् उस समुदाय में रहने वाले सभी समग्र का निर्माण करते हैं।

उदाहरणार्थ, किसी गाँव, विद्यालय, महाविद्यालय, मोहल्ले के अध्ययन में समग्र का निर्धारण सरलता से किया जा सकता है। इसके विपरीत, यदि समग्र अनिश्चित है तो इसकी समस्त इकाइयों का निर्धारण करना कठिन होता है। उदाहरणार्थ, यदि हमें किसी नगर में नियमित रूप से सिनेमा देखने वालों अथवा मादक द्रव्य व्यसन करने वालों का अध्ययन करना है तो सम्पूर्ण इकाइयों का निर्धारण करना कठिन होता है। कोई भी यह वास्तविक अनुमान नहीं लगा सकता है कि कितने लोग हैं जो नियमित रूप से सिनेमा देखते हैं अथवा द्रव्य व्यसन के आदी हैं। प्रथम प्रकार के समग्र को वास्तविक समग्र तथा द्वितीय प्रकार के समग्र को काल्पनिक समग्र भी कहा जाता है। काल्पनिक समग्र में निदर्शन का चयन काल्पनिक रूप में ही पर्याप्त संख्या में होना अनिवार्य है।

निदर्शन की इकाई को निर्धारित करना - समग्र को निर्धारित करने के पश्चात् दूसरा चरण निदर्शन की इकाई का निर्धारण करना है। इस चरण में हमें यह निश्चित करना होता है कि वे कौन-सी इकाइयाँ ऐसी हो सकती हैं जिनको समग्र का प्रतिनिधि कहा जा सकता है। निदर्शन की इकाई व्यक्ति होगा या कोई परिवार, मोहल्ला, क्रीडा-समूह, स्कूल, व्यावसायिक समूह, चर्च अथवा क्लब इत्यादि, इसका निर्धारण इस चरण में किया जाता है। इस चरण में यह बात ध्यान रखने योग्य है कि अध्ययन की इकाई समस्या की प्रकृति के अनुकूल होनी चाहिए। उदाहरणार्थ, यदि संयुक्त परिवार का अध्ययन किया जा रहा है तो अध्ययन की इकाई संयुक्त परिवार ही होंगे। यदि किसी विद्यालय के छात्राओं का अध्ययन किया जा रहा है तो अध्ययन की इकाई वही छात्राएँ होंगी जो किसी निर्धारित स्तर के विद्यालय में पढ़ रही हैं। इकाई के निर्धारण में किसी प्रकार का भ्रम नहीं होना चाहिए तथा साथ ही ऐसी इकाई का चयन किया जाना चाहिए जिसके साथ सुविधाजनक रूप में सम्पर्क स्थापित किया जा सके।

इकाइयों के बारे में जानकारी प्राप्त करना - निदर्शन के चयन का तीसरा चरण इकाइयों के बारे में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना है। यदि सम्पूर्ण इकाइयों की कोई सूची उपलब्ध है तो इस चरण में उसे प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। इकाइयों की सूची को बहुधा 'साधन सूची' या 'स्रोत-सूची' भी कहा जाता है।

उदाहरणार्थ, यदि हमारे अध्ययन की इकाई मतदाता है तो मतदाता सूची स्रोत-सूची हो सकती है। यदि अध्ययन की इकाई टेलीफोन उपभोक्ता है तो स्रोत-सूची टेलीफोन डाइरेक्टरी हो सकती है। इसी भाँति, यदि अध्ययन की इकाई किसी विद्यालय के छात्र हैं तो उन छात्रों की कक्षा-वार सूची स्रोत-सूची हो सकती है। यह तथ्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि जिस भी स्रोत-सूची का उपयोग किया जाए उसमें सम्पूर्ण इकाइयों का विवरण होना चाहिए। सूची इतनी पुरानी भी नहीं होनी चाहिए कि उसमें से जिन इकाइयों का चयन किया जाए वे उपलब्ध ही न हों। यदि इस प्रकार की विश्वसनीय सूची उपलब्ध हो पाती है तो इकाइयों के बारे में जानकारी प्राप्त करना तथा उपयुक्त निदर्शन करना अपेक्षाकृत सरल होता है। किसी विश्वसनीय सूची के अभाव में इकाइयों की जानकारी होना कठिन कार्य बन जाता है।

निदर्शन के आकार को निर्धारित करना - इकाइयों के बारे में जानकारी प्राप्त कर लेने के पश्चात् निदर्शन के चयन का चौथा चरण निदर्शन के आकार का निर्धारण करना है। निदर्शन का आकार निर्धारित करने का कोई सांख्यिकीय मापदण्ड नहीं है। फिर भी, इसका आकार न तो अत्यधिक बड़ा होना चाहिए और न ही अत्यधिक कम होना चाहिए। निदर्शन का कितना आकार विश्वसनीय एवं प्रामाणिक हो सकता है, इसी आधार पर निदर्शन किया जाना चाहिए। निदर्शन का आकार समग्र की प्रकृति, अनुसन्धान की प्रकृति, इकाइयों की प्रकृति, अध्ययन पद्धति एवं तकनीक, निदर्शन पद्धति, उपलब्ध साधन इत्यादि को सामने रखकर निर्धारित किया जाना आवश्यक है।

निदर्शन की उपयुक्त पद्धति का चयन करना - निदर्शन हेतु अनेक पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है। इस चरण तक पहुँचते-पहुँचते समग्र की प्रकृति, निदर्शन की इकाइयों की प्रकृति, इकाइयों की सूची की उपलब्धता तथा निदर्शन का आकार स्पष्ट हो जाता है। इसी को सामने रखकर यह निर्णय लिया जाता है कि कौन-सी ऐसी उपयुक्त निदर्शन पद्धति होगी जो सही अर्थ में इकाइयों का प्रतिनिधित्वपूर्ण चयन करने में सहायक है। उसी पद्धति को इकाइयों के चयन हेतु अपनाया जाता है।

निदर्शन का चयन करना - यह निदर्शन के चयन का अन्तिम चरण है। उपयुक्त निदर्शन पद्धति द्वारा निर्धारित संख्या में इकाइयों का चयन किया जाता है। यही चयनित इकाइयाँ निदर्शन कहलाती हैं तथा इन्हीं को अध्ययन की इकाइयाँ कहा जाता है। उपयुक्त निदर्शन पद्धति द्वारा विश्वसनीय, प्रामाणित तथा प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन का चयन करना ही सम्पूर्ण निदर्शन प्रक्रिया का वास्तविक उद्देश्य है।

12.6 निदर्शन की उपयोगिता

सामाजिक अनुसन्धान में निदर्शन एक महत्वपूर्ण चरण है। इसकी निरन्तर बढ़ती हुई लोकप्रियता इसकी उपयोगिता की द्योतक है। आधुनिक विशाल एवं जटिल समुदायों में जनगणना पद्धति द्वारा अध्ययन करना असुविधाजनक होता है। इसीलिए निदर्शन का प्रयोग अधिक होने लगा है। इसकी उपयोगिता को अग्र प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है-

समय की बचत - निदर्शन के प्रयोग द्वारा अनुसन्धानकर्ता के समय की बचत होती है क्योंकि इसमें सीमित इकाइयों का अध्ययन किया जाता है। जो अनुसन्धान व्यक्तिगत प्रकृति के होते हैं उन्हें एक निश्चित अध्ययन में पूरा करना आवश्यक होता है। यह तभी सम्भव है जबकि निदर्शन द्वारा इकाइयों की संख्या सीमित रखी जाए।

धन की बचत - निदर्शन में धन की बचत होती है। जनगणना केवल सरकार ही करा सकती है क्योंकि उसके पास अपार साधन होते हैं। व्यक्तिगत आधार पर आयोजित अनुसन्धानों में यदि सभी इकाइयों का अध्ययन करना पड़े तो उसके लिए न केवल समय अधिक लगेगा, अपितु धन भी अधिक खर्च करना पड़ेगा। कम-से-कम खर्च करके अधिक-से-अधिक विश्वसनीय सामग्री को संकलित करना केवल निदर्शन द्वारा ही संभव है।

कम श्रम एवं शक्ति - निदर्शन में समय व धन कम लगने के कारण जनगणना पद्धति की अपेक्षा श्रम एवं शक्ति भी कम लगती है। इकाइयाँ कम होने के कारण सामग्री या आँकड़ों का संकलन केवल एक अनुसन्धानकर्ता अथवा बहुत कम प्रशिक्षित अनुसन्धानकर्ता कर सकते हैं।

विस्तृत एवं गहन अध्ययन की सम्भावना - निदर्शन के द्वारा विस्तृत एवं गहन अध्ययन संभव हो जाता है। सीमित इकाइयों के अध्ययन के कारण अनुसन्धानकर्ता विस्तृत क्षेत्र में अध्ययन कर सकता है और साथ ही सूचनाओं के संकलन में गहनता ला सकता है। यदि सूचनादाता बहुत बड़े क्षेत्र में बिखरे हुए हैं तथा हमें उन सभी से सूचना संकलित करनी है तो यह काफी असुविधाजनक हो सकती है। निदर्शन हमें इस असुविधा से बचाकर विस्तृत अध्ययन की सुविधा प्रदान करता है।

निष्कर्षों की परिशुद्धता - यदि निदर्शन समग्र का प्रतिनिधित्व करता है तो इससे न केवल विश्वसनीय आँकड़े एकत्रित किए जा सकते हैं, अपितु यथार्थ निष्कर्ष भी निकाले जा सकते हैं। यदि निदर्शन का चयन ठीक प्रकार से किया गया है तो इसके आधार पर निकाले जाने वाले निष्कर्ष जनगणना पद्धति की सहायता से किए गए अध्ययनों के निष्कर्षों से भी अधिक यथार्थ हो सकते हैं। अमेरिका एवं पश्चिमी समाजों में चुनाव से पूर्व होने वाले निदर्शन सर्वेक्षण के परिणाम चुनाव के परिणामों से काफी सीमा तक मिलते-जुलते होते हैं।

वैज्ञानिकता - सही आकार एवं उपयुक्त पद्धति द्वारा चयन किए गए निदर्शन में वैज्ञानिकता का समावेश होता है। इसीलिए निदर्शन के निष्कर्षों को सम्पूर्ण इकाइयों पर लागू किया जा सकता है।

प्रशासनिक सुविधा - निदर्शन में प्रशासनिक कठिनाइयाँ भी कम उठानी पड़ती हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि एक तो इकाइयों की संख्या सीमित होती है जिसके लिए कम संख्या में कार्यकर्ताओं को नियुक्त करना पड़ता है तो दूसरा कम लोगों से सूचना एकत्रित करने में कम परेशानी होती है। अपनी सुविधानुसार सभी सूचनादाताओं से सूचना एकत्रित करना कठिन होता है। इसलिए निदर्शन का छोटा आकार सूचनादाताओं की सुविधाओं को भी ध्यान में रखने में उपयोगी सिद्ध होता है।

निदर्शन की उपयोगिता को स्पष्ट करते हुए गुड एवं हैट (Goode and Hatt) ने लिखा है कि, “इस प्रकार, निदर्शन का प्रयोग किसी वैज्ञानिक कार्यकर्ता के समय की बचत कर उसके कार्य को अधिक वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करता है। यह संकलित विशाल सामग्री के विश्लेषण हेतु किसी एक दृष्टिकोण के आधार पर अधिक घण्टे लगाने की अपेक्षा उस सामग्री के एक भाग को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखने में सहायता प्रदान करता है अथवा अन्य शब्दों में कुछ मामलों का अधिक गहन अध्ययन करने का अवसर प्रदान करता है।”

अतः स्पष्ट है कि यदि निदर्शन का चयन सावधानीपूर्वक किया गया है तो यह समग्र के बारे में ऐसे निष्कर्ष निकालने में सहायता प्रदान करता है जो बिल्कुल सत्य होते हैं। इसीलिए यह भी कहा जाता है कि निदर्शन त्रुटि के गणितीय सिद्धान्त पर आधारित होने के कारण निदर्शन में सूक्ष्मता तथा पूर्ण शुद्धता की धारणा प्रारम्भ से प्रमुख होती है।

12.7 निदर्शन की सीमाएँ

यद्यपि निदर्शन सामाजिक अनुसन्धान का एक महत्वपूर्ण चरण है तथा इसके बिना अनुसन्धान की कल्पना करना संभव नहीं है, फिर भी इसकी अपनी कुछ सीमाएँ हैं जिनके कारण इसका प्रयोग अत्यन्त सावधानीपूर्वक करना पड़ता है। निदर्शन की प्रमुख सीमाएँ निम्न प्रकार हैं—

पक्षपात एवं अभिनति की अधिक सम्भावना - निदर्शन के चयन में पक्षपात एवं अभिनति की सम्भावना अधिक होती है। न चाहते हुए भी किसी-न-किसी रूप में निदर्शन में पक्षपात एवं अभिनति का समावेश हो जाता है। इसका कारण अनुसन्धानकर्ता के अपने पूर्वाग्रह, मूल्य अथवा प्राथमिकताएँ होती हैं। इन्हें निदर्शन के समय अपने से अलग करना एक कठिन कार्य है।

विशेष ज्ञान की आवश्यकता - किसी भी जनसंख्या में से उसके प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन का चयन जितना सरल लगता है वह उतना ही कठिन होता है। वस्तुतः निदर्शन के लिए विशेष ज्ञान, सूझबूझ, अनुभव तथा अन्तर्दृष्टि की आवश्यकता होती है। यदि यह सभी गुण यदि अनुसन्धानकर्ता में नहीं हैं तो उससे प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन के चयन की आशा करना निरर्थक है। अनुसन्धानकर्ता के लिए ऐसे विशेषज्ञ ढूँढना भी कठिन कार्य है जो जनसंख्या से भली-भाँति परिचित हों।

प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन के चयन में कठिनाई - यदि निदर्शन समग्र का प्रतिनिधि नहीं है, तो निष्कर्ष भी कम शुद्ध होते हैं। साथ ही, जनसंख्या के लक्षणों का ज्ञान न होने की स्थिति में निदर्शन के चयन हेतु विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है। जिन परिस्थितियों में जनसंख्या में अत्यधिक विषमता पाई जाती है उनमें प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन का चयन करना एक चुनौती होता है। इसके लिए जनसंख्या का ज्ञान होना आवश्यक है ताकि सभी वर्गों एवं समूहों को सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व मिल सके। सामान्यतः इस ज्ञान के अभाव में निदर्शन प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं होता।

उच्चतम परिशुद्धता वाले अध्ययनों में अनुपयोगी - उच्चतम परिशुद्धता वाले अध्ययनों में निदर्शन उपयोगी नहीं है। इसका प्रमुख कारण निदर्शन के चयन में पक्षपात एवं अभिनति होना है। यह सही है कि अमेरिका, पश्चिमी यूरोप तथा कई बार भारत में भी चुनाव-पूर्व होने वाले निदर्शन सर्वेक्षण के निष्कर्ष चुनाव के पश्चात् घोषित परिणामों से मिलते-जुलते होते हैं, फिर भी बहुधा यह निष्कर्ष वास्तविक परिणामों से मेल नहीं खाते। इसीलिए जनता इससे भ्रमित हो सकती है। परिशुद्ध न होने के कारण ही भारत में चुनाव-पूर्व ऐसे निदर्शन सर्वेक्षण न करने की बार-बार माँग की जाती है।

निदर्शन पद्धति की असम्भवता - कुछ परिस्थितियों में निदर्शन को अपनाना प्रायः असम्भव होता है। यदि कोई कम इकाइयों का गहन अध्ययन करना चाहता है तो ऐसे अध्ययनों में निदर्शन संभव नहीं है। ऐसी स्थिति में उसे सभी इकाइयों को अपने अध्ययन में सम्मिलित करना पड़ता है। इसी भाँति, अत्यधिक विषमता वाली जनसंख्या के अध्ययन में निदर्शन द्वारा किया गया अध्ययन यथार्थ निष्कर्ष निकालने में सहायक नहीं होता है।

भ्रामक परिणामों की आशंका - निदर्शन के चयन में विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है। यदि यह सावधानी न रखी जाए तो निदर्शन से प्राप्त निष्कर्ष भ्रामक भी हो सकते हैं। इसीलिए निदर्शन पर आधारित निष्कर्षों पर कभी भी एकाएक पूर्ण विश्वास नहीं किया जाता। कई बार तो निदर्शन द्वारा निकाले गए परिणाम वास्तविक स्थिति के बिल्कुल विपरीत होते हैं।

निदर्शन की इकाइयों की उपलब्धता सम्बन्धी समस्या - किसी भी अनुसन्धान में निदर्शन द्वारा जिन इकाइयों का चयन किया जाता है उन्हीं इकाइयों से सामग्री संकलित करनी पड़ती है। कई बार ऐसा होता है कि उन इकाइयों के साथ सम्पर्क करने में अनेक समस्याएँ सामने आती हैं। उदाहरणार्थ, निवास स्थान बदल लेने, पर्दा प्रथा के प्रचलन, सूचनादाता की अत्यधिक उच्च सामाजिक एवं राजनैतिक स्थिति, अनेक सूचनादाताओं का अनुसन्धान कार्य में असहयोग आदि से उन्हीं इकाइयों पर कायम रहना कठिन हो जाता है जिनका चयन निदर्शन द्वारा किया गया है। यदि इन इकाइयों के स्थान पर दूसरी इकाइयों का चयन किया जाता है तो निदर्शन पूरी तरह से प्रभावित हो सकता है।

निदर्शन की सीमाओं को सामने रखते हुए अनेक विद्वानों ने यह मत प्रस्तुत किया है कि निदर्शन औषधियों (दवाइयों) की भाँति होते हैं। यदि उनका चयन असावधानी से अथवा उनके प्रभावों के पर्याप्त ज्ञान के बिना किया जाता है, तो वे हानिकारक भी हो सकती हैं। निदर्शन की उपर्युक्त सीमाओं से यह भी स्पष्ट है कि यदि निदर्शन के चयन में सावधानी रखी जाए तो एक विश्वसनीय निदर्शन का चयन इसकी सीमाओं को कम कर सकता है। यदि अध्ययन-क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत है, प्रशिक्षित अनुसन्धानकर्ताओं की कमी है, समय एवं धन का अभाव है तथा निदर्शन से ही हमारा काम चल सकता है तो निदर्शन को अध्ययन का आधार बनाना सर्वाधिक उचित है। उपर्युक्त सीमाएँ किसी भी रूप में निदर्शन के महत्त्व को अस्वीकार नहीं करतीं।

12.8 निदर्शन की समस्याएँ

निदर्शन सामाजिक अनुसन्धान का एक प्रमुख चरण है। अनुसन्धान के निष्कर्ष काफी सीमा तक निदर्शन पर ही निर्भर करते हैं। यदि निदर्शन ही ठीक प्रकार से नहीं किया गया है तो निष्कर्ष भी सही नहीं होंगे। निदर्शन का चयन करते समय अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं—प्रथम, कई बार समग्र पूरी तरह से स्पष्ट नहीं होता है। हमें यह पता नहीं होता है कि इसमें किस सीमा तक सजातीयता अथवा विजातीयता पाई जाती है। इसके परिणामस्वरूप हम निदर्शन के आकार के बारे में सही निर्णय नहीं ले पाते हैं; द्वितीय, निदर्शन की कौन-सी विधि प्रयोग में लाई जाए, यह भी निदर्शन की एक प्रमुख समस्या है। तैव निदर्शन का

प्रयोग केवल उन्हीं परिस्थितियों में किया जाता है जहाँ समग्र की इकाइयाँ स्पष्ट हैं तथा उन्हें किसी-न-किसी आधार पर क्रमानुसार सूचीबद्ध किया जा सकता है। ऐसा प्रायः संभव नहीं होता है; तृतीय, निदर्शन की एक अन्य समस्या इसके समग्र को प्रतिनिधित्व करने की है। यदि निदर्शन समग्र का प्रतिनिधित्व नहीं करता है तो निष्कर्ष भ्रामक हो सकते हैं। इसलिए इसका समग्र का प्रतिनिधित्व करना अनिवार्य है; चतुर्थ, निदर्शन की अन्तिम समस्या इसकी विश्वसनीयता से सम्बन्धित है। यदि यह विश्वसनीय नहीं है तो सामान्यीकरण निकालने में कठिनाई हो सकती है।

12.9 निदर्शन के आकार एवं विश्वसनीयता का निर्धारण

सामाजिक अनुसन्धान में निदर्शन के प्रयोग के पीछे इसका वैज्ञानिक आधार होना है। निदर्शन सांख्यिकी के दो प्रमुख नियमों पर आधारित है—सांख्यिकीय निरन्तरता या नियमितता (Regularity) का नियम तथा व्यापक संख्याओं की स्थिरता या जड़त्व (Inertia) का नियम। प्रथम नियम के अनुसार यदि एक विस्तृत जनसंख्या में से कुछ इकाइयों का संयोगिक या दैव (Random) आधार पर चयन किया जाए तो इस प्रकार से चयनित इकाइयाँ सम्पूर्ण जनसंख्या की विशेषताओं की प्रतिनिधि मानी जाती हैं। दूसरे नियम के अनुसार जनसंख्या का स्वरूप अल्प समय में परिवर्तित नहीं होता है। इसीलिए निदर्शन के आधार पर समग्र का विश्वसनीय अध्ययन करना पर्याप्त मात्रा में उपयुक्त ही नहीं है, अपितु वैज्ञानिक भी कहा जाता है। इसकी वैज्ञानिकता को बनाए रखने हेतु निदर्शन करते समय इसकी दो प्रमुख समस्याओं—आकार एवं विश्वसनीयता का निर्धारण—का समाधान किया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

निदर्शन के आकार का निर्धारण अनेक कारकों पर निर्भर करता है, जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं—

- समग्र की सजातीयता अथवा विजातीयता,
- वर्गों अथवा श्रेणियों की संख्या,
- अध्ययन की प्रकृति,
- परिशुद्धता की मात्रा,
- प्रश्नावली अथवा अनुसूची का आकार तथा
- निदर्शन की पद्धति।

उदाहरणार्थ, यदि समग्र में सजातीयता अधिक है तो छोटा-सा निदर्शन भी अधिक उपयुक्त हो सकता है। इसी प्रकार, यदि श्रेणियों की संख्या कम रखी जानी है तथा अध्ययन की प्रकृति गहराई से अन्वेषण करने की है तो निदर्शन का छोटा आकार भी पर्याप्त है। यदि बहुत ज्यादा परिशुद्धता नहीं रखी जानी है तथा प्रश्नावली या अनुसूची का आकार छोटा है तो निदर्शन भी छोटा हो सकता है। यदि दैव निदर्शन का प्रयोग करना है तो निदर्शन का आकार बड़ा होना अनिवार्य है क्योंकि इसी से सांख्यिकीय परिशुद्धता रखी जा सकती है।

एक अच्छे अनुसन्धान में निदर्शन की विश्वसनीयता का निर्धारण किया जाना भी अनिवार्य है। अतः यह आवश्यक है कि निदर्शन द्वारा प्राप्त परिणामों की विश्वसनीयता की जाँच के उपरान्त ही परिणामों को समग्र पर लागू किया जाना चाहिए अर्थात् सामान्यीकरण किया जाना चाहिए। निदर्शन की विश्वसनीयता की जाँच मध्यमान मानक त्रुटि (SEM) की मात्रा पर आधारित होती है जिसे निम्नलिखित सूत्र द्वारा ज्ञात किया जा सकता है—

$$SEM = S / \sqrt{N}$$

जहाँ

S = निदर्शन का मानक विचलन (Standard Deviation).

N = निदर्शन की संख्या।

जब निदर्शन की मानक त्रुटि का मान 1.95 तथा इससे अधिक रहता है तो निदर्शन की इकाइयों के विषय में यह मान्यता दृढ़ हो जाती है कि उनमें अत्यधिक भिन्नताएँ हैं और वे अपने समग्र का प्रतिनिधि नहीं हैं। ऐसा निदर्शन विश्वसनीय नहीं कहा जा सकता। जैसे-जैसे मानक त्रुटि की मात्रा 1.95 से अधिक बढ़ती जाती है उतने ही अधिक विश्वास के साथ निदर्शन के मध्यमान को अस्वीकृत कर दिया जाता है।

निदर्शन की विश्वसनीयता में उसी स्थिति में वृद्धि हो सकती है जबकि उसकी मध्यमान की मानक त्रुटि कम हो। यह त्रुटि निम्नलिखित दो स्थितियों में कम हो सकती है—

- जब निदर्शन के मानक विचलन (S.D.) की मात्रा को संयोगिक निदर्शन (Random sampling) द्वारा कम किया जाए।
- जब निदर्शन की संख्या (N) में उपयुक्त वृद्धि की जाए।

निदर्शन की विश्वसनीयता की जाँच निम्नलिखित तीन विधियों अथवा कसौटियों द्वारा की जा सकती है—

- समानान्तर निदर्शन (Parallel sample) का चयन करके,
- निदर्शन द्वारा प्राप्त निष्कर्षों की तुलना समग्र के बारे में ज्ञात सूचनाओं से करके तथा
- मुख्य निदर्शन से एक उप-निदर्शन (Sub-sample) का चयन करके।

प्रथम विधि में समानान्तर निदर्शन तथा मूल निदर्शन द्वारा प्राप्त आँकड़ों की तुलना की जाती है। यदि वे समान हैं तो निदर्शन विश्वसनीय है। दूसरी विधि में निदर्शन से प्राप्त आँकड़ों की तुलना समग्र के बारे में उपलब्ध जानकारी से की जाती है। यदि दोनों मेल खाते हैं तो निदर्शन विश्वसनीय है। तीसरी विधि में निदर्शन में से एक उप-निदर्शन का चयन किया जाता है तथा उसका गहराई से अध्ययन किया जाता है। यदि दोनों के निष्कर्ष एक जैसे हैं तो निदर्शन विश्वसनीय है।

यदि निदर्शन द्वारा प्राप्त मध्यमान की मानक त्रुटि (SEM) तथा उपर्युक्त विधि या कसौटी के मध्यमान के मानक त्रुटि के मान 1.95 से कम रहते हैं तथा दोनों के मान एक-दूसरे के सन्निकट रहते हैं तो यह माना जा सकता है कि दोनों निदर्शन समग्र के प्रतिनिधि हैं। यदि दोनों के मध्यमानों में थोड़ा-बहुत अन्तर है तो वह संयोगजन्य कारणों अथवा निदर्शन की त्रुटियों से ही उत्पन्न हुआ है तथा यह अन्तर सार्थक नहीं है।

12.10 निदर्शन की पद्धतियाँ

निदर्शन पद्धति (तकनीक) का अर्थ उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा निदर्शन का चुनाव किया जाता है। निदर्शन पद्धतियों को प्रयोग किया जाता है दो प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है:

(i) सम्भावित निदर्शन तथा (ii) असम्भावित निदर्शन।

प्रथम प्रकार के निदर्शन में इकाइयों का चयन समान सम्भावना के आधार पर किया जाता है। सामाजिक अनुसन्धान में मुख्य रूप से इसी प्रकार के निदर्शन को प्रयोग में लाया जाता है। दैव निदर्शन (Random sampling) इस प्रकार के निदर्शन का प्रमुख उदाहरण है। सम्भावित निदर्शन सांख्यिकीय निरन्तरता एवं सामान्य वितरण के सिद्धान्त पर आधारित होने के कारण अधिक वैज्ञानिक होता है। दूसरे प्रकार के निदर्शन अर्थात् असम्भावित निदर्शन में समान सम्भावना या संयोग को महत्त्व नहीं दिया जाता अपितु अनुसन्धानकर्ता अपनी सुविधानुसार इकाइयों का चयन करता है। उद्देश्यपूर्ण एवं सुविधापूर्ण निदर्शन इसके प्रमुख उदाहरण हैं। इस प्रकार की निदर्शन पद्धतियों में वैज्ञानिकता का अंश कम होता है।

12.11 सम्भावित निदर्शन की पद्धति के रूप में दैव निदर्शन

यह (सम्भावित) वह निदर्शन है जिसमें समान सम्भावना या संयोग को महत्त्व दिया जाता है। वस्तुतः प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन के चयन हेतु अनुसन्धानकर्ता को स्वयं के पक्षपात, पूर्वाग्रह तथा मिथ्या-झुकाव की सम्भावना को कम करने हेतु समग्र की सभी इकाइयों को चुने जाने का एक समान अवसर प्रदान करना पड़ता है। दैव निदर्शन (Random Sampling) सम्भावित निदर्शन का प्रमुख प्रकार है। दैव निदर्शन वह निदर्शन है जिसमें समग्र की प्रत्येक इकाई के चुने जाने की सम्भावना या संयोग (Chance) एक समान होता है। अतः यह निदर्शन पक्षपातरहित एवं समग्र का प्रतिनिधित्व करने वाला होता है। गुड एवं हैट (Goode and Hatt) के अनुसार, “दैव निदर्शन में समग्र की इकाइयों को इस प्रकार से क्रमबद्ध किया जाता है कि चुनाव प्रक्रिया समग्र की प्रत्येक इकाई को चयन का समान अवसर प्रदान करती है।” अतः दैव निदर्शन में समग्र की प्रत्येक इकाई को चयनित होने हेतु समान अवसर प्राप्त होते हैं। इतना ही नहीं, इसमें किसी इकाई का चयन किसी दूसरी इकाई के चयन की सम्भावना को किसी भी रूप में कम नहीं करता है। इस प्रकार का चुनाव दैवयोग से हुआ माना जाता है।

दैव निदर्शन में समग्र की इकाइयों का चयन संयोगिक आधार पर किया जाता है। इसमें किसी भी एक इकाई के चुने जाने का अवसर उतना ही रहता है जितना कि अन्य किसी इकाई के चुने जाने का। इसमें प्रत्येक इकाई चुने जाने हेतु स्वतंत्र होती है तथा उसे चुने जाने का समान अवसर उपलब्ध किया जाता है। अन्य शब्दों में दैव निदर्शन में किसी भी इकाई को किसी प्रकार की प्राथमिकता, प्रमुखता अथवा अधिमान्यता नहीं दी जाती है। दैव निदर्शन को कई बार ‘समानुपातिक निदर्शन’ (Proportionate sampling) भी कहा जाता है क्योंकि इसमें प्रत्येक वर्ग का प्रतिनिधित्व उसी अनुपात में होता है जिस अनुपात में वह वर्ग समग्र में विद्यमान है। उदाहरणार्थ, यदि किसी कॉलेज में पढ़ने वाले 4,000 छात्रों में से 60 प्रतिशत छात्र नगरीय पृष्ठभूमि तथा शेष 30 प्रतिशत छात्र ग्रामीण पृष्ठभूमि के हैं तो इकाइयों को समान अवसर देने के सिद्धान्त के अनुसार निदर्शन में चयनित छात्राओं का अनुपात भी लगभग इसी प्रकार का होना चाहिए। यदि थोड़ा-बहुत अन्तर भी है तो उसका अध्ययन के निष्कर्षों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है।

कई बार दैव निदर्शन को ‘आकस्मिक निदर्शन’ (Incidental sampling) मान लेने की भूल भी की जाती है। दोनों में कोई समानता नहीं है क्योंकि आकस्मिक निदर्शन में हमें जो इकाई सरलता से उपलब्ध होती है उसी का हम चयन कर लेते हैं। यह संभव है कि संयोग से आकस्मिक निदर्शन दैव निदर्शन भी हो, परन्तु सदैव ऐसा नहीं होता है। आकस्मिक निदर्शन में पक्षपात की सम्भावना सदैव बनी रहती है। उदाहरणार्थ, यदि कोई छात्र पुस्तकालय में किसी पुस्तक का कोई पृष्ठ अनायास खोलता है तो उस पृष्ठ के खुलने की सम्भावना अधिक है जिसे अधिकतर छात्रों ने खोला एवं पढ़ा है।

दैव निदर्शन एक सरल पद्धति होने के साथ ही सम्भावित अशुद्धता का सरलता से पता लगाने में भी सहायता देती है। परन्तु दैव निदर्शन का प्रयोग तभी संभव है जबकि समग्र में से इकाइयों के चयन हेतु स्रोत-सूची उपलब्ध हो और इकाइयों में एकरूपता पाई जाती हो।

दैव निदर्शन पद्धति का प्रयोग अनेक रूपों में किया जाता है जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं—

(अ) सरल दैव निदर्शन— इस प्रकार के निदर्शन का प्रयोग सजातीय समग्र में से इकाइयों के चयन हेतु किया जाता है। इसमें इकाइयों का चयन अनेक प्रकार से किया जाता है। सामान्यतः सरल दैव निदर्शन में इकाइयों के चयन हेतु निम्नांकित पद्धतियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं—

(1) **लॉटरी पद्धति** — यदि समग्र का आकार छोटा है तो सभी इकाइयों को एक से कागज की छोटी-छोटी पर्चियों पर लिखकर किसी ड्रम इत्यादि में डालकर हिलाया जाता है ताकि पर्चियाँ आपस में इस प्रकार मिल जाएँ कि पक्षपात की कोई सम्भावना न रहे। फिर स्वयं अनुसन्धानकर्ता आँख बंद करके एक-एक पर्ची निकालता है। जितना निदर्शन चाहिए उतनी पर्चियाँ एक-एक करके निकाली जाती हैं।

(2) **कार्ड या टिकट पद्धति** — लॉटरी पद्धति की भाँति सरल दैव निदर्शन में इकाइयों के चयन हेतु कार्ड या टिकट पद्धति भी प्रयोग में लाई जाती है। कार्ड या टिकट पद्धति में इकाइयों के नम्बर या नाम एक समान आकार, रंग तथा मोटाई वाले कार्डों या टिकटों पर लिखे रहते हैं। इन कार्डों को एक बन्द कंटेनर या ड्रम में डाल दिया जाता है। जिसके ढक्कन में एक छेद कर दिया जाता है ताकि आवश्यकतानुसार उस छेद से एक बार में एक कार्ड निकाल सकें। तत्पश्चात् उस ड्रम को हिलाकर ड्रम को उल्टा कर उसमें से एक कार्ड निकाला जाता है। प्रत्येक कार्ड या टिकट निकालने के बाद ड्रम को निश्चित बार हिलाया जाता है जिससे शेष बचे कार्ड या टिकट पुनः संयोगिक हो जाएँ। तत्पश्चात् दूसरा कार्ड या टिकट निकाला जाता है। तीसरा कार्ड या टिकट निकालने से पहले ड्रम को पुनः निश्चित बार हिलाया जाता है। यह प्रक्रिया तब तक चलती है जब तक निर्धारित संख्या में इकाइयों का चयन न हो जाए। इस पद्धति में कार्ड या टिकट निकालने का कार्य अनुसन्धानकर्ता द्वारा न कर किसी बच्चे या अन्य किसी द्वारा किया जाता है।

(3) **ग्रिड पद्धति** — इसे भौगोलिक क्षेत्र के किसी भाग को चुनने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। इस पद्धति में सर्वप्रथम प्रस्तावित क्षेत्र का भौगोलिक मानचित्र तैयार किया जाता है। तत्पश्चात् मानचित्र के बराबर एक सेल्युलाइड या किसी पारदर्शक प्लेट (ग्रिड प्लेट) ली जाती है और उसमें संयोगिक या यदृच्छ रूप से उतने ही वर्गाकार छेद कर दिए जाते हैं जितने क्षेत्र निदर्शन में सम्मिलित किए जाने हैं। इस ग्रिड प्लेट को मानचित्र पर रखा जाता है। जो क्षेत्र छेदों में दिखाई देते हैं उन्हें चिह्नित कर लिया जाता है तथा वे क्षेत्र निदर्शन में सम्मिलित किए जाते हैं। मान लीजिए किसी औद्योगिक क्षेत्र में हमने सभी श्रमिक बस्तियों में से केवल 8 बस्तियों का अध्ययन करना है। इसके लिए सर्वप्रथम श्रमिक बस्तियों का मानचित्र तैयार किया जाएगा तथा फिर ग्रिड प्लेट पर संयोगिक या यदृच्छ रूप से 8 छेद कर दिए जाते हैं। मानचित्र पर ग्रिड प्लेट रखने के पश्चात् जो क्षेत्र छेदों के नीचे दिखाई देते हैं उन्हें निदर्शन की इकाई माना जाता है।

(3) **दैव संख्या सारणी पद्धति** — जब समग्र का आकार बड़ा होता है और लॉटरी अथवा कार्ड या टिकट पद्धति द्वारा निदर्शन का चयन कठिन होता है, तो इस प्रकार के बड़े समग्र में से अध्ययन इकाई के चयन हेतु क्रमशः दैव संख्या सारणी का प्रयोग किया जाता है। इन संख्याओं को वैज्ञानिक पद्धति द्वारा निर्धारित किया जाता है।

सामान्यतः टिप्पेट (Tippet) अथवा फिशर एवं येट्स (Fisher and Yates) की दैव संख्या सारणी का प्रयोग किया जाता है। इस सारणी द्वारा निर्धारित संख्या में इकाइयों का चयन किया जाता है। इसमें भी प्रत्येक इकाई के चुने जाने की बराबर सम्भावना होती है। उदाहरणार्थ, टिप्पेट द्वारा 8,300 संख्याओं की संयोगिक या यदृच्छ चयन पद्धति (Random selection method) द्वारा एक सूची बनाई गई तथा उसका मानकीकरण किया गया। अनुसन्धानकर्ता टिप्पेट द्वारा बनाई गई इस सूची के किसी पृष्ठ से निर्धारित संख्या में इकाइयों का चयन कर सकता है। टिप्पेट द्वारा एक पृष्ठ पर दिए गए अंकों का नमूना निम्न प्रकार है—

2942 3392 6969 3160

3156 1234 6203 380

2360 3308 3453 5913

0450 119 5008 3333
 2643 1304 6002 8815
 5531 9692 4911 4523
 9423 1392 4345 2993
 6383 2652 889 6591
 4235 586 895 8695
 9133 9024 5111 9335

इसी प्रकार, अन्य पृष्ठों पर संख्या दर्शाई गई होती हैं। इन संख्याओं का निर्धारण वैज्ञानिक ढंग से किया जाता है। मान लीजिए समग्र का आकार 400 है तथा इनमें से हमें केवल 40 सूचनादाताओं का निदर्शन लेना है, तो हम ऐसे नम्बरों वाली इकाइयों का चयन करेंगे जिनकी संख्या 400 या इससे कम है।

चुनी हुई इकाइयों की संख्या निम्न प्रकार निर्धारित होगी—

294, 5. 339, 11. 139
 315, 6. 123, 9. 265
 236, 8. 330, 13. 345
 045, 9. 111, 13. 88
 264, 8. 130

इकाइयों का निर्धारित संख्या में चयन करते समय यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि टिप्पेट की सूची के किसी भी पृष्ठ के किसी भी स्थान से लगातार संख्याओं का चयन करना आवश्यक है। साथ ही, इस बात का ध्यान रखा जाना भी आवश्यक है कि बाईं तरफ के या दाईं तरफ के उतने ही अंकों का चयन करना आवश्यक है जिनके अंकों में हमें निदर्शन लेना है।

(4) नियमित अंकन दैव निदर्शन पद्धति — इस पद्धति का प्रयोग तब किया जाता है जब समग्र की सभी इकाइयाँ किसी विशेष ढंग, काल, स्थान आदि के अनुसार व्यवस्थित होती हैं। सर्वप्रथम सभी इकाइयों की क्रम संख्या डालते हुए एक सूची का निर्माण किया जाता है तथा तत्पश्चात् निदर्शन के आकार का निर्धारण किया जाता है। किसी एक संख्या से प्रारम्भ कर नियमित रूप से अगली संख्याएँ निर्धारित संख्या में चुनी जाती हैं। उदाहरणार्थ, यदि हमें किसी कक्षा के 200 छात्रों में से केवल 20 छात्रों का चयन करना है तो पहले उस कक्षा के 200 छात्रों की सूची विद्यालय से ली जाएगी अथवा स्वयं तैयार की जाएगी। इसके पश्चात् सूची में सम्मिलित हर 8वाँ छात्र (अर्थात् 8, 20, 30, 30, 40, 50, 60 इत्यादि) निदर्शन में सम्मिलित कर लिया जाएगा। यह पद्धति आकस्मिक ढंग से निदर्शन के चयन में सहायक होती है। अतः इसमें सभी प्रकार के छात्रों के निदर्शन में सम्मिलित होने की सम्भावना अधिक होती है। यद्यपि यह पद्धति दैव निदर्शन की ही एक पद्धति है, तथापि इसमें सभी इकाइयों की जानकारी होना कठिन होता है जिसके परिणामस्वरूप इसमें विकृति की सम्भावना अधिक रहती है। इस पद्धति को क्रमबद्ध निदर्शन भी कहा जाता है।

(ब) स्तरीकृत दैव निदर्शन — जब जनसमूह अथवा समग्र में समानता कम और भिन्नताएँ अधिक हों तो पहले सम्पूर्ण समग्र को कुछ सजातीय श्रेणियों या वर्गों में बाँट लिया जाता है और फिर प्रत्येक श्रेणी से सरल दैव निदर्शन द्वारा इकाइयों का चयन किया जाता है। यह समानुपातिक (Proportional) अर्थात् प्रत्येक श्रेणी की इकाइयों की संख्या के आधार पर समान अनुपात द्वारा लिया गया अथवा असमानुपातिक (Disproportional) हो सकता है।

जिसमें प्रत्येक श्रेणी से निश्चित संख्या में इकाइयों का चयन किया जाता है चाहे उनकी संख्या में कितना भी अन्तर क्यों न हो। कई बार इन दोनों का मिला-जुला प्रयोग में लाया जाता है जिसे भारयुक्त निदर्शन (Weighted sampling) कहा जाता है। इसमें प्रत्येक श्रेणी से इकाइयों की संख्या तो समान अनुपात में होती है परन्तु बाद में अधिक संख्या वाली श्रेणी की इकाइयों को अधिक भार प्रदान कर उसका प्रभाव बढ़ा दिया जाता है। इस भार को उसी अनुपात में बढ़ाया जाता है जिस अनुपात में श्रेणी की इकाइयाँ समग्र में विद्यमान हैं।

स्तरीकृत निदर्शन में समग्र का प्रसार कम हो जाता है और यह अधिक प्रतिनिधित्व करने वाला बन जाता है। सिन पाओ यांग (Hsin Pao Yang) के शब्दों में, “स्तरीकृत निदर्शन का अर्थ समग्र में से सामान्य विशेषताओं के आधार पर उप-निदर्शन लेना है। यह विशेषताएँ कृषि, खेतों का आकार, भूमि पर स्वामित्व, शैक्षणिक स्तर, आय, लिंग, सामाजिक वर्ग इत्यादि हो सकती हैं।”

इस निदर्शन हेतु अनुसन्धानकर्ता सर्वप्रथम समग्र की विशेषताओं के आधार पर उसे विभिन्न वर्गों में विभाजित कर लेता है तथा फिर प्रत्येक वर्ग में निर्धारित संख्या में निदर्शन की इकाइयों का चयन करता है। इस प्रकार, स्तरीकृत दैव निदर्शन में पहले स्तरों का निर्धारण होता है तथा फिर प्रत्येक स्तर में से निदर्शन की इकाइयों का चयन किया जाता है। उदाहरणार्थ, यदि हमें किसी गाँव के विभिन्न व्यवसायों में लगे 1,000 लोगों का 8 प्रतिशत निदर्शन लेना है तो पहले हमें विभिन्न व्यवसायों (कृषि, व्यापार, नौकरी, दस्तकारी, मजदूरी आदि) में लगे लोगों के वर्ग बनाने होंगे। फिर प्रत्येक वर्ग में जितने लोग आएँगे उनमें से 8 प्रतिशत लोगों का चयन दैव निदर्शन की पद्धति से कर लिया जाएगा।

स्तरीकृत निदर्शन की उपयोगिता को इसके निम्नलिखित प्रमुख गुणों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

- इसमें समग्र की प्रत्येक वर्ग या श्रेणी की इकाइयों को निदर्शन में सम्मिलित होने का अवसर प्राप्त होता है जिसके कारण किसी महत्वपूर्ण वर्ग या श्रेणी के उपेक्षित होने की सम्भावना नहीं रहती। सरल दैव निदर्शन में तो कोई महत्वपूर्ण इकाई छूट सकती है परन्तु स्तरीकृत दैव निदर्शन में ऐसा संभव नहीं है।
- इसमें यदि विभिन्न श्रेणियों का विभाजन सोच-समझकर किया जाए तथा प्रत्येक श्रेणी से चाहे कम इकाइयों का ही चयन किया जाए तो भी यह निदर्शन समग्र का अधिक प्रतिनिधित्व करने वाला होता है।
- इसमें किसी इकाई को आवश्यकता पड़ने पर त्याग कर उसके स्थान पर उसी श्रेणी की दूसरी इकाई चुनने की सुविधा होती है। यदि किसी कारणवश किसी एक श्रेणी के सूचनादाता से उसके द्वारा स्थान छोड़ देने के कारण सम्पर्क नहीं हो पा रहा है तो उसी श्रेणी के दूसरे सूचनादाता का चयन किया जा सकता है। ऐसा करने पर निदर्शन के प्रतिनिधित्वपूर्ण बने रहने में कोई बाधा नहीं पड़ती है।
- इसमें वर्गों अथवा श्रेणियों का निर्धारण भौगोलिक आधार पर भी किया जा सकता है। क्षेत्रीय आधार पर वर्गीकरण करने में समय एवं धन की बचत होती है तथा चयनित इकाइयों से सम्पर्क स्थापित करने में सुविधा रहती है। सरल दैव निदर्शन में ऐसा होना संभव नहीं है।

स्तरीकृत दैव निदर्शन के उपर्युक्त गुणों के बावजूद कुछ सीमाएँ भी हैं जिनमें से प्रमुख निम्न प्रकार हैं—

- यदि वर्गों अथवा श्रेणियों का निर्धारण ठीक प्रकार से नहीं किया जाए तो यह निदर्शन पक्षपातपूर्ण हो सकता है। इसमें किसी एक वर्ग या श्रेणी की इकाइयों की संख्या अत्यधिक या न्यूनतम हो सकती है जिससे निदर्शन समग्र का प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं रह जाता।
- यदि वर्गों अथवा श्रेणियों के आकार में अत्यधिक अन्तर है तथा इकाइयों का चयन समानुपातिक ढंग से किया जाता है तो यह निदर्शन पक्षपातपूर्ण हो सकता है।

- यदि वर्गों अथवा श्रेणियों के आकार में अत्यधिक अन्तर है तथा इकाइयों का चयन समानुपातिक ढंग से किया जाता है तो बाद में बड़े वर्गों अथवा श्रेणियों की इकाइयों को अधिक भार देना पड़ता है जिसके कारण इसमें पक्षपात की सम्भावना बढ़ जाती है।
- कई बार कुछ इकाइयाँ मिश्रित विशेषताओं वाली होती हैं जिसके कारण उन्हें किसी एक वर्ग अथवा श्रेणी में रखना सम्भव नहीं होता है। ऐसी स्थिति में इकाइयों का श्रेणियों में विभाजन एक समस्या बन जाता है।

(स) बहु-स्तरीय निदर्शन-समग्र में अत्यधिक भिन्नताएँ होने पर इकाइयों के चयन हेतु बहु-स्तरीय निदर्शन पद्धति का भी प्रयोग किया जाता है। इसमें निदर्शन अनेक स्तरों पर किया जाता है। उदाहरणार्थ, यदि किसी बड़े नगर का अध्ययन करना है तो पहले उसके वार्डों का पता लगाया जाता है, फिर इनमें से कुछ वार्ड अध्ययन हेतु चुने जाते हैं। अगले स्तर पर इन वार्डों के परिवारों का पता लगाकर उनमें से कुछ परिवारों का चयन किया जाता है। यदि प्रत्येक स्तर का निदर्शन सुविधानुसार अथवा स्व-चयनित ढंग से किया जाता है तो यह असम्भावित निदर्शन कहलाता है। यदि प्रत्येक स्तर का चयन दैव निदर्शन द्वारा किया जाता है तो स्तरीकृत निदर्शन की भाँति इसे सम्भावित निदर्शन का एक प्रकार माना जाता है। अत्यधिक क्षेत्रीय भिन्नताओं वाले समग्र के अध्ययन हेतु यह पद्धति अत्यन्त उपयोगी मानी जाती है क्योंकि इसमें समग्र की इकाइयों को उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है, प्रत्येक इकाई के चयन की पूर्ण सम्भावना रहती है तथा इसमें दैव निदर्शन के गुण पाए जाते हैं। इस पद्धति को अपनाने में सबसे अधिक कठिनाई क्षेत्रीय विभाजन के समय होती है तथा इसमें दैव निदर्शन के सभी दोष अन्तर्निहित होते हैं।

(द) क्षेत्रीय या गुच्छ निदर्शन-इस निदर्शन में सर्वप्रथम समग्र को कुछ स्वाभाविक समूहों या भौगोलिक क्षेत्रों में विभाजित किया जाता है और फिर सरल दैव निदर्शन द्वारा प्रत्येक समूह या क्षेत्र से इकाइयों का चयन किया जाता है। यह भी सम्भव है कि पहले समग्र के कुछ क्षेत्रों या गुच्छों का दैव निदर्शन द्वारा चयन कर लिया जाए तथा इन चयनित क्षेत्रों या गुच्छों, जिन्हें उप-निदर्शन (Sub-sampling) कहा जाता है, से सभी या कुछ इकाइयों का चयन कर लिया जाए। आजकल इस पद्धति का भी बहुधा प्रयोग किया जाने लगा है।

(य) पुनरावृत्ति निदर्शन-कई बार समग्र से चुना गया निदर्शन अपेक्षाकृत बड़ा होता है क्योंकि हो सकता है कि स्तरीकरण के स्पष्ट आधार का पता न हो। इस बड़े निदर्शन से यदि चर से सम्बन्धित इकाइयों के चयन के लिए पुनः निदर्शन किया जाता है तो उसे द्विशः या पुनरावृत्ति निदर्शन कहते हैं। इस पद्धति द्वारा समग्र की विशेषताओं का मूल्यांकन करने में सम्भावित त्रुटियाँ कम हो जाती हैं।

अधिकांश सामाजिक अनुसन्धानों एवं सर्वेक्षणों में दैव निदर्शन पद्धति का प्रयोग इसकी उपयोगिता का द्योतक है। इसके प्रमुख गुण निम्न प्रकार हैं-

- दैव निदर्शन में निष्पक्षता का गुण होता है तथा यह पक्षपातरहित होता है। इसमें किसी भी इकाई को प्राथमिकता, प्रमुखता या अधिमान्यता नहीं दी जाती तथा प्रत्येक इकाई के निदर्शन में चुने जाने की समान सम्भावना विद्यमान रहती है। इसीलिए सामाजिक विज्ञानों में होने वाले अधिकांश अध्ययनों में इसी प्रकार के निदर्शन को आधार बनाया जाता है।
- दैव निदर्शन एक सरल एवं वैज्ञानिक पद्धति है। इसमें किसी प्रकार की जटिल प्रक्रिया अथवा गूढ़ नियमों का पालन नहीं करना पड़ता है। येट्स (Yates) ने इस सन्दर्भ में उचित ही कहा है कि दैव निदर्शन सबसे सरल प्रकार का निर्वाचित निदर्शन है और निदर्शन की अधिकांश जटिल पद्धतियों का आधार है।
- दैव निदर्शन में जनसंख्या के विषय में अधिक ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती है। न्यूनतम ज्ञान होने पर भी इस पद्धति का प्रयोग सम्भव है।

- दैव निदर्शन द्वारा इकाइयों के चयन तथा उनसे प्राप्त सामग्री के विश्लेषण में त्रुटियों का सरलतापूर्वक मूल्यांकन किया जा सकता है। इसमें गणितीय पद्धतियों द्वारा सम्भावित अशुद्धता का पता लगाया जा सकता है।
- दैव निदर्शन समग्र का प्रतिनिधित्व करने वाला होता है क्योंकि इसमें प्रत्येक इकाई को निदर्शन में चयनित होने का समान अवसर उपलब्ध होता है।
- दैव निदर्शन द्वारा इकाइयों के चयन हेतु पहले से स्रोत-सूची का होना अनिवार्य है। यदि इस प्रकार की कोई सूची उपलब्ध नहीं है और न ही उसे बनाया जाना सम्भव है तो इस प्रकार का निदर्शन प्रयोग में नहीं लाया जा सकता है। दैव निदर्शन की प्रमुख सीमाएँ निम्न प्रकार हैं-
- दैव निदर्शन के प्रयोग हेतु समग्र की सम्पूर्ण इकाइयों की विस्तृत एवं सम्पूर्ण सूची उपलब्ध होना आवश्यक है। कुछ परिस्थितियों को छोड़कर इस प्रकार की सूची प्रायः उपलब्ध नहीं हो पाती है। इसलिए इसका प्रयोग सभी प्रकार के अध्ययनों में करना सम्भव नहीं है।
- दैव निदर्शन में इकाइयों के चयन में अनुसन्धानकर्ता का कोई नियन्त्रण नहीं होता। इसलिए ऐसी इकाइयों का भी चयन हो जाता है जो दूर-दूर स्थित होती हैं तथा जिनसे सम्पर्क करना कठिन होता है। ऐसी स्थिति में चुने हुए निदर्शन को अपनाना प्रायः कठिन होता है।
- दैव निदर्शन में विकल्प की कोई सम्भावना नहीं होती है। यदि निदर्शन में चयनित कुछ इकाइयाँ अपना स्थान छोड़कर कहीं और चली गई हैं तो अन्य विकल्पों को सुविधानुसार इसमें सम्मिलित नहीं किया जा सकता है। इससे निदर्शन की विश्वसनीयता प्रभावित होती है।
- दैव निदर्शन में यदि समग्र की इकाइयाँ समान आकार वाली नहीं हैं तथा उनमें एकरूपता का अभाव पाया जाता है तो प्रतिनिधि इकाइयों का चयन होना अनिवार्य नहीं है। ऐसी स्थिति में यह पद्धति अधिक उपयुक्त नहीं होती।
- दैव निदर्शन के प्रयोग में अनुसन्धानकर्ता यदि निम्नलिखित सावधानियाँ रखता है तो उसका अध्ययन अधिक वैज्ञानिक हो सकता है-
- दैव निदर्शन द्वारा इकाइयों के चयन से पूर्व समग्र का निर्धारण ठीक प्रकार से किया जाना चाहिए तथा यह सुनिश्चित कर लेना आवश्यक है कि समस्त इकाइयों की सम्पूर्ण सूची उपलब्ध है।
- दैव निदर्शन में सम्मिलित होने वाली इकाइयाँ स्वतन्त्र होनी चाहिए अर्थात् वे एक-दूसरे पर अध्ययन हेतु निर्भर नहीं होनी चाहिए।
- दैव निदर्शन में इकाइयाँ ऐसी होनी चाहिए जिनसे सम्पर्क स्थापित किया जा सके क्योंकि इसमें एक बार चुनी हुई इकाई को बदला नहीं जा सकता है।
- कुछ विद्वानों का मत है कि स्तरीकृत दैव निदर्शन, क्षेत्रीय या गुच्छ निदर्शन तथा द्विशः या पुनरावृत्ति निदर्शन पूरी तरह से सम्भावित निदर्शन न होकर अर्द्धसम्भावित (Semi-probability) निदर्शन होता है क्योंकि इनमें सरल दैव निदर्शन के सभी गुणों का समावेश नहीं होता है। यद्यपि इनमें तथा सरल दैव निदर्शन में अन्तर केवल अंशों का ही है, तथापि इनमें एक इकाई का चयन दूसरी इकाई के चयन को प्रभावित करता है। अतः इनमें समग्र की प्रत्येक इकाई के चयन का समान अवसर नहीं होता है। कुछ विद्वान् इसे सीमित दैव (Limited random) निदर्शन भी कहते हैं।
-

12.12 असम्भावित निदर्शन

कई बार स्रोत-सूची इत्यादि उपलब्ध न होने पर सम्भावित निदर्शन करना कठिन कार्य हो जाता है। अतः कई बार इसका प्रयोग अनुसन्धान में न करके असम्भावित निदर्शन पद्धति का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार के निदर्शन में अनुसन्धानकर्ता अपनी सुविधा अथवा विवेक के आधार पर इकाइयों का चयन करता है परन्तु इसमें भी निदर्शन को प्रतिनिधित्व एवं पर्याप्त बनाने के लिए कुछ नियमों का पालन करना पड़ता है। सामाजिक अनुसन्धान एवं सर्वेक्षण में मुख्य रूप से असम्भावित निदर्शन की निम्नलिखित पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है-

अभ्यंश या कोटा निदर्शन-इसे कई बार प्रतिनिधित्व निदर्शन भी कह दिया जाता है क्योंकि इसमें भी जनसंख्या का स्तरीकरण उसी प्रकार से किया जाता है जिस प्रकार कि स्तरीकृत दैव निदर्शन में।

परन्तु इसमें प्रत्येक स्तर से आवश्यक संख्या में इकाइयों का चुनाव अनुसन्धानकर्ता अपने विवेक के आधार पर ही करता है। प्रत्येक स्तर से इकाइयों का निश्चित संख्या में चयन करने के कारण ही इसे अभ्यंश या कोटा निदर्शन कहा जाता है। जनमत सर्वेक्षणों में इस प्रकार के निदर्शन का अधिक प्रचलन है।

- **उद्देश्यपूर्ण निदर्शन**-इसमें अनुसन्धानकर्ता अपने पूर्व ज्ञान या पूर्व विचारों के आधार पर उन इकाइयों का चयन कर लेता है जिन्हें वह जनसंख्या का प्रतिनिधि समझता है। इसे सविचार, सप्रयोजन अथवा सोद्देश्य निदर्शन पद्धति भी कहा जाता है। इसमें अनुसन्धानकर्ता द्वारा स्वेच्छा से विभिन्न समूहों से निर्धारित संख्या इकाइयों का चयन इस प्रकार किया जाता है कि विभिन्न समूह मिलकर यथासम्भव वही अनुपात प्रदान करते हैं जोकि समग्र में होता है। इस प्रकार के निदर्शन हेतु अध्ययनकर्ता का समग्र की सभी विशेषताओं से भली-भाँति परिचित होना आवश्यक है। यदि अनुसन्धानकर्ता में उपयुक्त कुशलता है और उसने उचित निर्णय लिया है तो यह निदर्शन भी सन्तोषजनक हो सकता है। इसमें धन का कम व्यय होता है क्योंकि निदर्शन का आकार बड़ा नहीं होता है। यह निदर्शन पद्धति इस मान्यता पर आधारित है कि यदि निदर्शन का चयन पक्षपातरहित हो तो अपेक्षाकृत छोटा निदर्शन भी समग्र का प्रतिनिधित्व करने वाला हो सकता है। साथ ही, इस पद्धति का प्रयोग उन परिस्थितियों में उपयोगी है जिनमें समग्र की कुछ इकाइयाँ विशेष महत्त्व रखती हैं तथा उनका निदर्शन में चुना जाना आवश्यक है। दैव निदर्शन द्वारा ऐसा सम्भव नहीं है। उदाहरणार्थ, यदि उत्तराखण्ड के महाविद्यालयों का अध्ययन करना है तो डी०ए०वी० कॉलेज देहरादून को निदर्शन में सम्मिलित करना आवश्यक है। इस निदर्शन पद्धति के प्रयोग द्वारा यह महाविद्यालय तो निदर्शन में सम्मिलित हो सकता है, परन्तु हो सकता है कि दैव निदर्शन में यह महाविद्यालय छूट जाए।

यद्यपि उद्देश्यपूर्ण निदर्शन की पद्धति को बहुधा प्रयोग में लाया जाता है, तथापि यह अधिक उपयुक्त नहीं है क्योंकि इसमें अभिनति एवं पक्षपात की सम्भावना अधिक रहती है। अनुसन्धानकर्ता हित-विशेष की पूर्ति हेतु ऐसे निदर्शन का चयन कर सकता है जो उसके मतों की पुष्टि करने वाला हो। इस पद्धति में तीन प्रमुख दोष पाए जाते हैं-

- (i) उद्देश्यपूर्ण निदर्शन हेतु प्रत्येक अनुसन्धानकर्ता में समग्र की विभिन्न विशेषताओं का पूर्ण ज्ञान होना अनिवार्य है। परन्तु यथार्थ में समग्र के बारे में पहले से ही पूर्ण ज्ञान सम्भव नहीं होता।
- (ii) उद्देश्यपूर्ण निदर्शन में अनुसन्धानकर्ता किसी भी इकाई को निदर्शन के रूप में चुनने हेतु स्वतन्त्र होता है। उस पर किसी प्रकार का नियन्त्रण न होने के कारण इस पद्धति में निदर्शन पक्षपातपूर्ण ढंग से होने की सम्भावना अधिक रहती है।

(iii) निदर्शन सम्बन्धी अशुद्धता का अनुमान जिन मान्यताओं पर किया जाता है, उनमें से एक भी उद्देश्यपूर्ण निदर्शन में नहीं पाई जाती है।

उपर्युक्त सीमाओं के बावजूद यह पद्धति अत्यन्त उपयोगी मानी जाती है। दैव निदर्शन पद्धति में तो महत्त्वपूर्ण इकाइयों के छूट जाने की पूर्ण सम्भावना रहती है, परन्तु इसमें ऐसा नहीं होता है।

स्व-चयनित या आकस्मिक निदर्शन-स्व-चयनित निदर्शन को आकस्मिक निदर्शन भी कहा जाता है। इसमें जो भी इकाई सुविधाजनक रूप में उपलब्ध होती है उसका चयन कर लिया जाता है। इस पद्धति को भी सामाजिक अनुसन्धानों में निदर्शन के चयन हेतु प्रयोग में लाया जाता है। इस पद्धति का प्रयोग उन्हीं परिस्थितियों में किया जाता है जब न तो समग्र की पूर्ण जानकारी उपलब्ध है और न ही निदर्शन की इकाइयाँ स्पष्ट हैं। कोई स्रोत-सूची भी उपलब्ध नहीं है। इसमें आकस्मिक रूप में जो भी इकाई उपलब्ध होती है उसी को निदर्शन में सम्मिलित कर लिया जाता है। अनेक विद्वान् इस पद्धति को प्रयोग में लाने के पक्ष में नहीं हैं क्योंकि जब अनुसन्धानकर्ता अपनी सुविधाओं को ध्यान में रखकर आकस्मिक रूप से निदर्शन करने लगता है तो यह पद्धति अवैज्ञानिक एवं अवसरवादी बन जाती है।

खण्ड निदर्शन-इस प्रकार के निदर्शन में सम्पूर्ण समग्र का अध्ययन न करके उसके किसी एक खण्ड को सुविधानुसार अध्ययन हेतु चुन लिया जाता है। उदाहरणार्थ, यदि कोई अनुसन्धानकर्ता देहरादून के मतदाताओं का अध्ययन कर रहा है और वह केवल अपने मोहल्ले को निदर्शन के एक खण्ड के रूप में चुन लेता है तो इसे खण्ड निदर्शन कहा जाएगा। उसने अपने मोहल्ले का चयन अपनी सुविधानुसार किया है क्योंकि मोहल्ले वाले उसके परिचित हैं तथा मतदाता के रूप में जो भी जानकारी उसे चाहिए वह उसे उनसे मिल सकती है।

यह सही है कि असम्भावित निदर्शन अधिक वैज्ञानिक नहीं होता है, फिर भी अनेक सामाजिक विज्ञानों में इसका व्यापक प्रयोग किया जाता है। मनोवैज्ञानिक प्रयोगों में तो बहुधा इसी प्रकार के निदर्शन का प्रयोग किया जाता है क्योंकि प्रयोगशालाओं में सम्भावित निदर्शन सम्भव नहीं होता। इतना ही नहीं, सम्भावित निदर्शन की पद्धति अधिक कठोर पद्धति है जिसका पूरी तरह से पालन करना कठिन होता है। इसीलिए फर्ग्यूसन (Ferguson) ने लिखा है कि, "यदि हम निदर्शन के संयोगिक आधार का कठोरता से पालन करें तब बहुत-से प्रायोगिक अध्ययन सम्भव ही नहीं हो सकेंगे।" अतः असम्भावित निदर्शन की उपेक्षा करना सम्भव नहीं है।

असम्भावित निदर्शन की उपर्युक्त पद्धतियों में से किसी एक का चयन निम्नलिखित परिस्थितियों में उपयुक्त माना जाता है-⁹⁴

- (i) जब अनुसन्धानकर्ता को समग्र के विषय में पूर्ण ज्ञान न हो।
- (ii) जब अनुसन्धानकर्ता को समग्र की इकाइयों का स्वरूप स्पष्ट न हो।
- (iii) जब अध्ययन का उद्देश्य अग्रगामी अध्ययन (Pilot study) करना हो।
- (iv) जब अनुसन्धानकर्ता को निदर्शन के आधार पर अध्ययन के परिणामों को शीघ्रातिशीघ्र जानने की आवश्यकता हो।
- (v) जब अनुसन्धानकर्ता को निदर्शन के लिए किसी प्रकार का तकनीकी ज्ञान उपलब्ध न हो।
- (vi) जब अनुसन्धानकर्ता द्वारा अध्ययन सम्बन्धी आकलनों में परिशुद्धता को अधिक महत्त्व न दिया जाना हो।
- (vii) जब अनुसन्धानकर्ता को धन का अभाव हो तथा कम साधनों के होते हुए एक छोटे आकार का निदर्शन लेना ही सम्भव हो।

(viii) जब अनुसन्धानकर्ता के पास समय का अभाव हो तथा उसका लक्ष्य एक छोटे आकार के निदर्शन को ही अध्ययन का आधार बनाना हो।

सम्भावित निदर्शन की विभिन्न पद्धतियों की तुलना में असम्भावित निदर्शन की पद्धतियों को उनके निम्नलिखित दोषों के कारण कम अपनाया जाता है-

- (i) असम्भावित निदर्शन में अनुसन्धानकर्ता समग्र की इकाइयों का चयन अपनी सुविधानुसार करता है जिसके कारण पक्षपात की सम्भावना अधिक रहती है।
- (ii) असम्भावित निदर्शन में पक्षपात की अधिक सम्भावना के कारण यह आवश्यक नहीं है कि निदर्शन समग्र का प्रतिनिधित्व करने वाला ही हो।
- (iii) असम्भावित निदर्शन में निदर्शन की त्रुटि की गणना में कठिनाई होती है क्योंकि इसमें सम्भावित सिद्धान्त की अभिकल्पना नहीं रहती।
- (iv) असम्भावित निदर्शन द्वारा जो निष्कर्ष प्राप्त होते हैं वे अधिक विश्वसनीय एवं वैद्य नहीं होते। इसीलिए ऐसे निष्कर्षों पर न तो कोई भविष्यवाणी की जा सकती है और यदि की भी जाती है तो यह आवश्यक नहीं है कि वह सच ही हो।

आजकल सम्भावित एवं असम्भावित दोनों प्रकार के निदर्शन का प्रयोग सामाजिक अनुसन्धान में किया जाने लगा है। यदि असम्भावित निदर्शन का प्रयोग किया गया है तो निष्कर्ष निकालने में विशेष सावधानी रखने की आवश्यकता है।

12.13 शब्दावली

- जनगणना — जनगणना से अभिप्राय किसी देश की सम्पूर्ण जनसंख्या अथवा किसी अन्य समग्र के बारे में विविध प्रकार का विवरण प्राप्त करना है।
- समग्र — समग्र का अर्थ सम्पूर्ण इकाइयों से है।
- निदर्शन — निदर्शन समग्र का लघु चित्र है जो समग्र का प्रतिनिधित्व करता है।
- तकनीक — तकनीक से अभिप्राय किसी भी सामाजिक अनुसन्धान में सामग्री संकलन करने की पद्धति से है।
- जनांकिकी — जनांकिकी जनसंख्या से सम्बन्धित विज्ञान है।
- निष्पक्षता — निष्पक्षता से अभिप्राय किसी भी यथार्थता को पूर्वाग्रह के बिना या पक्षपातरहित ढंग से देखना है। अपने किसी मूल्य द्वारा प्रभावित हुए बिना यथार्थता को उसी रूप में देखना जिस रूप में वह विद्यमान है, निष्पक्षता कहलाती है।

12.14 अभ्यास प्रश्न

- जनगणना किसे कहते हैं? जनगणना एवं निदर्शन में क्या अन्तर है?
- निदर्शन किसे कहते हैं? एक श्रेष्ठ निदर्शन के अनिवार्य लक्षण बताइए।
- निदर्शन को परिभाषित कीजिए तथा इसके चयन की प्रक्रिया संक्षेप में बताइए।
- निदर्शन से आप क्या समझते हैं? इसकी उपयोगिता स्पष्ट कीजिए।
- निदर्शन की उपयोगिता एवं सीमाओं की विवेचना कीजिए।
- निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

- (अ) निदर्शन की समस्याएँ
- (ब) निदर्शन के आकार एवं विश्वसनीयता का निर्धारण
- (स) निदर्शन सर्वेक्षणों को प्राथमिकता देने के प्रमुख कारण

12.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Bogardus, E. S., *Introduction to Sociology*, New York : Charles Scribner's Sons, 1922.
- Fairchild, H. P., *Dictionary of Sociology*, Totowa, N. J. : Littlefield, Adams and Co., 1966.
- Goode, W. J. and P. K. Hatt, *Methods in Social Research*, New York : McGraw-Hill Book Company, 1942.
- Lundberg, G. A., *Social Research*, New York : Longmans, Green and Co., 1941.
- Snedecor, George W. and William G. Cochran, *Statistical Methods*, Iowa : Blackwell Publishing Professional, 1989.
- Tippett, L. H. C., *Random Sampling Numbers*, London : CUP, 1926.
- Yang, Hsin Pao, *Fact-finding with Rural People*, Rome : Food and Agriculture Organization of the United Nations, 1944.
- Young, P. V., *Scientific Social Surveys and Research*, Bombay : Asia Publishing House, 1950.
- Ferguson, G. A. and Takane Yoshio, *Statistical Analysis in Psychology and Education*, New York: McGraw-Hill Book Company, 1989.
- Fisher, Ronald A. and Frank Yates, *Statistical Tables*, London: Oliver and Boyd, 1953.
- Goode, W. J. and P. K. Hatt, *Methods in Social Research*, New York: McGraw-Hill Book Company, 1942.
- Tippett, L. H. C., *Random Sampling Numbers*, London: CUP, 1926.
- Yang, Hsin Pao, *Fact-finding with Rural People*, Rome Food and Agriculture Organization of the United Nations, 1944.
- Yates, Frank, *Sampling Methods for Censuses and Surveys*, London: Charles Griffin, 1943.

इकाई-13 सूचनाओं के प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोत

इकाई की संरचना

- 13.0 प्रस्तावना
- 13.1 उद्देश्य
- 13.2 सूचनाओं के स्रोत
- 13.3 प्राथमिक सामग्री
- 13.4 प्राथमिक सामग्री की उपयोगिता
- 13.5 प्राथमिक सामग्री की सीमाएँ
- 13.6 प्राथमिक सामग्री के स्रोत
 - 13.6.1 प्रत्यक्ष स्रोत
 - 13.6.2 अप्रत्यक्ष स्रोत
- 13.7 द्वितीयक सामग्री
- 13.8 द्वितीयक सामग्री की उपयोगिता
- 13.9 द्वितीयक सामग्री की सीमाएँ
- 13.10 द्वितीयक सामग्री के स्रोत
 - 13.10.1 व्यक्तिगत प्रलेख
 - 13.10.2 सार्वजनिक प्रलेख
- 13.11 प्राथमिक एवं द्वितीयक सामग्री में अन्तर
- 13.12 सारांश
- 13.12 शब्दावली
- 13.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 13.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 13.15 निबंधात्मक प्रश्न

13.0 प्रस्तावना

सामाजिक अनुसन्धान का अर्थ सामाजिक घटनाओं अथवा तथ्यों के बारे में नवीन जानकारी प्राप्त करना, प्राप्त ज्ञान में वृद्धि करना अथवा जिन सिद्धान्तों एवं नियमों का निर्माण किया जा चुका है उनमें किसी भी प्रकार का संशोधन करना है। अतः सामाजिक अनुसन्धान का एक महत्वपूर्ण चरण सामग्री अथवा आँकड़े एकत्रित करना है क्योंकि इस सामग्री के आधार पर ही नवीन ज्ञान की प्राप्ति या पहले से प्राप्त ज्ञान में वृद्धि की जा सकती है। सामग्री के संकलन में जितनी अधिक सावधानी रखी जाती है, निष्कर्ष उतने ही अधिक विश्वसनीय एवं वैज्ञानिक होते हैं। सामाजिक अनुसन्धान में मुख्यतः प्राथमिक एवं द्वितीयक सामग्री का प्रयोग किया जाता है। इन दोनों के विभिन्न स्रोत होते हैं तथा इन स्रोतों का अपना अलग महत्व होता है।

प्राथमिक सामग्री अनुसन्धानकर्ता क्षेत्राधारित अध्ययनों द्वारा संकलित करता है, जबकि द्वितीयक (जिसे ऐतिहासिक सामग्री भी कहा जाता है) का संकलन स्वयं अनुसन्धानकर्ता नहीं करता है अपितु वह अन्य किसी द्वारा संकलित होती है जिसे अनुसन्धानकर्ता अपनी अनुसन्धान समस्या के विश्लेषण एवं विवेचन हेतु प्रयोग करता

है। द्वितीयक सामग्री किसी अन्य व्यक्ति, संस्था अथवा एजेन्सी द्वारा अपने निजी प्रयोग के लिए संकलित की जाती है। इसे संकलित करने वाला व्यक्ति, संस्था अथवा एजेन्सी का स्वरूप सरकारी, अर्द्ध-सरकारी अथवा निजी कुछ भी हो सकता है इस प्रकार की सामग्री सामान्यतया विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किए गए संस्मरणों एवं अप्रकाशित प्रतिवेदनों अथवा प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं व प्रलेखों में उपलब्ध रहती है। अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन भी समय-समय पर इस प्रकार की सामग्री प्रकाशित करते रहते हैं जो अन्य अनुसन्धानकर्ताओं हेतु द्वितीयक सामग्री का कार्य करते हैं। किसी अनुसन्धानकर्ता द्वारा जनगणना सम्बन्धी सामग्री का प्रयोग भी द्वितीयक सामग्री का ही उदाहरण है। किसी भी ऐतिहासिक अध्ययन में द्वितीयक सामग्री का महत्वपूर्ण स्थान होता है।

प्राथमिक सामग्री सूक्ष्म प्रकृति की होती है, जबकि द्वितीयक सामग्री की प्रकृति वृहत् होती है। द्वितीयक सामग्री सम्पूर्ण समाज अथवा सभ्यता से सम्बन्धित हो सकती है। उदाहरणार्थ, जनगणना, राष्ट्रीय निदर्शन सर्वेक्षण इत्यादि वृहत् सामग्री के ही उदाहरण हैं जिन्हें द्वितीयक स्रोतों के रूप में अनुसन्धान में विविध प्रकार से प्रयोग किया जाता है।

13.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- प्राथमिक सामग्री और द्वितीयक सामग्री के संबंध में जान पायेंगे।
- प्राथमिक और द्वितीयक सामग्री की उपयोगिता और उसकी सामाओं के संबंध में जान पायेंगे।
- प्राथमिक सामग्री और द्वितीयक के स्रोत क्या हैं, ये जान पायेंगे।

13.2 सामग्री के स्रोत

सामाजिक अनुसन्धान में विविध प्रकार की विधियों एवं प्रविधियों द्वारा सामग्री एकत्रित की जाती है। आखिर इस सामग्री या आँकड़ों के स्रोत क्या हैं? ¹⁷ एक समाजशास्त्री अनुसन्धान सम्बन्धी सामग्री का संकलन दो प्रमुख स्रोतों से करता है-सामग्री के प्राथमिक स्रोत या क्षेत्रीय स्रोत तथा सामग्री के द्वितीयक स्रोत या ऐतिहासिक स्रोत। सामग्री या आँकड़ों के प्राथमिक स्रोतों द्वारा प्राथमिक सामग्री एकत्रित की जाती है, जबकि ऐतिहासिक स्रोतों द्वारा द्वितीयक सामग्री या ऐतिहासिक सामग्री एकत्रित की जाती है। प्राथमिक स्रोत वे साधन हैं जो घटना, व्यक्ति या संस्था के विषय में प्रथम साक्षी का कार्य करते हैं। द्वितीयक स्रोत वे साधन हैं जो अनुसन्धानकर्ता के लिए प्रथम साक्षी नहीं है क्योंकि इनमें उसका स्रोत से सम्बन्धित घटना, व्यक्ति या संस्था से तात्कालिक सम्बन्ध नहीं होता। प्राथमिक स्रोतों को क्षेत्रीय स्रोत तथा द्वितीयक स्रोतों को ऐतिहासिक स्रोत या प्रलेखीय स्रोत भी कहा जाता है। प्राथमिक स्रोतों में अनुसन्धानकर्ता द्वारा अपनी समस्या से सम्बन्धित वास्तविक व्यक्तियों से प्राप्त जानकारी अथवा प्रत्यक्ष अवलोकन (या अन्य किसी तकनीक) द्वारा प्राप्त तथ्य सम्मिलित होते हैं, जबकि द्वितीयक स्रोतों के अन्तर्गत सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थाओं या व्यक्तियों द्वारा प्रकाशित, अप्रकाशित अथवा लिखित प्रलेख सम्मिलित होते हैं। वास्तव में, अध्ययन या अनुसन्धान के स्रोत क्या होंगे यह इस बात पर निर्भर करता है कि किस प्रकार की सामग्री की आवश्यकता है?

13.3 प्राथमिक सामग्री

प्राथमिक सामग्री उस सामग्री, आँकड़ों या सूचनाओं को कहते हैं जोकि अनुसन्धानकर्ता (अथवा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा) स्वयं प्राप्त की जाती है अर्थात् प्रथम स्तर (First hand) पर एकत्रित सामग्री ही प्राथमिक सामग्री कहलाती है। सामाजिक अनुसन्धान में यद्यपि कुछ प्रलेखों इत्यादि से भी सामग्री एकत्रित की जाती है परन्तु उसे प्राथमिक सामग्री में सम्मिलित नहीं किया जा सकता क्योंकि उसे अनुसन्धानकर्ता ने स्वयं प्रथम स्तर पर संकलित नहीं किया होता। प्राथमिक सामग्री में वे मौलिक सूचनाएँ सम्मिलित की जाती हैं जोकि एक अनुसन्धानकर्ता स्वयं अध्ययन-क्षेत्र में जाकर अपनी अध्ययन समस्या की विवेचना हेतु निदर्शन द्वारा चयनित सूचनादाताओं से प्रत्यक्ष अवलोकन, साक्षात्कार, अनुसूची या प्रश्नावली की सहायता से एकत्रित करता है। प्राथमिक सामग्री को प्राथमिक इस अर्थ में कहा जाता है क्योंकि इसे अनुसन्धानकर्ता अपने अध्ययन उपकरणों द्वारा प्रथम बार स्वयं एकत्रित करता है। इसलिए प्राथमिक सामग्री संकलित करने के दो प्रमुख स्रोत हो सकते हैं-प्रथम, सूचनादाताओं से प्राप्त विशिष्ट सूचनाएँ तथा द्वितीय, क्रियाशील व्यवहारों का प्रत्यक्ष अवलोकन।

पामर (Palmer) के मतानुसार सूचनादाता न केवल अध्ययन विषय की विद्यमान अवस्थाओं को स्पष्ट करने की योग्यता रखते हैं, अपितु एक सामाजिक प्रक्रिया में अन्तर्निहित महत्त्वपूर्ण चरण एवं अवलोकन योग्य प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में संकेत कर सकते हैं। यदि इन सूचनादाताओं का चयन सावधानीपूर्वक किया जाए तो वे अध्ययन कार्य के महत्त्वपूर्ण अंग बन सकते हैं। प्रत्यक्ष अवलोकन द्वारा भी किसी समुदाय या समूह के जीवन से सम्बन्धित अनेक महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

यदि अनुसन्धानकर्ता अवलोकन करते समय निष्पक्षता बनाए रखता है तो उसके द्वारा जो सामग्री प्रत्यक्ष अवलोकन के प्रयोग से संकलित की जाएगी वह अत्यन्त विश्वसनीय एवं अति उत्तम प्राथमिक स्रोत हो सकती है। सहभागी अवलोकन द्वारा तो सामुदायिक जीवन से सम्बन्धित आन्तरिक एवं गुप्त बातों को भी जाना जा सकता है। सरल शब्दों में, प्राथमिक स्रोतों द्वारा एकत्रित सामग्री प्राथमिक सामग्री कहलाती है। प्राथमिक स्रोतों को कई बार क्षेत्रीय स्रोत भी कहा जाता है।

पीटर एच० मन (Peter H. Mann) के अनुसार, "प्राथमिक स्रोत हमें प्रथम स्तर पर संकलित सामग्री प्रदान करते हैं अर्थात् जिन लोगों ने उसे एकत्रित किया है वे उनके द्वारा ही प्रस्तुत की गई सामग्री के मौलिक स्वरूप (कुलक) हैं।" मन ने यह भी स्पष्ट किया है कि प्राथमिक स्रोत की परिभाषा को सीमित अर्थ अर्थात् स्वयं अनुसन्धानकर्ता द्वारा एकत्रित सामग्री के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, जनगणना के आँकड़ों (Census data) को हम प्रथम स्तर के आँकड़े मानते हैं यद्यपि इन्हें रजिस्ट्रार जनरल (Registrar General) ने व्यक्तिगत रूप में एकत्रित नहीं किया और न ही इनके विश्लेषण एवं लिखने का कार्य ही उसने किया है। इन्हें हम प्राथमिक आँकड़े या सामग्री इसलिए कहते हैं क्योंकि रजिस्ट्रार जनरल के विभाग ने एक इकाई के रूप में इन्हें एकत्रित करके इनका विश्लेषण किया है।

13.4 प्राथमिक सामग्री की उपयोगिता

सामाजिक अनुसन्धान में हमारा प्रयास यथासम्भव प्राथमिक सामग्री को एकत्रित करना है क्योंकि प्रथम स्तर पर संकलित सामग्री या आँकड़े अधिक विश्वसनीय होते हैं। ग्रामीण समाज के क्षेत्रीय अध्ययनों में तो केवल प्राथमिक सामग्री ही उपयोगी मानी जाती है। प्राथमिक सामग्री का संकलन प्राथमिक स्रोतों से ही किया जाता है। इन स्रोतों

में अनुसन्धानकर्ता द्वारा प्रयोग की गई तकनीक (साक्षात्कार, अनुसूची, प्रश्नावली इत्यादि) तथा प्रत्यक्ष अवलोकन प्रमुख हैं। प्राथमिक सामग्री की उपयोगिता को इसके निम्नलिखित गुणों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

1. **विश्वसनीयता-** प्राथमिक सामग्री अधिक विश्वसनीय होती है क्योंकि इसे अधिकांशतः अनुसन्धानकर्ता द्वारा स्वयं प्रत्यक्ष रूप में एकत्रित किया जाता है। यदि इसमें किसी प्रकार की कमी है तो यह केवल अनुसन्धानकर्ता के पक्षपात के कारण है।
2. **वास्तविकता-** प्राथमिक सामग्री अधिक स्वाभाविक अर्थात् वास्तविक होती है क्योंकि इसे अनुसन्धानकर्ता द्वारा प्रथम स्तर पर क्षेत्रीय कार्य के आधार पर संकलित किया जाता है। इससे हमें घटना के वास्तविक रूप का पता चल जाता है।
3. **व्यावहारिक उपयोगिता-** प्राथमिक सामग्री अधिक व्यावहारिक होती है क्योंकि इसे स्वयं अनुसन्धानकर्ता द्वारा अनुसन्धान की समस्या के उद्देश्यों के अनुकूल ही एकत्रित किया जाता है।
4. **नवीनता-** प्राथमिक सामग्री में नवीनता का गुण पाया जाता है क्योंकि इसे अनुसन्धान क्षेत्र में जाकर स्वयं अनुसन्धानकर्ता द्वारा एकत्रित किया जाता है। प्रत्यक्ष सम्पर्क होने के कारण बहुत-सी ऐसी बातों का पता चल जाता है जो कि द्वितीयक स्रोतों से नहीं मिल पातीं।

13.5 प्राथमिक सामग्री की सीमाएँ

यद्यपि प्राथमिक सामग्री सामाजिक अनुसन्धान की आधारशिला है, फिर भी इसकी अपनी कुछ सीमाएँ अथवा अवगुण हैं। इसकी प्रमुख सीमाएँ निम्नांकित हैं-

1. **अभिनति-** प्राथमिक सामग्री के संकलन में अनुसन्धानकर्ता द्वारा पक्षपात की सम्भावना अधिक रहती है। वह अपने विचारों, मूल्यों अथवा पूर्वाग्रहों के अनुरूप सामग्री को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत कर सकता है। उसके लिए अपने विचारों, मूल्यों अथवा पूर्वाग्रहों को छोड़कर निष्पक्ष रूप से अध्ययन करना प्रायः कठिन होता है।
2. **साधनों की आवश्यकता-** प्राथमिक सामग्री के संकलन में अधिक साधनों की आवश्यकता होती है क्योंकि इसके संकलन में अधिक समय एवं धन व्यय होता है। उदाहरणार्थ, यदि हम साक्षात्कार द्वारा सूचनादाताओं से प्राथमिक सामग्री संकलन करना चाहते हैं तो हमें चयनित प्रत्येक सूचनादाता से व्यक्तिगत सम्पर्क द्वारा आमने-सामने की स्थिति में सूचनाएँ एकत्रित करनी पड़ती हैं।
3. **केवल समकालीन घटनाओं का अध्ययन-** प्राथमिक सामग्री केवल समकालीन घटनाओं के अध्ययन में ही उपयोगी है। भूतकालीन घटनाओं के बारे में प्राथमिक सामग्री एकत्रित करना कठिन कार्य है। इन घटनाओं को समझने में केवल द्वितीयक सामग्री ही उपयोगी होती है।

13.6 प्राथमिक सामग्री के स्रोत

प्राथमिक सामग्री को अनेक स्रोतों द्वारा एकत्रित किया जा सकता है। प्राथमिक सामग्री के स्रोतों को निम्नलिखित दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है-

13.6.1 प्रत्यक्ष स्रोत

इनमें उन स्रोतों को सम्मिलित किया जाता है जिनमें अनुसन्धानकर्ता प्रत्यक्ष सम्पर्क द्वारा सामग्री एकत्रित करता है।

⁶⁵ प्रत्यक्ष स्रोतों के मुख्य प्रकार निम्नलिखित हैं-

1. **अवलोकन**-प्राथमिक सामग्री को संकलित करने का सबसे प्रमुख स्रोत प्रत्यक्ष अवलोकन (निरीक्षण, प्रेक्षण अथवा पर्यवेक्षण) है। अवलोकन अनुसन्धान की एक तकनीक या प्रविधि है जिसका प्रयोग प्राथमिक सामग्री या आँकड़े एकत्रित करने के लिए किया जाता है।
2. **डॉलार्ड (Dollard)** के मतानुसार, "अवलोकन अनुसन्धान के एक प्राथमिक यन्त्र के रूप में मानव-बुद्धि के प्रेक्षण तथा अनुभवों के आधार पर ज्ञान प्राप्त करना है। इसका प्रयोग उस सामाजिक व्यवहार, घटनाओं एवं परिस्थितियों के अध्ययन के लिए किया जाता है जिन्हें हम घटित होते हुए देख सकते हैं। यह एक विश्वसनीय प्रविधि मानी गई है क्योंकि एक प्राचीन कहावत है कि देखकर ही विश्वास होता है। अवलोकन में देखकर ही अध्ययन किया जाता है अतः यह प्रविधि विश्वसनीय प्राथमिक सामग्री के संकलन में सहायक है। अवलोकन में घटनाओं का ज्यों-का-त्यों निरीक्षण किया जाता है और आँकड़ों का निष्पक्ष आलेखन किया जाता है। अतः इस प्रविधि द्वारा एकत्रित आँकड़े अधिक विश्वसनीय होते हैं। इसके द्वारा वास्तविक व्यवहार का अध्ययन किया जाता है जिससे अतिशयोक्ति एवं पक्षपात इत्यादि की सम्भावना कम हो जाती है। सामाजिक मानवशास्त्र में तो अवलोकन प्राथमिक सामग्री का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्रोत माना जाता है। अवलोकन का प्रयोग सहभागी अवलोकन, असहभागी अवलोकन तथा अर्द्ध-सहभागी अवलोकन के रूप में किया जाता है।
3. **साक्षात्कार**- साक्षात्कार अनुसन्धान में प्राथमिक सामग्री संकलित करने की एक प्राचीन एवं बहुचर्चित प्रविधि है जिसका समाजशास्त्र में इतना अधिक प्रयोग किया गया है कि यह आज एक सर्वाधिक प्रचलित प्रविधि मानी जाती है। साक्षात्कार प्रविधि सूचनादाता के सामने बैठकर वार्तालाप का अवसर प्रदान करती है जिससे कि उसके मनोभावों, मनोवृत्तियों तथा दृष्टिकोणों के बारे में भी जानकारी प्राप्त हो सकती है। इसका प्रयोग केवल समाजशास्त्र में ही नहीं किया जाता अपितु अन्य सामाजिक विज्ञानों, मनोचिकित्सा, मनोविश्लेषण एवं चिकित्सा जैसे विषयों में भी अत्यधिक प्रचलन देखा जा सकता है। पामर (Palmer) के अनुसार, "साक्षात्कार दो व्यक्तियों के मध्य एक सामाजिक स्थिति की रचना करता है तथा इसमें प्रयुक्त मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के अन्तर्गत दोनों को परस्पर प्रत्युत्तर देने पड़ते हैं।" साक्षात्कार प्रविधि द्वारा अनुसन्धानकर्ता सूचनादाता के बाहरी एवं आन्तरिक जीवन का अध्ययन कर सकता है। आलपोर्ट (Allport) के अनुसार यह प्रविधि सूचनादाताओं की भावनाओं, अनुभवों, संवेगों तथा मनोवृत्तियों के अध्ययन में विशेष रूप से उपयोगी है।
4. **अनुसूची**- अनुसूची सामाजिक अनुसन्धान की समस्या से सम्बन्धित प्राथमिक सामग्री एकत्रित करने का एक उपकरण है। इसका यथार्थ एवं वास्तविक सामग्री को प्रत्यक्ष रूप में संकलन करने में महत्वपूर्ण स्थान है। यह प्रश्नों की एक सूची है जिसे अनुसन्धानकर्ता सूचनादाता के पास लेकर जाता है तथा उससे

प्रश्नों के उत्तर पूछ कर स्वयं उन्हें अनुसूची में अंकित करता है। बोगार्डस (Bogardus) के अनुसार, "अनुसूची तथ्यों को एकत्रित करने के लिए एक औपचारिक प्रणाली का प्रतिनिधित्व करती है जो वस्तुनिष्ठ रूप में हैं एवं आसानी से प्रत्यक्ष अनुभव किए जाने योग्य हैं। अनुसूची स्वयं अनुसन्धानकर्ता द्वारा भरी जाती है।"

13.6.2 अप्रत्यक्ष स्रोत

प्राथमिक सामग्री के अप्रत्यक्ष स्रोत उन स्रोतों को कहते हैं जिनमें सूचना तो प्रथम स्तर पर एकत्रित की जाती है परन्तु अनुसन्धानकर्ता (अध्ययनकर्ता) का सूचनादाताओं से किसी प्रकार का प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता। इनका संकलन निम्नांकित प्रविधियों द्वारा किया जाता है-

1. **डाक प्रश्नावली-** डाक प्रश्नावली का विस्तृत एवं व्यापक क्षेत्र में फैले हुए सूचनादाताओं से प्राथमिक सामग्री संकलित करने में महत्वपूर्ण स्थान है। यह प्राथमिक सामग्री का एक महत्वपूर्ण स्रोत है जिसमें कम समय में अनेक सूचनादाताओं, जोकि विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए होते हैं, से सूचना एकत्रित की जा सकती है। यांग (Yang) के अनुसार, "प्रश्नावली एक विशाल एवं विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए व्यक्तियों के समूह से आँकड़े एकत्रित करने की शीघ्रतम पद्धति प्रदान करती है। अपने सरलतम रूप में प्रश्नावली प्रश्नों की एक अनुसूची है जिसे कि सर्वेक्षण निदर्शन के रूप से चुने हुए व्यक्तियों के पास डाक द्वारा भेजा जाता है।" इस प्रकार, डाक प्रश्नावली प्रश्नों की एक सूची है जिनका उत्तर स्वयं सूचनादाता भरता है अतः इसका प्रयोग उन्हीं परिस्थितियों में किया जा सकता है जिसमें सूचनादाता शिक्षित हैं।
2. **दूरभाष साक्षात्कार-** दूरभाष साक्षात्कार भी प्राथमिक सामग्री संकलन का महत्वपूर्ण स्रोत है। दूरभाष साक्षात्कार द्वारा अनुसन्धानकर्ता पहले दूरभाष करने वाले को अपने उद्देश्य बताकर उससे सहयोग की याचना करता है तथा उसे आश्वासन देता है कि उसके द्वारा दी गई सूचना का प्रयोग केवल अनुसन्धान हेतु ही किया जाएगा। यदि सूचनादाता इससे आश्वस्त हो जाता है तो इस प्रविधि द्वारा प्राप्त प्राथमिक सामग्री भी अत्यन्त विश्वसनीय होती है।
3. **रेडियो एवं टेलीविजन पर प्रसारित परिचर्चाएँ-** आज का युग जनसंचार का युग है। दैनिक क्रियाकलापों में प्रयोग किए जाने वाले जनसम्पर्क या जनसंचार के साधन के रूप में आज रेडियो, टेलीविजन तथा समाचार पत्रों का प्रमुख स्थान है। देशभर के अनेक मध्यवर्गीय परिवारों में लोग प्रायः बिस्तर से उठते ही सबसे पहले रेडियो या टेलीविजन चालू करते हैं अथवा प्रातःकालीन समाचार पढ़ते हैं। उन्हीं परिवारों के बच्चे सर्वप्रथम अपने मोबाइल फोन पर यह देखने के लिए नजर डालते हैं कि कोई 'मिस्ड काल' तो नहीं आई है। जनसंचार का अर्थ लाखों-करोड़ों व्यक्तियों को एक-साथ सन्देश पहुँचाना है। पहले एक समय था जब जनसंचार के माध्यम के रूप में रेडियो की महत्वपूर्ण भूमिका थी। दो-तिहाई घरों में रेडियो समाचारों एवं मनोरंजन का प्रमुख साधन था। टेलीविजन एवं प्रिण्ट मीडिया के महत्व में वृद्धि के कारण ऐसा लगने लगा है कि रेडियो खत्म होता जा रहा है। उदारीकरण के बाद 2002 ई० में भारत में गैर-सरकारी स्वामित्व वाले एफ० एम० रेडियो स्टेशनों की स्थापना से रेडियो पुनः मनोरंजन के कार्यक्रमों का प्रमुख साधन बन गया है। बहुत-से एफ० एम० चैनल अपने श्रोताओं को लुभाए रखने के लिए किसी विशेष प्रकार के लोकप्रिय संगीत में अपनी विशेषता रखते हैं। ऐसे एक एफ० एम० चैनल का

दावा है कि वह दिन भर 'हिट गानों' को ही प्रसारित करता है। आजकल टेलीविजन ने नई सूचना एवं संचार क्रान्ति को जन्म दे दिया है। इसे 'जादुई डिब्बा' तथा 'आँखों को अपने से चिपकाने वाला' कहा गया है। यह छोटे पर्दे पर चलचित्र ही नहीं बल्कि उससे भी अधिक प्रभावशाली है। रेडियो एवं टेलीविजन पर सम-सामयिक परिचर्चाएँ प्रसारित की जाती हैं। यह परिचर्चाएँ भी प्राथमिक सामग्री का महत्वपूर्ण अप्रत्यक्ष स्रोत माने जाते हैं।

13.7 द्वितीयक सामग्री

द्वितीयक स्रोतों द्वारा एकत्रित सामग्री को द्वितीयक सामग्री कहा जाता है। इसे अनुसन्धानकर्ता दूसरे के प्रयोग अथवा अनुसन्धान से प्राप्त करता है अर्थात् इसे स्वयं अनुसन्धानकर्ता संकलित नहीं करता। इसमें प्रायः लिखित प्रलेखों को सम्मिलित किया जाता है इसलिए इसे कई बार प्रलेखीय सामग्री अथवा ऐतिहासिक सामग्री भी कह दिया जाता है तथा इसके स्रोतों को प्रलेखीय स्रोत (Documentary sources) अथवा ऐतिहासिक स्रोत (Historical sources) भी कहते हैं। पीटर एच० मन (Peter H. Mann) के अनुसार, "प्राथमिक स्रोतों को द्वितीयक स्रोतों, जिनके द्वारा द्वितीयक स्तर पर सामग्री एकत्रित की जाती है अर्थात् सामग्री का संकलन प्रथम स्तर पर न होकर अन्य लोगों की मूल सामग्री से किया जाता है, से भिन्न माना जाता है।" इसी प्रकार, कर्लिंगर (Kerlinger) ने लिखा है कि, "द्वितीयक स्रोत किसी एक ऐतिहासिक घटना अथवा स्थिति से अपने मूल स्रोतों से एक या अधिक चरण दूर हटे हुए होते हैं।" संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि द्वितीयक सामग्री में प्रकाशित एवं अप्रकाशित प्रलेख, रिपोर्ट, सांख्यिकीय विवेचन, पाण्डुलिपि, समाचार-पत्र एवं पत्रिकाओं, डायरी इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है। लुण्डबर्ग (Lundberg) के मतानुसार शिलालेख, स्तूप, विभिन्न खुदाइयों से प्राप्त अस्थि-पंजर, भौतिक वस्तुएँ आदि ऐतिहासिक स्रोतों से प्राप्त सामग्री भी द्वितीयक सामग्री कहलाती है।

13.8 द्वितीयक सामग्री की उपयोगिता

सामाजिक अनुसन्धान में प्राथमिक एवं द्वितीयक, दोनों प्रकार की सामग्री एकत्रित की जाती है। द्वितीयक सामग्री का अनुसन्धान में अपना अलग महत्व है। द्वितीयक सामग्री एवं द्वितीयक स्रोतों के प्रमुख गुण निम्नांकित हैं-

1. **पक्षपात से बचाव-** द्वितीयक स्रोतों के प्रयोग में अनुसन्धानकर्ता द्वारा किसी प्रकार के पक्षपात करने की सम्भावना तथा सामग्री को अपने मूल्यों के अनुरूप तोड़-मरोड़ लेने की सम्भावना बहुत ही कम होती है।
2. **भूतकालीन घटनाओं का अध्ययन-** द्वितीयक स्रोत एवं द्वितीयक सामग्री भूतकाल की घटनाओं के अध्ययन में भी सहायक है क्योंकि भूतकालीन घटनाओं का क्षेत्रीय अध्ययन सम्भव नहीं होता। समाजशास्त्र, शिक्षाशास्त्र एवं मनोविज्ञान के क्षेत्रों में ऐतिहासिक सामग्री की व्यापक आवश्यकता होती है। समाजशास्त्र की इतिहास के अध्ययन से सम्बन्धित शाखा को 'ऐतिहासिक समाजशास्त्र' (Historical Sociology) कहते हैं।
3. **समय एवं धन की बचत-** द्वितीयक स्रोत अनुसन्धानकर्ता के समय, श्रम एवं पैसे के व्यर्थ प्रयोग से बचत करते हैं। यदि सूचनाएँ पहले से ही लिखित रूप में उपलब्ध हैं तो फिर से उनके संकलन की कोई आवश्यकता नहीं है।

4. **गोपनीय तथ्यों की प्राप्ति-** द्वितीयक स्रोत विशेष रूप से डायरियों तथा आत्मकथाओं से ऐसे तथ्यों के बारे में भी ज्ञान प्राप्त हो जाता है जिनके बारे में प्रत्यक्ष सम्पर्क द्वारा सूचनाएँ प्राप्त नहीं की जा सकतीं। यदि वैयक्तिक अध्ययन करते समय हमें सूचनादाताओं द्वारा लिखी गई डायरी या पत्र उपलब्ध हो पाते हैं तो उनसे अनेक ऐसे गोपनीय तथ्यों का पता चल सकता है जिसे अन्यथा सूचनादाता किसी भी अनुसन्धानकर्ता को सरलता से नहीं बताते।
5. **असम्भव सूचनाओं का संकलन-** द्वितीयक स्रोत असम्भव सूचनाओं के संकलन में सहायता प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए-सरकारी रिपोर्टें, पुलिस एवं कचहरी के रिकॉर्ड इत्यादि हमें कई बार अत्यन्त उपयोगी व दुर्लभ सूचनाएँ भी प्रदान करते हैं।

13.9 द्वितीयक सामग्री की सीमाएँ

यद्यपि द्वितीयक स्रोत एवं सामग्री सामाजिक अनुसन्धान में अनुसन्धानकर्ता को महत्वपूर्ण योगदान देती है, फिर भी इसके प्रयोग के कारण अनुसन्धान में अनेक दोष आ जाते हैं। द्वितीयक सामग्री अथवा स्रोतों के प्रमुख दोष निम्नांकित हैं-

1. **पुनर्परीक्षण कठिन-** द्वितीयक स्रोतों द्वारा उपलब्ध सामग्री या आँकड़ों की पुनर्परीक्षा करना सम्भव नहीं है क्योंकि इनमें जिस घटना का वर्णन है वह अनुसन्धानकर्ता की मर्जी से पुनर्घटित नहीं हो सकती है।
2. **कम विश्वसनीय-** द्वितीयक स्रोत एवं सामग्री कम विश्वसनीय होते हैं क्योंकि इनकी जाँच करना सम्भव नहीं है। कर्लिंगर ने इसी सन्दर्भ में उचित ही कहा है कि द्वितीयक स्रोत सापेक्षिक रूप में कम विश्वसनीय होते हैं तथा एक द्वितीयक स्रोत अपने प्राथमिक स्रोत से जितने चरण अधिक दूर हटा हुआ होता है, उतनी ही उसमें अधिक तोड़-मरोड़ की सम्भावना रहती है और उसकी मौलिकता की विश्वसनीयता में तदनुसार कमी आती चली जाती है।
3. **लेखक की अभिनति-** सभी द्वितीयक प्रलेख लेखकों के विशिष्ट दृष्टिकोणों द्वारा प्रभावित हो सकते हैं और इसीलिए हो सकता है कि इनसे अनुसन्धानकर्ता को वास्तविकता का पूरा पता न चले। सामान्यतया यह प्रमाणित करना कठिन होता है कि जिस व्यक्ति के प्रलेखों को हम द्वितीयक सामग्री के रूप में प्रयोग कर रहे हैं वह एक निष्पक्ष, ईमानदार, सुयोग्य तथा सचरित्र व्यक्ति था अथवा नहीं। हो सकता है कि उसने किसी पूर्वाग्रह, संवेग, भय, भाव व अभाव से, जाने या अनजाने में तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया हो और उसके प्रलेखों में अनेक त्रुटियाँ हों।
4. **अपर्याप्त सूचना-** सामान्यतः द्वितीयक स्रोतों द्वारा उपलब्ध सूचना अपर्याप्त होती है क्योंकि इन्हें अनुसन्धान के उद्देश्य से अथवा अनुसन्धानकर्ताओं द्वारा ही संकलित नहीं किया जाता है। बहुत-सी काल्पनिक बातों का भी, हो सकता है इन स्रोतों में समावेश किया गया हो।

13.10 द्वितीयक सामग्री के स्रोत

द्वितीयक स्रोतों में हम अन्य व्यक्तियों द्वारा लिखित रूप से उपलब्ध स्रोतों या प्रलेखों को सम्मिलित करते हैं चाहे ये प्रकाशित हो गए हों या अप्रकाशित ही हों। द्वितीयक स्रोतों में मुख्य रूप से दो प्रकार के प्रलेखों को सम्मिलित किया जाता है- व्यक्तिगत प्रलेख-जिन्हें किसी व्यक्ति द्वारा निजी रूप से लिखा गया है तथा और सार्वजनिक

प्रलेख- जिन्हें रिकार्ड के रूप में किसी सरकारी, अर्द्ध-सरकारी अथवा गैर-सरकारी संगठन द्वारा तैयार किया जाता है।

13.10.1 व्यक्तिगत प्रलेख

व्यक्तिगत प्रलेखों से तात्पर्य ऐसे प्रलेखों या लिखित सामग्री से है जिन्हें किसी व्यक्ति द्वारा निजी रूप में लिखा जाता है। जॉन मैज (John Madge) के अनुसार, "संकुचित अर्थ में, व्यक्तिगत प्रलेख किसी व्यक्ति के द्वारा अपनी निजी क्रियाओं, अनुभवों तथा विश्वासों का एक स्वतः प्रथम व्यक्ति वर्णन है।" सरल शब्दों में यह कहा जा सकता है कि इनमें किसी व्यक्ति द्वारा निजी रूप से लिखे गए प्रलेखों को सम्मिलित किया जाता है। व्यक्तिगत प्रलेख सामाजिक घटनाओं को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं क्योंकि इनसे वास्तविक तथ्यों का पता चलता है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषणों में व्यक्तिगत प्रलेखों द्वारा अत्यधिक सहायता मिलती है। परन्तु इनके प्रयोग की सबसे बड़ी कमी यह है कि व्यक्तिगत प्रलेख लेखक के निजी दृष्टिकोण द्वारा प्रभावित होते हैं।

आलपोर्ट (Allport) ने व्यक्तिगत प्रलेखों को लिखने के लिए निम्नलिखित सम्भावित कारण बताए हैं- अपने किसी कार्य के औचित्य को सिद्ध करने हेतु, अपने दोषों की स्वीकृति हेतु, घटनाओं के क्रमबद्ध वर्णन की इच्छा को चारितार्थ करने हेतु, साहित्यिकता का आनन्द लेने हेतु, व्यक्तिगत प्रलेखों में अनुसन्धान हेतु, मानसिक तनाव से छुटकारा पाने हेतु, धन प्राप्ति हेतु, किसी सौंपे हुए कार्य की पूर्ति हेतु, किसी चिकित्सा सम्बन्धी विवरण प्रस्तुत करने हेतु, अपनी योग्यताओं को प्रदर्शित करने हेतु, किसी सिद्धन्त या 'वाद' को लोकप्रिय बनाने हेतु, जनसेवा एवं कल्याण हेतु तथा अमृतत्व प्राप्त करने हेतु।

व्यक्तिगत प्रलेखों में सामान्यतः जीवन इतिहास, डायरी, पत्र तथा संस्मरण आदि प्रलेखों अथवा स्रोतों को सम्मिलित किया जाता है। इनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है-

जीवन इतिहास- जीवन इतिहास से तात्पर्य विस्तृत आत्मकथा से है। जॉन मैज (John Madge) के अनुसार, "सीमित अर्थ में, जीवन इतिहास का अभिप्राय विस्तृत आत्मकथा से है। परन्तु व्यवहार में इसका सामान्य प्रयोग मोटे रूप से किसी भी जीवन सम्बन्धी सामग्री के लिए किया जाता है।" अधिकांश जीवन इतिहास महान व्यक्तियों द्वारा स्वयं अपने बारे में अथवा अन्य लोगों द्वारा उनके बारे में लिखे जाते हैं। जीवन इतिहास मुख्य रूप से तीन प्रकार के हैं-

- स्वतः लिखित आत्मकथा, जोकि व्यक्ति द्वारा स्वेच्छा से अपने बारे में लिखी जाती है,
- प्रेरित आत्म-लेख, जिसे व्यक्ति अपने बारे में परन्तु अन्य व्यक्तियों से प्रेरित होकर लिखता है तथा
- संकलित जीवन इतिहास, जिसे कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति की जीवन सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करके, उसके द्वारा कही गई बातों का पता लगाकर तैयार करता है। जीवन इतिहास हमें महत्वपूर्ण सामाजिक घटनाओं एवं तथ्यों के बारे में विस्तृत जानकारी उपलब्ध कराने में सहायता प्रदान करते हैं। परन्तु इनमें लेखक अपने गुणों को बढ़ाकर लिखता है, अतः इनके प्रयोग में विशेष सावधानी रखनी पड़ती है।

जॉन डोलार्ड (John Dollard) ने इस बात पर बल दिया है कि जीवन इतिहास को लिखते समय सामाजिक अनुसन्धानकर्ता को चाहिए कि वह व्यक्ति-विशेष की संस्कृति, पारिवारिक पृष्ठभूमि एवं आन्तरिक जीवन की गहराइयों में प्रवेश पा सके तथा बिना किसी प्रकार की अनावश्यक आवृत्तियों के विस्तारसहित सभी कारकों का स्पष्ट रूप से वर्णन करे। हमें इस तथ्य को भी ध्यान में रखना चाहिए कि किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन इतिहास को प्रस्तुत करना तो प्रायः सरल है, परन्तु उसके जीवन के किसी एक पक्ष का अध्ययन करना अपेक्षाकृत कठिन होता

है। यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि जीवन इतिहास पद्धति का प्रयोग सभी परिस्थितियों में नहीं किया जा सकता है। कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जिनमें जीवन इतिहास पद्धति सबसे अधिक उपयोगी है। इसका प्रयोग निम्नांकित परिस्थितियों में विशेष रूप से किया जा सकता है।

गहन एवं सूक्ष्म अध्ययनों में- जीवन इतिहास का प्रयोग किसी इकाई के गहन एवं सूक्ष्म अध्ययन करने के लिए किया जाता है। यह गहन एवं सूक्ष्म अध्ययनों में विशेष रूप से सहायक प्रविधि है।

गुणात्मक तथ्यों के संकलन में- यदि किसी व्यक्ति के बारे में गुणात्मक आँकड़े एकत्रित करने हैं अर्थात् उसके जीवन के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित आँकड़े एकत्रित करने हैं तो जीवन इतिहास अधिक उपयोगी है।

परिवर्तन एवं विकास के अध्ययन में- यदि किसी व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन का अध्ययन करना है अथवा उसके विकास एवं परिवर्तन को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन करना है, तो जीवन इतिहास एक उपयोगी प्रविधि हो सकती है।

व्यक्तित्वों के अध्ययन में- यदि किसी व्यक्ति की भावनाओं, मनोवृत्तियों एवं परिस्थितियों का पता लगाना है तो जीवन इतिहास एक उपयोगी एवं श्रेष्ठ प्रविधि हो सकती है।

आन्तरिक जीवन के अध्ययन में- यदि किसी व्यक्ति के आन्तरिक जीवन के बारे में आँकड़े एकत्रित करने हैं तो इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु जीवन इतिहास एक उपयुक्त प्रविधि है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि जीवन इतिहास पद्धति का प्रयोग प्रत्येक प्रकार के अनुसन्धान में नहीं किया जा सकता है। इसका प्रयोग केवल सीमित परिस्थितियों में ही संभव है।

2. डायरी- डायरी एक निजी प्रलेख है। कुछ लोग अपने दैनिक जीवन की प्रमुख घटनाओं, अनुभवों तथा वर्तमान परिस्थितियों के बारे में अपनी प्रतिक्रियाओं को विस्तृत अथवा संकेतक रूप में डायरी पर लिखते रहते हैं। चूँकि यह गोपनीय प्रलेख है अतः इसमें लेखक वास्तविक एवं यथार्थ बातें ही लिखता है। डायरियाँ विश्वसनीय सामग्री या आँकड़ों के स्रोत हैं तथा उनसे लिखने वाले के बारे में अनेक ऐसे रहस्यों का भी पता चलता है जिन्हें सामान्य व्यक्ति नहीं जानते। यदि डायरी में संकेतों द्वारा लिखा गया है तो उनका अर्थ लगाना कठिन हो सकता है तथा साथ ही डायरी उपलब्ध हो पाना भी एक कठिन कार्य है।

3. पत्र- व्यक्तियों द्वारा लिखे गए निजी पत्र भी उनके बारे में महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध कराने में सहायता प्रदान करते हैं। पत्रों द्वारा प्राप्त सामग्री अधिक विश्वसनीय होती है क्योंकि इन्हें व्यक्ति स्वतंत्रतापूर्वक लिखता है तथा साथ ही गोपनीय बातों का भी इससे पता चल जाता है। पारिवारिक तनाव या वैवाहिक जीवन के अध्ययन में पत्र काफी उपयोगी सामग्री प्रदान करते हैं। पत्रों का उपलब्ध हो पाना एक कठिन कार्य है तथा साथ ही यदि एक ही पक्ष के पत्र उपलब्ध हों या बीच के कुछ पत्र न मिलें तो द्वितीयक सामग्री में क्रमबद्धता नहीं रहती।

4. संस्मरण- संस्मरण ऐतिहासिक सामग्री के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। यात्राओं, जीवन घटनाओं अथवा महत्वपूर्ण परिस्थितियों के बारे में लिखे गए विवरण संस्मरण कहलाते हैं। संस्मरणों द्वारा यद्यपि कई बार बहुमूल्य सामग्री प्राप्त हो जाती है फिर भी इनमें सामान्यतः क्रमबद्धता का अभाव पाया जाता है और साथ ही संस्मरण अति महत्वपूर्ण घटनाओं के बारे में ही उपलब्ध होते हैं।

यद्यपि जीवन इतिहास, डायरी, पत्र तथा संस्मरण जैसे व्यक्तिगत प्रलेख व्यक्तित्व के गहन, सूक्ष्म एवं विस्तृत अध्ययन में अति उपयोगी होते हैं, फिर भी इसका सामाजिक अनुसन्धानों में सीमित पैमाने पर ही प्रयोग किया जाता है। ऐसे प्रलेखों के प्रमुख दोष या अवगुण निम्नलिखित हैं-

- **अस्पष्ट तथा अवैज्ञानिक-** जीवन इतिहास, डायरी, पत्र तथा संस्मरण आदि स्रोत असंगठित, अनियन्त्रित एवं अस्पष्ट होने के कारण अवैज्ञानिक माने जाते हैं क्योंकि इसमें व्यक्तित्व का चयन करने में नियमों का पालन नहीं किया जाता है। साथ ही, अध्ययन हेतु चयनित व्यक्तित्वों पर किसी भी प्रकार का नियन्त्रण रखने का प्रयास नहीं किया जाता है। इनमें वस्तुनिष्ठता का भी अभाव पाया जाता है।
- **सीमित अध्ययन-** जीवन इतिहास, डायरी, पत्र तथा संस्मरण आदि का सबसे बड़ा दोष इसके द्वारा केवल एक अथवा सीमित व्यक्तित्वों का ही अध्ययन हो पाना भी है।
- **दोषपूर्ण सामान्यीकरण-** पहले तो जीवन इतिहास, डायरी, पत्र तथा संस्मरण आदि को आधार मानकर किए जाने वाले अध्ययन सामान्यीकरण में सहायक ही नहीं हैं क्योंकि इससे केवल एक अथवा कुछ व्यक्तित्वों का ही अध्ययन किया जाता है तथा दूसरे यदि सामान्यीकरण किया भी जाता है तो इकाइयों के प्रतिनिधित्व न होने के कारण जो सामान्यीकरण किया भी जाता है वह दोषपूर्ण होता है। गुड एवं हैट (Goode and Hatt) ने जीवन इतिहास एवं वैयक्तिक अध्ययन सम्बन्धी इसी दोष को स्वेच्छानुसार सैद्धान्तिकरण (Adhoc theorizing) करना कहा है।
- **पक्षपात-** जीवन इतिहास पद्धति में व्यक्तित्व के सभी पक्षों के बारे में विस्तृत अध्ययन किया जाता है तथा यह अध्ययन कालक्रम (दीर्घकालिक) के अनुसार होता है, अतः कभी-कभी अनुसन्धानकर्ता की सूचनादाता से हमदर्दी हो जाने की संभावना बनी रहती है। इसमें पक्षपात की संभावना काफी बढ़ जाती है। यदि ऐसा है तो रिपोर्ट लिखने में भी अनुसन्धानकर्ता तथ्यों को सूचनादाता के पक्ष में तोड़-मरोड़ कर लिख सकता है जिससे हो सकता है कि वास्तविकता का पता ही न चले।
- **अप्रमाणित तथ्य-** जीवन इतिहास द्वारा संकलित तथ्यों की प्रामाणिकता की जाँच करना एक कठिन कार्य है। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जिनका दोहरा व्यक्तित्व होता है अर्थात् दूसरे उनके बारे में जो जानते हैं वह वास्तव में वैसा नहीं होता। ऐसी परिस्थिति में हो सकता है कि दूसरों द्वारा उनके बारे में बताई गई सूचनाएँ वास्तविक न हों। यदि ऐसे व्यक्ति ने अपना जीवन इतिहास स्वयं लिखा है तो भी वह भ्रामक हो सकता है।
- **अत्यधिक आत्म-विश्वास-** जीवन इतिहास प्रविधि के प्रयोग में चूँकि अनुसन्धानकर्ता व्यक्ति के बारे में गहराई से अध्ययन करता है तथा उसे प्रभावित करने वाले सभी कारकों का पता लगाता है, इसलिए उसमें झूठा आत्म-विश्वास पैदा हो जाता है कि वह उस व्यक्ति को पूरी तरह से समझ गया है तथा बार-बार उसे यही महसूस होता है कि वह समस्या की गहराई में पहुँच गया है। यह आत्म-विश्वास अनुसन्धानकर्ता के अध्ययन को प्रभावित करता है।

पर्युक्त दोषों के बावजूद, जीवन इतिहास, डायरी, पत्र तथा संस्मरण आदि अध्ययन इकाई के सूक्ष्म एवं गहन अध्ययन में अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं। मनोचिकित्सा में इनका विशेष महत्व है। दोषों का यदि हम मूल्यांकन करें तो यह भी स्पष्ट होता है कि सभी दोष इन पद्धतियों के ही नहीं हैं, अपितु कुछ दोष इसे प्रयोग करने वाले अनुसन्धानकर्ता के भी हैं जिन्हें कुछ सावधानियों द्वारा दूर किया जा सकता है।

13.10.2 सार्वजनिक प्रलेख

सार्वजनिक प्रलेखों में ऐसे प्रकाशित अथवा अप्रकाशित प्रलेखों को सम्मिलित किया जाता है जोकि किसी सरकारी, अर्द्ध-सरकारी अथवा गैर-सरकारी संगठनों एवं संस्थाओं द्वारा तैयार किए जाते हैं। कुछ प्रलेखों को तो इन संगठनों द्वारा प्रकाशित करवा दिया जाता है। परन्तु कुछ को गोपनीय रखने के लिए अप्रकाशित ही रखा जाता है। अप्रकाशित प्रलेख मिलना एक कठिन कार्य है।

सार्वजनिक प्रलेख अधिकतर सरकारी रिपोर्टों के रूप में होते हैं। परन्तु अनेक प्रलेखों को उपलब्ध कर पाना एक कठिन कार्य होता है तथा अनेक प्रलेख घटना का केवल सतही वर्णन ही प्रस्तुत करते हैं।

प्रकाशित प्रलेखों में मुख्य रूप से सार्वजनिक संगठनों की रिपोर्टें, समाचारपत्र एवं पत्र-पत्रिकाएँ, प्रकाशित आँकड़े तथा पुस्तक-सूचियाँ सम्मिलित की जाती हैं।

इनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है-

1. **सार्वजनिक संगठनों की रिपोर्टें-** अनेक सार्वजनिक संगठन अपना औचित्य सिद्ध करने अथवा पिछले वर्षों में हुई प्रगति के बारे में समय-समय पर अपनी रिपोर्टें प्रकाशित करवाते रहते हैं जिनसे इन संगठनों के बारे में काफी सूचनाएँ उपलब्ध हो जाती हैं। अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय संगठनों, लोकसभा, राज्यसभा की कार्यवाही की रिपोर्टें तथा अन्य सरकारी दस्तावेज कई बार महत्वपूर्ण सूचनाओं के स्रोत होते हैं।
2. **समाचार-पत्र एवं पत्र-पत्रिकाएँ-** समाचार-पत्र तथा पत्र-पत्रिकाएँ भी द्वितीयक सामग्री के महत्वपूर्ण स्रोत हैं जिनसे सामाजिक घटनाओं, सामाजिक परिस्थितियों तथा सरकार की नीतियों इत्यादि के बारे में आँकड़े एकत्रित किए जा सकते हैं।
3. **प्रकाशित आँकड़े-** सरकार द्वारा समय-समय पर विभिन्न प्रकार के आँकड़े प्रकाशित किए जाते हैं। सरकारी गजेटियर, जनगणना रिपोर्ट, देश की जनसंख्या, उत्पादन, आयात-निर्यात के बारे में प्रकाशित आँकड़ों का प्रयोग सामाजिक अनुसन्धान में विशेष महत्व रखता है। केन्द्र तथा राज्य सरकारें समय-समय पर राष्ट्र या प्रदेश की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियों का समय-समय पर सर्वेक्षण एवं अनुसन्धान कराती रहती हैं और उन्हें जनसाधारण के उपयोग हेतु विभिन्न माध्यमों से प्रकाशित कराती रहती हैं। इनमें महत्वपूर्ण आँकड़ों का समावेश होता है जो कि अनुसन्धान में उपयोगी सिद्ध होते हैं।
4. **पुस्तक-सूचियाँ-** पुस्तक-सूचियाँ भी विषय से सम्बन्धित सर्वेक्षणों या समस्या से सम्बन्धित विभिन्न स्रोतों का ज्ञान देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

अप्रकाशित प्रलेखों में मुख्य रूप से निम्नलिखित स्रोतों को सम्मिलित किया जाता है- सरकारी प्रलेख, दुर्लभ हस्तलेख, शोध प्रतिवेदन और अप्रकाशित लोक-साहित्य, लोक गीत तथा ऐतिहासिक महत्व के केन्द्रों पर लिखे हुए श्लोक, सूक्तियाँ या शिलालेख इत्यादि।

किसी भी अनुसन्धान में प्रकाशित एवं अप्रकाशित प्रलेखों का प्रयोग अत्यन्त सावधानीपूर्वक किया जाना आवश्यक है। इनका प्रयोग करने से पहले यह सुनिश्चित करना चाहिए कि इनमें सम्मिलित सामग्री कहाँ तक विश्वसनीय है तथा सामग्री के संकलन हेतु किन स्रोतों का प्रयोग किया गया है। साथ ही, समग्र या निदर्शन की इकाइयों, सामग्री संकलित करने वालों की योग्यताएँ तथा सामग्री की परिशुद्धता को बनाए रखने के प्रयासों के बारे में ज्ञात होना भी आवश्यक है। कॉनर (Connor) ने इस सन्दर्भ में उचित ही लिखा है कि, “सामग्री प्रमुख रूप से अन्य स्रोतों से संकलित सामग्री, अत्यधिक सावधानी से उपयोग में लानी चाहिए, नहीं तो वह अनुसन्धानकर्ता को

गर्त में ढकेल सकती है।” बाऊले (Bowley) ने प्रकाशित प्रलेखों के सन्दर्भ में यह चेतावनी दी है कि, “प्रकाशित सामग्री को बिना मूल अर्थ एवं उसकी सीमाएँ ज्ञात किए जैसे-का-तैसा प्रयोग में लाना खतरे से खाली नहीं है। अतः यह हमेशा आवश्यक है कि उन पर आधारित तर्कों की आलोचना कर ली जाए।”

13.11 प्राथमिक एवं द्वितीयक सामग्री में अन्तर

सामाजिक अनुसन्धान में अनुसन्धान समस्या की प्रकृति के आधार पर प्राथमिक एवं द्वितीयक सामग्री का संकलन किया जाता है।

प्राथमिक एवं द्वितीयक सामग्री में मुख्य अन्तर निम्नलिखित हैं-

1. **संकलन के आधार पर अन्तर-** प्राथमिक सामग्री का संकलन स्वयं अनुसन्धानकर्ता द्वारा किया जाता है, जबकि द्वितीयक सामग्री प्रलेखों के रूप में उपलब्ध होती है। प्राथमिक सामग्री का संकलन अध्ययन-क्षेत्र में जाकर किया जाता है, जबकि द्वितीयक सामग्री प्रलेखों के रूप में पुस्तकालय में उपलब्ध होती है।
2. **मौलिकता तथा विश्वसनीयता के आधार पर अन्तर-** प्राथमिक सामग्री द्वितीयक सामग्री की अपेक्षा अधिक मौलिक एवं विश्वसनीय होती है क्योंकि इसका स्वयं अनुसन्धानकर्ता द्वारा क्षेत्र अध्ययन (आनुभविक अध्ययन) के आधार पर संकलन किया जाता है।
3. **स्रोत के आधार पर अन्तर -** प्राथमिक सामग्री का संकलन अवलोकन, साक्षात्कार तथा अनुसूची एवं प्रश्नावली द्वारा किया जाता है, जबकि द्वितीयक सामग्री का संकलन लिखित प्रलेखों से अन्तर्वस्तु विश्लेषण द्वारा किया जाता है।
4. **धन तथा समय के आधार पर अन्तर-** प्राथमिक सामग्री के संकलन में धन तथा समय अधिक लगता है, जबकि द्वितीयक सामग्री के संकलन में कम।
5. **पुनर्परीक्षण के आधार पर अन्तर -** प्राथमिक सामग्री के बारे में यदि किसी प्रकार का सन्देह हो तो इसे पुनर्परीक्षण द्वारा दूर किया जा सकता है। सामान्यतः द्वितीयक सामग्री की जाँच करना संभव नहीं है।
6. **सूचनाओं की पर्याप्तता के आधार पर अन्तर-** प्राथमिक सामग्री का संकलन अनुसन्धानकर्ता द्वारा समस्या के विभिन्न पहलुओं को सामने रखकर किया जाता है, जबकि द्वितीयक सामग्री के लिए हमें प्रलेखों पर निर्भर रहना पड़ता है। प्रलेखों में उपलब्ध सूचनाएँ अपर्याप्त होती हैं क्योंकि इन्हें अनुसन्धानकर्ता के उद्देश्य के अनुरूप तैयार नहीं किया जाता।

पीटर एच. मन का कहना है कि यदि हम जॉन मैज (John Madge) द्वारा रिकॉर्ड (Record) तथा रिपोर्ट (Report) के अन्तर को प्राथमिक तथा द्वितीयक स्रोतों के सन्दर्भ में देखें तो प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों में अन्तर और अधिक स्पष्ट हो सकता है।

13.12 सारांश

सूचना किसी भी शोध अथवा अध्ययन का आधार होती है और इसे समझने के लिए इसके स्रोतों को सामान्यतः प्राथमिक और द्वितीयक सामग्री में वर्गीकृत किया जाता है। प्राथमिक सामग्री वे तथ्य होते हैं जो प्रत्यक्ष रूप से एकत्र किए जाते हैं, जैसे साक्षात्कार, प्रश्नावली, प्रत्यक्ष अवलोकन और फील्ड सर्वे आदि। इनका सबसे बड़ा लाभ यह है कि ये प्रामाणिक, मौलिक और ताजा जानकारी प्रदान करती हैं, जिससे शोध वास्तविक परिस्थितियों पर

आधारित बनता है। हालांकि, इनकी एक सीमा यह भी है कि इन्हें जुटाने में समय, धन और श्रम की अधिक आवश्यकता होती है। इसके विपरीत, द्वितीयक सामग्री वह होती है जो पहले से संकलित, व्यवस्थित या प्रकाशित रूप में उपलब्ध होती है, जैसे पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ, सरकारी रिपोर्टें, व्यक्तियों की आत्मकथाएँ, डायरियाँ अथवा अन्य प्रलेख। द्वितीयक सामग्री का उपयोग सरल और त्वरित होता है तथा यह शोध को व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करती है, किंतु इसमें अद्यतनता की कमी, पक्षपात या पूर्वाग्रह की संभावना रहती है। शोध कार्य की दृष्टि से आवश्यक है कि प्राथमिक और द्वितीयक दोनों प्रकार की सामग्रियों का संतुलित रूप से प्रयोग किया जाए, ताकि अध्ययन न केवल गहराई लिए हो बल्कि विश्वसनीय और प्रामाणिक भी बन सके।

13.13 शब्दावली

प्राथमिक सामग्री- प्राथमिक सामग्री उस सामग्री, आँकड़ों या सूचनाओं को कहते हैं जोकि अनुसन्धानकर्ता (अथवा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा) स्वयं प्राप्त की जाती है।

द्वितीयक सामग्री- द्वितीयक स्रोतों द्वारा एकत्रित सामग्री को द्वितीयक सामग्री कहा जाता है। इसे अनुसन्धानकर्ता दूसरों द्वारा किए गए अनुसन्धान से प्राप्त करता है अर्थात् इसे स्वयं अनुसन्धानकर्ता संकलित नहीं करता। इसमें प्रायः लिखित प्रलेखों को सम्मिलित किया जाता है।

जीवन इतिहास- जीवन इतिहास शब्द का प्रयोग विस्तृत आत्मकथा अथवा किसी अन्य अन्वेषक द्वारा व्यक्ति-विशेष के बारे में लिखी गई जीवन सम्बन्धी आत्मकथा या विवरण के लिए किया जाता है।

सार्वजनिक प्रलेख- सार्वजनिक प्रलेखों में ऐसे प्रकाशित अथवा अप्रकाशित प्रलेखों को सम्मिलित किया जाता है जोकि किसी सरकारी, अर्द्ध-सरकारी अथवा गैर-सरकारी संगठनों एवं संस्थाओं द्वारा तैयार किए जाते हैं।

जनसंचार- जनसंचार से अभिप्राय संचार के उन माध्यमों से है जो किसी बात को एक ही समय पर लाखों-करोड़ों व्यक्तियों तक पहुँचाने की क्षमता रखते हैं²⁶⁷। रेडियो, समाचार-पत्र, फिल्में, टेलीविजन आदि इसके प्रमुख माध्यम माने जाते हैं।

13.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Allport, Gordon W., *The Use of Personal Documents in Psychological Science*, New York : Social Science Research Council, 1951.
- Bogardus, E. S., *Introduction to Sociology*, New York : Charles Scribner's Sons, 1922.
- Bowley, A. L.,
- *An Elementary Manual of Statistics*, London : Macdonald and Evans, 1910²⁸⁰.
- Connor, L. R., *Statistics in Theory and Practice*, London : Sir Isaac Pitman & Sons, 1964.
- Dollard, John, *Criteria for the Life History with Analyses of Six Notable Documents*, New York : P. Smith, 1949.

13.15 सहायक उपयोगी सामग्री

- Kerlinger, F. N., *Foundations of Behavioural Research*, New York : Holt, Rinehart, and Winston, 1979.
 - Lundberg, G. A., *Social Research*, New York : Longmans Green and Co., 1951.
 - Madge, John,
 - *The Tools of Social Science*, New York : Longmans Green and Co., 1953²⁸¹.
 - Mann, Peter H., *Methods of Sociological Enquiry*, Oxford : Blackwell, 1968.
 - Palmer, V. M., *Field Studies in Sociology*, Chicago : Chicago University Press, 1928.
 - Yang, Hsin Pao, *Fact-finding with Rural People*, Rome : Food and Agriculture Organization of the United Nations, 1955.
-

13.16 निबंधात्मक प्रश्न

- प्राथमिक सामग्री किसे कहते हैं? इसके प्रमुख स्रोत बताइए।
- द्वितीयक सामग्री किसे कहते हैं? इसके प्रमुख स्रोत कौन-से हैं?
- प्राथमिक एवं द्वितीयक सामग्री में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
- प्राथमिक सामग्री क्या है? इसकी उपयोगिता एवं सीमाओं की विवेचना कीजिए।
- द्वितीयक सामग्री क्या है? इसकी उपयोगिता एवं सीमाओं की विवेचना कीजिए।
- सामाजिक अनुसन्धान में व्यक्तिगत प्रलेखों के प्रयोग पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
- निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—
 - (अ) सार्वजनिक प्रलेख
 - (ब) प्राथमिक सामग्री के प्रत्यक्ष स्रोत
 - (स) प्राथमिक सामग्री के अप्रत्यक्ष स्रोत
 - (द) जीवन इतिहास

इकाई-14 सामग्री का वर्गीकरण एवं प्रदर्शन

- 14.0 उद्देश्य
- 14.1 प्रस्तावना
- 14.2 सामग्री का वर्गीकरण
- 14.3 वर्गीकरण के उद्देश्य एवं आधार
- 14.4 वर्गीकरण के प्रकार
- 14.5 सामग्री विश्लेषण के स्तर : संकेतन, सारणीयन एवं निर्वचन
- 14.6 सामग्री का सारणीयन
- 14.7 सारणीयन के विभिन्न प्रकार
- 14.8 सारणी का निर्माण
- 14.9 सारणीयन की विधियाँ
- 14.10 सारणीयन की उपयोगिता
- 14.11 सारणीयन की सीमाएँ
- 14.12 सामग्री का निर्वचन
- 14.13 शब्दावली
- 14.14 अभ्यास प्रश्न
- 14.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

14.0 उद्देश्य

किसी भी अनुसन्धान का उद्देश्य अध्ययनरत समस्या के बारे में निष्कर्ष निकालना होता है। निष्कर्ष निकालने हेतु सामग्री को व्यवस्थित करना आवश्यक है। चूँकि सामाजिक विज्ञानों में संकलित सामग्री गुणात्मक (Qualitative) होती है, इसलिए उससे निष्कर्ष निकालने हेतु उसे गणनात्मक (Quantitative) रूप में परिवर्तित करना आवश्यक होता है। यह कार्य संकेतन (Coding) द्वारा किया जाता है। वर्गीकरण (Classification) एवं सारणीयन (Tabulation) द्वारा सामग्री को व्यवस्थित रूप दिया जाता है ताकि सामग्री का निर्वचन किया जा सके तथा उसके आधार पर निष्कर्ष निकाले जा सकें। इस इकाई में सामग्री के वर्गीकरण, संकेतन एवं सारणीयन सम्बन्धी आवश्यक जानकारी उपलब्ध कराने का प्रयास किया गया है, साथ ही, सामग्री के निर्वचन (Interpretation) को भी संक्षेप में समझाया गया है।

14.1 प्रस्तावना

सामाजिक अनुसन्धान किसी समस्या से प्रारम्भ होता है। समस्या से सम्बन्धित उपकल्पनाएँ (Hypothesis) बनाई जाती हैं तथा उनका परीक्षण करने के लिए विभिन्न अनुसन्धान प्रविधियों में से सबसे उपयुक्त प्रविधि या प्रविधियों का चयन करके सामग्री का संकलन किया जाता है। सामग्री संकलित कर लेने के पश्चात् सामग्री को व्यवस्थित करना अनिवार्य है ताकि अर्थपूर्ण ढंग से सामग्री पर आधारित निष्कर्ष निकाले जा सकें। वर्गीकरण का उद्देश्य बिखरी हुई सामग्री को व्यवस्थित करना है अर्थात् इसे विभिन्न श्रेणियों में विभाजित करके अर्थपूर्ण बनाना है। सामग्री के प्रदर्शन (प्रस्तुतिकरण) एवं उससे निष्कर्ष निकालने हेतु बिखरी हुई सामग्री को वर्गीकरण द्वारा व्यवस्थित

करना आवश्यक होता है। सामग्री का वर्गीकरण एवं सारणीयन सामग्री को निष्कर्ष निकालने योग्य बनाता है। इसीलिए निर्वचन हेतु सामग्री का वर्गीकरण एवं सारणीयन आवश्यक माना जाता है।

14.2 सामग्री का वर्गीकरण

गणनात्मक अनुसन्धान द्वारा संकलित सामग्री अव्यवस्थित एवं बिखरी हुई होती है। उससे किसी भी प्रकार के निष्कर्ष निकालने हेतु उसे व्यवस्थित करना आवश्यक होता है। सामाजिक अनुसन्धान में यह कार्य वर्गीकरण द्वारा किया जाता है। वर्गीकृत सामग्री को सारणीयन द्वारा प्रस्तुत किया जाता है तथा निर्वचन द्वारा निष्कर्ष निकाले जाते हैं। वर्गीकरण का अर्थ विभिन्न वस्तुओं अथवा बिखरी हुई सामग्री को समान गुणों (अथवा विशेषताओं) के आधार पर विभिन्न श्रेणियों अथवा वर्गों में विभाजित करना है। इस प्रकार से वर्गीकरण एकरूपता एवं समानताओं के आधार पर तथ्यों, आँकड़ों या सामग्री का विभिन्न श्रेणियों में विभाजन है।

मन (Mann) के अनुसार, “वर्गीकरण अनिवार्य रूप से वस्तुओं को उनकी समान विशेषताओं के आधार पर एक साथ रखने का एक प्रकार है ताकि उन्हें सरलता से समझा जा सके।”

कॉनर (Connor) ने वर्गीकरण को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, “वर्गीकरण वस्तुओं को उनकी समानताओं अथवा गुणों के आधार पर समूहों एवं वर्गों में क्रमबद्ध करने की एक प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य विभिन्न व्यक्तियों के समान गुणों को खोज कर एक साथ रखना है।”

इसी भाँति, एलहान्स (Elhance) के अनुसार, “सादृश्यताओं व समानताओं के अनुसार सामग्री को समूहों या वर्गों में व्यवस्थित करने की प्रक्रिया को तकनीकी दृष्टि से वर्गीकरण कहा जा सकता है।”

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि वर्गीकरण एकत्रित सामग्री को समान गुणों के आधार पर विभिन्न वर्गों अथवा श्रेणियों में विभाजन करने की प्रक्रिया है ताकि सामग्री को व्यवस्थित करके निष्कर्ष निकालने में सहायता मिल सके। वर्गीकरण के आधार पर सामग्री को सरलता से समझा जा सकता है।

इसके बिना सामग्री का विश्लेषण करना संभव नहीं है। वर्गीकरण का उद्देश्य संकलित सामग्री को श्रेणीबद्ध करके समझने योग्य बनाना है।

एक अच्छे वर्गीकरण की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

- **वर्गीकरण स्पष्ट होना चाहिए**—वर्गीकरण का उद्देश्य सामग्री को व्यवस्थित करना है ताकि इससे अर्थपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकें तथा इसे दूसरों को समझने योग्य बनाया जा सके। इसलिए इसकी सर्वप्रथम विशेषता इसका स्पष्ट होना है। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जिन श्रेणियों अथवा वर्गों में हम सामग्री का विभाजन करने जा रहे हैं, वे पूर्णतः स्पष्ट होने चाहिए।
- **विभिन्न वर्ग एक-दूसरे से भिन्न होने चाहिए**—विभिन्न वर्गों की स्पष्टता के साथ-साथ वर्ग अथवा श्रेणियाँ पूर्णतः एक-दूसरे से भिन्न होनी चाहिए अर्थात् प्रत्येक वर्ग का निर्धारण भिन्न भिन्न विशेषताओं के आधार पर किया जाना चाहिए ताकि एक वस्तु को एक ही वर्ग अथवा श्रेणी में रखा जा सके। अगर किसी एक वस्तु को एक से अधिक श्रेणियों में रखा जा सकता है तो वह वर्गीकरण, वास्तव में, वर्गीकरण ही नहीं है।
- **वर्गीकरण का आधार एक होना चाहिए**—वर्गीकरण अनेक आधारों पर किया जा सकता है परन्तु वही वर्गीकरण एक अच्छा वर्गीकरण कहलाता है जोकि एक नियम पर आधारित है अर्थात् समानताएँ या भिन्नताएँ सामग्री के किसी एक गुण से सम्बन्धित हैं। उदाहरण के लिए, अगर कक्षा के छात्रों का वर्गीकरण करना है तो अनेक आधारों (यथा आयु, लिंग, भार, ऊँचाई, शिक्षा में निपुणता आदि) में से एक

समय पर एक ही आधार चुना जाना चाहिए। इतना हो सकता है कि दूसरे आधार पर प्रमुख श्रेणियों का उपवर्गीकरण कर लिया जाए। अगर वर्गीकरण का एक ही आधार है तो एक वर्ग की इकाइयों में सजातीयता(Homogeneity) होगी।

- **वर्गीकरण में स्थायित्व होना चाहिए**—एक अच्छा वर्गीकरण वह है जिसका स्थायी महत्त्व है क्योंकि अगर इसमें स्थायित्व नहीं है अर्थात् कभी एक आधार पर तथा कभी दूसरे आधार पर वर्गीकरण किया गया है तो तथ्यों की तुलना संभव नहीं हो सकेगी।
- **वर्गों अथवा श्रेणियों की संख्या उपयुक्त होनी चाहिए**—वर्गीकरण की श्रेणियाँ कितनी होनी चाहिए? इसके बारे में निश्चित रूप से कहना कठिन कार्य है। एक अच्छे वर्गीकरण की श्रेणियाँ सामग्री की विविधता तथा संख्या एवं वर्ग विस्तार को सामने रखकर सुनिश्चित की जानी चाहिए। वर्गों अथवा श्रेणियों की संख्या के साथ-साथ वर्गों में विभाजित इकाइयों की संख्या का भी ध्यान रखा जाना चाहिए ताकि ऐसा न हो जाए कि दो वर्गों में एक में तो पंचानबे प्रतिशत इकाइयाँ आ जाएँ तथा दूसरे में केवल पाँच प्रतिशत ही रहें। ऐसे वर्गीकरण सामग्री के विश्लेषण में अधिक सहायक नहीं होते हैं।
- **वर्गीकरण सर्वांगीण होना चाहिए**—वर्गीकरण की एक अन्य प्रमुख विशेषता यह है कि वर्गीकरण सर्वांगीण या निःशेष होना चाहिए अर्थात् कोई भी इकाई ऐसी नहीं बचनी चाहिए जिसे किसी न किसी श्रेणी में न रखा जा सके।
- अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि विभिन्न वर्गों की इकाइयों का कुल योग सम्पूर्ण सामग्री के कुल योग के बराबर होना चाहिए।
- **वर्गीकरण में परिवर्तनशीलता होनी चाहिए**—स्थायित्व होने के साथ-साथ वर्गीकरण में परिवर्तनशीलता का अंश भी पाया जाना अनिवार्य है ताकि अगर इसे नवीन परिस्थितियों में लागू किया जाए तो यह सरलता से अनुकूलन कर सके। वास्तव में, कोई भी वर्गीकरण आज के परिवर्तनशील युग में सदा के लिए स्थायी नहीं हो सकता तथा इसमें थोड़ा बहुत लचीलापन होना अनिवार्य है।

14.3 वर्गीकरण के उद्देश्य एवं आधार

प्रत्येक विषय अपनी विषय-वस्तु का वर्गीकरण करके उसे व्यवस्थित रूप से समझने का प्रयत्न करता है। वास्तव में, वर्गीकरण किसी भी विषय के वैज्ञानिक अध्ययन का एक प्रमुख चरण है।

वर्गीकरण के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं—

- **तथ्यों की प्रकृति को स्पष्ट करना**—वर्गीकरण का प्रथम उद्देश्य एकत्रित तथ्यों की प्रकृति को स्पष्ट करना है अर्थात् यह बताना है कि इनमें क्या समानताएँ एवं क्या असमानताएँ हैं। विभिन्न वर्गों की तुलना से यह स्पष्ट हो सकता है।
- **तथ्यों को संक्षिप्त एवं बोधगम्य बनाना**—चूँकि वर्गीकरण का आधार तथ्यों का तार्किकता के आधार पर अर्थात् वस्तुनिष्ठ रूप में समानताओं एवं असमानताओं के आधार पर समूहों एवं श्रेणियों में बाँटना है, इसलिए वर्गीकरण का दूसरा उद्देश्य तथ्यों को संक्षिप्त तथा बोधगम्य बनाना है। वास्तव में, तथ्यों को बोधगम्य बनाना वर्गीकरण का सबसे प्रमुख उद्देश्य है।
- **तथ्यों के विश्लेषण में सहायता देना**—वर्गीकरण का तीसरा उद्देश्य एकत्रित अनुसन्धान सामग्री, तथ्यों अथवा आँकड़ों को अग्रिम कार्य अर्थात् विश्लेषण के लिए उपयुक्त बनाना है। वर्गीकरण के पश्चात् तथ्यों की व्याख्या सरलता से की जा सकती है।

- **सामान्यीकरण में सहायता देना**—वर्गीकरण के आधार पर सामग्री के बारे में सामान्यीकरण करना सरल हो जाता है। वास्तव में, समानताओं और असमानताओं के आधार पर अगर विषय वस्तु में भेद कर लिया जाए तो सामान्यीकरण की प्रक्रिया संक्षिप्त एवं सरल हो जाती है।
- **तुलना में सहायता देना**—वर्गीकरण का एक अन्य उद्देश्य सामग्री को तुलनात्मक अध्ययनों के लिए उपयुक्त बनाना है। विभिन्न वर्गों की तुलना करके निष्कर्ष निकालना भी सरल हो जाता है।
- **एकत्रित सामग्री का वर्गीकरण किस आधार अथवा नियम पर किया जाए?** यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका समाधान सामग्री की प्रकृति तथा प्रकार पर निर्भर करता है। ऐसे आधार का चयन करना अनिवार्य है जिससे कि वर्गीकरण वैज्ञानिक हो सके तथा इसमें एक अच्छे वर्गीकरण की सभी विशेषताएँ सम्मिलित हो सकें।

सामाजिक अनुसन्धान में सामान्यतः निम्नलिखित प्रमुख आधारों को सामने रखकर वर्गीकरण किया जाता है—

- **गुणात्मक आधार**—अधिकांशतः सामाजिक अनुसन्धान में गुणात्मक आधार पर ही वर्गीकरण किए जाते हैं। इसमें, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, वर्गीकरण का आधार कोई गुण माना जाता है तथा इसी गुण के आधार पर तथ्यों अथवा सामग्री को विभिन्न श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। उदाहरण के लिए, जाति, प्रजाति, धर्म, वैवाहिक स्थिति, शैक्षणिक योग्यता, व्यवसाय इत्यादि विशेषताओं के आधार पर किया गया वर्गीकरण गुणात्मक वर्गीकरण कहा जाएगा। इस प्रकार के वर्गीकरण में चूँकि प्रत्येक वर्ग की विशेषताएँ स्पष्टतया दूसरों से भिन्न हैं इसलिए यह सरल ही नहीं है अपितु इसमें अच्छे वर्गीकरण की अनेक अन्य विशेषताएँ भी पाई जाती हैं जैसे वर्गों की सीमित संख्या तथा वर्गों का एक-दूसरे से अपवर्जी (Exclusive) होना इत्यादि।
- **गणनात्मक आधार**—अगर एकत्रित सामग्री ऐसी है कि उसे गुणों के आधार पर व्यक्त करने की अपेक्षा संख्याओं में व्यक्त करना सरल है तो गणनात्मक आधार का सहारा लिया जाता है। उदाहरण के लिए, ऊँचाई, वजन, आय, व्यय, उत्पादन इत्यादि के आधार पर किया गया वर्गीकरण गणनात्मक वर्गीकरण है। सामग्री का आवृत्ति वितरण (Frequency distribution) के आधार पर वर्गीकरण अर्थात् इसे उतरते एवं चढ़ते क्रम में श्रेणीबद्ध करना भी गणनात्मक वर्गीकरण है।
- **सामयिक आधार**—सामग्री का वर्गीकरण विभिन्न समयों को सामने रखकर भी किया जा सकता है। ऐसे अनुसन्धानों में जो कि विकास सम्बन्धी अथवा पैनल अध्ययन द्वारा किए गए हैं, समय एक महत्वपूर्ण आधार हो सकता है। समय को दिन, सप्ताह, माह अथवा वर्षों में व्यक्त किया जा सकता है। प्रत्येक दस वर्ष के बाद की जाने वाली जनगणना सामयिक आधार का ही एक उदाहरण है। विभिन्न वर्षों के आधार पर किसी देश की जनसंख्या में वृद्धि अथवा उत्पादन अथवा प्रगति इत्यादि को बताना सामयिक आधार पर वर्गीकरण करना ही है।
- **भौगोलिक आधार**—वर्गीकरण में समय के अतिरिक्त स्थान भी एक महत्वपूर्ण आधार हो सकता है। विभिन्न स्थानों के आधार पर या भौगोलिक आधार पर भी सामग्री का वर्गीकरण किया गया है। विभिन्न प्रान्तों अथवा किसी एक प्रान्त के जिलों में जनसंख्या का वर्गीकरण भौगोलिक वर्गीकरण ही है। समय तथा स्थान के आधार पर वर्गीकरण करना एक सरल कार्य है।

14.4 वर्गीकरण के प्रकार

वर्गीकरण के विभिन्न आधारों को सामने रखकर वर्गीकरण को चार प्रमुख प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है। ये आधार एवं उनके अनुरूप वर्गीकरण के प्रकार निम्न प्रकार हैं—

14.4.1 गुणात्मक वर्गीकरण या गुणों के आधार पर वर्गीकरण

विभिन्न गुणों या विशेषताओं के आधार पर तथ्यों का वर्गीकरण गुणात्मक वर्गीकरण कहा जाता है अर्थात् जब सामग्री को किसी विशेष गुण के होने या न होने के आधार पर श्रेणियों में बाँटा जाता है तो उसे गुणात्मक वर्गीकरण कह सकते हैं। सामाजिक अनुसन्धान में साक्षरता, परिवार का स्वरूप, जाति, धर्म, लिंग इत्यादि के गुणों के आधार पर वर्गीकरण की आवश्यकता होती है।

गुणात्मक वर्गीकरण दो प्रकार का है—

- **सरल या द्वैत वर्गीकरण**—इस प्रकार के वर्गीकरण में आँकड़ों को किसी एक गुण के आधार पर दो श्रेणियों में विभाजित कर लिया जाता है अर्थात् जिनमें वह गुण है उन्हें एक श्रेणी में तथा जिनमें नहीं है उन्हें दूसरी श्रेणी में रखा जाता है। यह दोनों श्रेणियाँ पूर्णतः अपवर्जी अर्थात् एक दूसरे से भिन्न होती हैं। उदाहरण के लिए, निम्नलिखित वर्गीकरण द्वैत वर्गीकरण है—

जनसंख्या -> पुरुष / स्त्री

समुदाय -> ग्रामीण / नगरीय

ऐसे वर्गीकरण में 'हाँ' या 'नहीं' से ही वर्ग बनाए जाते हैं।

- **बहुगुणी वर्गीकरण**—इस प्रकार के वर्गीकरण में दो अथवा दो से अधिक गुणों के आधार पर एक साथ वर्गीकरण किया जाता है। इसमें सामग्री को प्रारम्भ में एक गुण के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में विभाजित किया जाता है तथा तत्पश्चात् उन श्रेणियों को दूसरे गुण के आधार पर उप विभाजित किया जाता है। उदाहरण के लिए, किसी समुदाय में पहले लिंग के आधार पर तथा फिर शिक्षा के आधार पर वर्गीकरण करना बहुगुणी वर्गीकरण कहा जा सकता है—

समुदाय	पुरुष	शिक्षित
		अशिक्षित
	स्त्री	शिक्षित
		अशिक्षित

बहुगुणी वर्गीकरण का अर्थ यह नहीं है कि इसमें एक ही आधार पर आँकड़ों को दो श्रेणियों में बाँटा जाए। जैसे धर्म के आधार पर जनसंख्या को हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई में बाँटना बहुगुणी वर्गीकरण नहीं है क्योंकि इसमें एक ही गुण को आधार माना गया है। अगर इन्हें आगे भी हिन्दुओं तथा मुसलमानों के विभिन्न मतों (पंथों) में वर्गीकृत करें तभी यह बहुगुणी वर्गीकरण कहा जाएगा अर्थात् दो अथवा दो से अधिक गुणों को आधार मानकर एक साथ वर्गीकरण करना ही बहुगुणी वर्गीकरण है।

14.4.2 गणनात्मक वर्गीकरण (Quantitative Classification) या चरों के आधार पर वर्गीकरण

यह वह वर्गीकरण है जिसमें सामग्री को अंकों अर्थात् संख्याओं में प्रदर्शित किया जाता है। उदाहरण के लिए, आय, व्यय, लम्बाई के आधार पर वर्गीकरण करना अथवा तथ्यों का आवृत्ति वितरण (Frequency Distribution) गणनात्मक वर्गीकरण है।

यह वर्गीकरण निम्न प्रकार का हो सकता है—

- **असतत श्रेणी (Discrete Series) के अनुसार वर्गीकरण**—इस प्रकार के वर्गीकरण को खण्डित अथवा विच्छिन्न वर्गीकरण भी कहा जाता है। इसमें मूल्यों की आवृत्ति (Frequency) जितनी बार होती है उसे उसी संख्या के सामने लिखकर एक आवृत्ति सारणी (Frequency table) के रूप में दर्शाया जाता है, जैसे—

छात्रों की लम्बाई (फुटों में)	छात्रों की संख्या (आवृत्ति)
4.0 से कम	8
4.0	14
4.1	20
4.2	14
4.3	16
4.3	14
4.4 से अधिक	8
योग	82

- **सतत श्रेणी (Continuous Series) अथवा वर्गान्तर के अनुसार वर्गीकरण**—इस प्रकार के वर्गीकरण को अखण्डित अथवा अविच्छिन्न वर्गीकरण भी कहा जाता है तथा इसका प्रयोग सामग्री की संख्या अधिक होने के कारण सामग्री को पृथक्-पृथक् प्रस्तुत न करके वर्गों में किया जाता है। वर्ग अथवा वर्गान्तर की सीमाएँ स्वेच्छिक तौर पर निश्चित की जाती हैं।

प्राप्तांक	आवृत्ति
20 से कम	200
20—30	140
30—40	80
40—50	90
50—60	50

60—70	40
70 से अधिक	40
योग	640

उपर्युक्त सारणी में 600 विद्यार्थियों का उनके प्राप्तांकों के आधार पर वर्गीकरण दर्शाया गया है। वर्गान्तर के अनुसार वर्गीकरण अपवर्जी श्रेणी (Exclusive series) अथवा समावेशिक श्रेणी (Inclusive series) के आधार पर हो सकता है। पहले में वर्गान्तर की अवर सीमा या अधःसीमा (Lower limit) और उच्च सीमा (Upper limit) अपवर्जी होती है जबकि दूसरे में एक वर्गान्तर की उच्च सीमा अगले वर्गान्तर की अवर सीमा हो जाती है जैसे—

अपवर्जी श्रेणी (Exclusive series)

प्राप्तांक	छात्रों की संख्या (आवृत्ति)
0—9	14
10—19	24
20—29	30
30—39	60
40—49	94
50—59	200
60—69	14
योग	380

• समावेशी श्रेणी (Inclusive series)³⁸¹

प्राप्तांक	छात्रों की संख्या (आवृत्ति)
0—10	14
10—20	24
20—30	30

प्राप्तांक	छात्रों की संख्या (आवृत्ति)
30—40	60
40—50	94
50—60	200
60—70	14
योग	380

वर्गान्तर वर्गीकरण में यद्यपि अवर तथा उच्च सीमा का निर्धारण स्वेच्छिक तौर पर किया जाता है फिर भी इस बात का ध्यान रखा जाता है कि वर्ग संख्या 4 से 20 के बीच में ही होनी चाहिए। वास्तव में, यह सामग्री की प्रकृति एवं विस्तार पर निर्भर करता है। वर्ग विस्तार का समान होना एक अच्छे वर्गीकरण के लिए अनिवार्य है।

14.4.3 सामयिक वर्गीकरण

जब सामग्री अथवा तथ्यों का वर्गीकरण समय विशेष के आधार पर किया जाता है तो इसे सामयिक वर्गीकरण कहा जा सकता है। उदाहरणार्थ, भारत में 1991 ई. से 2001 ई. तक के दशक में अपराध का विस्तार एवं आयतन।

14.4.4 स्थानानुसार वर्गीकरण

एकत्रित आँकड़ों को स्थान अथवा भौगोलिक स्थिति के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में विभाजित करना स्थानानुसार वर्गीकरण कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए, भारत के विभिन्न राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों में 2001 ई. में आई. पी. सी. के अपराध के मामले, आयतन तथा अपराधिता की श्रेणी सम्बन्धी वर्गीकरण स्थानानुसार वर्गीकरण है—

क्रम संख्या	राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश	अपराध के कुल मामले	पूरे भारत में प्रतिशत	कुल अपराधों का आयतन	अपराधिता की श्रेणी
1.	आन्ध्र प्रदेश	130089	6.3	161.8	19
2.	अरुणाचल प्रदेश	2332	0.1	213.6	9
3.	असम	35866	2.1	138.3	22

क्रम संख्या	राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश	अपराध के कुल मामले	पूरे भारत में प्रतिशत	कुल अपराधों का आयतन	अपराधिता की श्रेणी
3.	बिहार	88332	4.0	85.6	25
4.	छत्तीसगढ़	38350	2.2	183.9	13
5.	गोवा	2331	0.1	163.2	18
6.	गुजरात	83319	4.8	203.3	11
8.	हरियाणा	38649	2.2	183.8	15
9.	हिमाचल प्रदेश	11399	0.5	189.2	13
8.	जम्मू और कश्मीर	19404	1.1	193.6	9
11.	झारखण्ड	24336	1.3	93.5	29
12.	कर्नाटक	89098	5.2	205.9	8
13.	केरल	83836	4.9	325.2	3
13.	मध्य प्रदेश	181631	8.3	301.0	4
14.	महाराष्ट्र	16933	9.6	166.0	16
15.	मणिपुर	2389	0.1	83.2	26
16.	मेघालय	1586	0.1	63.2	33
18.	मिजोरम	2235	0.1	242.1	6
19.	नागालैण्ड	933	0.1	52.0	33

क्रम संख्या	राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश	अपराध के कुल मामले	पूरे भारत में प्रतिशत	कुल अपराधों का आयतन	अपराधिता की श्रेणी
20.	उड़ीसा	35551	2.5	96.1	23
21.	पंजाब	26663	1.5	113.3	23
22.	राजस्थान	144184	8.8	263.8	5
23.	सिक्किम	333	0.0	82.2	31
24.	तमिलनाडु	143801	8.6	239.2	8
25.	उत्तर प्रदेश	16899	8.1	86.3	24
26.	उत्तरांचल	8063	0.4	94.2	28
28.	पश्चिम बंगाल	51453	3.4	65.6	32
	कुल राज्य	1606165	95.3	158.8	—
29.	अण्डमान और निकोबार द्वीपसमूह	548	0.0	183.8	14
30.	चण्डीगढ़	3396	0.2	366.0	3
31.	दादरा और नागर हवेली	340	0.0	149.1	20
32.	दमन और दीव	239	0.0	141.3	21
33.	दिल्ली	43383	3.1	393.5	2
34.	लक्षद्वीप	35	0.0	49.0	34
35.	पाण्डिचेरी	3058	0.2	316.6	1

क्रम संख्या	राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश	अपराध के कुल मामले	पूरे भारत में प्रतिशत	कुल अपराधों का आयतन	अपराधिता की श्रेणी
	कुल(केन्द्र शासित प्रदेश)	53132	3.5	383.6	—
	कुल(सम्पूर्ण भारत)	1659308	80.0	162.3	—

इन चार प्रकार के वर्गीकरणों के अतिरिक्त आँकड़ों का आवृत्तिहीन अथवा क्रमिक (Array) श्रेणी (माला) के अनुसार भी वर्गीकरण किया जा सकता है जिसमें इकाइयों को माप के उतार या चढ़ाव के आधार पर क्रमबद्ध किया जाता है।

वर्गीकरण के उपयुक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्गीकरण की सम्पूर्ण प्रक्रिया सभी प्रकार की सामग्री (जैसे वस्तुओं, क्रियाओं, मनोवृत्तियों, विश्वासों इत्यादि) को समूहों में बाँटने से संबंधित है ताकि जटिल परिस्थिति अथवा आँकड़ों को समझा जा सके।

कुछ परिस्थितियों में वर्गीकरण करना सरल है (यथा लिंग अथवा आयु के आधार पर वर्गीकरण करना), जबकि अन्य परिस्थितियों में वर्गीकरण अपने आप में एक कठिन कार्य हो सकता है।

सामग्री के विश्लेषण में वर्गीकरण सबसे पहला चरण है जिसमें सामग्री को व्यवस्थित किया जाता है परन्तु वर्गीकरण कर लेने मात्र से सामग्री के बारे में निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते। वर्गीकृत सामग्री का सारणीयन एवं निर्वचन अन्य महत्वपूर्ण चरण हैं जिससे कि इस व्यवस्थित सामग्री का आगे विश्लेषण किया जाता है।

सामाजिक अनुसन्धानों में वैज्ञानिक वर्गीकरण की दिशा में कोई अधिक प्रगति नहीं हो पाई है। टी. बी. बॉटोमोर (T. B. Bottomore) ने इसलिए समाजशास्त्र में किए गए वर्गीकरणों के सन्दर्भ में लिखा है कि, “सामाजिक वर्गीकरण के क्षेत्र में अधिक लाभकारी कार्य किया गया है हालांकि अभी इससे वर्गीकरण की सामान्यतः स्वीकृत कोई योजना नहीं बन पाई है।”

14.5 सामग्री विश्लेषण के स्तर: संकेतन, सारणीयन एवं निर्वचन

कुछ लोगों का विचार है कि सामग्री संकलन करना ही अनुसन्धान है जोकि एक भ्रामक विचार है। सामग्री का विश्लेषण वैज्ञानिक अनुसन्धान का एक महत्वपूर्ण चरण है जिससे सामग्री को क्रमबद्ध करके निष्कर्ष निकाले जाते हैं। सामग्री के विश्लेषण में मुख्य रूप से तीन कार्यों का सम्पादन करना पड़ता है—संकेतन (Coding), सारणीयन (Tabulation) तथा निर्वचन (Interpretation)। सामान्य रूप से जिस सामग्री का संकलन किया जाता है वह गुणात्मक (Qualitative) होती है। इन गुणात्मक सूचनाओं को संकेतन द्वारा गणनात्मक (Quantitative) सूचनाओं में परिवर्तित किया जाता है। मोजर एवं कैल्टन (Moser and Kalton) के अनुसार, “सर्वेक्षणों के संकेतन का उद्देश्य किसी प्रश्न के उत्तरों को अर्थपूर्ण श्रेणियों में वर्गीकृत करना है ताकि उनका क्रम स्पष्ट हो सके।” उनके अनुसार प्रश्नों के वितरण एवं वर्गों के बारे में निर्णय पर संकेतन प्रक्रिया निर्भर करती है। प्रत्येक प्रश्न के लिए एक संकेतन ढाँचा (Coding frame) बनाया जा सकता है।

संकेतन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से संकलित गुणात्मक सामग्री को ऐसा वस्तुनिष्ठ रूप प्रदान किया जाता है जिससे उसको संख्यात्मक एवं मात्रात्मक रूप में परिवर्तित किया जा सके तथा निष्कर्ष निकालने हेतु उसे सारणीबद्ध किया जा सके। करलिंगर (Kerlinger) के शब्दों में, “संकेतन से एक ऐसे पद का बोध होता है जोकि प्रश्नों के प्रत्युत्तरों एवं सूचनादाता द्वारा प्राप्त सूचनाओं को विशिष्ट संवर्गों में इस उद्देश्य से प्रस्तुत करता है ताकि उसका विश्लेषण किया जा सके।” संकेत सामान्यतः संख्याओं (1, 2, 3, 3.....) अथवा अंग्रेजी के शब्दों (a, b, c, d.....) के रूप में दिए जाते हैं।

b, c, d या x, y, z) द्वारा व्यक्त किए जाते हैं। उदाहरणार्थ, यदि किसी कक्षा के छात्रों द्वारा प्राप्त अंकों के वर्गान्तर एक समान हैं तो किसी एक वर्ग (सामान्यतः वितरण के केन्द्र या केन्द्र के आस-पास स्थित) के अंकों को 0 संकेत दिया जा सकता है। यदि वितरण में 9 वर्ग हैं तथा मध्य वर्ग को 0 संकेत दिया गया है तो उत्तरोत्तर वर्गों को -3, -3, -2, -1, 0, 1, 2, 3 एवं 3 मूल्यों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। आजकल समाजशास्त्रीय अनुसन्धान में पहले से ही प्रश्नों के उत्तरों का संकेतन कर लिया जाता है जिससे बाद में विश्लेषण सरलता से किया जा सके। यदि प्रत्येक प्रश्न के लिए एक संकेतन ढाँचा है तो इसके संगठित रूप को संकेतन पुस्तक (Codebook) कहा जाता है। पहले संकेतन मशीन द्वारा छिद्रित कार्डों (Punch cards) पर किया जाता है क्योंकि इससे कम्प्यूटर द्वारा सम्पूर्ण सामग्री का विश्लेषण सम्भव हो जाता है, परन्तु आज छिद्रित कार्डों के स्थान पर सामग्री सीधे कम्प्यूटर पर फीड की जाती है।

संकेतन द्वारा जो गणनात्मक सूचनाएँ प्राप्त होती हैं उन्हें सारणीयन द्वारा व्यवस्थित रूप प्रदान किया जाता है ताकि सामग्री को सरलता से समझा जा सके। यदि सूचनादाताओं की संख्या कम है तो हाथ द्वारा सारणीयन (Hand tabulation) किया जा सकता है। सारणीयन, सामग्री को सांख्यिकीय विश्लेषण योग्य बनाता है।

सामग्री को सारणियों के रूप में वर्गीकृत कर लेने के पश्चात् उसका निर्वचन किया जाता है ताकि निष्कर्ष निकाले जा सकें और सामान्य नियमों का निर्माण किया जा सके। मोजर और कैल्टन का कथन है कि, “सर्वेक्षण परिणामों का निर्वचन साधारण सारणीयन के सामान्य ज्ञान पर आधारित अध्ययन तथा सरल वर्णनात्मक सामग्री की व्याख्या से अधिक नहीं है।”

14.6 सामग्री का सारणीयन

सारणीयन सामाजिक अनुसन्धान में सामग्री के विश्लेषण का एक प्रमुख चरण है। सामग्री के वर्गीकरण के पश्चात् इसे और अधिक निश्चित रूपरेखा प्रदान करने के लिए तथा अधिक बोधगम्य बनाने के लिए सामग्री का सारणीयन किया जाता है। अतः सारणीयन का उद्देश्य सामग्री को सुव्यवस्थित रूप देकर अनुसन्धान समस्या को अधिक स्पष्ट करना है। सामग्री को जब सारणीयन के रूप में प्रस्तुत किया जाता है तो निर्वचन एवं निष्कर्ष निकालने की प्रक्रिया सरल हो जाती है। आनुभविक अध्ययनों, विशेषतः प्रश्नावली व अनुसूची पर आधारित अध्ययनों, में सारणीयन आज सामान्य व महत्वपूर्ण चरण माना जाता है। प्रस्तुत अध्याय में सामग्री के सारणीयन को समझाने का प्रयास किया गया है।

एकत्रित सामग्री को किसी तार्किक क्रम में रखना ही सारणीयन कहलाता है तथा इसका प्रारम्भ सामग्री के वर्गीकरण के पश्चात् शुरू होता है। सारणीयन में वर्गीकृत आँकड़ों को एक तालिका अथवा सारणी के अन्तर्गत इस प्रकार से कॉलमों और कतारों में दिखाया जाता है कि उनका तुलनात्मक महत्त्व पूरी तरह से स्पष्ट हो जाए।

- **सैल्टिज, जहोदा एवं अन्यो (Selltiz, Jahoda and Others) के अनुसार,** "सारणीयन सामग्री के सांख्यिकीय विश्लेषण की तकनीकी प्रक्रिया का एक भाग है। सारणीयन का अनिवार्य काम विभिन्न श्रेणियों में आने वाली सामग्री को गिनना एवं दिखाना है।"
- **एलहॉस (Elhance) के शब्दों में,** "विस्तृत अर्थों में सारणीयन सामग्री की कॉलमों एवं कतारों में एक क्रमबद्ध व्यवस्था है।"
- **कॉनर (Connor) ने इसे परिभाषित करते हुए लिखा है कि,** "सारणीयन किसी विचाराधीन समस्या को स्पष्ट करने के उद्देश्य से किया जाने वाला संख्यात्मक सामग्री का क्रमबद्ध एवं सुव्यवस्थित प्रस्तुतीकरण है।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि सारणीयन सामग्री को गणनात्मक रूप से विभिन्न कॉलमों और कतारों में प्रस्तुत करने की एक विधि है ताकि सामग्री की विशेषताओं एवं उसका तुलनात्मक महत्त्व स्पष्ट हो सके। एक तरह से यह सांख्यिकीय आशुलिपि (Shorthand of statistics) है। सारणीयन सामग्री के संकलन एवं उसके निर्वचन के बीच की एक प्रक्रिया है जिसका सबसे प्रमुख उद्देश्य सामग्री को इस प्रकार व्यवस्थित करना है कि इसे आसानी से समझा जा सके।

सारणीयन के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं-

1. **सामग्री को सुव्यवस्थित बनाना-**सारणीयन का प्रमुख उद्देश्य एकत्रित सामग्री को वर्गीकरण कर लेने के पश्चात् इसे अधिक व्यवस्थित रूप प्रदान करना है ताकि अगले चरण अर्थात् निर्वचन एवं निष्कर्ष निकालने की प्रक्रिया सरल हो सके।
2. **सामग्री को बोधगम्य बनाना-**सारणीयन का दूसरा प्रमुख उद्देश्य सामग्री को सरल रूप से कॉलमों एवं कतारों में दिखाकर इन्हें अधिक बोधगम्य बनाना है अर्थात् सामग्री को इस रूप में प्रस्तुत करना है कि यह सुगमतापूर्वक समझी जा सके।
3. **सामग्री की विशेषताओं को स्पष्ट करना-**सारणीयन का प्रमुख उद्देश्य एकत्रित सामग्री की विविध प्रकार की विशेषताओं को प्रदर्शित करना है। तालिका अर्थात् सारणी देखते ही सारणी में दिखाई गई सामग्री की विशेषताएँ स्पष्ट हो जाती हैं।
4. **सामग्री का संक्षिप्तीकरण करना-**सारणीयन का उद्देश्य विस्तृत सामग्री का कम से कम स्थान पर प्रदर्शन करना है अर्थात् इसे इस प्रकार से संक्षिप्त रूप में प्रदर्शित करना है कि हम जो कहना चाहते हैं वह भी स्पष्ट हो जाए और स्थान भी अधिक न लगे।
5. **सामग्री को तुलना योग्य बनाना-**सारणीयन का अन्तिम उद्देश्य सामग्री की तुलना करने में सहायता देना है। वास्तव में, सारणीयन सामग्री को इस प्रकार व्यवस्थित रूप प्रदान कर देता है कि इसका तुलनात्मक महत्त्व भी सरलता से अपने आप स्पष्ट होने लगता है।

14.7 सारणीयन के विभिन्न प्रकार

सारणियाँ (Tabulation) अनेक प्रकार की होती हैं तथा इनका वर्गीकरण चरों अथवा गुणों के आधार पर प्रमुख रूप से चार श्रेणियों अथवा वर्गों में किया जाता है जोकि इस प्रकार हैं-

1. एकगुणी सारणीयन (Univariate Tabulation) -इसे एकल सारणी अथवा सरल सारणी (Simple Table) भी कहा जा सकता है क्योंकि इस प्रकार के सारणीयन में केवल एक गुण अथवा लक्षण को ही दिखाया

जाता है। उदाहरण के लिए, निम्ननिर्मित एकगुणी सारणीयन में बी० ए० प्रथम वर्ष के 214 छात्रों के 2003 की परीक्षा में समाजशास्त्रीय अन्वेषण वाले पेपर में प्राप्तांक दिखाए गए हैं-

2009 ई० में बी० ए० प्रथम वर्ष की परीक्षा में समाजशास्त्रीय अन्वेषण वाले पेपर में प्राप्तांक

प्राप्तांक	छात्रों की संख्या (आवृत्ति)
20 से कम	8
20-30	30
30-40	14
40-50	84
50-60	28
60-70	22
60 से अधिक	4
योग	214

उपर्युक्त सारणी में हमें केवल एक ही लक्षण अर्थात् बी० ए० द्वितीय वर्ष में समाजशास्त्रीय अन्वेषण वाले पेपर में प्राप्तांक के प्रत्येक वर्ग में छात्रों की संख्या का ही पता चलता है, अन्य किसी बात का पता नहीं चलता।

2. द्विगुणी सारणीयन(Bivariate Tabulation / Two-way Table) : इस प्रकार की सारणी में दो परस्पर सम्बन्धित गुणों अथवा लक्षणों का प्रदर्शन एक साथ किया जाता है। जब किसी तथ्य के दो गुणों को प्रदर्शित करना होता है तो द्विगुणी सारणीयन का निर्माण किया जाता है। उदाहरण के लिए, अगर 215 विद्यार्थियों में छात्र एवं छात्राओं द्वारा 2003 की बी० ए० प्रथम वर्ष की परीक्षा के सामाजिक अनुसन्धान वाले पेपर में प्राप्तांकों को दिखाना है, तो निम्न प्रकार की द्विगुणी सारणी का प्रयोग किया जा सकता है-

2009 ई० में बी० ए० प्रथम वर्ष की परीक्षा में समाजशास्त्रीय अन्वेषण वाले पेपर में छात्र-छात्राओं के लिंग के अनुसार प्राप्तांक

प्राप्तांक	विद्यार्थियों की संख्या		योग
	छात्र	छात्राएँ	
20 से कम	8	2	10
20-30	20	10	30
30-40	7	8	15
40-50	55	50	105
50-60	10	18	28
60-70	7	15	22
70 से अधिक	2	3	5
योग	109	106	215

उपर्युक्त द्विगुणी सारणी में हम इतना तो जानते ही हैं कि 20-30 के बीच प्राप्तांक पाने वाले विद्यार्थियों की संख्या 30 है परन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इनमें से 20 छात्र हैं जबकि 8 छात्राएँ हैं। इस प्रकार, इस सारणी में दो गुणों (प्राप्तांक पाने वाले विद्यार्थियों एवं उनके लिंग) का एक साथ प्रदर्शन किया गया है।

3. त्रिगुणी सारणीयन: त्रिगुणी सारणी में किसी घटना अथवा तथ्य से सम्बन्धित तीन विशेषताओं का एक साथ प्रदर्शन किया जाता है। उदाहरण के लिए, अगर 2003 की बी० ए० प्रथम वर्ष की परीक्षा के सामाजिक अनुसन्धान वाले पेपर में 215 छात्रों के प्राप्तांक लिंग के आधार के साथ-साथ वैवाहिक स्तर के आधार पर भी दिखाए जाँएँ तो इस प्रकार की सारणी को त्रिगुणी सारणी कहा जाएगा। अग्रनिर्मित सारणी द्वारा इसे स्पष्ट किया जा सकता है-

2009 ई० में बी ए० प्रथम वर्ष की परीक्षा में समाजशास्त्रीय अन्वेषण वाले पेपर में लिंग व वैवाहिक स्तर के अनुसार प्राप्तांक

प्राप्तांक	छात्र			छात्राएँ			योग		
	वि०	अवि०	कुल	वि०	अवि०	कुल	वि०	अवि०	कुल
20 से कम	3	5	8	-	2	2	3	7	10
20-30	5	15	20	2	8	10	7	23	30
30-40	1	6	7	-	8	8	1	14	15
40-50	15	40	55	5	45	50	20	85	105
50-60	-	10	10	1	17	18	1	27	28
60-70	1	6	7	3	12	15	4	18	22
70से अधिक	-	2	2	1	2	3	1	4	5
योग	25	84	109	12	94	106	37	178	215

उपर्युक्त सारणी में छात्रों के तीन परस्पर सम्बन्धित गुणों का एक साथ प्रदर्शन किया गया है। ये गुण हैं-प्राप्तांक, लिंग एवं वैवाहिक स्तर।

3. बहुगुणी सारणीयन: (Multivariate Tabulation / Manifold Table) जब किसी घटना अथवा तथ्य से सम्बन्धित तीन से अधिक गुणों एवं विशेषताओं का प्रदर्शन एक साथ किया जाता है तो इसे बहुगुणी सारणी कहा जाता है। उदाहरण के लिए, यदि उपर्युक्त सारणी में हम छात्रों को उनके कॉलेजों के अनुसार और विभाजित कर दें तो यह बहुगुणी सारणी बन जाएगी। इस सारणी में छात्रों की चार विशेषताओं (1) कॉलेज का नाम, (2) समाजशास्त्रीय अन्वेषण वाले पेपर में विद्यार्थियों के प्राप्तांक, (3) लिंग तथा (3) वैवाहिक स्तर का एक साथ प्रदर्शन किया गया है।

'क', 'ख', 'ग', कॉलेजों में बी० ए० प्रथम वर्ष के छात्रों के लिंग एवं वैवाहिक स्तर के आधार पर
समाजशास्त्रीय अन्वेषण वाले पेपर में प्राप्तांक

'क'	प्राप्तांक	छात्र			छात्राएँ			योग		
		वि०	अवि०	कुल	वि०	अवि०	कुल	वि०	अवि०	कुल
	20 से कम									
	20-30									
	30-40									
	40-50									
	50-60									
	60-70									
	70से अधिक									
	योग									
'ख'	20 से कम									
	20-30									
	30-40									
	40-50									
	50-60									
	60-70									
	70से अधिक									
	योग									
'ग'	20 से कम									
	20-30									
	30-40									
	40-50									
	50-60									
	60-70									
	70से अधिक									
	योग									

[illegible]

14.8 सारणी का निर्माण

सारणी का निर्माण करना जितना सरल लगता है, वास्तव में, वह उतना ही कठिन है क्योंकि इसमें विविध प्रकार की सामग्री का एक साथ प्रदर्शन करना होता है। सारणी के निर्माण की प्रक्रिया में निम्नलिखित बातें महत्वपूर्ण हैं अर्थात् इसका निर्माण करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना जरूरी है -

1. **शीर्षक**-प्रत्येक सारणी का एक उपयुक्त शीर्षक होना चाहिए जोकि उस सारणी में दिखाए गए तथ्यों के गुणों को स्पष्टतः वर्णन करता हो। शीर्षक पूरा, स्पष्ट तथा आकर्षक होना चाहिए एवं यह जहाँ तक सम्भव हो, दो पंक्तियों से अधिक नहीं होना चाहिए। इसे बड़े अक्षरों में लिखा जाना चाहिए। एक अच्छे शीर्षक में विषय, समय, वर्गीकरण के आधार तथा सूचना के स्रोत का सम्मिलित होना अनिवार्य है।
2. **स्तम्भ अथवा कॉलम**-सारणी का निर्माण करते समय स्तम्भों के आकार का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए तथा कागज अथवा पृष्ठ के स्थान को ध्यान में रखते हुए स्तम्भों की संख्या एवं आकार का निर्धारण किया जाना चाहिए। प्रथम स्तम्भ बाकी स्तम्भों से बड़ा होता है क्योंकि इसमें विभिन्न श्रेणियों के नाम लिखे जाते हैं। स्तम्भ अधिक नहीं होने चाहिए तथा इनका आकार समान अनुपात के आधार पर रखा जाना चाहिए ताकि सारणी देखने में आकर्षक लगे। स्तम्भों का आकार इनमें लिखी जाने वाली संख्याओं के आधार पर निश्चित करना चाहिए। प्रत्येक सारणी में स्तम्भों का योग अन्तिम पंक्ति में दर्शाया जाना चाहिए।
3. **अनुशीर्षक**-प्रत्येक स्तम्भ का एक अनुशीर्षक होता है जो तथ्यों की प्रकृति अथवा गुण स्पष्ट करता है। अनुशीर्षक स्पष्ट होना चाहिए तथा इसे सुन्दर लेख में लिखा जाना चाहिए। यदि अनुशीर्षक के नीचे लिखी जाने वाली संख्याएँ बड़ी हैं तो हजारों, लाखों या दस लाख अर्थात् मिलियन में संख्याओं को अनुशीर्षक के नीचे लिखा जा सकता है।
4. **कतारें अथवा पंक्तियाँ**-क्षैतिज रेखाओं द्वारा बने खानों को कतारें कहा जाता है। कतारों में सूचना का आधार सामग्री का कोई भी गुण हो सकता है। वर्णात्मक, भौगोलिक, सामाजिक लक्षण अथवा संख्यात्मक महत्त्व के आधार पर कतारें बनाई जा सकती हैं।
5. **स्तम्भों का क्रम**-स्तम्भों का क्रम सोच समझकर निर्धारित करना चाहिए। पहला स्तम्भ बड़ा होता है क्योंकि इसमें श्रेणियों का वितरण होता है। साथ ही, सारणी को सामान्यतः बायें से दायें ओर पढ़ा जाता है इसलिए सर्वाधिक महत्त्व की सूचनाएँ बायीं ओर के स्तम्भों में शुरू की जानी चाहिए। इतना ही नहीं, तुलना किए जाने वाले स्तम्भों को साथ-साथ रखा जाना भी अनिवार्य है।
6. **टिप्पणियाँ**-कई बार सारणी में दिए गए तथ्यों के बारे में विशेष सूचना देनी पड़ती है जिसका प्रदर्शन सारणी में सम्भव नहीं हो पाता। इस प्रकार की परिस्थितियों में सारणी में दिखाए गए आँकड़ों पर कोई संकेत जैसे *, ** इत्यादि देकर नीचे इसी प्रकार का संकेत बनाकर टिप्पणी लिखी जा सकती है।

इसके अतिरिक्त सारणी का निर्माण करते समय सारणी के आकार, स्पष्टता, स्वच्छता तथा पतली, मोटी या दोहरी रेखाओं (पृथक् लक्षणों को प्रकट करते हुई) का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए।

14.9 सारणीयन की विधियाँ

सामग्री के सारणीयन के लिए प्रमुख रूप से दो विधियों का प्रयोग किया जाता है-हस्त सारणीयन तथा यांत्रिक सारणीयन। इन्हें निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है-

1. हस्त सारणीयन:- (Hand Tabulation) हस्त सारणीयन विधि का प्रयोग उन परिस्थितियों में किया जाता है जबकि सामग्री सीमित हो। अधिक सामग्री होने पर हस्त सारणीयन की अपेक्षा यांत्रिक सारणीयन अधिक प्रचलित एवं महत्वपूर्ण है। परन्तु पहले अधिक सामग्री के लिए भी हस्त सारणीयन का ही प्रयोग किया जाता रहा है। इस प्रकार के सारणीयन में सर्वप्रथम टैली शीट (Tally sheet) बनाकर आँकड़ों को विभिन्न वर्गों में बाँटा जाता है। हस्त सारणीयन को भी दो प्रकार से किया जा सकता है-

(i) प्रत्येक इकाई की पूरी सूचना संकेतों (कोड शब्दों) द्वारा विभिन्न कार्डों और शीटों पर लिखी जा सकती है तथा इन्हें प्रश्नों एवं गुणों के अनुसार प्रत्यक्ष रूप से गिना जा सकता है। गिनने के लिए टैली शीट बनाई जा सकती है जिसमें एक तरफ (बायीं तरफ) श्रेणियों तथा बीच में इकाइयों की संख्या एक-एक करके लिखी जाती है। टैली शीट द्वारा प्रत्येक श्रेणी में आने वाली इकाइयों की संख्या अर्थात् आवृत्ति का पता चल जाता है। यांत्रिक सारणीयन के प्रयोग से पहले बड़े-बड़े प्रोजेक्टों में इसी विधि का प्रयोग किया जाता था।

(ii) हस्त सारणीयन की दूसरी विधि प्रत्येक इकाई (अर्थात् सूचनादाता) की सांकेतिक सूचना को पृथक् कार्डों पर लिखने की बजाय पहले एक मास्टर चार्ट (Master chart) बनाया जाता है जिसमें एक कतार में विभिन्न सूचनादाताओं की प्रत्येक प्रश्न की सूचना कोड शब्दों में लिखी जाती है। इसमें एक तरह से एक स्तम्भ में सूचनादाताओं द्वारा किसी प्रश्न के दिए गए उत्तर हैं। मास्टर चार्ट में क्रॉस सारणीयन दो प्रश्नों को एक साथ पढ़कर किया जा सकता है। मास्टर चार्ट विधि में भी टैली शीट बनाई जाती है तथा इसमें क्रॉस सारणीयन के लिए एक से अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ सकती है। इसलिए दोनों विधियों में से पहली अर्थात् प्रत्येक सूचनादाता की सूचना अलग कार्ड पर लिखे जाने की विधि अधिक प्रचलित रही है।

2. यांत्रिक सारणीयन:- यांत्रिक सारणीयन (Mechanical Tabulation) जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है वह सारणीयन है जिसमें यन्त्रों अर्थात् मशीनों का प्रयोग होता है। कम्प्यूटर द्वारा सामग्री के विश्लेषण से पूर्व सामाजिक अनुसन्धान में यांत्रिक सारणीयन का ही प्रयोग किया जाता था। अधिक इकाइयों (सूचनादाताओं, मदों अथवा केसों) के होने पर हस्त सारणीयन अधिक कठिन हो जाती है इसलिए यांत्रिक सारणीयन की सहायता ली जाती है। आज यांत्रिक सारणीयन का प्रयोग सीमित पैमाने पर किये जाने वाले अध्ययनों में भी किया जाने लगा है क्योंकि इसकी सुविधाएँ अनेक विश्वविद्यालयों में अथवा व्यक्तिगत स्तर पर अब उपलब्ध होने लगी है।

यांत्रिक सारणीयन में निम्नलिखित प्रक्रियाएँ की जाती हैं-

(i) सर्वप्रथम प्रश्नावली में प्रविष्ट सूचना को संकेतों में बदला जाता है।

(ii) संकेतक सामग्री को पहले 'कोड शीट' पर उतारा जाता है और फिर कार्डों पर उतारा जाता है। सूचना से सम्बन्धित संकेतांक को 'की पंच' (Key Puncher) द्वारा काटकर छेद कर लिया जाता है।

(iii) सूचना को कार्डों पर उतारने के बाद त्रुटियों की जाँच करने के लिए एक परीक्षण पंच द्वारा यह देखा जाता है कि कार्डों में छेद आवश्यकतानुसार ठीक किए गए हैं या नहीं।

(iv) फिर कार्डों को उनके विभिन्न गुणों के अनुसार बिजली के छांटने वाले यन्त्र (Electric sorting machine) में डालकर अलग-अलग कर दिया जाता है। अब यह कार्य कम्प्यूटरों द्वारा किया जाने लगा है।

(v) अन्त में, छाँटे हुए कार्डों की यन्त्र द्वारा गणना करके सारणीयन यन्त्रों की सहायता से सारणियाँ तैयार कर ली जाती हैं। अब कम्प्यूटर द्वारा चरों में सम्बन्ध सम्बन्धी सारणीयन बनाने की योजना बनाकर सारणियाँ कुछ ही मिनटों में तैयार हो जाती हैं।

आजकल उपर्युक्त यान्त्रिक सारणीयन की विधि भी अप्रचलित हो गई है। इसका स्थान सामग्री के सांख्यिकीय विश्लेषण हेतु सॉफ्टवेयर प्रयोग किए जाने लगे हैं। सामाजिक विज्ञानों में सर्वाधिक प्रयोग किए जाने वाले सॉफ्टवेयर को 'सामाजिक विज्ञानों हेतु सांख्यिकीय पैकेज' (Statistical Package for the Social Sciences) कहा जाता है। इसे संक्षेप में 'एस पी एस एस' (SPSS) कहते हैं। यह सरलता से उपलब्ध है तथा विविध प्रकार की सांख्यिकीय संक्रियाओं द्वारा सामग्री के संक्षिप्तीकरण में अत्यन्त उपयोगी है। उदाहरणार्थ-यह पैकेज माध्य एवं प्रमाप विचलन निकालने, टी-टैस्ट (T-test) एवं विचरण विश्लेषण (Analysis of variance) द्वारा यह ज्ञात करने कि दो समूहों में अन्तर महत्वपूर्ण हैं या नहीं, सह-सम्बन्ध (Correlation), साहचर्य (Association) एवं बहुविध प्रतिगमन (Multiple regression) द्वारा चरों में पाए जाने वाले सम्बन्धों को ज्ञात करने तथा चित्रों (Diagrammes) व रेखाचित्रों (Graphs) के माध्यम से आरेखीय परिणामों को समझने में अत्यधिक उपयोगी है। इस पैकेज को प्रयोग में लाने के लिए सांख्यिकी का थोड़ा-बहुत ज्ञान होना अनिवार्य है।

14.10 सारणीयन की उपयोगिता

सारणीयन सामाजिक अनुसन्धान का एक अनिवार्य चरण है जिसकी उपयोगिता निम्नलिखित तथ्यों द्वारा स्पष्ट की जा सकती है-

1. **सारणीयन सामग्री को सुव्यवस्थित करता है**-सारणीयन विस्तृत एवं अव्यवस्थित सामग्री को क्रमबद्ध करने में सहायक है क्योंकि इसमें सामग्री को तार्किक आधार पर सुव्यवस्थित किया जाता है। इसलिए यह निर्वचन एवं निष्कर्ष निकालने में अत्यन्त सहायक है।
2. **सारणीयन विस्तृत सामग्री को संक्षिप्त रूप प्रदान करता है**-सारणीयन विस्तृत एवं बिखरी हुई सामग्री को संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत करने में सहायक है। वास्तव में, इसी के द्वारा आँकड़ों को कम से कम जगह पर दिखाया जा सकता है।
3. **सारणीयन तुलना को सरल बनाता है**-सारणीयन तुलना का कार्य अति सरल बना देता है क्योंकि इसमें तुलनात्मक सामग्री को एक साथ व्यवस्थित किया जाता है जिससे कि उनका महत्व स्पष्ट हो जाए।
4. **सारणीयन सांख्यिकीय विश्लेषण में सहायक है**-सारणीयन सामग्री के सांख्यिकीय विश्लेषण अर्थात् माध्य प्रवृत्तियाँ, विचलन एवं सहसम्बन्ध इत्यादि निकालने अथवा सामग्री को ग्राफ इत्यादि द्वारा प्रदर्शित करने में सहायक है।

संक्षेप में, सारणियाँ वर्गीकृत समूहों को सरल, संक्षिप्त और सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करके सांख्यिकीय निर्वचन में सहायता प्रदान करती हैं।

14.11 सारणीयन की सीमाएँ

यद्यपि सारणीयन सामाजिक अनुसन्धान में एक महत्वपूर्ण चरण है फिर भी इसकी कुछ सीमाएँ हैं। सारणीयन की प्रमुख सीमाएँ निम्नलिखित हैं-

1. **केवल गणनात्मक सामग्री के प्रदर्शन में सहायक**-सारणीयन की सबसे बड़ी कमी यह है कि इसके द्वारा केवल गणनात्मक सामग्री का ही प्रदर्शन किया जा सकता है गुणात्मक (Qualitative) सामग्री का नहीं। सारणी में इतना स्थान ही नहीं होता कि किसी विशेष गणनात्मक तथ्य की आंशिक गुणात्मक व्याख्या भी की जा सके। सामाजिक अनुसन्धान में जो तथ्य एकत्रित किए जाते हैं, वे अधिकांशतः गुणात्मक होते हैं। वर्णनात्मक अध्ययनों में सारणीयन उपयुक्त नहीं है।
2. **सामान्य व्यक्तियों की समझ से बाहर**-सारणीयन द्वारा जिस सामग्री का प्रदर्शन किया जाता है, उसे सामान्य व्यक्तियों द्वारा समझने में कठिनाई हो सकती है। वास्तव में, इसका उपयोग केवल विशिष्ट एवं उच्च ज्ञान वाले व्यक्तियों तक ही सीमित है।
3. **सीमित उपयोग**-सारणीयन का सीमित पैमाने पर ही उपयोग किया जा सकता है अर्थात् इसका सीमित महत्त्व है क्योंकि एक सारणी में सम्पूर्ण सामग्री का प्रयोग नहीं किया जा सकता। साथ ही, गुणात्मक आँकड़ों का प्रदर्शन होने के कारण सारणी का महत्त्व कम हो जाता है।

आज अधिकांश अनुसन्धान पुस्तकों एवं लेखों में जहाँ एक तरफ सांख्यिकी का अधिकाधिक प्रयोग देखने को मिलता है वहाँ दूसरी तरफ आँकड़ों को यथासम्भव सारणीयन के बिना प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति भी बढ़ती जा रही है। कुछ अनुसन्धान पत्रिकाओं में तो लेख निर्देश के रूप में यहाँ तक लिखा रहता है कि अगर सामग्री या आँकड़ों को वैसे ही सरलता से समझाया जा सकता है तो सारणी का प्रयोग न किया जाए।

14.12 सामग्री का निर्वचन

सामग्री के वर्गीकरण एवं सारणीयन के पश्चात् इसका विश्लेषण करके निष्कर्ष निकाले जाते हैं। निर्वचन में सांख्यिकीय विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष निकाले जाते हैं। संकलित तथ्यों के सारणीयन से हमें यह पता चल जाता है कि कौन-कौन से चर परस्पर सम्बन्धित हैं। सामग्री के निर्वचन के समय काफी सावधानी रखनी पड़ती है तथा निर्वचन का आधार केवल तथ्य ही होने चाहिए। मोजर एवं कैल्टन (Moser and Kalton) के अनुसार, "सर्वेक्षण परिणामों का निर्वचन साधारण सारणीयन का सामान्य ज्ञान पर आधारित अध्ययन तथा सरल वर्णनात्मक सामग्री की व्याख्या से अधिक नहीं है।" सामग्री के सम्बन्ध में निर्वचन सांख्यिकीय त्रुटियों को सामने रखकर किया जाता है। किसी भी प्रकार की सामग्री क्यों न हों, निर्वचन का उत्तरदायित्व अनुसन्धानकर्ता के कंधों पर है। कुछ अनुसन्धानकर्ताओं का विचार है कि उनका कार्य केवल परिणामों को तार्किक तथा सुगम रूप से प्रस्तुत करना है, जबकि इनसे निष्कर्ष निकालना पढ़ने वालों का कार्य है। मोजर तथा कैल्टन का कहना है कि यह कार्य पूर्णतः पढ़ने वालों पर छोड़ना ठीक नहीं है।

उदाहरणार्थ, इसी इकाई में स्थानानुसार वर्गीकरण को भारत के विभिन्न राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों में 2001 ई० में आई० पी० सी० के अपराध के मामले, आयतन तथा अपराधिता की श्रेणी सम्बन्धी वर्गीकरण द्वारा स्पष्ट किया गया है। यदि हम इस सारणी को ध्यान से देखें तो इसके निर्वचन द्वारा निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं-

1. 2001 ई० में भारत में आई० पी० सी० के कुल 1659308 अपराध दर्ज किए गए जिनमें से विभिन्न राज्यों में 1606165 (95.3 प्रतिशत) तथा केन्द्र शासित प्रदेशों में 53132 (3-5 प्रतिशत) थे।
2. सर्वाधिक अपराध वाले राज्यों में मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश एवं महाराष्ट्र का क्रमशः पहला, दूसरा तथा तीसरा स्थान है।
3. सबसे कम अपराध वाले राज्यों में सिक्किम प्रथम स्थान पर है। उसके पश्चात् अरुणाचल प्रदेश, गोवा, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम तथा नागालैण्ड का स्थान है।
4. केन्द्रशासित प्रदेशों में अण्डमान और निकोबार द्वीपसमूह, दादरा एवं नागर हवेली, दमन और दीव तथा लक्षद्वीप ऐसे हैं जिनमें अपराध की दर बहुत कम है।

14.13 शब्दावली

- **वर्गीकरण** - वर्गीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें सामग्री (आँकड़ों) को समानताओं एवं असमानताओं के अनुसार विभिन्न वर्गों में व्यवस्थित किया जाता है।
- **गुणात्मक वर्गीकरण** - जब सामग्री का वर्गीकरण समकों के गुणों के अनुसार किया जाता है तो उसे गुणात्मक वर्गीकरण कहते हैं।
- **वर्गान्तर विस्तार** - प्रत्येक वर्ग की निम्न एवं उच्च सीमा के अन्तर को वर्ग विस्तार या वर्गान्तर विस्तार कहते हैं।
- **सारणीयन** - सारणीयन वह सांख्यिकीय प्रक्रिया है जिसके द्वारा संकलित सामग्री को स्तम्भों (खानों) और पंक्तियों में क्रमबद्ध किया जाता है।
- **द्विगुणी सारणी** - यह वह सारणी है जिसमें एक ही प्रकार की सामग्री के दो भिन्न-भिन्न गुणों का स्पष्टीकरण किया जाता है।

14.14 अभ्यास प्रश्न

1. वर्गीकरण किसे कहते हैं? इसके प्रमुख उद्देश्य बताइए।
2. वर्गीकरण को परिभाषित कीजिए तथा इसके आधारों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
3. सामग्री विश्लेषण के विभिन्न स्तरों की विवेचना कीजिए।
4. सारणीयन क्या है? इसके विभिन्न प्रकार कौन से हैं? संक्षेप में समझाइए।
5. सारणीयन किसे कहते हैं? सारणी का निर्माण करते समय किन बातों का ध्यान रखा जाना आवश्यक है?
6. सारणीयन से आप क्या समझते हैं? इसकी उपयोगिता एवं सीमाओं की विवेचना कीजिए।
7. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए-

(अ) संकेतन

(ब) सारणीयन की विधियाँ

(स) सामग्री का निर्वचन

(द) द्विगुणी सारणीयन।

14.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Bottomore, T. B., Sociology A Guide to Problems and Literature, London: Allen and Unwin, 1958.
2. Connor, L. R., Statistics in Theory and Practice, London: Sir Isaac Pitman & Sons, 1953.
3. Elhance, D. N., Fundamentals of Statistics, Allahabad: Kitab Mahal, 1953.
4. Kerlinger, F. N., Foundations of Behavioural Research, New York: Holt, Rinehart, and Winston, 1969.
5. Mann, Peter H., Methods of Sociological Enquiry, Oxford: Blackwell, 1958.
6. Moser, C. A. and G. Kalton, Survey Methods in Social Investigation, London: Heinemann Educational, 1961.
7. Selltitz, Claire, Marie Jahoda, Morton Deutsch and Stuart W. Cook, Research Methods in Social Relations, New York: Henry Holt and Company, 1949.

